'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतानि

षट्वामतन्त्राणि

कामाख्यातन्त्रम्

मायातन्त्रम्

गुप्तसाधनतन्त्रम्

तारातन्त्रम्

चीनाचारक्रमतन्त्रम्

सर्वविजयितन्त्रम्

विवृतिकारः सम्पादकश्च

डा० रामचन्द्र पुरी



'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतानि

कामाख्या-माया-गुप्तसाधन-तारा-

चीनाचारक्रम-सर्वविजयिसंज्ञकानि

षट् वामतन्त्राणि

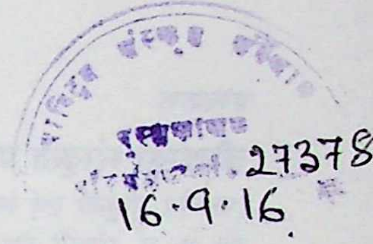
•

विवृतिकार: सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
180



'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतानि

कामाख्या-माया-गुप्तसाधन-तारा-
चीनाचारक्रम-सर्वविजयिसंज्ञकानि

षट् वामतन्त्राणि

विवृतिकारः सम्पादकश्च
डॉ. रामचन्द्रपुरी



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो.बा.नं. 2113

दिल्ली : 110007

दूरभाष : (011) 23856391, 41530902

e-mail : cspdel.sales@gmail.com

प्रथम संस्करण 2015

मूल्य : 500.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो.बा.नं. 1129, वाराणसी - 221001

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो.बा.नं. 1069, वाराणसी - 221001

•

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

ISBN : 978-81-7084-634-9

षट् वामतन्त्राणि



उन पशुओं के लिए

जिनमें

पशुपति बनने की

ललक

है

•

पुरी

अस्मदीयम्

प्रस्तुत 'षट् वामतन्त्राणि' छः वाममार्गीय ग्रन्थों का संकलन है । इनमें अन्तिम 'सर्वविजयतन्त्रम्' का सम्बन्ध सीधे तौर पर तान्त्रिक साधनाओं से नहीं हैं । किन्तु, यह तान्त्रिक साधनाओं के अभिन्न और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग शरीर-साधना से सम्बन्धित होने से महत्त्वपूर्ण है । शेष पाँच कामाख्यातन्त्रम्, मायातन्त्रम्, गुप्तसाधनतन्त्रम्, चीनाचारक्रमतन्त्रम् और तारातन्त्रम् में क्रमशः कामाख्या, दक्षिणाकाली, धनदा, माया अर्थात् दुर्गा तथा तारा के विभिन्न स्वरूपों से सम्बन्धित विभिन्न साधनाओं का विवरण-निर्देशन है ।

यद्यपि शत-सहस्र देवियों में अपवाद रूप में एकाध को छोड़कर सभी वाममार्गाधिष्ठात्री शक्तियाँ हैं, किन्तु काली, कामाख्या, तारा, बगला आदि देवियाँ तो बिना वामसाधना के पूजी ही नहीं जा सकतीं । वाममार्गीय साधना में अनिवार्य रूप से मत्स्य, मांस, मदिरा, मुद्रा तथा मैथुन के उपयोग का विधान किया गया है । लेकिन, इस अनिवार्यता को जातीय, पारिवारिक, सामाजिक, प्रादेशिक, धार्मिक और आध्यात्मिक आदि पूर्व संस्कारों के कारण निषिद्ध घोषित कर इनके स्थान पर वैकल्पिक अनुकल्पों का भी उल्लेख करके वाममार्गीय साधना के विशुद्ध स्वरूप को आविल करने का भी प्रयास किया गया है और वह भी इन्हीं वाममार्गीय ग्रन्थों में प्रक्षेप करके ।

तथाकथित विशुद्ध दक्षिणमार्गीय साधना के लिए असंख्य देवियाँ हैं और वे सरलता से अपने साधनों की आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकती हैं, फिर ऐसे साधकों द्वारा वाममार्गीय साधना के अनाविल स्वरूप को बदलने का अवैध और अनुचित प्रयास क्यों ?

वाममार्गीय साधना घृणा, भय तथा लज्जादि पूर्व संस्कारों से जकड़े पशुसाधकों के लिए नहीं है । ये संस्कार साधना के विकास में बाधक हैं और उसे सामान्य मानवीय धरातल में बाँध रखने के पाश है । जीव और शिव में अन्तर जीव की पाशबद्धता ही है—

> 'घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पंचमी ।
> कुलं शीलं तथा शक्तिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ।।
> पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तः सदाशिवः' ।। (मेरुतन्त्रे)

वाममार्गीय साधना मानव को सामान्य मानवीय धरातल से उठाकर देवत्व तक पहुँचने की साधना है । यदि आप अपने ब्राह्मणत्व के मिथ्या अभिमान को नहीं छोड़ सकते, आप में जातीय घेरे और पूर्वार्जित अन्य संस्कारों से परे जाने की आकांक्षा और व्याकुलता नहीं है, तो कृपया वामसाधना से दूर ही रहें ।

वाममार्गियों की दृष्टि से दक्षिणमार्गी नितान्त सामान्य मानवीय धरातल पर स्थित हैं । दक्षिणमार्गी सामान्य सद्गृहस्थ हैं । दक्षिणाचार की प्रशंसा करते हुए इन वामतन्त्रों में बताया

गया है कि दक्षिणाचार वाली उपासना देवताओं, देवांशों तथा धार्मिक महापुरुषों के लिए है। सोदाहरण यह भी बताया गया है कि अन्यायरत क्षत्रियों के विनाशार्थ इस विद्या की दीक्षा श्रीपरशुराम को श्रीशिव ने ही दी थी, और क्योंकि परशुराम ब्राह्मण थे, इसलिए भगवती तारा की पूजा में आवश्यक तत्त्व सुरा के स्थान पर पञ्चामृत, मांस के स्थान पर शूरण, मत्स्य के स्थान पर शक्कर तथा लता के स्थान पर स्वपत्नी के साथ रतिप्रसंग को अनुकल्प के रूप में प्रयुक्त करने तथा अन्य पूजा-पदार्थ तथा विधियों को यथावत् करने का निर्देश देकर इस गोपनीय रहस्य को उजागर किया था।

वामसाधना पशु से पशुपति बनने का उद्यम है। यह चेतना के विकास की कहानी है। यह पाशबद्धता से पाशमुक्तता की ओर बढ़ने की यात्रा है। यह त्रैगुण्य से निस्त्रैगुण्य में विचरण करने की अदम्य आकांक्षा है। यह विधि-निषेध से परे जाने की ललक है। यह सब-कुछ स्वीकारते हुए भी सब-कुछ नकारने का साहस है। यह अणु में महत् और महत् में अणु को निहार लेने की अद्भुत दृष्टि है। वामसाधना एक प्रायोगिक उलटवासी है। यह समनी नहीं, उन्मनी साधना है। यह मन को बाँधने की नहीं, उन्मुक्त छोड़ देने की साधना है। वस्तुत: यह साधना किसी भी स्थापित बन्धन के स्वीकार की नहीं अपितु नकार की है, सहमति की नहीं, विरोध की है; अनुरोध की नहीं विद्रोह की है। वाममार्गी साधना भगवती की अर्चना में समस्त सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आर्थिक विषमता के विरुद्ध पिछड़ों, अन्त्यजों, चाण्डाल, नाई, धोबी, कुम्हार तथा मालाकारादि कर्मशील जातियों की कन्याओं की श्रेष्ठता का उद्घोष करती है। इस साधना में वेश्या सर्वाधिक सम्पूज्य है। यह साधना दुरूह है, केवल सद्गुरुगम्य है।

'वामे चन्द्रमुखी मुखे च मदिरापात्रं कराम्भोरुहे,
मूर्ध्नि श्रीगुरुचिन्तनं भगवतीध्यानास्पदं मानसम्।
जिह्वायां जपसाधनं परिणतिः कौलागमभ्यागमे,
येषां वै नियतं पिबन्तु सुरसं ते भुक्तिमुक्ती गताः ।।
वामे रामा रमणकुशला दक्षिणे चालिपात्रम्।
अग्रे मुद्राश्चणकवटकाः शूरणश्चौष्टशुद्धिः।
तन्त्री वीणा सरसमधुरा सद्गुरुः सत्कथायां,
वामाचारः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' ।। (रुद्रयामले)

संस्कारों से परे जाकर उन्मुक्तभाव से वाममार्ग का अध्ययन और तब इसका अवलम्बन भोग और मोक्ष में कैसा सामंजस्य लाता है, यह स्वसंवेदनीय है, कथनीय नहीं।

डॉ० रामचन्द्र पुरी

ए-9 सत्यनारायण नगर सोसायटी
निकट कच्छी आश्रम
मालसर - 391115
बड़ोदा (गुजरात)

विषयानुक्रमणिका

(1) कामाख्यातन्त्रम्

•

(2) मायातन्त्रम्

अष्टम: पटल:

नवम: पटल:

दशम: पटल:

एकादश: पटल:

•

(3) गुप्तसाधनतन्त्रम्

•

(3) गुप्तसाधनतन्त्रम्

•

(4) तारातन्त्रम्

•

(5) चीनाचारक्रमतन्त्रम्

द्वितीय: पटल:

तृतीय: पटल:

चतुर्थ: पटल:

•

(6) सर्वविजयितन्त्रम्



(1)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

कामाख्यातन्त्रम्

•

विवृतिकार: सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

(1)

कामाख्यातन्त्र का सार

प्रथम पटल

कामाख्यातन्त्र का आरम्भ भगवती पार्वती और श्रीशिव के संवाद से होता है । कभी किसी समय गिरिजा ने श्रीशिव से कहा—भगवन् ! आप विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय तथा प्राणियों के कर्तव्याकर्तव्यरूपी सभी धर्मों कें ज्ञाता, सभी प्राणियों के हृदय में आनन्दरूप से स्थित और समस्त आगमों के प्रवर्तक है । आपकी कृपा से मैंने सभी तन्त्र-मन्त्रों, यामलों और इनमें निरूपित साधनों और परिणामों के विषय में सुन लिया है । अब आप किसी सारतम तन्त्र के बारे में जो कुछ जानते हैं, वह बताइये ।

पार्वती की बात सुन शिव ने कहा—प्रिये ! मैं तुम्हें एक महत्त्वपूर्ण तन्त्र के बारे में बताता हूँ । समस्त तन्त्र-मन्त्रों की समस्त अधिष्ठात्री शक्तियों में सबसे प्रमुख कामाख्या हैं । समस्त विश्व योनिरूपा कामाख्या से ही उत्पन्न होता है, उन्हीं में स्थित रहता है और उन्हीं में विलीन हो जाता हैं । भगवती कामाख्या साधकों को वर प्रदान करने के लिये सर्वदा उद्यत रहती हैं, सबकी माँ हैं तथा सभी को इस संसार-सागर से पार करने वाली तारिणी देवी हैं । योनिरूपा कामाख्या सभी प्राणियों को आनन्दप्रदात्री रमणीरूपा, स्थूल से स्थूल तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं । मैं तुम्हें इन्हीं भगवती कामाख्या की साधना से सम्बन्धित तन्त्र का निर्वचन कर रहा हूँ ।

शिव ने कहा—हे देवि ! समस्त वैदिक-तान्त्रिक मन्त्रों की साधना से जहाँ कहीं, जिन साधकों को जो भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सभी कामाख्या देवी ही उन्हें प्रदान करती हैं ।

भगवती कामाख्या योनिरूपा हैं । जो योनिरूपा भगवती कामाख्या से विमुख हैं, जो कामाख्या में रुचि नहीं रखते, तीनों लोकों में उनका जीवन निम्नतम और निन्दित है । धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति कामाख्या की साधना से ही होती है । साधना में विभिन्न मार्गों पर चलने वाले साधक मोक्ष के लिये ही साधना करते हैं । मोक्ष चाहे सायुज्य हो, सालोक्य हो, सारूप्य अथवा सामीप्य, कामाख्या ही इन सभी रूपों से स्थित हैं ।

हे गिरिजे ! कामाख्या इकाररूपिणी पराशक्ति हैं । शिव में जो शिवत्व है, वह भगवती कामाख्या का ही स्वरूप है । इकाररूपिणी कामाख्या के बिना शिव 'शव' रूप हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा का ब्रह्मत्व, विष्णु का विष्णुत्व, चन्द्र का चन्द्रत्व, यहाँ तक कि समस्त देवों का देवत्व स्वयं कामाख्या ही हैं । समस्त ज्ञाताज्ञात, परापरा विद्याएँ, लौकिक-वैदिक व्यावहारिक विधि-निषेधपरक वाक्य तथा विश्व में जो भी अभिधेय तथा अनभिधेय है वह कामाख्या का ही स्वरूप है-। कामाख्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

शिव ने कहा—देवि ! एक लाख करोड़ जो विद्याएँ कही गयी हैं, उनमें सारस्वरूपा विद्या षोडशी है । इस षोडशी महाविद्या की भी मूलविद्या जगज्जननी कामाख्या ही हैं । जिस प्रकार चन्द्रमा की कान्ति चन्द्रमा से उद्भूत होकर पुनः चन्द्रमा में ही लीन हो जाती है, उसी प्रकार यह समस्त विश्व योनिस्वरूपा भगवती कामाख्या से उत्पन्न होकर पुनः उन्हीं में लीन हो जाता है । वास्तव में कामाख्या के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है ।

द्वितीय पटल

कामाख्यातन्त्र के द्वितीय पटल में कामाख्यामन्त्र के निर्वचन का उपक्रम करते हुए श्रीशिव ने जगदम्बिका पार्वती को बताया है कि देवताओं को भी दुर्लभ कामाख्या मन्त्र की साधना से साधक समस्त कामनाओं को प्राप्त कर सकता है । कामाख्या मन्त्र की साधना से साधक इस समस्त भौतिक जगत् के साथ ही ब्रह्मादि त्रिदेवों को भी इसी प्रकार मोहित कर सकता है, जैसे जननी अपने शिशु को । कामाख्या मन्त्र की साधना से साधक क्षणभर में देवों, दानवों, गन्धर्वों तथा किन्नरों आदि को उसी प्रकार अपने वश में कर लेता है, जैसे कोई राजा अपनी प्रजा को अपने वश में कर लेता है ।

कामाख्या मन्त्र का साधक मन्त्रियोंसहित राजाओं तथा अन्य सभी लोगों को भी इसी प्रकार वश में कर सकता है, जैसे मेषादि पालतू प्राणियों को उनका पालक अपने वश में कर लेता है । वह स्वर्गलोक की उर्वशी आदि अप्सराओं को भी मोहित कर सकता है । श्रीशिव ने बताया कि मन्त्र के प्रभाव से साधक स्तम्भन, मारण, क्षोभण, जृम्भण, द्रावण, भाषण, विद्वेषण जैसी क्रियाओं को सफलतापूर्वक कर सकता है ।

कामाख्या मन्त्र से समस्त प्राणियों, विशेषरूप से नारियों को आकर्षित किया जा सकता है । कामाख्यामन्त्र के प्रयोग से साधक कटाक्षमात्र से प्रज्ज्वलित अग्नि, वायु के प्रवाह, सूर्य की गति और सागर की लहरों को स्तम्भित कर सकता है । वह समस्त संसार पर कामदेव की भाँति विजय प्राप्त कर सकता है । उसके लिये जगत् में कोई भी कर्म असाध्य नहीं है ।

कामाख्या मन्त्र की महिमा के उल्लेख के बाद मन्त्र का उद्धार करते हुए श्रीशिव ने बताया कि 'पाशसंज्ञकवर्ण 'अ' से रहित, यात्रावारणवर्ण 'र' पर आरूढ, नाद और बिन्दु से युक्त वामकर्णसंज्ञक वर्ण 'ई' सहित जृम्भणसंज्ञक वर्ण 'ण' के अन्तवाला वर्ण 'त्' अर्थात् त् र् ई ँ तथा ं का सम्मिलितरूप 'त्रीँ' भगवती कामाख्या का मूलमन्त्र है । इस मन्त्र को 'त्रीँ त्रीँ त्रीँ' के रूप में त्रिगुणित करके जप करने से यह कल्पवृक्ष की भाँति फलदायक होता है । वैसे इस मन्त्र को मूल एकल रूप में 'त्रीँ', दुहराकर 'त्रीँ त्रीँ' अथवा चतुर्वारिक रूप में 'त्रीँ त्रीँ त्रीँ त्रीँ' के रूप में भी जपा जा सकता है ।

कामाख्या देवी के इस मन्त्र की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए श्रीशिव ने कहा कि समस्त मन्त्र-साधकों को चाहिये कि वे पहले भगवती कामाख्या की साधना करें, तत्पश्चात् किसी भी साध्यमन्त्र की । ऐसा न करने पर साधकों को सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती और

साधना के समय पद-पद पर विघ्नों का सामना करना पड़ता है। शिव ने बताया कि साधक चाहे शाक्त-साधक हों, वैष्णव हों, शैव हों या गाणपत्य, वे भगवती कामाख्या की साधना से उसी प्रकार जुड़े होते हैं, जैसे कोल्हू के बैल चाहे कितना ही घूम लें, कोल्हू से ही जुड़े होते हैं।

श्रीशंकर ने कहा कि कामाख्या की साधना के अधिकारी तो कौलशाक्त ही हैं। क्योंकि कामाख्या-साधना चक्रविशुद्धि, दिक्कालादिशोधन इन समस्त बाह्य आडम्बरों से मुक्त होती है। जो साधक कामाख्या की साधना में चक्रशोधनादि बाह्य आडम्बरों को करता है, उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती और अन्त में वह नरक में जाता है। भगवान् शिव की बातें सुनकर पार्वती ने उनसे पूछा कि जिस प्रकार कामाख्या की साधना में चक्रादिशोधन की आवश्यकता नहीं होतीं क्या उसी प्रकार काली और तारा के मन्त्रदान और साधना में भी चक्रादिशोधन की आवश्यकता नहीं होती ? काली और तारा भगवती कामाख्या से अभिन्न हैं। पार्वती ने यह भी जानना चाहा कि काली तथा तारा के मन्त्रदान में जो देशिक चक्रादिशोधन करता है, उसका परिणाम क्या होता है ?

भगवान् शिव ने पार्वती को बताया कि काली और तारा की साधना विधि-निषेधों से परे है। मूर्खता के कारण यदि कोई साधक काली और तारा के मन्त्रों के प्रदान अथवा साधना में चक्रादिशुद्धि की क्रियाएँ करता-कराता या इस विषय में सोचता भी है, तो वह मृत्यु के पश्चात् कुतिया के मल का कीड़ा बनता है। ऐसे देशिक और साधक का उद्धार कल्प की समाप्ति के बाद भी नहीं होता। कामाख्या की पूजाविधि का निरूपण करते हुए शंकर ने उन्हें बताया कि कामाख्या की पूजाविधि को जान लेने से साधकों को समस्त साधना-विधियों का ज्ञान अनायास ही हो जाता है। कठोर से कठोर साधना करने से साधकों को जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब कामाख्या की पूजाविधि से सरलता से प्राप्त हो जाती हैं। इसके लिये सबसे पहले सिन्दूर से एक मण्डल का अंकन करके उसके भीतर अधोमुखी त्रिकोण का अंकन करना चाहिये। फिर, उस त्रिकोण के मध्य तीन बार कामाख्या का मूलबीज 'त्रीँ' लिखना चाहिये। तदनन्तर मण्डल के बाहर एक चतुरस्र का अंकन कर उसके बाहर आठों दिशाओं में वज्राकार आठ चिह्न बनाने चाहिये। इस प्रकार कामाख्या का पूजामण्डल बन जाने के पश्चात् पूजायन्त्र में भगवती की अर्चना करनी चाहिये।

श्रीशिव ने बताया कि मूल एकाक्षरी मन्त्र के साक्षात्कारकर्ता ऋषि अक्षोभ्य, छन्दस् अनुष्टुब् तथा देवता कामाख्या हैं। इस मन्त्र की साधना का विनियोग सर्वार्थसिद्धि के लिये किया जाता है। इस मन्त्र की साधना में करन्यास तथा अंगन्यास भगवती के निज बीज 'त्रीँ' के छह दीर्घरूपों—त्राँ त्रीँ त्रूँ त्रैँ त्रौँ तथा त्रः से क्रमशः किये जाते हैं। न्यास के पश्चात् देवी कामाख्या के निम्नांकित स्वरूप का ध्यान करना चाहिये—

पराशक्ति भगवती कामाख्या रक्तवस्त्रालंकृता, वरदहस्ता, सिन्दूरतिलकांकितभाल, निष्कलंकचन्द्रानना, निर्मल द्युतिमती देहयष्टि,माणिक्यादि मणियों से जटितस्वर्णादि से

निर्मित आभूषणों से आभूषित, नीलादि विभिन्न रत्नों से निर्मित सिंहासन पर विराजमान हैं। साधक भावन करे कि भगवती कामाख्या का मुखमण्डल उनके ओष्ठों पर सर्वोत्तम पद्मराग मणियों की आभा की भाँति खिली मुस्कान से उद्भासित है, उनके उरोज पृथुल कुछ-कुछ उठे हुए हैं। उनकी देह नूतन जलधर की भाँति कृष्णवर्णी है तथा नेत्र कर्णों तक आयत हैं। वे शाकिनियों, योगिनियों, विद्याधरियों और डाकिनियों, ताम्बूलधारिणियों, सुन्दर नायिकाओं, सिद्ध समूहों तथा किन्नरियों से घिरी हुई अति सुन्दर दिख रही हैं।

कामाख्या की पूजाविधि बताते हुए श्रीशिव ने आगे कहा कि साधक कामाख्या का ध्यान करके यन्त्र के मध्य उनका आवाहन करे और कुंकुम-कस्तूर्यादि पदार्थों, रक्तवर्ण के पुष्पों, जवा, विशेषत: कनेर तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों तथा अलक्तक और सिन्दूरादि से उनकी पूजा करे। उन्होंने बताया कि कनेर भगवती कामाख्या को बहुत प्रिय है। इसके वृक्षों के समस्त अंगो में भगवती कामाख्या सर्वदा निवास करती हैं। जवा और मालती आदि की समीपता भी भाती है, लेकिन, करवीर की महिमा की तो बात ही अलग है।

कामाख्यापूजन में पंचतत्त्व - श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि कामाख्या के पूजन में मद्य, मांस,मत्स्य, मुद्रा और मैथुन नामक पंचतत्त्वों का उपयोग अवश्य करना चाहिये। पंचतत्त्व से कामाख्या का पूजन करने से वे क्षणभर में ही प्रसन्न हो जाती हैं। कलियुग में पंचतत्त्व के समान महिमावान् अन्य कुछ नहीं। पंचतत्त्व ही परब्रह्म है, पंचतत्त्व ही परमगति अर्थात् मोक्ष है, पंचतत्त्व भगवती का साक्षात् रूप है और पंचतत्त्व ही सदाशिव है। भोग और मोक्ष पंचतत्त्व से अभिन्न हैं और पंचतत्त्व ही महायोग है। पंचतत्त्वों में भी जो मैथुन नामक पाँचवाँ तत्त्व है, वह सबसे महत्त्वपूर्ण है। इससे भगवती कामाख्या की अर्चना करने से साधक स्वयं शिवरूप हो जाता है। पंचतत्त्व से कामाख्या की अर्चना अर्चक के करोड़ों पापों को उसी प्रकार नष्ट कर देती हैं, जैसे रूई के ढेर को अग्नि की एक चिनगारी नष्ट कर देती है। जिस स्थान पर पंचतत्त्व रखे होते हैं, वहाँ भगवती कामाख्या अवश्य उपस्थित रहती हैं। जहाँ पंचतत्त्व नहीं होते, वहाँ कामाख्या भी नहीं रहतीं।

कामाख्या की पूजा में मद्य के प्रयोग से साधक स्वर्गलोक में आनन्द उठाता है, मांस के प्रयोग से इस लोक में राजपद प्राप्त करता है, मत्स्य से भगवती की अर्चना करने से वह साक्षात् भगवती भैरवी का पुत्र-सा हो जाता है, मुद्रा के प्रयोग से वह शान्त और सरल साधुस्वभाव को प्राप्त करता है, जबकि अन्तिम तत्त्व मैथुन के प्रयोग से साधक भगवती कामाख्या के सायुज्य पद का भागी बनता है। कामाख्या के पूजन में देवी को स्वयम्भू पुष्प, पवित्र कुण्डोद्भव तथा गोलोद्भव पुष्प, केसर तथा मद्य से निर्मित अर्घ्य प्रदान करना चाहिये तथा अन्न, खीर, घृत तथा फलादि विभिन्न प्रकार के पदार्थों और वस्त्राभूषणों से भगवती कामाख्या की अर्चना करनी चाहिये।

कामाख्या की आवरण-पूजा—कामाख्या की अर्चना के बाद उनके आवरण देवताओं की अर्चना करनी चाहिये। आवरण-पूजा में यन्त्र के बाहर पूर्वादि दसों दिशाओं

में क्रमश इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त नामक दस दिक्पालों की अर्चना करनी चाहिये। यन्त्र के मध्य में स्थित कामाख्या के वाम तथा दक्षिण पार्श्व में काली और सरस्वती का पूजन करना चाहिये। यन्त्र के सोलह दलों में पूर्वादि क्रम में ही क्रमशः अन्नदा, धनदा, सुखदा, जयदा, रसदा, मोहदा, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, वृद्धिदा, शुद्धिदा, भुक्तिदा, मुक्तिदा, मोक्षदा, सुखदा, ज्ञानदा तशा कान्तिदा नामक सोलह देवियों की तथा डाकिनियों और सिद्धियों की पूजा भी मनोयोग से यन्त्र के भीतर ही करनी चाहिये। इसके बाद अंगमन्त्रों से अंगदेवताओं की पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर संकल्पित संख्या में भगवती कामाख्या के मन्त्र 'त्रीं' का जप करना चाहिये। जप पूर्ण कर लेने के बाद जप को देवी को समर्पित कर विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों की ध्वनियों से भगवती कामाख्या को सन्तुष्ट करना चाहिये। तत्पश्चात् कामाख्या के स्तोत्र* और कवच* का पाठ कर देवी को प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद भगवती कामाख्या का ध्यान करके आवरण-पूजा में सम्मिलित न की गयी अवशिष्ट शक्तियों की सन्तुष्टि के लिये ईशान कोण में एक त्रिकोण की कल्पना कर उसमें उन्हें भी बलि प्रदान करनी चाहिये।

शक्ति का उच्छिष्ट ग्रहण—कामाख्या की आवरण-पूजा के बाद साधक को अन्य साधकों के साथ मिलकर पंचतत्त्वसहित शक्ति का उच्छिष्ट ग्रहण करना चाहिये। श्रीशिव ने कहा कि शक्ति का उच्छिष्ट ग्रहण करने में कोई दोष नहीं। क्योंकि शक्ति ही समस्त शाक्त-साधनाओं की केन्द्रबिन्दु है। कामाख्या की साधना में प्रयुक्त होने वाले समस्त साधन भी शक्तिमूलक ही हैं। प्राणियों की स्पन्दनादि समस्त गतियाँ और जीवन भी शक्ति के कारण ही है। इहलोक और परलोक की प्राप्ति और समस्त क्रियाएँ और परिणाम शक्तिचालित ही हैं। समस्त जप, तप, व्रतादि क्रियाएँ और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूपी चतुर्वर्ग की प्राप्ति का मूल आधार भी शक्ति ही है। समस्त स्थावर-जंगम के मूल में शक्ति ही है। इस रहस्य से अनजान पामर जन ही शक्ति के उच्छिष्ट ग्रहण करने में सन्देह करते हैं। इसीलिये तो महेश्वर के आदेश का पालन करते हुए समस्त शाक्त साधक शक्ति का उच्छिष्ट मद्य आदर और श्रद्धा के साथ पीते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो नरक में जायेंगे।

कामाख्या मन्त्र 'त्रीं' के पुरश्चरण में उक्त मन्त्र का 1 लाख जप करके शर्करा, मधु तथा खीर से 10 हजार हवन, चन्दन-मिश्रित जल से हवन का दशांश अर्थात् 1 हजार तर्पण तथा सुगन्धित जल से कुशों द्वारा सौ बार अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर 10 श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन और यदि वे कामाख्या के साधक हों, पंचतत्त्व भी प्रदान करना चाहिये। इस विधि से पुरश्चरण के बाद ही साधक मन्त्र के प्रयोग का अधिकारी बनता है।

योनिपूजाविधिनिरूपणम्—श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि यद्यपि पूर्वोक्त विधि से कामाख्या की पूजा से वे प्रसन्न होती हैं, लेकिन योनिचक्र में भगवती का पूजन तो उन्हें अति

---

* कवच और स्तोत्र परिशिष्ट में दिये गये हैं।

प्रसन्न करने वाला है। योनि की पूजा, पूजा नहीं, महापूजा है। साधक को चाहिये कि वह पूजन के समय शक्ति की योनि पर विभिन्न प्रकार के चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों का लेपन कर उसकी पूजा करे। योनि का चुम्बन और लेहन कल्पवृक्ष द्वारा प्राप्त फल से भी अधिक आनन्दप्रद है। योनि के दर्शनमात्र से साधक सिद्ध बन जाता है। श्रीशिव ने कहा कि यदि सौभाग्य से परस्त्री की योनि उपलब्ध हो तो, उसकी विशेषरूप से पूजा करनी चाहिये। वेश्या की योनि पूजा के लिये सर्वश्रेष्ठ योनि मानी जाती है। वेश्या की योनि उपलब्ध होने पर उसी योनि की साधना करनी चाहिये और अपने साधन अर्थात् लिंग को उसी में स्थापित करना चाहिये। इस साधना से तीन दिन के भीतर ही नि:संशय सिद्धि मिल जाती है। सौभाग्य से ॠतुमती साधिका मिल जाये तो उसी की योनि की ही साधना करनी चाहिये। ॠतुमती योनि की साधना करने से देवों के लिये भी दुर्लभ सिद्धि अतिशीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। योनिसाधना के बिना भगवती कामाख्या की साधना से महाशाप की प्राप्ति होती है।

श्रीशिव ने आगे कहा कि जो नराधम योनि की निन्दा करता है, वह शीघ्र ही शिव की आज्ञा से रौरव नामक नरक में जाता है। भगवती कामाख्या स्वयं योनि के बीच विराजती हैं और उनकी योगिनियाँ योनि की केशराशि में निवास करती हैं। त्रिकोणात्मिका योनि के तीनों कोणों में क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर निवास करते हैं। इसलिये अपना भला चाहने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह योनि की कभी भी निन्दा न करे। जो योनि की निन्दा करता है वह कुलसहित विनष्ट हो जाता है और योनि की प्रशंसा करने वाला क्षणभर में शिव के समान हो जाता है.।

तृतीय पटल

कामाख्यातन्त्र के तृतीय पटल में श्रीशिव ने पार्वती को कामाख्या का एक ऐसा महामन्त्र बताया है, जिसके सिद्ध हो जाने से बह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादि देवता भी अपनी कामनाओं की पूर्ति में सक्षम होते हैं तथा स्वर्गलोक, मृत्युलोक तथा पातालोक के निवासी भी सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। उक्त मन्त्र में तीन बार कामाख्या का स्वकीयबीज 'त्रीँ', दो बार क्रोधबीज 'हुँ', दो बार ही बधू बीज 'स्त्रीँ' प्रयुक्त करके 'कामाख्ये प्रसीद' पद और इसके बाद पूर्वोक्त सात बीज तथा अन्त में ठद्वय अर्थात् ' स्वाहा' पद है। इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप 'स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुँ हुँ स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुँ हुँ स्त्रीं स्त्रीं हुँ हुँ स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा' है। श्रीशिव ने बताया कि आरम्भ में प्रणवाक्षर 'ओँ' युक्त कामाख्या मन्त्र के साधक का नाम सुनते ही सभाजन उसे प्रणाम करते हैं तथा साधना के सभी विघ्न व्याकुल होकर उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रज्ज्वलित अग्निशिखाओं में पतंग नष्ट हो जाते हैं। लक्ष्मी स्वयं उसका वरण करती हैं तथा सरस्वती सर्वदा उसकी जिह्वा पर विराजती हैं। स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में जो भी सिद्धियाँ हैं, वे सभी ऐसे साधक की सेवा में सदा सन्नद्ध रहती हैं। बड़ी-बड़ी विद्वत्सभाओं में शास्त्र-परिचर्चा में कामाख्या के साधक से वाद

करने वाला वादी अपने पक्ष से स्खलित हो पराजित हो जाता है । और वह साधक वहाँ उपस्थित सभासदों को करोड़ों सूर्य की आभा से मण्डित दिखायी देता है । श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि कामाख्या के इस मन्त्र के पुरश्चरण में मन्त्र का छह हजार जप तथा छह सौ हवन करना चाहिये ।

कामाख्या अति सुन्दर वेष-भूषा से सुशोभित, ओष्ठों पर मधुर मुसकान वाली, नवीन मेधकान्ति के समान आभा वाली, कौशेयवस्त्रधारणी, हाथों में अभय और वरद मुद्राधारणी, महार्घ रत्नजडित अलंकारों से सुशोभित, कल्पवृक्ष के नीचे रत्ननिर्मित सिंहासन पर विराजमान हैं । वे कलियुग के पापों का विनाश करने वाली योनिस्वरूपा हैं ।

योनिसाधना—योनिसाधना के सन्दर्भ में श्रीशिव ने सात रातों तक चलने वाली योनिसाधना के बारे में पार्वती को बताया कि साधक को चाहिये कि वह सर्वप्रथम हरसम्पर्कहीन कन्या के प्रथम रजस् का तिलक लगाकर कुलशक्ति को शय्या पर आसीन कर ताम्बूल आदि से सुगन्धित मुख से लता के मधुर अधरों का उसी प्रकार चुम्बन करे, जैसे व्याकुल भ्रमर कमल-कोष का चुम्बन करता है । साधक योगिनी के मुखादि अंगों को अपने दाँतों से काट दन्तक्षत बनाये, आलिंगन करे, उरोजों का मर्दन करे, उसके नितम्बों पर नखाघातादि कर उसे आनन्दित करे, बार-बार उसकी योनि का चुम्बन करे । उसे चाहिये कि रमण की इस क्रिया में शुक्र स्खलित न होने दे और उसकी योनि में अपना लिंग प्रविष्ट कर लिंगाघातों से उसे सन्तुष्ट करे । सन्नद्धावस्था में ही 108 बार कामाख्या मन्त्र का जप करे । योनिसाधना के लिये लता के रूप में वेश्या नायिका सर्वोत्तम होती है । इस साधना से कामाख्या और सद्गुरु की कृपा से अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ।

चतुर्थ पटल

कामाख्यातन्त्र के चतुर्थ पटल में पार्वती के प्रश्न 'गुरुतत्त्व क्या है ? और क्या कोई मानव गुरु हो सकता है' ? के उत्तर में श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि 'अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।' कहा गया है कि 'समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त, निराकार जो प्रभु है, उसका साक्षात्कार जिसने कराया उस सद्गुरु को नमन है'। तो, क्या कोई मनुष्य 'तत्' पद से वाच्य उस तत्त्व का दर्शन करा सकता है ? नहीं न । तो फिर, कोई मानव गुरु कैसे हो सकता है ? इसलिये मानव में गुरुत्व कल्पनामात्र है, वास्तविकता नहीं । ऐसे कथित गुरु और शिष्य दोनों की स्थिति, वास्तव में पथ-प्रदर्शक और पथानुगामी की ही है ।

श्रीशिव ने सोदाहरण आगे बताया कि कोई श्रद्धालु किसी सुयोग्य भोक्ता को स्वर्णपात्र में भोजन समर्पित करता है, तो वह पात्र केवल माध्यम हैं, मुख्य तो भोजन है । इसी प्रकार साधक मानव गुरु के माध्यम से 'तस्मै' अर्थात् उस परम सद्गुरु को अपना सर्वस्व समर्पित करता है । भोजनपात्र यदि टूटा-फूटा है, तो पात्र बदल दिया जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर को अपना सर्वस्व 'अहम्' समर्पित करने के माध्यम गुरु में यदि कोई कमी है, तो उसे बदल

कर किसी ऐसे को गुरु बनाना चाहिये, जो शिष्य के आत्मसमर्पण को परमगुरु सदाशिव तक पहुँचा सके ।

श्रीशिव ने बताया कि संसार में शिष्य का धन-हरण करने वाले गुरु बहुत हैं, लेकिन, शिष्य का सन्ताप दूर करने वाला एक गुरु भी दुर्लभ है । कहा गया है कि 'ज्ञानांजनरूपी शलाका से शिष्य के हृदय में व्याप्त अज्ञानरूपी घने अन्धकार को दूर कर जिसने ज्ञानरूपी नेत्रों को खोल दिया, उस गुरु को नमस्कार है ।' यह कथन गुरु की पहचान के लिये एक 'कसौटी' है । शिष्य को चाहिये कि वह इस कथन की कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यक्ति में ही गुरुत्व की भावना करे । हे शिवे ! यह मानना भूल होगी कि केवल ज्ञानियों के अधिक भक्तशिष्य होते हैं । सच तो यह है कि ज्ञानियों की अपेक्षा अज्ञानियों के भक्तशिष्य अधिक होते हैं ।

सद्गुरुलक्षणम्—श्रीदेवी को सद्गुरु का लक्षण बताते हुए शिवगुरु ने कहा 'जो स्वभाव से शान्त है, उदार है, कुलीन है, जिसका अन्त:करण विकार के कारणों की उपस्थिति में भी सर्वदा निर्मल रहता है और जो भगवती पराशक्ति की पंचतत्त्वों से अर्चना करता है, वही सद्गुरु है । जो 'सिद्ध' है, व्यक्ति के रूप में विख्यात है, जिसके चमत्कार भगवती की कृपाजन्य स्वाभाविक हैं, छल-छिद्र और प्रवंचनाजन्य नहीं हैं, जो सर्वदा अपने शिष्यों के हित में रत है, जो जनसामान्य द्वारा अब तक न कही-सुनी गयी स्वानुभूत, सर्वहितैषिणी और प्रिय वाणी बोलता है, जो तन्त्र और मन्त्र के रहस्यों को समझता है, जो सर्वदा अपने शिष्यों को प्रबुद्ध बनाने के प्रयास में तथा उनके हित-सम्पादन में लगा रहता है, जो दुष्टों के निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करने में सक्षम होता है, जिसके जीवन का लक्ष्य परमार्थ है, जिसे अपने गुरु के चरणकमलों में अनन्य भक्ति है, बुद्धिमान् उसे ही सद्गुरु कहते हैं ।'

श्रीशिव ने आगे कहा कि साधक को चाहिये कि वह अक्षम और अयोग्य गुरु का त्याग करके जिस व्यक्ति में पूर्वोक्त गुणों को देखे, शिष्य बनने के लिये उसी के पास जाये । अक्षम गुरु को त्यागने के लिये समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये ।

जो व्यक्ति अपने शिष्य की सम्पत्ति का ही ग्राहक है, जो शिष्य के प्रत्येक प्रकार के हितों का घातक है, जो लोगों के सामने ही शिष्य पर व्यंगबाण छोड़ने से नहीं चूकता, जो शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग है, वह लोगों द्वारा निन्दित गुरु माना जाता है । जो व्यक्ति शिष्य को अपने प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा अनुरक्त जानकर भी उसका अनुमोदन नहीं करता, उसके गुणों की प्रशंसा नहीं करता, अपने निन्दनीय कार्यों से स्वेच्छाचारिता से शिष्य की वस्तुओं का अपहरण अथवा विनाश करता है, ऐसा गुरु निन्दनीय है । शिष्य को चाहिये कि वह शिष्यद्रोही और उसका अहित करने वाले ऐसे पामर गुरु को तुरन्त त्याग दे । श्रीशिव ने कहा कि जो पशुगुरु अपने शिष्य में मन्त्ररूपिणी महाविद्या का आधान अर्थात् स्थापना तो कर देता है, मन्त्र तो बता देता है, किन्तु उसे उस विद्या की साधना-विधि वीराचार

का ज्ञान नहीं देता, वह घोर नरक में जाता है। केवल मन्त्ररूपिणी महाविद्या को प्राप्त करने वाला ऐसा शिष्य भी साधना-पथ का ज्ञान न होने के कारण पतित हो जाता है।

हे देवि ! पशुभाव में स्थित कोई गुरु यदि अपने शिष्य को काली अथवा तारा मन्त्र प्रदान करके इन शक्तियों की साधना की विधि पंचाचार नहीं बताता, तो वह नरक में जाता है और उस नरक से उसका उद्धार कभी नहीं होता। तत्त्वाचार को न जानने वाले अथवा जानते हुए भी शिष्य को उसका उपदेश न करने वाले पशुगुरु का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। तत्त्वाचरणहीन दीक्षा अधम दीक्षा मानी जाती है और दीक्षित के धर्मादि चतुर्वर्ग को नष्ट कर देती है।

कौलिकीदीक्षां कौलगुरोः पुनर्ग्राह्या—यदि कोई सुयोग्य अधिकारी साधक दुर्भाग्य से किसी पश्वाचारी गुरु से कालिका और तारिणी के मन्त्र की दीक्षा ले भी ले, तो उसे चाहिये कि वह किसी कौलगुरु से पुन: काली और तारा विद्या की दीक्षा ग्रहण करे। किसी कौलगुरु से पुनर्दीक्षा ग्रहण करने पर ही उक्त विद्या प्रसन्न होकर साधक को मनोवांछित फल प्रदान करती है। यदि दिव्य अथवा वीरभाव में स्थित व्यक्ति भी उक्त दोष से ग्रस्त हैं अर्थात् साधक को केवल तारा और काली के मन्त्र की ही दीक्षा देते हैं, तत्त्वाचरण का उपदेश नहीं करते, तो साधक को चाहिये कि उन्हें गुरु न माने। यह आगमगुरु भगवान् सदाशिव का आदेश है, दिव्यों और वीरों का हितैषी होने में कोई दोष नहीं।

श्रीपार्वती ने शिव से पूछा कि दिव्य और वीर में पशु से ऐसी क्या विशेषता है, जिस कारण उनका त्याग न करके हितैषी बने रहा जाये ? श्रीशिव ने उन्हें बताया कि दिव्य, तथा पशु-उपासकों में भेद उनमें स्थित गुणभिन्नता के कारण होता है। दिव्यसाधक सबके हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने वाला, सर्वप्रिय और मितभाषी होता है। उसका आसन स्थिर होता है। उसके स्वभाव में गम्भीरता और वाणी में शिष्टता होती है। वह पवित्र मेधावाला शतावधानी व्यक्ति होता है। वह गुरुभक्त होता है। अपनी गुरुभक्ति और साधना के प्रभाव से दिव्यसाधक त्रिकालदर्शी और सभी विषयों का जानकार प्रभावी प्रवक्ता होता है। दिव्यसाधक शक्तिशाली, अतएव दुष्टदमनकारी भी होता है। उसमें समस्त सद्‌गुणों का समन्वय होता है। वीरसाधक सर्वत्र निर्भीक होता है। वह समस्त प्राणियों को निर्भयता प्रदान करता है। वह गुरुभक्तिपारायण, निर्भीक वक्ता और शक्तिशाली होता है। वह पवित्र आचरणवाला होता है तथा पंचतत्त्व के प्रति उसका निरन्तर लगाव होता है। वीरसाधक महान् उत्साही, महान् बुद्धिमान्, महान् साहसिक, महान् चिन्तक तथा सर्वदा सज्जनों के पालन में रत रहने वाला होता है। वीरसाधक तमस्-प्रधान रुद्र का अपना ही स्वरूप है। वह वीर होता है, किन्तु, उसमें विनय की भावना भी होती है। वह कहीं भी, कुछ भी अच्छा करने के लिये सर्वदा तैयार रहता है।

पशुसाधक स्वभाव से अधम और पंचतत्त्व की निन्दा करने वाले होते हैं। सभी देवता ऐसे अधम साधकों की अर्चा का बहिष्कार करते हैं। पशु कहे जाने वाले इन साधकों में

से कुछ केवल दूसरों के लिये बलि बनने वाले बकरों की भाँति, कुछ परम्परानुगामी भेड़ों की भाँति, कुछ अन्यों के हितार्थ भारवाही गर्दभों की तरह तथा बहुत से ग्रामीण सुअरों की तरह होते हैं । हे देवि ! ऐसे पशुसाधक स्वभावत: दुष्ट और निम्न श्रेणी के मनुष्य होते हैं । ऐसे साधक छागादि पशुओं की भाँति होते हैं, इसीलिये तो ये परमार्थ से सर्वथा बहिष्कृत और वीराचारी साधकों द्वारा मारे-काटे जाने के योग्य हैं । श्रीशिव ने आगे कहा कि जिसे पशुभाव कहा गया है, कलियुग में उसका पालन करने वाला कोई है ही नहीं । पशुसाधक पंचतत्त्वों का उपयोग नहीं करता, पंचतत्त्वों अथवा उसके ग्रहण करने वालों की निन्दा करना पाप मानता है । वास्तव में, ऐसे ही साधक को 'पाशव' या पशु-साधक कहा जाता है । पशु-साधक वह है, जो प्रतिदिन केवल पूजन-शेष हविष्यान्न का भक्षण करता है, और ताम्बूल तो छूता भी नहीं, खाने की तो बात ही क्या ? वह ऋतुस्नाता नारी के अलावा कामभाव से उसका कभी स्पर्श भी नहीं करता । यदि वह भूल से भी कभी परस्त्री को कामभाव से देख लेता है, तो उसे पाप मानकर प्रायश्चित्त के लिये विहित विधि से स्वर्णदान करता है । वह सर्वदा देवालय में ही निवास करता है तथा केवल भोजन के लिये ही अपने घर जाता है ।

किन्तु ऐसे पश्वाचरण से उसे मोक्ष या सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती । इस कलिकाल में जम्बुद्वीप पर निवास करने वाले ब्राह्मणों को तो कभी पशुसाधक बन कर पश्वाचरण करने की सोचना भी नहीं चाहिये । यह मेरा आदेश है । ब्राह्मणों को सदा दिव्याचार अथवा वीराचार का ही आचरण करना चाहिये । सत्ययुग में चारों वर्ण देवी की अर्चना दुग्ध, मधु और घृत के मिश्रण से किया करते थे । त्रेता में चारों वर्ण देवीपूजन घृत से तथा द्वापर में सभी वर्ण केवल मधु से किया करते थे । लेकिन, कलियुग में भगवती कामाख्या की अर्चना केवल मद्य और शव से जानी चाहिये ।

कुछ लोग भगवती शक्ति की अर्चना में मद्यादि के स्थान पर इनके अनुकल्पों के प्रयोग का समर्थन करते हैं, लेकिन, कलिकाल में अनुकल्प-व्यवस्था ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंसहित शूद्रादि पंचम वर्ण के लिये भी वर्जित है। आगमगुरु शिव की इस व्यवस्था में सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है, यह सत्य है, सत्य है और सत्य है । इसलिये हे देवि ! शक्तिपूजन में मद्य-मांसादि मुख्य पंचतत्त्वों के सेवन में पापप्राप्त्यादि की व्यर्थ आशंकाओं का परित्याग कर देना चाहिये ।

श्रीशिव ने देवी को बताया कि जिस लक्ष्य को दिव्यसाधक बिना किसी प्रयास के सरलता से प्राप्त कर लेता है, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये वीरसाधक को कठिन साधना करनी पड़ती है । लेकिन, उसी लक्ष्य को पशुसाधक सैकड़ों कल्पों तक अनगिनत प्रयासों के बाद भी इसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता, जैसे कभी कोई पदहीन व्यक्ति पर्वत नहीं लाँघ सकता । श्रीशिव ने पार्वती से कहा कि उन्होंने अतिगोपनीय रहस्य का उद्घाटन कर दिया है । लेकिन, वे इसे गोप्य ही रखें, किसी के सामने इस रहस्य का उद्घाटन न करें ।

पंचम पटल

कामाख्यातन्त्र के पंचम पटल में श्रीपार्वती ने शिव से जानना चाहा है कि क्या ऐसी कोई देवी है, जिसकी पूजा में पंचतत्त्वों की अनिवार्यता है ? और पंचतत्त्वों से उसकी पूजा न किये जाने पर शाक्तसाधकों के बीच पूजक और पूजा दोनों की निन्दा की जाती है ? श्रीशिव ने उन्हें बताया कि कलिकाल में यदि कोई शाक्तसाधक, विशेषरूप से ब्राह्मण जाति का शाक्तसाधक, देवी की अर्चना पंचतत्त्वों से नहीं करता, तो वह अवश्य निन्दनीय है। श्रीशिव ने कहा कि कालिका और तारादेवी की अर्चना करने वाले ऐसे साधकों की निन्दा की जानी चाहिये, जो पंचतत्त्वों से इनकी अर्चना नहीं करते। क्योंकि, कालिका और तारादेवी की मद्यादि पंचतत्त्वविहीन अर्चना, अर्चना नहीं, अर्चना का केवल उसी भाँति उपहास है, जैसे दीक्षा के बिना साधना, साधना नहीं, साधना का उपहासमात्र है।

श्रीशिव ने देवी को बताया कि जिस प्रकार शिला पर बोये गये धान्यादि बीजों में अंकुरण नहीं होता, बिना वर्षा के धरती पर हल नहीं चलाया जा सकता, रजस्वला हुए बिना स्त्री से सन्तान नहीं हो सकती, बिना चले ग्रामादि गन्तव्य प्राप्त नहीं किये जा सकते, उसी प्रकार पंचतत्त्वों के बिना शक्तिपूजन से साधकों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये शाक्तसाधक को चाहिये कि वह मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा स्त्रियों के साथ मैथुनक्रिया से जगन्माता कामाख्या की अर्चना करे। कलियुग में कालिका और तारिणी तथा तत्स्वरूपा कामाख्या के मन्त्रों की दीक्षा प्राप्त करके भी जो साधक मद्यपान नहीं करता, वह साधना के पथ से पतित हो जाता है। श्रीशिव ने कहा कि मद्यपान न करने वाला साधक जन्म से ब्राह्मण और महान् विद्वान् होते हुए भी न तो वैदिकी सन्ध्या करने का अधिकारी है और न ही तान्त्रिक सन्ध्या करने का। काली-तारा मन्त्र से दीक्षित साधक यदि मद्यादि से देवी की समर्चना नहीं करता तो यदि वह अपना भला चाहता है, तो उसे किसी भी देवता और अपने पितरों का तर्पण भी नहीं करना चाहिये। काली, तारा तथा इन दोनों के स्वस्वरूप कामाख्या के मन्त्रों से दीक्षित होकर भी यदि कोई ब्राह्मण मद्य-मांसादि पंचतत्त्वपरायण वीराचार का पालन नहीं करता तो, उसे मानव-शरीर होते हुए भी इसी जन्म में शूद्रत्व प्राप्त होता है। कालीतारापूजक क्षत्रिय यदि पंचतत्त्वपरायण नहीं है तो, इसी जन्म में वह वैश्य तथा वैश्य चाण्डालत्व और शूद्र शूकरत्व प्राप्त करता है। इसलिये चारों वर्णों को चाहिये कि वे बिना किसी सन्देह के मद्यादि पंचतत्त्वों से भगवती कामाख्या की अर्चना करें।

कलियुग में जो साधक पंचतत्त्वों से कुलेश्वरी काली की अर्चना करता है, त्रिभुवन में उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं। कलियुग में पंचतत्त्वों से देवी की अर्चना करने वाला साधक ही वास्तविक ब्राह्मण है, वही शाक्त है, वही गाणपत्य है, वही सूर्योपासक है और वही सच्चा परमार्थी है। वही धार्मिक है, और वही सच्चा दीक्षित है। ऐसा साधक ही ज्ञानी है, वही कर्मी है, वही याज्ञिक है और वही सर्वकर्मा है। वास्तव में, उक्त विधि से साधना करने वाला साधक सर्वदेवमय है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पंचतत्त्वों से भगवती कामाख्या

की अर्चना करने वाले वीर साधक को जन्म देने वाले माता और पिता धन्य हैं, उसकी जाति तथा कटुम्ब वाले और उससे वार्तालाप आदि करने वाले भी धन्य हैं ।

श्रीशिव की बातें सुनकर शाम्भवी ने उनसे कामाख्या की उपासना के लिये कोई सरल साधन बताने का अनुरोध किया । श्रीशिव ने कहा कि साधना के लिये कौलसाधक को चाहिये कि वह पहले विभिन्न पुष्पों की सुगन्ध से व्याप्त किसी अति सुन्दर दिव्य स्थान में बैठकर चिरभव और बक के पुष्पों को छोड़ अन्य पुष्पों से विधिपूर्वक भगवती की अर्चना करके करकबीज ' क्रुं'सहित 'जय दुर्गे जय दुर्गे' मन्त्र का जप करे, तो वह क्षणभर में शिवस्वरूप हो जाता है । उक्त स्थान पर किसी स्वच्छ कक्ष में योनिस्वरूपा भगवती कामाख्या तथा विधिकृत अर्थात् विधिपूर्वक निर्मित शिवलिंग पर विविध प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का लेपन तथा अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से पूजन करने के बाद विधिकृत अर्थात् विधाता द्वारा निर्मित स्वकीय लिंग और पूज्य लता की भी इसी प्रकार सुगन्ध लेपनादि से अर्चना करके भक्तिपूर्वक मन्त्र का जप करे । शिवलिंग तथा भगवती कामाख्या और स्वलिंग एवं लता की अर्चना और उक्त मन्त्र के जप के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह अपने गुरु का ध्यान करके भगवान् शिव और भगवती कामाख्या को भावना से अपने अचलशिखर अर्थात् सर्वोच्च शिखर ब्रह्मरन्ध्र में स्थपित कर उन्हें स्वर्णपुष्प 'तडिल्लेखातन्वी' कुण्डलिनी-सहित शब्दपुष्प अर्थात् आकाशोपलक्षित समस्त भूतों का समर्पण कर, कुलकुण्डलिनी और परशिव का मेलन करा, विविध भाँति उनकी स्तुति करे । जो साधक इस प्रकार की उपासना करता है, वह विलासरूप विष्णु ही है ।

इसी प्रकार ब्रह्मस्थान में शिवशक्ति के मेलनरूपी परापूजा सम्पन्न कर सषुम्नामार्ग से कुण्डलिनी को मूलाधार में लाकर अपने सद्गुरु का ध्यान कर, अपनी शक्ति योगिनी अर्थात् लता को स्वर्णादिरूप पुष्प और मधुरशब्दरूपी स्तुतियों से प्रसन्न कर उसकी योनि को विपरीत रति की विधि से स्वलिंग के शीर्ष पर स्थापित कर यदि कामाख्या मन्त्र का जप करता है, तो ऐसा साधक विलासप्रिय कृष्ण का स्वरूप ही है । सिद्धवर्ण अर्थात् मन्त्रसिद्ध ऐसा साधक यदि सावधानीपूर्वक स्वलता के अतिरिक्त परस्त्री-लताओं के मुखकमल का भी आस्वादन करता है, तो वह संसारविजयी और वृद्धत्वरहित हो जाता है । ऐसे साधक का देवता भी अनुसरण करते हैं और मनुष्यों में तो वह सार्वभौम नृपति की भाँति सम्मानित हो जाता है । वास्तव में वह सामान्यसाधक नहीं, अपितु ब्रह्म ही है ।

षष्ठ पटल

कामाख्यातन्त्र के **षष्ठ** पटल में श्रीदेवी द्वारा शत्रुविनाशक साधन के बारे में जिज्ञासा किये जाने पर शिव ने उन्हें बताया है कि जिस साधन के विषय में उन्होंने जिज्ञासा की है, वह अत्यन्त गोपनीय है । किन्तु उनके प्रति अतिस्नेह के वशीभूत होकर वे इसे विस्तार से

बतायेंगे । लेकिन, शत्रुविनाशक साधनों का प्रयोग महाधैर्यवान् श्रेष्ठ साधक को ही करना चाहिये, अन्यथा वे हानिप्रद भी हो सकते हैं ।

शत्रुनाशकस्वमूत्रप्रयोग:—श्रीशिव ने बताया है कि शत्रुनाश के लिये साधक को चाहिये कि वह अपना मूत्र लेकर उसे कूर्चबीज 'हूँ' से शोधित करके उससे घोराभैरवी का तर्पण करे और स्वयं पान भी करे । इसके बाद उस शोधित मूत्र से पूर्वादि दसों दिशाओं, पूजनीय लता की योनिरूपी महापीठ, उसके और अपने मुखमण्डलों को अभिषिंचित करे । इसके पश्चात् नग्न होकर लता के साथ रमण करे । ऐसा प्रयोग करने से निश्चित रूप से शत्रु का विनाश होगा ।

श्रीशिव ने कहा—कोई वीर साधक यदि शुक्र, शोणित और मूत्र से घृणा करता है तो, मैं सत्य कहता हूँ, भगवती भैरवी उस पर कुद्ध हो जाती हैं । शुक्र, शोणित और मूत्र अथवा इनसे किये जाने वाले प्रयोगों को देखकर अथवा इन प्रयोगों के बारे में सुनकर जो व्यक्ति घृणा करता है, वह तब तक नरक में रहता है, जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र का अस्तित्व है । उन्होंने कहा कि मूत्रप्रयोग वीराचार है और इस वीराचार की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये । क्योंकि स्वेच्छाचरण करने वाला वीर साधक सदैव पवित्र होता है, मूत्रादि के स्पर्श से उसके अपवित्र होने का प्रश्न ही नहीं ।

शत्रु को मारने या उसका उच्चाटन करने के लिये मूत्रप्रयोग की विधि का निर्वचन करते हुए श्रीशिव ने पार्वती से कहा कि साधक को चाहिये कि वह मिट्टी के एक पात्र में वायुबीज 'यं' से सम्पुटित शत्रु का नाम लिखकर उसमें अपना मूत्र डाले । फिर उसे माया बीज 'ह्रीं' के 108 बार जप से अभिमन्त्रित करके उससे भैरवी का तर्पण करे । ऐसा करने से शत्रु का निश्चित मरण या उच्चाटन होता है ।

अपने बाएँ हाथ में अपना मूत्र लेकर उसे कूर्चबीज 'हूँ' से शोधित करके भैरवी के शरीर पर छिड़कने से साधक की कामना के अनुसार या तो शत्रु पागल हो जाता है, उसकी मृत्यु हो जाती है या भ्रान्त हो जाता है, अथवा साधक के वश में हो जाता है। वीरसाधक केवल स्वमूत्रसाधन से ही इन्द्र के समान शक्तिशाली शत्रु को भी विनष्ट कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।

श्रीशिव द्वारा निरूपित स्वमूत्रप्रयोग की बात से चकित पार्वती ने उनसे प्रश्न किया कि शुक्र, शोणित और मूत्र कैसे पवित्र हो सकते हैं ? श्रीशिव ने पार्वती को कहा कि यह अत्यन्त रहस्य की बात है । वह यह कि शुक्र और कुछ नहीं, मैं ही हूँ, और शोणित तुम हो । शुक्र और शोणित स्वरूप हम दोनों ही पवित्र हैं और हम दोनों के संयोग से ही समस्त संसार उत्पन्न हुआ है । शुक्र-शोणित के योग से बना शरीर भी हम दोनों का रूप है । अत: यह सारा शरीर शुद्ध ही है, । परम शुद्ध शुक्र और शोणित से उत्पन्न शरीर में जो वस्तु

उत्पन्न होती है, वह अपवित्र कैसे हो सकती है ? इस पवित्र शरीर से उत्पन्न शुक्र, शोणित और मूत्र की निन्दा तो घृणित पामर और अज्ञानी व्यक्ति ही करता है, तत्त्वज्ञानी साधक नहीं। हे पार्वति ! जो कुछ मैंने तुमसे कहा, वह वास्तविक तत्त्वज्ञान है, सामान्य कथनमात्र नहीं।

श्रीशिव ने कहा कि शुक्र-शोणितरूप हम दोनों से उत्पन्न यह सारा संसार ही पवित्र है, अपने शरीर में स्थित शुक्रादि तत्त्वों का तो कहना ही क्या ? वे तो शुद्ध हैं ही। यह सब कुछ शिव-शक्तिस्वरूप यह समस्त जगत् पवित्र है, इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान की अनुभूति के बिना मोक्ष नहीं। ऐसा तत्त्वज्ञानी साक्षात् शिव है, ब्रह्मा है और वह विष्णु ही है। जगत् को शिवशक्तिमय अतएव पवित्र मानने वाला साधक ही वीर है, वही दीक्षित है, वही शुद्ध है, वही ब्राह्मण है। समस्त तीर्थ ऐसे साधक के शरीर में निवास करते हैं।

सप्तम पटल

कामाख्यातन्त्र के सप्तम पटल में श्रीपार्वती ने शिव से शाक्तों के पूर्णाभिषेक के निरूपण का अनुरोध किया है। श्रीशिव ने पूर्णशाक्ताभिषेक के बारे में बताते हुए कहा कि साधक का पूर्णाभिषेक के लिये मन्त्र-तन्त्रों के ज्ञाता कौलगुरु को चाहिये कि वह कुलसाधकों द्वारा स्वीकृत मानकों के अनुसार स्वच्छ, पवित्र, रमणीय और गुप्त स्थान पर आकर पूर्णाभिषेक विधि सम्पादित करे। पूर्णाभिषेकार्थी साधक को चाहिये कि वह अभिषेक-विधि आरम्भ होने से पूर्व ही अभिषेक-स्थल पर तत्त्वाचारपूजा के लिये वेश्याओं, मद्य, मांस, मत्स्य तथा मुद्रा की व्यवस्था कर विशिष्ट कौलजनों को आहूत कर उन्हें सम्मानपूर्वक वहाँ बैठाये तथा गुरु से अभिषेक के लिये प्रार्थना करे। साधक द्वारा अभिषेक के लिये प्रार्थना किये जाने पर कौलगुरु को चाहिये कि वह मण्डप निर्मित कर, उसे धूपादि से सुगन्धित तथा दीपों से प्रकाशित कर, विहित मन्त्रों से कुम्भ-स्थापना कर मद्यादि पंचतत्त्वों का शोधन और पवित्र कौलचक्र की रचना कर वहाँ उपस्थित साधकों का सुरा से अभिषेक करके उन्हें सुरापान कराये तथा स्वयं भी सुरापान तथा व्यंजनों का उपभोग करे और आनन्दपूर्वक उन वेश्याओं के साथ रमण करे। मद्यमांसादि पंचतत्त्वों का यथेच्छ उपभोग कर रहे गुरु और अन्य साधक अभिषेकार्थी साधक को आशीर्वाद दें कि उसे साधना में स्थिर सिद्धि मिले और अभिषेक-कर्म निर्विघ्न समाप्त हो। यह ध्यान रखना चाहिये कि चक्रपूजन की समाप्तिपर्यन्त चक्रगृह से बाहर कोई भी न जाये। साधक भी शौच-दन्तधावनादि समस्त प्रातःकृत्य चक्रालय के भीतर ही सम्पन्न करे।

अभिषेकार्थी साधक को चाहिये कि वह अभिषेकोत्सव में भाग ले रहे साधकों और अपने गुरु की तीन दिनों तक रातदिन मद्य-मांसादि से सम्मानित कर अभिषिक्त होने की पात्रता प्राप्त करे और तदनन्तर ही अभिषिक्त हो। अभिषेक के लिये मध्यम आकार वाले ताम्र अथवा स्वर्णकलश तथा कलशपूजन में प्रयुक्त होने वाले प्रवालादि नौ रत्न, आचार्य, साधक तथा साधिकाओं को विहित दक्षिणादि प्रदान करने के लिये स्वर्ण, रजत तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा आभूषणों आदि की व्यवस्था भी चक्रालय में पहले से कर लेनी चाहिये। इनके

अलावा कस्तूरी, कुंकुम, चन्दनादि विभिन्न सुगन्धिप्रद वस्तु, अनेक प्रकार के पुष्प, माला, मद्यादि पंचतत्त्व, घृतसहित धूपदीपादि की व्यवस्था भी अभिषेक-कर्म आरम्भ करने के पूर्व ही कर लेनी चाहिये । इसके बाद गुरु को चाहिये कि वह अभिषेकार्थी साधक को चक्रालय में अभिषेक के लिये निर्धारित पवित्र स्थल पर आहूत करके वेश्याओं और साधकों के साथ भक्तिपूर्वक पटलोक्त विधि से भगवती की अर्चना करे । विधिपूर्वक देवी की पूजा सम्पन्न करके विभिन्न स्तुति वाक्यों से उन्हें प्रसन्न करे, प्रणाम करे ।

भगवती की अर्चना समाप्त कर लेने के बाद साधक को चाहिये कि वह अभिषेक-कर्म में भाग ले रहे शिव-शक्तिरूप प्रत्येक साधक और साधिका को सुगन्धित द्रव्य, माला, आसन, वस्त्र तथा आभूषणादि प्रदान करे । तत्पश्चात् भव्य मंगलमय गीतों और शंखादि की ध्वनियों से गुंजरित मण्डप में उक्त कलश को कामबीज 'क्लीँ' से प्रोक्षित और वाग्भव बीज 'ऐं' से शोधित करने के बाद शक्ति बीज 'सौः' से उसे 27 कुशों से निर्मित आधार कूर्च पर स्थापित कर मायाबीज 'ह्रीं' से उसमें जल भरे । कलश में जलपूरण के बाद उसमें पूर्वोक्त मूँगा, हीरक, मुक्ता, स्वर्ण तथा रजत् नामक पंचरत्न डालकर निर्धारित मन्त्रों द्वारा देवनदी गंगा, यमुना तथा सरस्वती संज्ञक पवित्र नदियों, सभी समुद्रों, पुष्करादि सरोवरों, समस्त महासागरों, नर्मदादि अन्य सरिताओं, नयनादि तालों, जलराशि से परिपूर्ण ब्रह्मपुत्र तथा शोणादि नदों, स्वर्ग, पाताल और धरती पर विद्यमान समस्त बृहदाकार गभीर ह्रदों और सभी पवित्र तीर्थों को इस पवित्र कलश में उपस्थित होने के लिये सबका आह्वान करे ।

तीर्थों का आह्वान करने के पश्चात् रमाबीज 'श्रीं' से कलश के मुख पर आम्रादि अथवा कुलवृक्षों* के पल्लव रखने चाहिये । कूर्चबीज 'हूँ' से फल तथा हृद्बीज 'नमः' से कलश पर गन्ध पदार्थ तथा वस्त्र रखने चाहिये । ललनाबीज 'स्त्रीं' से कलश पर सिन्दूर, कामबीज 'क्लीं' से पुष्प, देवी के मूलमन्त्र से दूर्वा चढ़ाकर प्रणव अर्थात् ओंकार से कलश कर अभ्युक्षण करे । अभ्युक्षण के पश्चात् कुशों द्वारा 'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से ताडन करके घट में देवी के मूलपीठ की भावना करके पीठपूजा सम्पन्न करनी चाहिये ।

कलश में पीठपूजा के उपरान्त गुरु को चाहिये कि वह शिष्य की ओर देखते हुए कलश पर हाथ रखकर कौलतन्त्र में निर्दिष्ट विधानानुसार कलश से निम्नोक्त प्रार्थना करे— 'समस्त तीर्थों के पवित्र जल से पूर्ण और देवताओं की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हे ब्रह्मकलश ! उठो, जाग्रत् होकर अभिषेकार्थी इस साधक की अभिलाषा पूर्ण करो' । कलश-प्रार्थना के अनन्तर गुरु को चाहिये कि वह वहाँ उपस्थित समस्त साधकों और योगिनियों के साथ निर्धारित मन्त्रों, का उच्चारण करते हुए मंगलमय पवित्र द्रव्यमिश्रित जल से साधक नम्रता से झुके शिरोधरांश शिष्य का उसकी शक्ति के साथ विहित मन्त्रों का सस्वर उच्चारण करते हुए अभिषेक करना आरम्भ करे । अभिषेक के समय प्रणवोच्चारणपूर्वक

---

* श्लेष्मान्तककरञ्जार्कनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः ।
बिल्वो वटोदम्बरश्च चिञ्चा चेति दश स्मृताः ॥ (पुरश्चर्यार्णवे, नवमतरङ्गे)

आशीष देना चाहिये कि—'हे प्रिय शिष्य ! भगवती राजराजेश्वरी शक्ति, भैरवी, कालभैरवी, श्मशानभैरवी, त्रिपुरानन्दभैरवीदेवी, त्रिकुटादेवी, त्रिपुरादेवी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेशी, महादेवी, त्रिपुरमालिका, त्रिपुरानन्दिनी देवी, त्रिपुरातनी, महादेवी छिन्नमस्ता, एकजटेश्वरी, तारा, जयदुर्गा, शूलिनी भुवनेश्वरी, महादेवी त्वरिता, त्रिखण्डिका, नित्या, नित्यरूपा तथा वज्रप्रस्तारिणी, अश्वारूढा, महेशानी, महिषमर्दिनी, दुर्गा, नवदुर्गा, श्रीदुर्गा भगमालिनी, देवी भगन्दरी, भगक्लिन्ना, परा, देवी सर्वचक्रेश्वरी, नीलसरस्वती, सर्वसिद्धिकरीदेवी, सिद्ध-गन्धर्वसेविता उग्रतारा, महादेवी भद्रकालिका, क्षेमंकरी, महामाया, अनिरुद्धसरस्वती, मातंगिनी, राजराजेश्वरी, अन्नपूर्णा, उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती चण्डरूपा, अतिचण्डिका, चक्री, जयावती, ब्राह्मी, जयन्ती, अपराजिता, अजिता, मानवी, श्वेता, दिति, अदिति, माया, महामाया, मोहिनी क्षोभिणी, कमला, विमला, गौरी, शरणी, अम्बुधिसुन्दरी, दुर्गा क्रिया, अरुन्धती, घण्टाकर्णा, कपालिनी, रौद्री, काली, मायूरी, त्रिनेत्रा, परा, अजिता, सुरूपा, बहुरूपा, विग्रहा आत्मिका, चर्चिका, अपरा, अज्ञेया तथा सूरपूजिता, वैवस्वती, कौमारी, माहेश्वरी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, कार्तिकी, कौषिकी, शिवदूती, चामुण्डा, मुण्डमालाविभूषिता, महाकाली, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान्, ब्रह्मा, वर्ष, अयन, मास, पक्ष, दिन तथा तिथियाँ इस कलश के मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

गुरु कहे कि हे साधक ! रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु, नक्षत्र, करण, योग, अमृत, सिद्धि, दग्धपाप, भद्रा, योग, वारा, क्षण, वारवेला, कालवेला, दण्ड तथा राशि, असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार नामक अष्ट भैरव, डाकिनीपुत्र, राकिनीपुत्र, लाकिनीपुत्र, काकिनीपुत्र, भीमनेत्रा, विशालाक्षी, मंगला, विजया तथा जया नामक देवियाँ, मंगला, नन्दिनी, भद्रा, लक्ष्मी, कीर्ति, यशास्विनी, पुष्टि, मेधा, शिवा, साध्वी, यशा, शोभा, जया, धृतिः, श्रीनन्दा, सुनन्दा, नन्दिनी तथा नन्दपूजिता नामक देवियाँ, विजया, मंगला, भद्रा, धृतिः, शान्ति, शिवा, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, उमा, पुष्टि, श्री, ऋद्धि, रति, दीप्ता, कान्ति, यशोलक्ष्मी, ईश्वरी तथा बुद्धि नामक देवियाँ, शाकिनीपुत्र, ह्यकिनीपुत्र, दक्षिणीपुत्र, देवीपुत्र, अष्टमातरपुत्र, ऊर्ध्वमुखी के पुत्र, अधोमुखी के पुत्र तथा उन्मुखी आदि के पुत्र मन्त्रपूत कलश जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

हे साधक ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव पुरुष, प्रकृति, महदादि सोलह विकार, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, इनके गुण तथा अन्य भी तो स्थूल-सूक्ष्मादि तत्त्व हैं, वे सभी मन्त्रपूत कलशजल से तुम्हारा अभिषेक करें । वेदादिबीज ओंकार, वराहबीज हुँ, स्त्रीबीज स्त्रीं, मीनकेतनबीज क्लीं, शक्तिबीज ईं या सौः, रमाबीज श्रीं, मायाबीज ह्रीं, सुधाकरबीज सं, महाबीज चिन्तामणि 'रक्ष्म्र्यौंऊं, नारसिंह बीज क्ष्रौं, शांकरबीज हँ, सूर्यबीज हँ, भैरवबीज, दुर्गाबीजं दुं तथा श्रीपुरुषोत्तमबीज क्लीं, मन्त्रपूत कलशंजल से

तुम्हारा अभिषेक करें । गणपतिबीज गं, वाराहबीज हूँ तथा कालीबीज क्री मन्त्रपूत कलशजल से तुम्हारा अभिषेक करें । हे प्रिय ! गंगा, गोदावरी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, आत्रेयी, भारती, सरयू, गण्डकी, करतोया, चन्द्रभाग्ा, श्वेतगंगा, कौशिकी अर्थात् विश्वामित्री, पातालप्रवाहिनी भोगवती तथा स्वर्गप्रवाहिनी, शोण, घर्घर सिन्धु महानद तथा धरा को फोड़कर पाताल से निकलने वाले गहरे ह्रद, पवित्र तीर्थ नमः, अग्निप्रिया स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट् तथा फट्स्वरूप षडंगमन्त्र जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रचि, शाक तथा पुष्करनामक सप्तद्वीप,लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जल वाले सात सागर, अनन्त, वासुकी आदि सात नाग, तक्षक-कर्कोटकादि सात सर्प, मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

हे साधक ! प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षस, दानव, पिशाच, गुह्यक तथा भूतदि हैं, वे सभी अभिषेक के पवित्र कलश-जल से प्रताडित होकर नष्ट हो जायें । ताराबीज 'स्त्रीं' से अभिमन्त्रित पवित्र कलश-जल से प्रताडित अलक्ष्मी, कालकर्णी तथा बड़े-बड़े पातक भी नष्ट हो जायें । रोग, शोक, दारिद्र्य, दौर्बल्य तथा भ्रान्त्यादि चित्तविकार वाग्बीज 'ऐं' से अभिमन्त्रित इस पवित्र कलश-जल के अभिषेक से नष्ट हो जायें । दुर्भाग्य, अपयश आदि भी कामबीज 'क्लीं' से ताडित होकर नष्ट हो जायें । वर्चस्, बल और बुद्धि का ह्रास कालीबीज 'क्रीं' से अभिमन्त्रित कलश-जल से ताडित होकर नष्ट हो जायें । हे साधक ! शत्रुओं द्वारा तुम पर किये गये समस्त विष, अपमृत्यु, रोग, डाकिन्यादि के भय तथा उनके भयंकर अभिचार-प्रयोग क्रूर ग्रहों तथा नागादि से उत्पन्न होने वाले सभी भय कालीबीज 'क्रीं' से अभिमन्त्रित इस कलश-जल के अभिषिंचन से नष्ट हो जायें ।

अन्त में इस शाक्तकौलाभिषेकोत्सव में सम्मिलित सभी साधकों और साधिकाओंसहित अभिषेक्ता गुरु अभिषिक्त साधक को आशीर्वाद प्रदान करे कि—'हे कौलसाधक ! इस शाक्ताभिषेक से तुम्हारे जीवनमार्ग में आने वाली समस्त विपदाएँ दूर हों । तुम्हें सर्वदा अचल सम्पदाएँ प्राप्त हों और तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हों ।'

पुनरभिषेक—अभिषेक के पश्चात् मन्त्रप्राप्त शिष्य को गुरु पुनः दीक्षा दे । ऐसा करने पर ही निश्चितरूप से सिद्धि की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं । गुरु से दुबारा दीक्षा प्राप्त करने के बाद साधक को चाहिये कि वह महामाया कामाख्या और अपने गुरु को प्रणाम करके गुरु को सम्मानपूर्वक विहित परिमाण में स्वर्णकांचनादि के रूप में दक्षिणा प्रदान करे । इसके अलावा भी विविध प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों, गन्धमाल्यादिकों तथा प्रशंसावचनों द्वारा गुरु को प्रसन्न कर उन्हें बार-बार प्रणाम करे । दीक्षित शिष्य से प्रभूत दक्षिणा प्राप्त करने के बाद गुरु को चाहिये कि वह मन, वाणी, कर्म तथा स्नेहिल वचनों से उसे आशीष दे और उत्तम कोटि का मद्य पिलायें । शिष्य को उत्तम कोटि का मद्य प्रदान करने के बाद गुरु को भी चाहिये कि वह वहाँ विद्यमान भैरवोंसहित लताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक उन्मुक्त विहार करे ।

भैरवों और भैरवियों को भी चाहिये कि वे पुनरभिषिक्त साधक को मनसा, वाचा, कर्मणा आशीष दें। गुरु को चाहिये कि वह तीन दिनों तक भैरवों के साथ चक्रालय में ही रुक कर विहार करे तथा आठवें दिन कुल्लकादि सहित मन्त्रराज 'त्रीं' अथवा कामाख्या के दूसरे मन्त्र का जप करते हुए ताम्र-कलश के जल से पुन: तीसरी बार शिष्य का अभिषेक करे। अन्त में साधक को चाहिये कि वह लताओं और भैरवों को भी आदरपूर्वक वस्त्रभूषणादि प्रदान कर उन्हें विसर्जित करे।

दे देवि ! उक्त समस्याओं को सम्पन्न होने के साथ अभिषेक-कर्म की समाप्ति समझनी चाहिये। इस अभिषेक के सम्पादन के लिये सुयोग्य कौलगुरु और सुयोग्य शिष्य की आवश्यकता है। इसके बिना ऐसा पट्टाभिषेक सम्भव नहीं।

कौलगुरोर्लक्षणम्—शाक्ताभिषेक की रहस्यात्मक विधियों के बारे में सुनने के बाद पार्वती ने इस अभिषेक क्रिया की सिद्ध के लिये योग्य गुरु और शिष्य के लक्षणों के बारे में जानना चाहा। श्रीशिव ने उन्हें बताया कि महान् ज्ञानी, कौलिकों में श्रेष्ठ, शुद्धाचरण, गुरुभक्त, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, शिष्यों के कल्याण में रत, पुत्र-स्त्री आदि परिवारजनों से सम्पन्न, सज्जनों द्वारा नित्य सम्मानित तथा श्रद्धावान् ही कौलगुरु बनने का अधिकारी हो सकता है, अन्य नहीं।

गुरुत्वेऽनधिकारिकथनम्—अन्धा, खंज, रुग्ण, अल्पज्ञ तथा साधारण कौल साधक गुरु नहीं बन सकता। संसार से उदासीन किसी व्यक्ति को तो विशेष रूप से कभी गुरु बनाना ही नहीं चाहिये। उदासीन गुरु से ली गयी दीक्षा वन्ध्या नारी की भाँति निष्फल होती है। यदि कोई व्यक्ति अज्ञान अथवा भूल से उदासीन व्यक्ति से दीक्षा प्राप्त कर लेता है, तो ऐसे नीच व्यक्ति के जीवन में पद-पद पर बाधाएँ आती हैं। हे देवि ! उदासीन साधु-संन्यासी गुरु से दीक्षित साधक का जप, पूजा, ध्यान तथा देवता के प्रति भक्ति सब कुछ निष्फल होता है और मृत्यु के अनन्तर ऐसा साधक नरक में जाता है। उदासीन अर्थात् विरक्त गुरु से दीक्षा लेने वाला साधक करोड़ों कल्पों तक नरक भोगने के बाद अनेक जन्मों के पश्चात् किसी योग्य कौलगुरु से देवी की साधना का मन्त्र प्राप्त करने में सफल होता है। दुर्भाग्य से यदि कोई साधक उदासीन गुरु से दीक्षा प्राप्त कर ले, तो उसे चाहिये कि किसी पवित्राचरण गृहस्थ गुरु से दीक्षा लेकर उससे विधिपूर्वक पुन: अभिषेक कर्म सम्पादित कराये। अयोग्य गुरु को त्यागकर योग्य कौलगुरु से पुन: दीक्षित होने के पश्चात् साधक जो भी साधना करता है, वह सफल होती है और कुलविद्या माता की भाँति सर्वदा उसका पालन करती है।

श्रीशिव ने आगे कहा कि इस धरती पर गृहस्थ कौलगुरु से अभिषिक्त और दीक्षित साधक का ही जन्म सफल है, उसी के कर्म सफल हैं तथा उसी का धन सार्थक है। ऐसे साधक द्वारा सम्पादित धर्म और काम सफल हैं, उसी की दीक्षा, क्रियाएँ तथा शरीर सफल है। समस्त तीर्थ उसकी गोद में निवास करते हैं। हे महामाये ! मेरा यह कथन सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। श्रीशिव ने कहा कि उक्त विधि से सम्पन्न अभिषेक तीनों लोकों में दुर्लभ

है । ऐसे अभिषेक के पात्र गणेश और कार्तिकेय ही हैं । इस प्रकार के अभिषेक का पात्र वही हो सकता है, तो मुझ जैसा, ब्रह्मा जैसा या विष्णु जैसा हो । अधिक क्या ? मैं अपने पाँच मुखों से भी इस अभिषेक की महिमा का वर्णन करने में अक्षम हूँ ।

अष्टम पटल

कामाख्यातन्त्र के अष्टम पटल में श्रीपार्वती ने भगवान् शंकर से जानना चाहा है कि क्या षड्दर्शनों द्वारा मुक्तितत्त्व का ज्ञान कराया जा सकता है ? श्रीशिव ने उन्हें बताया कि दर्शनों द्वारा मुक्ति के स्वरूप का ज्ञान नहीं कराया जा सकता । जिस प्रकार लड्डुओं से बच्चों को बहलाया या बहकाया जाता है, उसी प्रकार दर्शनों द्वारा अल्पबुद्धि लोगों को बहकाने के लिये मैंने ही दर्शनों की रचना की है । षड्दर्शन तो ऐसे गहरे अन्धकूप हैं, जिनमें गिरकर पशु व्यक्तियों को ज्ञान का प्रकाश कभी मिल ही नहीं सकता । दर्शनों के भ्रमजाल में फँसे पाशव लोग परमार्थ के ज्ञान का आनन्द उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते, जैसे कड़छी किसी व्यंजन के रस का आनन्द नहीं ले सकती । जिस प्रकार कदली और एरण्ड के वृक्ष में कोई सारतत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार दर्शन निःसार हैं, उनमें मुक्तिरस का अभाव है । श्रीशिव ने कहा कि जिस प्रकार जल की लालसा में मरीचिका के पीछे भागते हुए मृग अन्त में निराश होकर वापस लौट आते हैं, उसी प्रकार दर्शनों में मुक्तितत्त्व खोजने वाले मुमुक्षु उनमें मुक्तितत्त्व न पाकर उन्हें छोड़कर वापस लौट आते हैं । दर्शनों में भटकने से मुक्ति नहीं मिल सकती । इसलिये मुमुक्षु को चाहिये कि वह पहले श्रीगुरु को प्रसन्न कर उनसे मोक्षतत्त्व को जान ले । इसके वाद मनोविनोद के लिये वह शास्त्रों का अध्ययन कर सकता है ।

श्रीशिव ने आगे कहा—हे पार्वति ! उस मुक्तितत्त्व के स्वरूप के बारे में आदर और ध्यानपूर्वक सुनो, जिसे प्राप्त करने के लिये मानव इस धरा पर जन्म लेता है । मुक्ति के लिये पहले तो भगवती के अनुग्रह की आवश्यकता होती है, फिर सद्गुरु की कृपा से उनके श्रीमुख से मन्त्रदीक्षा की । मन्त्रदीक्षा से साधक के हृदय में भगवती के प्रति अनन्य भक्ति उत्पन्न होती है । साधक में भगवती के प्रति भक्ति से मोक्ष के लिये आवश्यक शुद्ध साधनों की उपलब्धि होती है और साधनप्राप्ति से विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है । सालोक्य, सारूप्य, सहयोज्य (सायुज्य) और निर्वाण भेद से मुक्ति चार प्रकार की होती है । मुक्ति का परात्पर स्वरूप 'निर्वाण' है । देवी के साथ उनके लोक में ही साधक का निवास सालोक्य मुक्ति है और भगवती के स्वरूप की प्राप्ति सारूप्य मुक्ति है । भगवती में युक्त होना सायुज्य मुक्ति है और उनके स्वरूप में मनस् का लय निर्वाण मुक्ति कहलाता है ।

श्रीशिव ने पुनः कहा कि जो लोग दैवीवृत्ति वाले होते हैं, उनके साथ मैं क्रीडा करता हूँ । उनके साथ क्रीडा तीन प्रकार की होती है । पहली यह कि वे मेरे लोक में निवास करते हैं, लेकिन, मुझमें वे आत्मसात् नहीं होते, उनका 'जीवात्मक अस्तित्व' अलग ही बना रहता है । इस मुक्ति को 'सालोक्य मुक्ति' कहते हैं । 'सारोप्य' मुक्ति का दूसरा प्रकार है । इसमें साधक को 'शिवत्व' प्राप्त हो जाता है, उसे 'शिवोऽहं' का ज्ञान तो हो जाता है, वह दूसरा

शिव बन जाता है, लेकिन, सर्वोऽहं की अनुभूति नहीं होती, द्वैत बना रहता है। तीसरे प्रकार की मुक्ति 'सायुज्य' होती है। जीव मेरे साथ जुड़ तो जाता है, लेकिन, उसमें 'अहन्ता' बनी रहती है। निर्वाणमुक्ति का स्वरूप 'अहमेवमिदं सर्वम्' अर्थात् 'सब कुछ मैं ही हूँ' होता है। किन्तु, वास्तविक मुक्ति तो मन का अपने इष्ट में विलयन हो जाना ही है।

यह निर्वाण नामक मुक्ति तो नीलकमल की पंखुड़ियों की आभावाली से दो दलों 'शिव और जीव' के बीच 'शक्ति' के रूप में विद्यमान है। जीव और ईश के बीच विद्यमान शक्ति जब अपना विस्तार करती है, तो ऐसी स्थिति में जीव की अहन्ता 'देवी देहे प्रलीयते' तो जीव की अहन्ता को अपने अन्दर समा लेती है। जीव का अपने इष्ट के साथ निश्चल ऐक्य स्थपित हो जाने पर जीव संसार से मुक्त हो जाता है। जीव का शक्ति में लय हो जाना ही निर्वाण है। साधकों को आत्मसात् कर उन्हें लयात्मिका मुक्ति प्रदान करने वाली भगवती कामाख्या सनातनी, जगद्वन्दनीया, सच्चिदानन्दरूपिणी, समस्त ब्रह्माण्ड की जननी, साधकों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली परात्पर परमेश्वरी हैं। इष्ट में अपने मन को विलीन कर निश्चल सम्बन्ध बना लेना ही निर्वाण है। मुक्ति के इस स्वरूप को समझना और उसकी अनुभूति करना ही 'कुलज्ञान' है। इससे भिन्न ज्ञान कुलज्ञान नहीं है। तीनों लोकों में जो भी मुक्त हैं या होंगे, उनकी मुक्ति का स्वरूप उनका अपने इष्ट में मनोलयात्मक ही होगा। इस मनोलयात्मिका मुक्ति का साधन पूर्वोल्लिखित पंचतत्त्व ही है, इनके बिना किसी अन्य साधन से निर्वाणमुक्ति सम्भव नहीं है।

निर्वाण के लिये कुलमार्ग पर चलना आवश्यक है। कुलमार्ग का ज्ञान भगवती की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। भगवती के कृपा से सद्गुरु के मुखकमल से कुलात्मिका दीक्षा प्राप्त होती है। साधक को विश्वास होना चाहिये कि मद्यादि कुल द्रव्यों के प्रति अनुराग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसा निश्चय करके ही उसे कुलज्ञान में प्रवृत्त होना चाहिये। मुक्ति का यह स्वरूप अतिगोपनीय हैं।

नवम पटल

कामाख्यातन्त्र के नवम पटल में श्रीदेवी ने शंकर से पूछा है कि कामाख्या देवी वास्तव में हैं कौन ? कामाख्या के बारे से सब कुछ सच-सच बताने का आग्रह कर कहा कि जिस प्रकार रात्रि में रमण के समय जैसे कोई रमणी प्रेम के कारण पति कै अनुरोध पर अपना परम गोपनीय अंग पति से नहीं छिपाती उसी प्रकार हममें परस्पर सच्ची रति होने से आप जिस कामाख्या नामक कामिनी की चर्चा कर रहे हैं, उसका परिचय चाहे कितना ही गोपनीय हो, आप मुझसे छिपा नहीं सकते। यदि आप छिपायें तो आपको मेरी कसम है।

श्रीपार्वती की बात सुनकर शिव ने हँसकर कहा—हे प्राणप्रिये ! सर्वमन्त्रस्वरूपिणी जो देवी कालिका और तारा के नाम से प्रसिद्ध है, वहीं कामाख्या है। मैं सत्य कह रहा हूँ। इसमें सन्देह न करो। कामाख्या ब्रह्माण्डस्वरूपा हैं। ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती कामाख्या ही

जगद्योनि हैं । समस्त स्थावर-जंगम संसार इन्हीं से जन्मता है, इन्हीं में स्थित रहता है और कल्पान्त में इन्हीं में लीन हो जाता है । सच्चिदानन्दस्वरूपिणी कामाख्या स्थूल से भी स्थूल और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं । करुणानिधि, अमितविक्रमशालिनी कामाख्या का एक नाम 'श्यामा' भी है । कामाख्या देवी मुक्तिस्वरूपा, विश्व की धात्री, सर्वदा आनन्दरूपा, विश्व का भरण-पोषण करने वाली क्रियाशक्ति हैं । वे संसार-तारिणी तथा नित्या हैं । वे संसार-तारिणी तारा हैं । कामाख्या सर्वदा कृष्णवर्णा हैं । इसलिये सभी तन्त्रों की भाँति इस तन्त्र में इन्हें 'काली' भी कहा गया है ।

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! यदि कोई बुद्धिमान् साधक इस कामाख्यातन्त्र का पाठ करता है, या इसे पढ़कर किसी को सुनाता है, और पूजन करता है, तो भगवती काली की कृपा से उसके वे मनोरथ अवश्य पूर्ण होते हैं । मनीषियों के अनुसार यह कामाख्यातन्त्र पारस मणि और कल्पवृक्ष की भाँति साधकों के समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाला है । जिस प्रकार समस्त रत्न सागर में विद्यमान हैं, उसी प्रकार इस कामाख्यातन्त्र में कथित विधि के अनुसार भगवती कामाख्या काली की साधना में समस्त सिद्धियाँ तथा भोग और मोक्ष निहित हैं । हे देवि ! जिस प्रकार सुमेरु पर्वत समस्त देवताओं का आलय है, उसी प्रकार कामाख्यातन्त्र भी समस्त विद्याओं का आलय है, यह बात मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ । हे गौरि ! समस्त भीतियों को दूर करने वाला यह कामाख्यातन्त्र जिस व्यक्ति के घर में विद्यमान होता है, उसके जीवन में रोग, शोक तथा पातकों का अस्तित्व लेशमात्र भी नहीं होता । जिस साधक के पास कामाख्यातन्त्र है, उसे कभी भी चौरभय, ग्रहभय, राजभय, उत्पातभय तथा महामारी आदि का भय नहीं होता ।

श्रीशिव ने कहा—हे शिवे ! कामाख्या का साधक किसी से पराजित नहीं होता । उसे किसी भूत, प्रेत, पिशाच, दानव तथा राक्षस का भय भी नहीं होता । उसे कभी भी और कहीं भी व्याघ्रादि क्रूर वन्यजीवों, कूष्माण्डों तथा अग्नि आदि पंचभूतों का भी डर नहीं होता । कामाख्या साधक के जीवन में स्वर्ग, धरती तथा पातालादि समस्त भुवनों में कहीं भी विघ्न उपस्थित करने वाले विनायकादि विघ्नपतियों अथवा गन्धर्वादि मानवेतरों से भी भय नहीं रह जाता । हे भगवति ! जीवन में जो भी विघ्न उत्पन्न करने वाले अथवा हिंसक प्राणी हैं, उनका भय साधक में नहीं रह जाता । उसे देखकर उसके डर से भयभीत यमराज के क्रूर दूत भी भाग खड़े होते हैं । कामाख्या के उपासक को देवी की कृपा से सातपुस्तों तक चलने वाली महालक्ष्मी तथा अव्यभिचारिणी वाक्‌शक्ति भी प्राप्त होती है ।

अन्त में भगवान् श्रीशिव ने पार्वती से कहा कि उन्होंने कामाख्या के विषय में जो बातें बतायी हैं, उन्हें वे किसी अनधिकारी व्यक्ति के सामने प्रकट न करें । विशेष रूप से पशुभाव में स्थित व्यक्तियों और आचरण से पतित साधकों के सम्मुख कामाख्याविद्या की चर्चा भी नहीं करें, और न ही एकाक्षि, लंग (लंगड़े) और गर्हित व्यक्तियों को कामाख्या विद्या प्रदान करें । श्रीशिव ने पुन: कामाख्या शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा कि कामाख्या शक्ति

सृष्टिकारिणी हैं । इन्हें अपने रचना-संसार से नि:सीम लगाव है । अत: संसार से उदासीन किसी विरागी व्यक्ति के सामने कामाख्याविद्या की चर्चा भी नहीं करनी चाहिये । विशेष रूप से यह विद्या किसी भक्तिहीन, अहंकारी, मूर्ख, वीरादि भावों से हीन तथा धन-मन से दरिद्र व्यक्ति को भी कामाख्या विद्या प्रदान नहीं करनी चाहिये ।

श्रीशिव ने भगवती पार्वती से यह भी कहा कि कामाख्याविद्या सर्वथा अदेय हो, ऐसी भी बात नहीं । योग्य अधिकारी को यह विद्या अवश्य प्रदान करनी चाहिये । कौलिक साधकों को भी कामाख्या विद्या प्रदान करनी चाहिये, बशर्ते वे शान्त स्वभाव और निर्मल आचरण वाले हों । उन्होंने कहा कि शैवों और वैष्णवों को भी कामाख्या का मन्त्र दिया जा सकता है, यदि वे भगवती काली के भक्त हों तब, अन्यथा नहीं । इनके अतिरिक्त अद्वैतभाव वाले महाकाल के उपासकों एवं सुरा और सुन्दरी का सम्मान करने वाले तथा भगवती भवानी को बलि प्रदान करने वाले भक्त साधकों को भी कामाख्या विद्या प्रदान की जानी चाहिये ।



ओं नमः परदेवतायै

कामाख्यातन्त्रम्



अथ प्रथमः पटलः

श्रीदेव्याः जिज्ञासा

श्री देव्युवाच

भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! सर्वविद्याप्रिय ! प्रभो ।
सर्वदानन्दहृदय ! सर्वागमप्रकाशक ! ॥1॥

कभी किसी समय अत्यन्त एकान्त स्थान में विराजमान भगवान् शंकर से भगवती गिरिजा ने कहा—भगवन् ! आप विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय तथा प्राणियों के कर्तव्याकर्तव्यरूपी सभी कर्मों के ज्ञाता, सभी प्राणियों के हृदय में आनन्दरूप से स्थित और समस्त आगमों के प्रवर्तक और जानने वाले हैं ।

श्रुतानि सर्वतन्त्राणि यामलानि च भूरिशः ।
विद्यास्ताः सकला देवः फलानि त्वत्प्रसादतः ॥2॥

हे प्रभो ! मैंने आपकी कृपा से सभी तन्त्र-मन्त्रों, यामलों और इनमें निरूपित साधनों तथा उन साधनों से प्राप्त होने वाले फलों के विषय में सुन लिया है ।

सारात्सारतरं तन्त्रं जानासि किं वद प्रभो ! ।
अतीवेदं रहःस्थानं तेनाहं श्रवणोद्यता ॥3॥

हे देवि ! अब आप इनमें से या इनसे अतिरिक्त किसी सारतम तन्त्रादि के बारे में जो कुछ जानते हैं, वह बताइये । हे प्रभो ! गोपनीय तत्त्वों के कथन-श्रवण के लिये एकान्त स्थल अपेक्षित होता है । यहाँ एकान्त है, इसीलिये आपसे गोपनीय से भी गोपनीय तन्त्र के बारे में यहीं सब कुछ जानना चाहती हूँ ।

शिवेन कामाख्यास्वरूपवर्णनम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! मुदा भद्रे ! मदीये प्राणवल्लभे ! ।
योनिरूपा महाविद्या कामाख्या वरदायिनी ॥4॥

भगवती पार्वती की बात सुन भगवान् शिव ने कहा—हे देवि ! तुम मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय हो । तुम्हें समस्त तन्त्रों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तन्त्र के बारे में बताता हूँ। तुम प्रसन्न मन से ध्यानपूर्वक सुनो । हे गिरिजे ! समस्त तन्त्र-मन्त्रों की अधिष्ठात्री शक्तियों में सबसे प्रमुख कामाख्या हैं । वे साक्षात् योनिस्वरूपा हैं ।

वरदाऽऽनन्ददा नित्या महाविभववर्द्धिनी ।
सर्वेषां जननी सापि सर्वेषां तारिणी मता ॥5॥

आनन्दप्रदा कामाख्या साधकों को वर देने के लिये सर्वदा उद्यत रहती हैं, वे नित्या शक्ति हैं। वे साधकों की समृद्धि बढ़ाने वाली हैं । योनिरूपा कामाख्या से ही विश्व उत्पन्न होता है, उन्हीं में स्थित रहता है और उन्हीं में विलीन हो जाता है । वे सबकी जननी हैं । वे सभी को संसार-सागर से पार करने वाली तारा हैं ।

रमणी चैव सर्वेषां स्थूला सूक्ष्मा सदा शुभा ।
तस्यास्तन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ॥6॥

सभी प्राणियों को आनन्द प्रदान करने वाली रमणी कामाख्या ही हैं । कामाख्या स्थूल से भी स्थूल तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं । वे सभी प्राणियों के लिये शुभंकरी शक्ति हैं । हे देवि ! मैं तुम्हें इन्हीं कामाख्या के तन्त्र का निर्वचन कर रहा हूँ ।

निखिलासु च विद्यासु ये ये सिध्यन्ति साधकाः ।
यत्र कुत्रापि केनापि कामाख्या फलदायिनी ॥7॥

हे देवि ! समस्त वैदिक-तान्त्रिक मन्त्रों की साधना से जहाँ-कहीं, जिन साधकों को, जो भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सभी कामाख्या देवी ही उन्हें प्रदान करती हैं ।

कामाख्याविमुखा लोका निन्दिता भुवनत्रये ।
विना कामात्मिकां कापि न दात्री सिद्धिसम्पदाम् ॥8॥

हे पार्वति ! जो लोग योनिस्वरूपा कामाख्या से विमुख हैं, जो कामाख्या में रुचि नहीं रखते, तीनों लोको में उनका जीवन निम्नतम और निन्दित है । कामनास्वरूपा कामाख्या के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति साधक को सिद्धि प्रदान कर ही नहीं सकती ।

कामाख्या च सदा धर्मः कामाख्या चार्थ एव च ।
कामाख्या कामसम्पत्तिः कामाख्या मोक्ष एव च ॥9॥

हे गौरि ! मानव-जीवन की सार्थकता के लिये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूपी जो चार पुरुषार्थ हैं, कामाख्या तन्मयी हैं । कामाख्या ही धर्म हैं, कामाख्या ही अर्थ हैं, कामाख्या ही काम हैं और कामाख्या ही मोक्ष हैं । वास्तव में, इन चारों की प्राप्ति कामाख्या की साधना से ही होती है, अन्यथा नहीं ।

निर्वाणं सैव देवेशि ! सैव सायुज्यमीरिता ।
सालोक्यं सहरूपं च कामाख्या परमा गतिः ॥10॥

हे देवेश्वरि ! साधना में विभिन्न मार्गों पर चलने वाले साधकों ने अपने गन्तव्य के निर्वाण, मोक्ष, सायुज्य, सालोक्य, सारूप्य तथा सामीप्यादि जो भी रूप कहे हैं, भगवती कामाख्या ही उन सर्वरूपों में स्थित हैं । वस्तुतस्तु, कामाख्या ही परम गन्तव्य हैं ।

शिवता ब्रह्मता देवि ! विष्णुता चन्द्रतापि च ।
देवत्वं सर्वदेवानां निश्चितं कामरूपिणी ॥11॥

हे गिरिजे ! कामाख्या इकाररूपा क्रियाशक्ति हैं । शिव में जो शिवत्व है, वह भगवती कामाख्या का ही स्वरूप है । इकाररूपिणी कामाख्या के बिना शिव 'शव' रूप हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा का ब्रह्मत्व, विष्णु का विष्णुत्व, चन्द्र का चन्द्रत्व, यहाँ तक कि समस्त देवों का देवत्व इच्छारूपिणी कामाख्या स्वयं ही हैं ।

सर्वासामपि विद्यानां लौकिकं वाक्यमेव च ।
कामाख्याया महादेव्याः स्वरूपं सर्वमेव हि ॥12॥

हे शाम्भवि ! समस्त ज्ञात-अज्ञात, परापरा विद्याएँ, लौकिक-वैदिक व्यावहारिक विधि-निषेधपरक वाक्य तथा विश्व में जो भी अभिधेय तथा अनभिधेय तत्त्व है, वह कामाख्या का ही स्वरूप है ।

पश्य पश्य प्रिये ! सर्वं चिन्तयित्वा हृदि स्वयम् ।
कामाख्यां न विना किञ्चिद् विद्यते भुवनत्रये ॥13॥

हे देवि ! तुम स्वयं अपने हृदय में विचार करके देखो, तो तुम्हें अवगत होगा कि तीनों लोकों में भगवती कामाख्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

लक्षकोटिमहाविद्यास्तन्त्रादौ परिकीर्तिताः ।
सारात्सारतमा देवि ! सर्वेषां षोडशी मता ॥14॥

हे देवि ! एक लाख करोड़ जो विद्याएँ कही गयी हैं, उनमें सारस्वरूपा विद्या षोडशी है ।

तस्याश्च कारणं देवि । कामाख्या जगदम्बिका ।
चन्द्रकान्तिर्यथा देवि ! जयते लीयते पुनः ॥15॥
स्थावराणि चराणीह नित्याऽनित्यानि यानि च ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं विना तां नैव जायते ॥16॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे प्रथमः पटलः समाप्तः ।



हे प्रिये ! इस षोडशी महाविद्या की भी मूलविद्या जगज्जननी कामाख्या ही हैं । जिस

प्रकार चन्द्रमा की कान्ति चन्द्रमा से उद्भूत होकर पुनः चन्द्रमा में ही लीन हो जाती है, उसी प्रकार अभिधान-अभिधेयात्मक, नित्य और अनित्य पदार्थ, समस्त चराचर जगत्, विश्व योनिस्वरूपा कामाख्या से उत्पन्न होकर पुनः उन्हीं में लीन हो जाता है। वास्तव में कामाख्या के बिना कुछ भी सम्भव है ही नहीं।

॥ श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का प्रथम पटल समाप्त ॥



अथ द्वितीयः पटलः

कामाख्यामन्त्रोद्धारोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! परात्परम् ।
यज्ज्ञात्वा साधयेत्सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥1॥

शिव ने कहा—हे देवि ! मैंने जिन जगदम्बिका कामाख्या देवी के विषय में पहले चर्चा की है, उनकी साधना के मन्त्र का निर्वचन करूँगा । इस मन्त्र को जानकर इसकी साधना करने से साधक समस्त कामनाओं को प्राप्त कर सकता है । वास्तव में वक्ष्यमाण कामाख्या मन्त्र देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ।

कामाख्यामन्त्रे मोहनशक्तिः

मन्त्रस्यस्य प्रतापेन मोहयेदखिलं जगत् ।
ब्रह्मादीन् मोहयेद् देवि ! बालकं जननी यथा ॥2॥

वक्ष्यमाण कामाख्या मन्त्र की साधना से साधक इस मन्त्र के प्रभाव से समस्त भौतिक जगत् के साथ ही ब्रह्मादि त्रिदेवों को भी इसी प्रकार मोहित (वश में) कर सकता है, जैसे जननी अपने शिशु को मोहित कर लेती है ।

देवदानवगन्धर्वकिन्नरादीन् सुरेश्वरि ! ।
मोहयेत्क्षणमात्रेण प्रजासु नृपतिर्यथा ॥3॥

हे देवेश्वरि ! कामाख्या मन्त्र की साधना से साधक देवों, दानवों, गन्धर्वों तथा किन्नरों आदि को उसी प्रकार (वश में) मोहित कर लेता है, जैसे कोई राजा अपनी प्रजा को वश में कर लेता है ।

कामाख्यामन्त्रे वशीकरणशक्तिः

मन्त्रस्य पुरतो देवि ! राजानः सचिवादयः ।
अन्ये च मानवाः सर्वे मेषादिजन्तवो यथा ॥4॥

हे देवि ! कामाख्या के वक्ष्यमाण मन्त्र से मन्त्रियोंसहित राजाओं तथा अन्य सभी मानवों को भी इसी प्रकार वश में किया जा सकता है, जैसे मेषादि पालतू प्राणियों को उनका पालक अपने वश में कर लेता है ।

मोहयेन्नगरं राज्यं सहस्त्यश्वरथादिकम् ।
उर्वश्याद्यास्तु स्वर्वेश्या राजपत्न्यादिकाः क्षणात् ॥5॥

हे देवि ! कामाख्या मन्त्र का साधक न केवल धरती के राजादिकों और उनकी प्रियाओं को, अपितु उनके समस्त नगरवासियों, गजाश्वरथादिकसहित समस्त राज्योपकरणों के साथ ही स्वर्गलोक की उर्वशी आदि अप्सराओं को भी मोहित कर सकता है ।

कामाख्यामन्त्रे स्तम्भनादिसर्वशक्तयः

स्तम्भनं मारणं देवि ! क्षोभणं जृम्भणं तथा ।
द्रावणं भाषणं चैव विद्वेषोच्चाटने तथा ॥6॥
आकर्षणं च नारीणां विशेषेण महेश्वरि !
वशीकरणमन्यानि साधयेत् साधकोत्तमः ॥7॥

हे महेश्वरि ! कामाख्या देवी के वक्ष्यमाण मन्त्र के प्रभाव से साधक स्तम्भन, मारण, क्षोभण, जृम्भण, द्रावण, भीषण, विद्वेषण जैसी क्रियाओं को सफलतापूर्वक सम्पादित कर सकता है । हे माहेशि ! कामाख्या मन्त्र से समस्त प्राणियों का, विशेषरूप से नारियों का आकर्षण किया जा सकता है ।

कामाख्यामन्त्रे समस्तभूतस्तम्भनशक्तिः

अग्निः स्तम्भति वायुश्च सूर्यो वारिसमूहकः ।
कटाक्षेणैव सर्वाणि साधकस्य न चान्यथा ॥8॥

हे प्राणप्रिये । कामाख्या मन्त्र का साधक निःसन्देह अपने कटाक्षमात्र से प्रज्ज्वलित अग्नि, वायु के प्रवाह, सूर्य की गति और सागर की लहरों को स्तम्भित कर सकता है ।

जगज्जयति मन्त्रज्ञः कामदेवो यथा जयी ।
तस्याऽसाध्यं त्रिभुवने न किञ्चित् प्राणवल्लभे ! ॥9॥

हे देवि ! कामाख्या मन्त्र का साधक समस्त संसार पर कामदेव की भाँति विजय प्राप्त कर सकता है । उसके लिये जगत् में कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ।

श्रीशिवेन कामाख्यामन्त्रनिर्वचनम्

जृम्भणान्तं त्यक्तपाशं यात्रावारणरोहणम् ।
व्यङ्गवर्ण (वामकर्ण) युतं देवि ! नादबिन्दुयुतं पुनः ॥10॥
एतत् तु त्रिगुणीकृत्य कल्पवृक्षमनुं जपेत् ।
एकं वापि द्वयं वापि चतुर्थं वा जपेत्सुधीः ॥11॥

हे देवि ! पाशसंज्ञकवर्ण 'अ' से रहित, यात्रावारणवर्ण 'र' पर आरूढ, नाद और

बिन्दु से युक्त वामकर्णसंज्ञक वर्ण 'ई' सहित जृम्भणसंज्ञक वर्ण 'ण' के अन्तवाला वर्ण 'त्' अर्थात् त् र् ई ँ तथा ं का सम्मिलितरूप 'त्रीँ' भगवती कामाख्या का मूलमन्त्र है। इस मन्त्र को 'त्रीँ त्रीँ त्रीँ' के रूप में त्रिगुणित करके जप करने से यह कल्पवृक्ष की भाँति फलदायक होता है। वैसे इस मन्त्र को मूल एकल रूप में 'त्रीँ', दुहराकर 'त्रीँ त्रीँ' अथवा चतुर्वारिक रूप में 'त्रीँ त्रीँ त्रीँ त्रीँ' के रूप में भी जपा जा सकता है।

विद्यासाधने आदौ कामाख्यासाधनं कार्यम्

कामाख्यासाधनं कार्यं सर्वविद्यासु साधकैः।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्याद् विघ्नस्तेषां पदे पदे ॥12॥
किं शाक्ताः वैष्णवाः किं वा किं शैवा गाणपत्यकाः।
महामायाव्रताः सर्वे तैलयन्त्रे वृषा इव ॥13॥

हे देवि ! चाहे शाक्त-साधक हों, वैष्णव हों, शैव हों या गाणपत्य, सभी प्रकारान्तर से कोल्हू में जुते हुए बैलों की भाँति महामाया भगवती कामाख्या की ही साधना करते हैं। तात्पर्य यह कि कोल्हू के बैल चाहे कितना ही घूम लें, कोल्हू से अलग नहीं होते, उसी प्रकार वैष्णवादि कोई भी साधक और उनके मन्त्र हों, वे भगवती कामाख्या की साधना से अलग नहीं हो सकते।

कामाख्यासाधने चक्रादिशुद्धेर्निषेधः

अस्याश्च साधनं देवि ! शाक्तानामेव सुन्दरि ! ।
नात्र चक्रविशुद्धिस्तु कालादिशोधनं न च ॥14॥
कृते च नरकं याति तस्य सर्वं विनश्यति।
क्लेशशून्यं परं देवि ! साधनं द्रुतपोषकम् ॥15॥

किन्तु, हे सुन्दरि ! कामाख्या की साधना तो, वास्तव में शाक्तों की ही साधना है। कामाख्या की साधना के अधिकारी तो शाक्त ही हैं। क्योंकि कामाख्या-साधना चक्रविशुद्धि, दिक्कालशोधनादि समस्त बाह्य आडम्बरों से मुक्त होती है। इस साधना में जो साधक चक्रशोधनादि बाह्य आडम्बरों को करता है, वह निश्चय ही नरकगामी होता है और उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वास्तव में, कामाख्या की साधना नितान्त सरल, आडम्बरहीन और त्वरित फलप्रदात्री है।

कामाख्यासाधने चक्रादिशुद्धिकर्तॄणां का गतिः ?

श्री देव्युवाच

कालीतारामन्त्रदाने चक्रचिन्तां करोति यः।
का गतिस्तस्य देवेश ! निस्तारो विद्यते न वा ॥16॥

देवी ने पूछा—हे शिव ! आपने यह तो बता दिया कि कामाख्या की साधना में चक्रादिशोधन की आवश्यकता नहीं होती । अब आप यह भी बताइये कि भगवती काली और तारा के मन्त्रदान में चक्रादिशोधन की आवश्यकता है या नहीं । और, काली तथा तारा के मन्त्रदान में जो देशिक चक्रादिशोधन करता है, उसका परिणाम क्या होता है ?

श्रीशिव उवाच

वयमग्निश्च कालोऽपि ये ये याता महेश्वरि ! ।
किं ब्रूमो देवदेवेशि ! कालिकातारिणीमनुम् ॥17॥
अज्ञानाद् यदि वा मोहात् कालीतारामनौ प्रिये !
कृते चक्रादिगणने शुनीविष्ठाकृमिर्भवेत् ॥18॥
कल्पान्ते च महादेवि ! निस्तारो विद्यते न च ।
अस्याः पूजां प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्यसाधनप्रदाम् ॥19॥

श्रीशिव ने कहा—हे महेश्वरि ! अग्नि, काल और हम जो भी भगवती काली और तारा की उपासना के मार्ग से गुजरे हैं, वे भी कालिका और तारा के मन्त्रों की महिमा का निरूपण करने में क्या सक्षम हो सकते हैं ? नहीं । फिर सामान्य साधकों की तो बात ही क्या । वास्तव में, काली और तारामन्त्र विधि-निषेधों से परे हैं । फिर, इन मन्त्रों की साधना में चक्रादिशोधन की बात ही कहाँ उठती है । फिर भी, अज्ञान अथवा मोह अर्थात् मूर्खता के कारण यदि कोई साधक काली और तारा के मन्त्रों के प्रदान अथवा साधना में चक्रादिशुद्धि की क्रियाएँ करता या इस विषय में सोचता भी है, तो वह मृत्यु के पश्चात् कुतिया के मल का कीड़ा बनता है । ऐसे देशिक अथवा साधक का उद्धार कल्प की समाप्ति के बाद भी नहीं होता । हे देवि ! अब मैं तुम्हारे लिये भगवती कामाख्या की उस महिमामयी पूजाविधि का निरूपण करूँगा, जो त्रिलोक में जितनी भी साधना की विधियाँ हैं, उन सबका साररूप है ।

कामाख्यापूजामहिमा

हठाद्धठाच्च देवेशि ! या या सिद्धिश्च जायते ।
प्राप्यते तत्क्षणेनैव नात्र कार्या विचारणा ॥20॥

इस पूजाविधि को जान लेने से साधकों को समस्त साधना-विधियों का ज्ञान अनायास ही हो जाता है । हे महेश्वरि ! कठोर से कठोर साधना करके साधकों को जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब कामाख्या के उस पूजन से सरलतापूर्वक क्षणभर में प्राप्त हो जाती हैं, जिस विधि का निरूपण करने मैं जा रहा हूँ ।

कामाख्यापूजनयन्त्रनिर्माणविधिः

सिन्दूरमण्डलं कृत्वा त्रिकोणं च समालिखेत् ।
निजबीजानि तन्मध्ये योजयेत्साधकोत्तमः ॥21॥

हे प्रिये ! भगवती कामाख्या के पूजन-यन्त्र के निर्माण के लिये सर्वप्रथम सिन्दूर से एक मण्डल का अंकन करके उसके भीतर अधोमुखी त्रिकोण का अंकन करना चाहिये । फिर, उस त्रिकोण के मध्य उनका मूलबीज 'त्रीँ' तीन बार लिखना चाहिये ।

चतुरस्त्रं लिखेद् देवि ! ततो वज्राष्टकं प्रिये ! ।
अष्टदिक्षु यजेत् तां तु न्यासजालं विधाय च† ।।22।।

तदनन्तर मण्डल के बाहर एक चतुरस्त्र का अंकन कर उसके बाहर आठों दिशाओं में वज्राकार आठ चिह्न बनाने चाहिये । इस प्रकार कामाख्या का पूजामण्डल बन जाने के पश्चात् उसमें कामाख्या का आवाहन कर 'त्राँ त्रीँ आदि षड् दीर्घबीजों से अपेक्षित हृदयादि न्यासों सहित उनकी अर्चना करनी चाहिये ।

कामाख्यामन्त्रस्य ऋष्यादि:

अक्षोभ्यश्च ऋषि: प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
कामाख्या देवता सर्वसिद्धये विनियोजिता ।।23।।

हे देवि ! कामाख्या के मूल एकाक्षरी मन्त्र के साक्षात्कारकर्ता ऋषि अक्षोभ्य, छन्दस् अनुष्टुब् तथा देवता कामाख्या हैं । इस मन्त्र की साधना का विनियोग सर्वार्थसिद्धि के लिये किया जाता है । तदनुसार ऋष्यादिन्यास का स्वरूप निम्न होगा—

ओं अक्षोभ्यर्षये नम: शिरसि
ओं अनुष्टुप् छन्दसे नम: मुखे
ओं कामाख्यादेवतायै नम: हृदये
ओं स्त्रीं बीजाय नम: गुह्ये
ओं ह्री शक्तये नम: पादौ ।

कामाख्यामन्त्रस्य कराङ्गन्यासविधि:

***कराङ्गन्यासकं चैव निजबीजेन कारयेत् ।**
षड्दीर्घभाजा ध्यायेत् तु कामाख्यामिष्टदायिनीम् ।।24।।

इस मन्त्र की साधना में करन्यास तथा अंगन्यास भगवती के निज बीज 'त्रीँ' के छह दीर्घरूपों—त्राँ त्रीँ त्रूँ त्रैँ त्रौँ तथा त्र: से क्रमश: वामावर्त क्रम से किया जाना चाहिये ।

---

† 'तद् बाह्ये चतुरस्त्रम्, तत: अष्टदिक्षु वज्राष्टकं लिखेत् । न्यासजालं विधाय तु ताम् यजेत्' इत्यन्वय: ।

* नमोऽन्तं मूर्ध्नि वक्त्रे च हृदि ऋष्यादिके न्यसेत्—
अङ्गुष्ठमध्यमाऽनामयोगेनाङ्गं तु संस्पृशेत् । अशक्ये चाऽशुचौ तद्वन्मनया भावयेच्छिवे ।।
देवताप्रीतये वाऽर्थलाभाय विनियोजयेत् । अङ्गुष्ठाभ्यां नमश्चैव तत्तदङ्गुलिनामभि: ।।

कामाख्यास्वरूपध्यानम्

रक्तवस्त्रां वरोद्युक्तां सिन्दूरतिलकान्विताम् ।
निष्कलङ्कां सुधाधामवदनामलकोज्ज्वलाम् ॥25॥
स्वर्णादिमणिमाणिक्यभूषणैर्भूषितां पराम् ।
नानारत्नादिनिर्माणसिंहासनोपरिस्थिताम् ॥26॥

न्यासों के पश्चात् देवी कामाख्या के निम्नांकित स्वरूप का ध्यान करना चाहिये कि 'रक्तवस्त्रालंकृता, वरदहस्ता, सिन्दूरतिलकांकितभाल, निष्कलंकचन्द्रानना, निर्मल द्युतिमद्-देहयष्टि, माणिक्यादि मणियों से जटित, स्वर्णादि से निर्मित आभूषणों से आभूषित पराशक्ति भगवती कामाख्या नीलादि विभिन्न रत्नों से निर्मित सिंहासन पर आसीन हैं ।'

हास्यवक्त्रां पद्मरागमणिकान्तिमनुत्तमाम् ।
पीनोत्तुङ्गकुचां कृष्णां श्रुतिमूलगतेक्षणाम् ॥27॥
कटाक्षैश्च महासम्पद्दायिनीं परमेश्वरीम् ।
सर्वाङ्गानिन्दितां नाना विद्वद्भिः परिवेष्टिताम् ॥28॥

भगवती कामाख्या का मुखमण्डल उनके ओष्ठों पर सर्वोत्तम पद्मराग मणियों की आभा की भाँति खिली मुस्कान से उद्भासित है, उनके उरोज पृथुल और कुछ-कुछ उठे हुए हैं । उनकी देह नूतन जलधर की भाँति कृष्णवर्णी है तथा नेत्र कर्णों तक आयत हैं ।

शाकिनीयोगिनीविद्याधरीभिः परिशोभिताम् ।
डाकिनीभिर्युतां नानागन्धाद्यैः परिगन्धिताम् ॥29॥
ताम्बूलादिकराभिश्च नायिकाभिर्विराजिताम् ।
समस्तसिद्धवर्गाणां प्रणतानां प्रतीक्षणाम् ॥30॥

साधक को कल्पना करनी चाहिये कि शाकिनियों, योगिनियों, विद्याधरियों और डाकिनियों से घिरी भगवती कामाख्या अत्यन्त सुन्दर लग रही हैं । वे विभिन्न प्रकार के सुगन्धित परिमलों से सुवासित हो रही हैं । हाथों में ताम्बूलधारिणी सुन्दर नायिकाओं से घिरी

अङ्गुष्ठतर्जनीमध्यमानामाश्च कनिष्ठिका । तलपृष्ठाविति करन्यासः षोढा प्रकीर्तिताः ॥
अङ्गुष्ठयोस्तर्जनीभ्यामङ्गुष्ठाभ्यां तथान्ययोः । न्यसेदेवे विधानेन तलाभ्यां तलपृष्ठयोः ॥
हृदि शीर्ष्णि शिखायां च कवचे च त्रिनेत्रके । अस्त्रे च विन्यसेद् देवि ! तर्जन्यादित्रिभिस्तथा ॥
मध्यमानामिकाभ्यां च विमुष्ट्यङ्गुष्ठकेन च । व्यत्यस्तहस्ताङ्गुलिभिर्भुजयोः कवचं स्मृतम् ॥
तर्जन्यादित्रयेणैव दक्षफाले नराक्षिषु । तर्जनीमध्यमाभ्यां तु विमुष्टिभ्यां त्रिताडनम् ॥
वामे तले नमःस्वाहावषड्हुं वौषडन्तकैः । फडन्तेन चतुर्थ्यन्ताद् भूभुवः संवरो तथा ॥
दिग्बन्ध इति दिक्ष्वेवं छोटिकां परिकल्पयेत् ॥

(इति परमानन्दतन्त्रे 4.10-19)

हुईं देवी अति सुन्दर दिख रही हैं और समस्त सिद्धसमूह उन्हें घेरे हुए उनके कृपा-कटाक्ष की प्रतीक्षा कर रहा है ।

त्रिनेत्रां मोहनकरीं पुष्पचापेषु बिभ्रतीम् ।
भगलिङ्गसमाख्यानं किन्नरीभ्योऽपि शृण्वतीम् ॥31॥
वाणी-लक्ष्मी-सुधा-वाक्य-प्रतिवाक्य-समुत्सुकाम् ।
अशेषगुणसम्पन्नां करुणासागरां शिवाम् ॥32॥

साधक भावना करे कि समस्त गुणों से सम्पन्न, करुणासागर शिवप्रिया, जगत्त्रय-मोहिनी, त्रिनेत्रा भगवती कामाख्या किन्नरियों से भगलिंग समाख्यान सुन रही हैं । इस विषय में वे पार्श्वस्थित सरस्वती और लक्ष्मी की प्रतिक्रिया सुनने के लिये व्यग्र हैं । भगवती कामाख्या समस्त गुणों से सम्पन्न तथा करुणा की सागर हैं ।

कामाख्याया आवाहनपूजादिकम्

आवाहयेत् ततो देवीमेवं ध्यात्वा च साधकः ।
पूजयित्वा यथोक्तेन विधानेन हरप्रिये ! ॥33॥
कुङ्कुमाद्यैः रक्तपुष्पैः सुगन्धिकुसुमैस्तथा ॥
जवा-यावक-सिन्दूरैः करवीरैर्विशेषतः ॥34॥

हे पार्वति ! साधक को चाहिये कि वह भगवती कामाख्या के उक्त स्वरूप का ध्यान करके उनका आवाहन कर उनकी कुंकुम, सुगन्धित लालपुष्पों, जवा, अलक्तक तथा कनेरपुष्पों से विधिपूर्वक अर्चना करे ।

करवीरादिषु कामाख्यायाः
नित्योपस्थितिः

करवीरेषु देवेशि ! कामाख्या तिष्ठति स्वयम् ।
जवायां च तथा विद्धि मालत्यादिसमीपके ॥35॥

हे देवेश्वरि ! करवीर और जवा पर भगवती कामाख्या स्वयं निवास करती हैं । इसी प्रकार कामाख्या मालती आदि लताओं के समीप भी उपस्थित रहती हैं ।

करवीरस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ।
प्रदानात् तु जवायाश्च गाणपत्यमवाप्नुयुः ॥36॥

हे देवि ! करवीर के माहात्म्य का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है । यदि कोई साधक भगवती कामाख्या को करवीर और जवा का पुष्प प्रदान करता है तो वह गणपति का पद प्राप्त करता है ।

कामाख्यापूजने
पञ्चतत्त्वस्याऽनिवार्यता

पूजयेदम्बिकां देवीं पञ्चतत्त्वेन सर्वदा* ।
पञ्चतत्त्वं विना पूजामभिचाराय कल्पयेत् ॥37॥
पञ्चतत्त्वेन देव्यास्तु प्रसादो जायते क्षणात् ।
पञ्चमेन महादेवि ! शिवो भवति साधकः ॥38॥

हे माहेश्वरि ! साधक को चाहिये कि वह कामाख्या की अर्चना में सर्वदा पंचतत्त्वों का समावेश करे । पंचतत्त्व के बिना भगवती का पूजन अभिचार है, पूजन नहीं । पूजन में मत्स्य, मद्य, मांस, मुद्रा और मैथुन का प्रयोग करने से कामाख्या देवी प्रसन्न होती हैं । पूजन में पंचमतत्त्व (मैथुन) के प्रयोग से साधक स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है ।

पञ्चतत्त्वप्रशंसनम्

पञ्चतत्त्वसमं नास्ति नास्ति किञ्चित्कलौ युगे ।
पञ्चतत्त्वं परं ब्रह्म पञ्चतत्त्वं परा गतिः ॥39॥

हे देवि ! कलियुग में कामाख्या की पूजा के लिये पंचतत्त्व के समान महत्त्वपूर्ण साधन और कुछ भी नहीं । वास्तव में, पंचतत्त्व ही परब्रह्म है और पंचतत्त्व ही परागति अर्थात् मोक्ष है ।

पञ्चतत्त्वं महादेवि ! पञ्चतत्त्वं सदाशिवः ।
पञ्चतत्त्वं भुक्तिमुक्ती महायोगः प्रकीर्तितः ॥40॥

हे पार्वति ! देवी कामाख्या स्वयं पंचतत्त्व हैं । पंचतत्त्व ही सदाशिव हैं, पंचतत्त्व ही स्वयं ब्रह्मा हैं और पंचतत्त्व ही विष्णु हैं । पंचतत्त्व ही भोग और मोक्ष हैं तथा पंचतत्त्व को ही महायोग कहा गया है ।

पञ्चतत्त्वेन देवेशि ! महापातककोटयः ।
नश्यन्ति तत्क्षणेनैव तूलराशिमिवानलः ॥41॥

हे पार्वति ! कामाख्या के पूजन में प्रयुक्त पंचतत्त्व का सेवन साधक के करोड़ों पापों को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि रूई के ढेर को विनष्ट कर देती है ।

यत्रैव पञ्चतत्त्वानि तत्र देवी वसेद् ध्रुवम् ।
पञ्चतत्त्वविहीने तु विमुखी जगदम्बिका ॥42॥

हे देवि ! सत्य तो यह है कि जहाँ पंचतत्त्व हैं, वहाँ जगन्माता कामाख्या भी हैं । जहाँ पंचतत्त्व नहीं, वहाँ कामाख्या भी नहीं ।

---

* 'पंचतत्त्वं स्वयं ब्रह्मा पञ्चतत्त्वं जनार्दनः' इत्यधिकः पाठः दृश्यते क्वचित् ।

पञ्चतत्त्वमेव भुक्तिमुक्तिकारणम्

पञ्चतत्त्वं विना नाऽन्यत् शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।
शैवानां वैष्णवानां च शाक्तानां च विशेषतः ।।43।।

हे देवि ! शैवों, वैष्णवों और विशेषतः शाक्तों के लिये पंचतत्त्वों को छोड़कर सांसारिक सुख और पारमार्थिक मुक्ति का कोई अन्य साधन नहीं है ।

प्रत्येकस्य भिन्नभिन्नफलम्

मद्येन मोदते स्वर्गे मांसेन मानवाधिपः ।
मत्स्येन भैरवी पुत्रो मुद्रया* साधुतां भजेत् ।।44।।

भगवती कामाख्या की प्रथम तत्त्व मद्य से अर्चना करने से साधक स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करता है । द्वितीय तत्त्व मांस समर्पित करने से साधक नृपतिपद प्राप्त करता है । तृतीय तत्त्व मत्स्य अर्पण करने से वह साक्षात् भैरवीपुत्र होने का सम्मान प्राप्त करता है । चतुर्थ तत्त्व मुद्रा का समर्पण उसे साधुत्व प्रदान करता है ।

परेण† च महादेवि ! सायुज्यं लभते नरः ।
भक्तियुक्तो यजेद् देवीं तदा सर्वं प्रजायते ।।45।।

मैथुनोत्पादित शुक्रशोणितरूप पंचम तत्त्व से भगवती की अर्चना करने से साधक कामाख्या की सायुज्यता प्राप्त करता है । हे देवि ! उक्त सभी उपलब्धियाँ भगवती की अर्चना भक्ति और श्रद्धा के साथ सम्पन्न करने से ही होती है ।

देव्यै अर्घ्यद्रव्याणि

स्वयम्भूकुसुमैः ‡शुक्लैः कुण्डगोलोद्भवैः†‡ शुभैः ।
कुङ्कुमाद्यैरासवेन चार्घ्यं देव्यै निवेदयेत् ।।46।।

---

* 'मद्यमांसमत्स्यमुद्रामैथुनानि तु पञ्चकम्' इति योगिनीतन्त्रे
योगिनीतन्त्रात्परमानन्दतन्त्रे (20:27 व्याख्यायाम्) समुद्धृतम् ।

† परेण पञ्चमेन शुक्रशोणितरूपद्रव्येणेत्यर्थः । तद्यथा योगिनीतन्त्रे-
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि सावधानेन चेतसा ।
दूतीयजनमार्गेण निष्पाद्यैव तु पञ्चमम् ।
योजयेत् तु विशेषार्घ्ये तदक्षयफलं भवेत् ।
योगिनामेव लभ्यं तदन्येषां दुर्लभं भवेत् ।। (परमानन्दतन्त्रे, 20:28-29)

‡ हरसम्पर्कहीनाया लतायाः काममन्दिरे !
जातं कुसुमामादाय महादेव्यै निवेदयेत् ।। (मुण्डमालातन्त्रे, 2:7)

†‡ सधवारतिसम्भूतं कुण्डमुत्तमभूतिदम् ।
विधवारतिसम्भूतं गोलमृद्धिप्रदं भुवि ।।
(द्वितीये मुण्डमालातन्त्रे, 4:22 द्वितीये मुण्डमालातन्त्रे, 4:22)

कामाख्या की आवरण-अर्चना में कामाख्या को स्वयम्भूपुष्प (अनूढा युवती का स्वच्छ प्रथम रजस्), विशुद्ध कुण्डोद्भव (सधवा स्त्री के साथ रति से उत्पन्न रजस्) तथा गोलोद्भव (विधवा स्त्री के साथ रति से उत्पन्न रजस्) शुक्ल अर्थात् शुक्र, कुंकुम तथा मद्यादि पदार्थों से निर्मित अर्घ्य समर्पित करना चाहिये ।

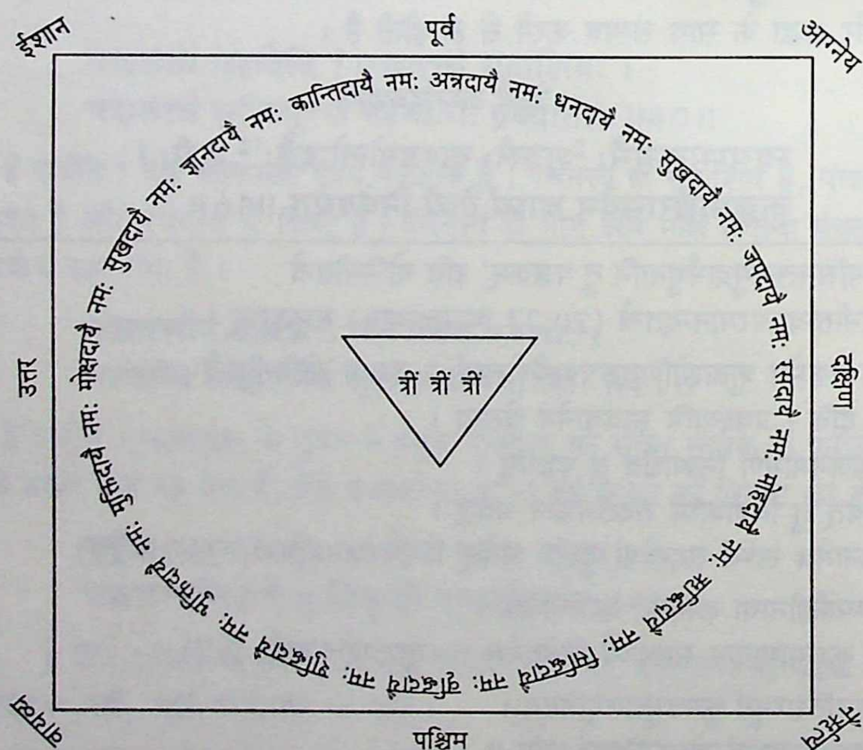
नानोपहारनैवेद्यैरन्नादिपायसैरपि ।
वस्त्रभूषादिभिर्देवीं प्रपूज्यावरणं यजेत् ॥47॥

हे पार्वति ! भगवती कामाख्या की भाँति ही लक्ष्म्यादि सभी महादेवियों की आवरण-अर्चना भी विविध उपहारों, नैवेद्यों, व्यंजनों तथा दुग्ध से निर्मित खीर आदि नाना भोज्य पदार्थों, वस्त्राभूषणों से यन्त्र के भीतर ही करनी चाहिये ।

कामाख्याया आवरणपूजा

इन्द्रादीन् पूजयेत् तत्र तेषां यन्त्राणि शाङ्करि ।
पार्श्वयोः कमलां वाणीं पूजयेत् साधकोत्तमः ॥48॥

हे देवि ! भगवती कामाख्या के पूर्वोक्त यन्त्र के मध्यस्थित कामाख्या के दोनों पार्श्वों में भगवती लक्ष्मी और सरस्वती की अर्चना करनी चाहिये । यन्त्र के बाहर दसों दिशाओं में पूर्वादि क्रम में इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त नामक दस दिक्पालों की पूजा उनके यन्त्रोंसहित की जानी चाहिये ।



कामाख्या पूजन यन्त्र

अन्नदा धनदा चैव सुखदा जयदा तथा ।
रसदा मोहदा देवि ! ऋद्धिदा सिद्धिदापि च ॥49॥
वृद्धिदा शुद्धिदा चैव भुक्तिदा मुक्तिदा तथा ।
मोक्षदा सुखदा चैव ज्ञानदा कान्तिदा तथा ॥50॥
एताः पूज्या महादेव्यः सर्वदा यन्त्रमध्यतः ।

हे पार्वति ! तदनन्तर यन्त्र के बीच ही अन्नदा, धनदा, सुखदा, जयदा, रसदा, मोहदा, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, वृद्धिदा, शुद्धिदा, भुक्तिदा, मुक्तिदा, मोक्षदा, सुखदा, ज्ञानदा तथा कान्तिदा नामक 16 महादेवियों की भी पूजा करनी चाहिये ।

डाकिन्याद्यास्तथा पूज्याः सिद्धयो यत्नतः शिवे ॥51॥
षडङ्गानि ततो देव्या यजेत् पुष्पाञ्जलीं क्षिपेत् ।

हे शिवानि ! इनके अतिरिक्त डाकिनी, शाकिनी आदि तथा अणिमादि अष्ट सिद्धियों-सहित देवी के षडंग देवताओं की पूजा सम्पन्न करके अन्त में भगवती कामाख्या पर अंजलि में रखे पुष्प विकीर्ण करना चाहिये अर्थात् पुष्पांजलि समर्पित करनी चाहिये ।

यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं शुद्धभावेन साधकः ॥52॥
जपं समर्प्य वाद्याद्यैस्तोषयेत्परदेवताम् ।
पठेत् स्तोत्रं च कवचं* प्रणमेद् विधिनाऽमुदा ॥53॥

तदनन्तर यथाशक्ति कामाख्या मन्त्र का यथाशक्ति जप करके देवी के वामहस्त में जप समर्पित कर वाद्यादिकों द्वारा भगवती को प्रसन्न करके प्रसन्नतापूर्वक उन्हें विधिवत् प्रणाम करना चाहिये ।

शेषिकां प्रति निर्माल्यनिक्षेपः ग्रहणं च

ततश्च हृदये देवीं संयुज्य शेषिकां प्रति ।
निर्माल्यं निक्षिपेदैशे त्रिकोणं परिकल्पयेत् ॥54॥
निर्माल्यं साधकैः सार्द्धं गृह्णीयाद् भक्तिभावतः ।

हे देवि ! इस प्रकार कामाख्या का पूजन करने के बाद उनका ध्यान करते हुए ईशान कोण में एक त्रिकोण की परिकल्पना करके उसमें आवरण पूजन में सम्मिलित न की गयी अवशिष्ट देवताओं के लिये निर्माल्य विकीर्ण करना चाहिये । शेषिका बलि अर्पित करने के अनन्तर गुरु तथा साधक को चाहिये कि वे अन्य साधकों के साथ भक्तिपूर्वक निर्माल्य-प्रसाद ग्रहण करें ।

---

* कामाख्यायाः स्तोत्रकवचे परिशिष्टे द्रष्टव्ये

शक्त्या सह विहारः स्वशक्तिमहिमा च

विहरेत्पञ्चतत्त्वेन यथाविधि स्वशक्तितः ॥55॥
शक्तिमूलं साधनं च शक्तिमूलं जपादिकम् ।
शक्तिमूलं गतिश्चैव शक्तिमूलं च जीवनम् ॥56॥
ऐहिकं शक्तिमूलं च परत्र शक्तिमूलकम् ।
शक्तिमूलं तपः सर्वं चतुर्वर्गस्तथा प्रिये ! ॥57॥
शक्तिमूलानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ।
अज्ञात्वा पापिनो देवि ! रौरवं यान्ति निश्चितम् ॥58॥

हे प्रिये ! निर्माल्यग्रहण के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह पंचतत्त्व का उपयोग करता हुआ अपनी शक्ति अर्थात् नायिका के साथ यथेच्छ आहार-विहारादि करे । हे देवि ! लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये साधक जिन साधनों को अपनाता है, उन सबके मूल में स्वपत्नीरूपी शक्ति ही सक्रिय होती है अर्थात् वे सभी साधन शक्ति के लिये ही होते हैं । साधक की समस्त क्रियाएँ शक्ति पर ही निर्भर करती हैं, यहाँ तक कि प्राणियों का जीवन भी शक्ति पर ही आश्रित होता है । चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले समस्त जप-तपादि क्रियाकलाप शक्ति की ही अपेक्षा करते हैं । सत्य तो यह है कि स्थावर-जंगम पदार्थों की स्थिति के मूल में शक्ति ही है । हे पार्वति ! अज्ञानी पामर व्यक्ति शक्ति की महत्ता नहीं जानते और उसकी उपेक्षा या अवमानना करके रौरव नरक के भागी बनते हैं ।

शक्त्युच्छिष्टमद्यादिपाने दोषनिषेधः

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधकैश्च शिवाज्ञया ।
शक्त्युच्छिष्टं पीयते हि नान्यथा यान्ति रौरवम् ॥59॥

इसी कारण शिव की आज्ञा से समस्त साधक शक्ति का उच्छिष्ट मद्य का पान करते हैं । यदि वे यह नहीं करते, तो निश्चय ही रौरव नामक नरक में जाते हैं ।

शक्त्यै यद् दीयते देवि ! तद् देवार्पितं भवेत् ।
सफलं कर्म तत्सर्वं सत्यं सत्यं कुलेश्वरि ! ॥60॥

हे देवि ! स्वशक्ति (स्वपत्नी) को जो भी वस्तु प्रदान की जाती है, वह पराशक्ति को ही दी जाती है । किसी सामान्य नारी को नहीं । सभी प्राणियों का जीवन भी शक्ति पर ही आश्रित होता है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले जप-तपादि धार्मिक-आध्यात्मिक क्रियाकलाप शक्ति की ही अपेक्षा करते हैं ।

शक्तिं विना चक्रपूजने नरकप्राप्तिः

शक्तिं विना कौलचक्रं करोति कारयेदपि ।
स याति नरके घोरं निस्तारो न हि विद्यते ॥61॥

हे पार्वति ! साधना में शक्ति की महत्ता न समझ जो भी साधक या देशिक कौलचक्र में पूजन करता या कराता है, वह घोर नरक में गिरता है और कल्पान्त तक भी उसका निस्तार नहीं होता ।

विधिवद् देवीपूजनात्सर्वार्थप्राप्तिः

एवं तु पूजयेद् देवीं यं यं चोद्दिश्य साधकः ।
तं तं कामं करे कृत्वा प्रिये ! जयति निश्चितम् ॥62॥

हे भगवति ! जो साधक शक्ति की महत्ता को स्वीकार करता हुआ जिस भी उद्देश्य से पराशक्ति का पूजन करता है, वह उसे अवश्य हस्तगत होता है और वह सर्वविजयी होता है ।

कामाख्यासाधनायां पुरश्चरणविधिः

पुरश्चरणकाले तु लक्षमेकं जपेत्सुधीः ।
तद्दशांशं हुनेदाज्यैः शर्करामधुपायसैः ॥63॥
तर्पयेद्धुदिग्भागैर्जलैश्चन्दनमिश्रितैः ।
गन्धाद्यैः साधकाधीशस्तत्कुशैरभिषेचयेत् ॥64॥
अभिषेकदशांशेन भोजयेच्च द्विजोत्तमान् ।
मिष्टान्नैः साधकान् देवि ! देवीभक्तांश्च पञ्चमैः ॥65॥

हे देवि ! कामाख्या विद्या के पुरश्चरण में कामाख्या मन्त्र का 1 लाख जप, जप का दशांश अर्थात् 10 हजार हवन, हवन का दशांश अर्थात् सौ तर्पण, तर्पण का दशांश अर्थात् 10 बार अभिषिंचन, अभिषिंचन का दशांश अर्थात् 10 उत्तम ब्राह्मणों को मिष्ठान्नादि का भोजन कराना चाहिये । इसके अतिरिक्त भगवती कामाख्या के सामान्य साधकों को भोजनादि तथा देवी के कौल साधकों को पंचम तत्त्व मैथुनादिजन्य पदार्थों से सत्कृत करना चाहिये ।

पुरस्क्रियां सम्पाद्यैव मन्त्रप्रयोगेऽधिकारः

एवं पुरस्क्रियां कृत्वा सिद्धो भवति साधकः ।
प्रयोगेषु ततो देवि ! योग्यो भवति निश्चितम् ॥66॥
एतत्पूजादिकं सर्वं कामाख्याप्रीतिकारकम् ।

हे देवि ! इस प्रकार की पुरक्रिया विधि सम्पन्न करने के पश्चात् ही साधक विभिन्न प्रयोजनों के लिये देवी कामाख्या के मन्त्र के प्रयोग का अधिकारी बनता है, अन्यथा नहीं । हे पार्वति ! उपरि निरूपित समस्त साधना-विधियाँ साधक के प्रति भगवती कामाख्या के प्रेम में वृद्धि करने वाली हैं ।

योनिपूजा देव्यै महाप्रीतिकरी

महाप्रीतिकरी पूजा योनिचक्रे कुलेश्वरि ! ॥67॥
योनिपूजा महापूजा तत्समा नहि सिद्धिदा ।

हे कुलेश्वरि ! यद्यपि पूर्वोक्त पूजा से कामाख्या प्रसन्न होती हैं, लेकिन योनिचक्र में भगवती का पूजन तो उन्हें अति प्रसन्न करने वाला है । योनि की पूजा, पूजा नहीं, महापूजा है । योनिपूजा के समान सिद्धिदायिनी अन्य कोई भी पूजा नहीं है ।

योनिपूजाविधिनिरूपणम्

तत्र देवीं यजेद्धीमान् सैव देवी न चाऽन्यथा ॥68॥
आवाहनादि कर्माणि न तत्र सर्वथा प्रिये ।

साधक को चाहिये कि वह योनि में ही भगवती कामाख्या की पूजा करे, क्योंकि योनि ही साक्षात् कामाख्या है, अन्य नहीं ।

लेपयेत् तां सुगन्धाद्यैः पूजयेद् विविधेन च ॥69॥
महाप्रीतिर्भवेद् देव्याः सिद्धो भवति तत्क्षणात् ।

साधक को चाहिये कि वह पूजन के समय योनि पर विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का लेपन करके विविध प्रकार से उसकी पूजा करे । इससे भगवती अत्यन्त प्रसन्न होती हैं और साधक क्षणभर में सिद्ध हो जाता है ।

योनिपूजाफलम्

योनिपूजासमा पूजा नास्ति ज्ञाने तु मामके ॥70॥
चुम्बनाल्लेहनाद्योनौ कल्पवृक्षमतिक्रमेत् ।
दर्शनात्साधकाधीशः स्पर्शनात्सर्वमोहनः ॥71॥

हे देवि ! मेरी जानकारी में योनिपूजा के समान अन्य कोई पूजा नहीं है । योनि का चुम्बन और लेहन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह कल्पवृक्ष द्वारा प्राप्त फल से भी अधिक आनन्दप्रद होता है । योनि के दर्शनमात्र से साधक साधकों का स्वामी बन जाता है तथा योनि का स्पर्श सबको मोहित कर लेता है ।

लिङ्गयोन्याख्यानं कामाख्याप्रीतिकरम्

लिङ्गयोनिसमाख्यानं कामाख्याप्रीतिवर्धनम् ।
तदेव जीवनं तस्या गिरिजे ! बहु किं वचः ॥72॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन योनिपूजां समाचरेत् ।

लिंग और योनि के संयोग की चर्चा भगवती कामाख्या को अति पसन्द है । लिंग-योनि समागम और इसकी चर्चा ही कामाख्या का जीवन है । इसलिये हर प्रकार के उपाय करके योनिपूजा सम्पन्न करनी चाहिये ।

परस्त्रीयोनौ देव्या अर्चनम्

परस्त्रीयोनिमासाद्य विशेषेण यजेत्सुधीः ॥73॥
वेश्यायोनिः परा देवि ! साधनं तत्र कारयेत् ।
त्रिरात्रादेव सिद्ध्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥74॥

यदि सौभाग्य से परस्त्री की योनि उपलब्ध हो जाय तो, उसकी विशेषरूप से पूजा करनी चाहिये । हे देवि ! वेश्या की योनि पूजा के लिये सर्वश्रेष्ठ योनि मानी जाती है । वेश्या की योनि उपलब्ध होने पर उसी की योनि की साधना करनी चाहिये और अपने साधन अर्थात् लिंग को उसी में स्थापित करना चाहिये । इस साधना से तीन दिन के भीतर ही साधकों को सिद्धि मिल जाती है, इसमें तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं ।

ऋतुमतीलतायोनौ देव्या अर्चनम्

ऋतुयुक्तं लतामध्ये साधयेद् विधिवन्मुदा ।
अचिरात् सिद्धिमाप्नोति देवानामपि दुर्लभाम् ॥75॥
सारात्सारतमं देवि ! योनिसाधनमीरितम् ।
विना तत्साधनं देवि ! महाशापः प्रजायते ॥76॥

हे देवि ! यदि सौभाग्य से ऋतुमती साधिका मिल जाय तो उसी की योनि की ही साधना करनी चाहिये । ऋतुमती योनि की साधना करने से देवों के लिये भी दुर्लभ सिद्धि अतिशीघ्र ही प्राप्त हो जाती है । योनिसाधना के बिना भगवती कामाख्या की साधना से महाशाप की प्राप्ति होती है ।

योनिनिन्दको नरके पतति

योनिनिन्दां घृणां देवि ! यः करोति नराधमः ।
अचिराद् रौरवं याति देवि ! सत्यं शिवाज्ञया ॥77॥

हे भगवति ! जो नराधम योनि की निन्दा करता है, वह शीघ्र ही शिव के आदेश से रौरव नामक नरक में जाता है ।

योनौ देवतानामावासः

योनिमध्ये वसेद् देवि ! योगिन्याश्चिकुरे स्थिताः ।
तस्मान्न निन्दयेद् योनिं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
त्रिकोणेषु त्रयो देवाः शिवविष्णुपितामहाः* ॥78॥

हे पार्वति ! भगवती कामाख्या स्वयं योनि के बीच विराजती हैं और उनकी योगिनियाँ योनि की केशराशि में निवास करती हैं । त्रिकोणात्मिका योनि के तीनों कोणों में क्रमशः ब्रह्मा,

---

* क्वचिन्मुद्रितपुस्तके इत्यधिकः पाठः दृश्यते ।

विष्णु और महेश्वर निवास करते हैं। त्रिकोणेषु त्रयो देवाः शिवाविष्णुपितामा इसलिये अपना भला चाहने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह योनि की कभी भी निन्दा न करे।

योनिनिन्दां प्रकुर्वाणः सवंशेन विनश्यति।
योनिस्तुतिपरो देवि ! शिवः स्यात् तत्क्षणेन च ॥79॥

हे भगवति ! जो व्यक्ति योनि की निन्दा करता है वह कुलसहित विनष्ट हो जाता है और योनि की प्रशंसा करने वाला क्षणभर में शिवस्वरूप हो जाता है।

योनिमाहात्म्यस्याऽवर्णनीयत्वम्

किं ब्रूमो योनिमाहात्म्यं योनिपूजाफलानि च।
चाञ्चल्याद् गदितं किञ्चिद् क्षन्तव्यं कामरूपिणि ! ॥80॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे द्वितीयःपटलः समाप्तः।



हे कामरूपिणि ! योनि के माहात्म्य और योनिपूजा के फलों का वर्णन करना सम्भव नहीं। कहाँ तक करूँ इनका वर्णन ? मैंने अपनी चंचलता के वश योनि की पूजा और इसके फल का किंचित् संकेत भर किया है। जो कमी रह गयी है, उसके लिये आप हमें क्षमा करें।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का द्वितीय पटल समाप्त।



अथ तृतीयः पटलः

कामाख्यामन्त्रमाहात्म्यम्

श्रीशिव उवाच

वरमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु पार्वति ! ।
यस्य प्रसादमात्रेण ब्रह्मविष्णुशिवा अपि ॥1॥
इन्द्राद्यादेवता सर्वा भवन्ति कामनायुताः ।

श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! ध्यान से सुनो । मैं तुम्हें भगवती कामाख्या का एक ऐसा महान् मन्त्र बता रहा हूँ, जिसके सिद्ध हो जाने से ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादि देवता भी अपनी कामनाओं की पूर्ति में सक्षम होते हैं ।

गन्धर्वाः किन्नरा देवि ! तथा विद्याधरादयः ॥2॥
यत्प्रसादं समासाद्य स्वकीयविषयान्विताः ।

हे देवि ! उस मन्त्र के सिद्ध होने से गन्धर्व, किन्नर तथा विद्याधरादि देवजातियाँ भी अपने-अपने कार्यों और उन कार्यों का फल प्राप्त करने में सफल होते हैं ।

योगिनाडाकिनी-विद्या-भैरवीना-यिकादिकाः ॥3॥
कामाख्यामन्त्रमासाद्य भजन्ति योग्यतां पराम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सिद्धयन्ति साधकाः ॥4॥

हे देवि ! कामाख्या के उस मन्त्र को प्राप्त कर उसकी साधना करके ही डाकिनियाँ, विद्याधरियाँ, भैरवियाँ तथा नायिकाएँ अपने कार्य-सम्पादन की योग्यताएँ प्राप्त करती हैं । स्वर्गलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक के साधक भी उसी कामाख्यामन्त्र के प्रभाव से सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं ।

कामाख्यामन्त्रोद्धारः

निजबीजत्रयं देवि ! क्रोधद्वयमतः परम् ।
बधूबीजद्वयं चैव कामाख्या च पुनर्वदेत् ॥5॥
प्रसीदेति पदं चैव पूर्वबीजानि कल्पयेत् ।
ठद्वयान्ते मनुः प्रोक्तः सर्वतन्त्रेषु दुर्लभः* ॥6॥

---

* मूलपुस्तके उल्लिखितः निम्नांकितः मन्त्रः अनुसन्धेयः—
'क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद
क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा' ।
अत्र मूले 'क्रीं क्रीं क्रीं' इति चिन्त्यम् ।

हे पार्वति ! कामाख्या के मन्त्र का उद्घाटन तीन बार कामाख्या का सकार युक्त स्वबीज 'त्रीँ', दो बार क्रोधबीज 'हुँ', दो बार ही बधू बीज 'स्त्रीँ' प्रयुक्त करके 'कामाख्ये प्रसीद' पद और इसके बाद पूर्वोक्त सात बीज तथा अन्त में ठद्वय अर्थात् 'स्वाहा' पद रख 'स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं-स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा' के रूप में करना चाहिये ।

प्रणवाद्याकामाख्याविद्याया माहात्म्यम्

प्रणवाद्या महादेवि ! त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा ।
चतुर्वर्गप्रदा साक्षान्महापातकनाशिनी ॥7॥

हे महादेवि ! आरम्भ में प्रणवाक्षर 'ओँ' (या ह्रीँ *) वाली 'ओँ स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा' स्वरूपा कामाख्या महाविद्या (मन्त्र) त्रिलोकी में दुर्लभ है ।

स्मरणादेव मन्त्रस्य सर्वे विघ्ना समाकुलाः ।
नश्यन्ति दहने दीप्ते पतङ्गा इव पार्वति ! ॥8॥

प्रणवाद्या कामाख्या महाविद्या—ओँ स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये प्रसीद स्त्रीँ स्त्रीँ स्त्रीँ हुं हुं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा'—का स्मरण करते ही साधना के सभी विघ्न उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रज्ज्वलित अग्निशिखा में पतंग नष्ट हो जाते हैं ।

मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
भुक्तिर्मुक्तिः करे तस्य सर्वेषां प्रियतां व्रजेत् ॥9॥

किसी देशिक गुरु से कामाख्या मन्त्र प्राप्त कर उसकी साधना से साधक जीवनमुक्त होकर भोग-मोक्ष दोनों प्राप्त कर लोगों में भी प्रियता प्राप्त करता है ।

आवृणोति स्वयं लक्ष्मीर्वदने गीः सदा वसेत् ।
पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च भवन्ति चिरजीविनः ॥10॥

कामाख्या मन्त्र की साधना करने वाले साधक का लक्ष्मी स्वयं वरण करती हैं तथा सरस्वती सर्वदा उसकी जिह्वा पर विराजती हैं ।

पृथिव्यां सर्वपीठेषु कामाख्यादिषु शङ्करि ।
लिपिश्चलति तस्यैव नात्र कार्या विचारणा ॥11॥

हे शाम्भवि ! पृथ्वी पर कामाख्यादि जितने शक्तिपीठ हैं, उन सबमें प्रणवाद्य कामाख्या मन्त्र के साधक की बात ही मान्य की जाती है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं ।

तस्य नाम च संस्मृत्य प्रणमन्ति सभाजनाः ।
नाम श्रुत्वा वारमेकं पलायन्ते च हिंसकाः ॥12॥

---

* ह्रीँ इति शक्तिप्रणवः ।

बड़ी-बड़ी विद्वत्परिषदों में भी ऐसे साधक का नाम स्मरण करके विद्वत्सभाजन उसे प्रणाम करते हैं । ऐसे कामाख्या साधक का नाम एक बार भी सुन लेने से हिंसक प्राणी भयभीत हो भाग खड़े होते हैं ।

यावन्त्यः सिद्धयः सन्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
साधकानां परिचर्यां कुर्वन्ति नात्र संशयः ॥13॥

स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में जो भी सिद्धियाँ हैं, वे सभी कामाख्या के साधक की सेवा में सदा सन्नद्ध रहती हैं ।

तं दृष्ट्वा साधकेन्द्रं च वादी स्खलति दर्शनात् ।
सभायां कोटिसूर्याभं पश्यन्ति सर्वसज्जनाः ॥14॥

हे भवानि ! बड़ी-बड़ी विद्वत्सभाओं की शास्त्र-परिचर्चा में कामाख्या के साधक का प्रतिवादी अपने पक्ष से स्खलित हो पराजित हो जाता है । और कामाख्या का साधक वहाँ उपस्थित सज्जन-सभासदों को करोड़ों सूर्य की आभा से मण्डित दिखायी देता है ।

जिह्वाकोटिसहस्त्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
वर्णितं नैव शक्नोमि मन्त्रमेतन्महेश्वरि ॥15॥

हे महेश्वरि । करोड़ों हजार जिह्वाओं और सैकड़ों मुखों से भी भगवती कामाख्या के उक्त मन्त्र की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

मन्त्रस्य पुरश्चर्यानियमः

न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्वमुक्तं वरानने ! ।
पुरश्चर्याविधौ किन्तु षाट्सहस्त्रं मनुं जपेत् ॥16॥
यथाविधि षाट्शतानि होमादींश्च समाचरेत् ।
सिद्धो भवति मन्त्रज्ञः प्रयोगेषु ततः क्षमः ॥17॥

हे सुन्दरि ! कामाख्या मन्त्र के न्यास तथा आवरण-पूजा आदि के विषय में मैं पहले ही बता चुका हूँ । किन्तु, मन्त्र के पुरश्चरण में मन्त्र का छह हजार जप तथा छह सौ हवन करना चाहिये ।

कामाख्याध्यानं तत्फलानि च

ध्यानं श्रृणु महादेव्या धनधान्यसुतप्रदम् ।
दारिद्र्यहननं देवि ! क्षणेनैव न चान्यथा ॥18॥

हे भवानि ! अब महाशक्ति कामाख्या के उस स्वरूप का वर्णन सुनो, जिसका ध्यान करने से साधक को धन-धान्य, सुत-वित्त की प्राप्ति तथा दरिद्रता का क्षणभर में ही विनाश हो जाता है ।

अतिसुललितवेशां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां
जितजलदसकान्तिं पट्टवस्त्रप्रकाशाम् ।
अभयवरकराढ्यां रत्नभूषादिभव्याम्
सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम् ॥19॥

अति सुन्दर वेष-भूषा से सुशोभित, ओष्ठों पर मधुर मुसकान वाली, नवीन मेघकान्ति के समान आभा वाली, कौशेयवस्त्रधारिणी, हाथों में अभय और वरद मुद्राधारिणी, महार्घ रत्नजडित अलंकारों से सुशोभित, कल्पवृक्ष के नीचे रत्ननिर्मित सिंहासन पर विराजमान भवानी कामाख्या को मैं नमन करता हूँ ।

हरिहरविधिवन्द्यां बुद्धिवृद्धिस्वरूपां
मदनशरसमाक्तां कामिनीं कामदात्रीम् ।
निखिलजनविलासोल्लासरूपां भवानीं
कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ॥20॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की वन्दनीय, बुद्धि और वृद्धिस्वरूपिणी, आकर्षण-मोहनादि काम के बाणों से युक्त कामिनीस्वरूपा, कामनाओं को प्रदान करने वाली, समस्त प्राणियों में विलास और उल्लास के रूप में स्थित, कलियुग के पापों का विनाश करने वाली योनिस्वरूपा, शिवपत्नी कामाख्या को मैं नमस्कार करता हूँ ।

गुह्याद् गुह्यतरं देवि ! ध्यानं दारिद्र्यनाशनम् ।
गोपितं सर्वतन्त्रेषु तव भावात्प्रकाशितम् ॥21॥

हे शांकरि ! भगवती कामाख्या के जिस स्वरूप का वर्णन मैंने तुम्हारे समक्ष किया है, वह रहस्यमय से भी रहस्यमय है । इसे सभी तन्त्रों में गुप्त ही रखा गया है । मैंने तुम्हारे अनुरोध और आग्रह पर ही इस स्वरूप का निर्वचन किया है ।

कुलशक्तिसाधनविधिः

***स्वयम्भूकुसुमेनैव तिलकं परिकल्प्य च ।**
तूलिकायां महादेवि ! कुलशक्तिं समाविशेत् ॥22॥

हे महादेवि ! योनिसाधन के लिये साधक को चाहिये कि वह सर्वप्रथम हर (लिंग) सम्पर्करहित कन्या के प्रथम रजस् का तिलक लगाकर कुलशक्ति को शय्या पर आसीन करे ।

कर्पूरितमुखः स्वादु साधकश्चुम्बयेन्मुदा ।
तस्याऽधरो यथा भृङ्गो नीरजं व्याकुलः प्रिये ॥23॥

---

* हरसम्पर्कहीनाया कन्यायाः काममन्दिरे ।
जातं कुसुममादाय महादेव्यै निवेदयेत् ॥ (प्रथममुण्डमानातन्त्रे, 2:9)

हे प्रिये ! योनि-साधन के समय साधक को चाहिये कि वह कर्पूर आदि से युक्त ताम्बूल चबाकर, सुगन्धित मुख से लता के मधुर अधरों का उसी प्रकार चुम्बन करे, जैसे व्याकुल भ्रमर कमल-कोष का चुम्बन करता है ।

दन्तक्षतवितानां च परमं तत्र कारयेत् ।
आलिङ्गयेन्मदोन्मत्तः सुदृढं कुचमर्दनम् ॥24॥

साधना के समय साधक को चाहिये कि वह योगिनी के मुखादि अंगों को अपने दाँतों से काट दन्तक्षत बनाये, मदमत्त हो उसका आलिंगन करे तथा दृढतापूर्वक उसके उरोजों का मर्दन करे ।

नखाघातैर्नितम्बे च रमयेद् रतिपण्डितः ।
पुनः पुनश्चुम्बनं च योनौ कुर्यात् कुलेश्वरि ! ॥25॥

हे देवि ! रतिविशारद योनि-साधक को चाहिये कि वह नायिका के नितम्बों पर नखाघातादि करके उसे आनन्दित करे तथा बार-बार उसकी योनि का चुम्बन करे ।

शुक्रं तु स्तम्भयेद् वीरो योनौ लिङ्गं प्रवेशयेत् ।
आघातैस्तोषयेत् तां तु सन्धानभेदतः प्रिये ! ॥26॥

उसे चाहिये कि रमण की इस आरम्भिक क्रिया में अपने शुक्र को स्खलित न होने दे और उसकी योनि में अपना लिंग प्रविष्ट कर सन्धानभेद से लिंगाघातों से उसे सन्तुष्टि करे ।

ततो लिङ्गं स्थिते योनावाज्ञां तस्याः प्रगृह्य च ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जपेद्धोमादिकाङ्क्षया ॥27॥

नायिका की योनि में लिंग प्रविष्ट करने के बाद उसकी अनुमति से हवन अर्थात् शुक्रोत्सारण की कामना से उस सन्नद्धावस्था में ही 108 बार कामाख्या मन्त्र का जप करे ।

दिनत्रयं महाधीरः प्रजपेद् ध्यानतत्परः ।
प्राप्यते मानसं वस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥28॥

हे महादेवि ! इस साधना के साधक को असीम धैर्य और संयम की आवश्यकता होती है । स्वल्प असंयम या असावधानी से हानि होती है । साधना के समय तीन दिनों तक निरन्तर भगवती कामाख्या का ध्यान तथा जप करते रहना चाहिये । ऐसा करने पर ही साधक को वांछित फल की प्राप्ति होती है ।

ऋतुयुक्तलतासाधनम्

ऋतुयुक्तलतां देवि ! निवेश्य तूलकोपरि ।
करवीरप्रसूनं च तस्याः लिङ्गोपरि न्यसेत् ॥29॥

हे देवि ! ऋतुमती लता को शय्या पर लिटाकर उसकी योनि पर करवीर का पुष्प रखना चाहिये ।

तद्वीक्ष्य देवदेवेशि ! जपेदष्टसहस्त्रकम् ।
दिनत्रयं ततो देव्याः प्रीतिः स्यादचला प्रिये ! ॥30॥

लता की योनि पर अर्पित करवीर के पुष्प को देखते हुए तीन दिनों तक कामाख्या मन्त्र का 8 हजार जप करना चाहिये । इस साधना से साधक के प्रति भगवती कामाख्या की स्थिर प्रीति होती है ।

धनं विन्दन्ति तस्यैव लक्षसङ्ख्यं न संशयः ।
आनन्दं वर्द्धयेन्नित्यं साधस्य महात्मनः ॥31॥

भगवती कामाख्या की प्रसन्नता से साधक को लाखों की संख्या में धन की प्राप्ति होती है । उस धन का उपभोग साधक के आनन्द में सर्वदा वृद्धि करता है ।

चुम्बनपूर्वकं योनिसाधनम्

अष्टोत्तरशतं योनिं संचुम्ब्य पूज्य सज्जनः ।
पुनः लिङ्गे स्थिते योनौ जपेच्चाऽष्टसहस्त्रकम् ॥32॥
काङ्क्षापञ्चगुणं वित्तं प्राप्यते सर्वदा सुखी ।
नित्यं तस्य महेशानि ! नायिकासङ्गमो भवेत् ॥33॥

हे शाम्भवि ! सहृदय साधक को चाहिये कि वह 108 बार लता की योनि का चुम्बन करके उसकी योनि में अपना लिंग स्थापित कर कामाख्या मन्त्र का आठ हजार जप करे । इससे साधक को उसकी अभिलाषा से पाँच गुना अधिक धन और प्रतिदिन वांछित नायिका के साथ संगम करने का सौभाग्य प्राप्त होता है ।

वेश्यालतासाधनम्

वेश्यालतां समानीय कुलचक्रं विधाय च ।
तस्या योनौ यजेद् देवीं हृष्टचित्तेन साधकः ॥34॥

हे देवि ! योनिसाधना के लिये लता के रूप में वेश्या नायिका सर्वोत्तम होती है । साधक को चाहिये कि वह कुलचक्र का निर्माण करके वहाँ हर्षपूर्वक वेश्यालता की योनि में समस्त साधना करे ।

भगलिङ्गसमाख्यानं सुस्वरेण समुच्चरेत् ।
योनिं वीक्ष्य जपेन्मन्त्रं सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥35॥

साधना के समय साधक को चाहिये कि वह मधुर स्वर से भग-लिंग समाख्यान करता रहे । लता की योनि को देखते हुए मन्त्र का 7 रातों तक निरन्तर जप करे ।

योनिसाधनस्य फलानि

प्रत्यहं त्रिशतं कृत्वा सोऽपि सिद्धीश्वरः कलौ ।
आज्ञां गृह्णाति धनदस्तस्य देवि ! न संशयः ॥36॥

हे देवि ! कलियुग में इस साधना में प्रतिदिन कामाख्या मन्त्र का तीन सौ जप करना चाहिये । ऐसा करने से साधक सिद्धियों का स्वामी बन जाता है । योनिसाधना में सिद्ध ऐसे साधक को धन की कमी नहीं रहती । धनादि को उपलब्ध कराने के लिये धनपति कुबेर सर्वदा उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में रहता है ।

सद्गुरोः स्मरणं कृत्वा योनेश्च साधनं यदि ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्यमेव हि ॥37॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे तृतीयः पटलः समाप्तः ।



हे पार्वति ! योनि की यह साधना श्रीसद्गुरु की अनुमति और निर्देशन में ही करनी चाहिये । ऐसा करने पर ही साधक को सिद्धि प्राप्त होती है । सद्गुरु की आज्ञा और निर्देशन के बिना यह साधना और साधक दोनों उपहास बन कर रह जाते हैं ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का तृतीय पटल समाप्त ।



अथ चतुर्थः पटलः

गुरुतत्त्वं प्रति पार्वत्या जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

गुरुतत्त्वं महादेव ! विशेषेण वद प्रभो ! ।
दुर्वहा गुरुता या तु सम्भवेन्मानुषे कथम् ॥1॥

किसी समय देवी पार्वती ने भगवान् शंकर से पूछा कि हे प्रभो ! शास्त्रादि में कहा गया है कि विद्या सद्गुरु से ही प्राप्त करनी चाहिये । आप हमें 'गुरुतत्त्व' के बारे में बताइये । गुरुत्व प्राप्त करना और उसे बनाये रखना बहुत कठिन है । ऐसी स्थिति में क्या किसी मानव में गुरुता हो सकती है ? क्या कोई मानव गुरु हो सकता है ?

तत्रैव सद्गुरुः को वा भ्रष्टः को वा वद प्रभो ! ।
दूरीकुरु महादेव ! संशयं मे महोत्कटम् ॥2॥

आप बताइये कि यदि कोई मानव 'गुरुपद' प्राप्त भी कर ले, तो वह सद्गुरु है, अथवा ठग ? इसकी पहचान क्या है ? हे स्वामिन् ! मुझे इस विषय में बहुत बड़ी उलझन है । कृपया आप इसे दूर कीजिये ।

श्रीशिवेन गुरुत्वनिर्वचनम्

इति देव्या वचः श्रुत्वा प्रोवाच शङ्करः प्रभुः ।
शृणु सारतरं ज्ञानं साधूनां हितकारणम् ॥3॥

भगवती पार्वती के इन प्रश्नों को सुनकर परमेश शिव ने उनसे कहा कि हे देवि ! सद्गुरु के निर्धारण के लिये जो निकष हैं, सद्गुरु की जो पहचान है, उनकी जो विशेषताएँ हैं, उनके बारे में मैं तुम्हें बताता हूँ, ध्यान से सुनो ।

सदाशिव एव सद्गुरुः

गुरुः सदाशिवः प्रोक्तः आदिनाथः स उच्यते ।
महाकाल्या युतो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥4॥

हे देवि ! सबसे पहली बात तो यह है कि 'गुरु' तो भगवान् सदाशिव ही हैं, जिन्हें साधक 'आदिनाथ' कहते हैं । सदा महाकाली से युक्त सद्गुरु आदिनाथ सर्वव्यापी और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं ।

सदातनः परं ब्रह्म श्रीधर्मस्त्रिगुणः प्रभुः ।
त्वत्प्रसादान्महादेवि ! शिवोऽहमजरामरः ॥5॥

सदाशिवरूप परम गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं, वह समस्त जगत् को संचालित करने वाले सद्धर्मरूप सत्त्वादि त्रिगुणमय और अति 'व्योवद्व्याप्तदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः' प्रभावशाली हैं । हे पार्वति ! तुम्हारी कृपा से अजर और अमर मैं ही शिवस्वरूप में जगत् का गुरु हूँ।

मनुजे गुरुत्वनिषेधः

अत एव गुरुर्नैव मनुजः किन्तु कल्पना ।
दीक्षायै साधकानां च वृक्षादौ पूजनं यथा ॥6॥

हे भवानि ! सच तो यह है कि कोई मानव गुरु नहीं हो सकता । उसमें गुरुत्व केवल एक कल्पना है, वास्तविकता नहीं । जिस प्रकार बाह्यपूजा के लिये वृक्षादि में देवत्व की कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है, उसी प्रकार साधकों को दीक्षा देने के लिये मानव में गुरुत्व की भावना की जाती है । मानव में गुरुता केवल प्रतीक है, वास्तविकता नहीं ।

मानवगुरोः माध्यमत्वप्रतिपादनम्

मन्त्रदातुः शिरःपद्मे यद् ज्ञानं कुरुते गुरोः ।
तद् ज्ञानं शिष्यशिरसि चोपदिष्टं न चाऽन्यथा ॥7॥

हे पार्वति ! होता यह है कि शिष्य को दीक्षित करने वाले मानव गुरु की बुद्धिरूपी गुहा में परम गुरु शिव जिस ज्ञान का आधान करते हैं, वह अपने शिष्य के भीतर उसी ज्ञान का आधान करता है । मानव गुरु केवल ज्ञानसंक्रमण का एक माध्यम है, इससे अधिक कुछ नहीं ।

मानुषे गुरुता कल्पनैव

अत एव महेशानि ! कुतो हि मानवो गुरुः ? ।
मानुषे गुरुता देवि ! कल्पना न तु तथ्यता ॥8॥

इसलिये हे देवि ! मानव में गुरुत्व कैसे हो सकता है ? वास्तव में मानव में गुरुता केवल कल्पना है, तथ्य नहीं ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥9॥
प्रसिद्धमिति यद् देवि ! तत्पदं दर्शको नरः ।
अत एव नरे देवि ! गुरुता कल्पनैव हि ॥10॥

हे देवि ! एक प्रसिद्ध कथन है, वह यह कि 'तत्त्वमसि' आदि श्रुतिवाक्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त, निराकार जो प्रभु है, उसका साक्षात्कार जिसने कराया,

उस सद्‌गुरु को नमन है । तो क्या कोई मनुष्य 'तत्' पद से वाच्य उस 'तत्त्व' का दर्शन करा सकता है ? नहीं न । तो फिर, कोई मानव गुरु कैसे हो सकता है ? इसलिये हे देवि ! मानव में गुरुत्व कल्पनामात्र है, वास्तविकता नहीं ।

स्वस्मिन् गुरुत्वशिष्यत्वभावना मूर्खतैव

न तु गुरुः स्वयं न च मूर्खता चोभयोरपि ।
अयं गुरुरितिज्ञानं शिष्योऽयं खलु मे यदा ॥11॥
दर्शकः पठनस्यैव न स्वयं मानुषो गुरुः ।
मोक्षो न जायते सत्यं मानुषे गुरुभावनात् ॥12॥

हे देवि ! शिष्य द्वारा किसी मानव को गुरु मानना अथवा किसी मानव द्वारा स्वयं को किसी का गुरु माना जाना, कथित गुरु और शिष्य दोनों की मूर्खता है । ऐसे कथित गुरु और शिष्य दोनों की स्थिति, वास्तव में पथ-प्रदर्शक और पथानुगामी की ही है । ऐसा गुरु न तो स्वयं गन्तव्य है और न ही ऐसा शिष्य स्वयं पथिक है । सद्‌गुरु तो साधन और साध्य, दर्शन और दृष्य दोनों से परे है । इसलिये किसी मानव को गुरु मानने से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं ।

अयोग्यगुरोस्त्यागे औचित्यम्

यथा भोक्तरि भोज्यं हि स्वर्णादिपात्रकेण च ।
दीयते तत् तथा देवि ! तस्मै सर्वं समर्पणम् ॥13॥

हे देवि ! जिस प्रकार किसी सत्पात्र भोजनकांक्षी को ही स्वर्णादि से निर्मित थाली में भोजन समर्पित किया जाता है, उसी प्रकार योग्य शिष्य को गुरु अपनी साधना का सर्वस्व समर्पित करता है ।

यदि चिन्त्यं च तत्पात्रं भग्नं वापि महेश्वरि !
तदा त्यजेत् तु तत्पात्रमन्यपात्रेण तोषयेत् ॥14॥

जैसे किसी सत्पात्र को भोज्य (ज्ञान) समर्पित करने के माध्यम पात्र (गुरु) में यदि कोई कमी है, वह अशुद्ध है, अपवित्र है अथवा टूटा-फूटा है, तो पात्र बदल कर दूसरे निर्मल पात्र में भोजन दिया जाता है ।

अतो हि मनुजं लुब्धं दुष्टं शिष्योऽपि सन्त्यजेत् ।
असम्मतस्तु लोकैर्यस्तत्र रुष्टः सदाशिवः ॥15॥

इसी प्रकार परमेश्वररूपी गुरु को अपना सर्वस्व 'अहम्' समर्पित करने के माध्यम पात्र मानव गुरु में यदि कोई कमी है, वह लोभी है, दुष्ट है, तो शिष्य को चाहिये कि वह उसका परित्याग कर दे । जिस गुरु से लोक या समाज असन्तुष्ट है, उस पर परमगुरु सदाशिव

रुष्ट ही रहते हैं, वह साधक को परात्पर गुरु तक पहुँचाने का माध्यम हो नहीं सकता । मानव गुरु तो शिष्य तक परमगुरु शिव के ज्ञान का संवाहक या माध्यम मात्र है ।

गुरोर्गुर्वन्तरगमनस्यौचित्यम्

राजस्वं दीयते राज्ञे प्रजाभिर्मण्डलादिभिः ।
यथा तथैव तस्मै तु शिष्यदानं समर्पणम् ॥16॥
अत्रैव ग्राहका हिंस्रा मण्डलाद्याः स्मृता यदि ।
अन्यद्वारेण दातव्यं तांस्तान् सन्त्यज्य सर्वदा ॥17॥

हे देवि ! किसी देश की प्रजा उस देश के शासक को दिया जाने वाला राजस्व उसके द्वारा नियुक्त उस देश के मण्डल, खण्ड-प्रखण्ड आदि के अधिकारियों के माध्यम से समर्पित करती है, उसी प्रकार मानव गुरु के माध्यम से शिष्य द्वारा अपने सर्वस्व का समर्पण भी परमगुरु को किया जाता है । किन्तु, यदि प्रजा द्वारा समर्पित राजस्व को राजा तक पहुँचाने वाले मण्डलाधिकारी आदि भ्रष्ट हैं, ठग हैं, हिंसक हैं और राजस्व राजा तक नहीं पहुँचाते, तब प्रजा को चाहिये कि वह अपना देय राजस्व किसी और माध्यम से राजा तक पहुँचाये । इसी प्रकार यदि गुरु अक्षम और अयोग्य है, तो साधक को चाहिये कि वह परमगुरु को अपने 'स्व' अर्थात् 'अहं' का समर्पण किसी अन्य गुरु के माध्यम से करे ।

सर्वेषां भुवने सत्यं ज्ञानाय गुरुसेवनम् ।
ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम् ॥18॥
अतो यो ज्ञानदाने हि न क्षमस्तं त्यजेद् गुरुम् ।
अन्नाकाङ्क्षी निरन्नं च यथा सन्त्यजति प्रिये ! ॥19॥

हे प्रिये ! यह शाश्वत और सर्वकालीन सत्य है कि गुरु की आवश्यकता ज्ञान के लिये होती है । क्योंकि, मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है और 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान के बिना हो नहीं सकती, इसलिये ज्ञान सर्वोच्च है । इसलिये जो गुरु शिष्य को मोक्षप्रदायक ज्ञान देने में असमर्थ है, उसे उसी प्रकार त्याग देना चाहिये जैसे अन्न चाहने वाला व्यक्ति उस व्यक्ति का त्याग कर देता है, जिसके पास अन्न नहीं होता ।

ज्ञानाश्रयं यदा भाति स गुरुः शिव एव हि ।
अज्ञानिनं वर्जयित्वा शरणं ज्ञानिनो व्रजेत् ॥20॥

हे प्रियतमे ! जब साधक को यह बोध हो जाता है कि ज्ञान का आश्रय तो सद्‌गुरु शिव ही है, तब वह अज्ञानी गुरु को छोड़ ज्ञानी गुरु की शरण में जाता है ।

ज्ञानाद्धर्मो भवेन्नित्यं ज्ञानादर्थो हि पार्वति ! ।
ज्ञानात्काममवाप्नोति ज्ञानान्मोक्षो हि निर्मलः ॥21॥

ज्ञान से ही व्यक्ति धर्माचरण कर सकता है और ज्ञान से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। ज्ञान से ही वह अपनी कामनाओं की पूर्ति कर सकता है और ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार मानव-जीवन के महान् लक्ष्य चतुर्वर्ग की प्राप्ति केवल ज्ञान से ही होती है।

ज्ञानं हि परमं वस्तु ज्ञानात्सारतरं न हि।
ज्ञानाय भजते देवं ज्ञानं हि तपसः फलम् ॥22॥

हे पार्वति ! ज्ञान सर्वोच्च है। ज्ञान से बढ़कर कुछ नहीं। साधक ज्ञान के लिये ही किसी देवता की उपासना करता है और उसकी तपस्या का फल भी ज्ञान ही है।

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥23॥

मधुलोभी भ्रमर जिस प्रकार मधु की प्राप्ति के लिये एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाता है, उसी प्रकार ज्ञानेच्छु साधक को चाहिये कि पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिये वह एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाय।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभः सद्गुरुर्देवि ! शिष्यसन्तापहारकः ॥24॥

हे देवि ! संसार में शिष्य का धन हरण करने वाले गुरु बहुत हैं, लेकिन, शिष्य का सन्ताप दूर करने वाला एक गुरु भी दुर्लभ है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥25॥
इति मत्वा साधकेन्द्रो गुरुतां कल्पयेत् सदा।
ज्ञानिन्येव शिष्यभक्ताः केवलं कल्पना शिवे ! ॥26॥

कहा गया है कि 'ज्ञानांजनरूपी शलाका से शिष्य के बुद्धिरूपी नेत्र में व्याप्त अज्ञानरूपी घने अन्धकार को दूर कर जिसने ज्ञानरूपी नेत्रों को खोल दिया, उस गुरु को नमस्कार है।' हे देवि ! यह कथन गुरु की पहचान के लिये एक 'निकष' है। शिष्य को चाहिये कि वह इस कथन की कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यक्ति में ही गुरुत्व की भावना करे, अपना गुरु बनाये। हे शिवे ! यह मानना भूल होगी कि जिसके पास अधिक शिष्य हैं, वह ज्ञानी ही होगा। सच तो यह है कि ज्ञानियों की अपेक्षा अज्ञानियों के पास अधिक शिष्य होते हैं।

सद्गुरुलक्षणम्

शान्तोदान्तः कुलीनश्च शुद्धान्तःकरणः सदा।
पञ्चतत्त्वार्चको यस्तु सद्गुरुः स प्रकीर्तितः ॥27॥

हे पार्वति ! जो स्वभाव से शान्त है, उदार है, कुलीन है, जिसका अन्तःकरण विकार

के कारणों अर्थात् विषयों की उपस्थिति में भी सर्वदा निर्मल रहता है और जो भगवती पराशक्ति की अर्चना पंचतत्त्वों से करता है, वही सद्गुरु है ।

सिद्धाऽसाविति चेत्ख्यातो बहुभिः शिष्यपालकः ।
चमत्कारी दैवशक्त्या सद्गुरुः कथितः प्रिये ! ॥28॥

हे प्रिये ! जो लोगों में 'सिद्ध' के रूप में प्रसिद्ध है, जिसके चमत्कार भगवती की कृपाजन्य स्वाभाविक हैं, छल-छिद्र और प्रवंचनाजन्य नहीं हैं, जो सर्वदा अपने शिष्यों के हित में रत रहता है, उसे ही सद्गुरु कहा गया है ।

अश्रुतं सम्मतं वाक्यं वक्ति साधु मनोहरम् ।
तन्त्रं मन्त्रं समं वक्ति स एव सद्गुरुश्च सः ॥29॥

जो व्यक्ति जनसामान्य द्वारा अब तक न कही-सुनी गयी स्वानुभूत, सर्वहितैषिणी आर प्रिय वाणी बोलता है, तन्त्र और मन्त्र के रहस्यों को समान रूप से समझता है, उन्हें समान मानता है, वही सद्गुरु है ।

सदा यः शिष्यबोधाय हिताय च समाकुलः ।
निग्रहानुग्रहे शक्तः सद्गुरुर्गीयते बुधैः ॥30॥

जो सर्वदा अपने शिष्यों को प्रबुद्ध बनाने के प्रयास में तथा उनके हित-सम्पादन में लगा रहता है, जो दुष्टों के निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करने में सक्षम होता है, बुद्धिमान् लोग उसे ही सद्गुरु कहते हैं ।

परमार्थे सदा दृष्टिः परमार्थं प्रकीर्तनम् ।
गुरुपादाम्बुजे भक्तिर्यस्यैव सद्गुरुः स्मृतः ॥31॥

सर्वदा जिसके जीवन का परम लक्ष्य परमार्थ है, जिसमें अपने गुरु के चरणकमलों में अनन्य भक्ति है, उस हा सद्गुरु कहा गया है ।

इत्यादि गुणसम्पत्तिं दृष्ट्वा देवि ! गुरुं व्रजेत् ।
त्यक्त्वाक्षमं गुरुं शिष्यो नात्र कालविचारणा ॥32॥

हे देवि ! साधक को चाहिये कि वह अक्षम और अयोग्य गुरु का त्याग करके जिस व्यक्ति में पूर्वोक्त गुणों को देखे, शिष्य बनने के लिये उसी के पास जाय । अक्षम गुरु को त्यागने के लिये समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये ।

निन्द्यगुरुलक्षणम्

केवलं शिष्यसम्पत्तिग्राहको बहुमारकः ।
व्यङ्गितश्च समक्षे यो लोकैर्निन्द्यो गुरुर्मतः ॥33॥

जो केवल शिष्य की सम्पत्ति का ही ग्राहक है, जो शिष्य के प्रत्येक प्रकार के हितों

का घातक है, जो लोगों के सामने ही शिष्य पर व्यंगबाण छोड़ने से नहीं चूकता, या जो शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग है, वह लोगों द्वारा निन्दित गुरु माना जाता है।

कायेन मनसा वाचा शिष्यं भक्तियुतं यदि ।
दृष्ट्वानुमोदनं नास्ति तस्य तद्वस्तु कामतः ॥34॥
कर्मणा गर्हितेनैव हन्ति शिष्यं धनादिकम् ।
शिष्याहितैषिणं लोकं वर्जयेत् तं नराधमम् ॥35॥

शिष्य को अपने प्रति मनसा, वाचा और कर्मणा अनुरक्त जानकर भी जो गुरु उसका अनुमोदन नहीं करता, उसके गुणों की प्रशंसा नहीं करता, जो अपने निन्दनीय कार्यों से, स्वेच्छाचारिता से शिष्य की धनादिक वस्तुओं का हरण अथवा विनाश करता है, ऐसा गुरु निन्दनीय है। शिष्य को चाहिये कि वह ऐसे शिष्यद्रोही और उसका अहित करने वाले नीच गुरु को तुरत त्याग दे।

पशुगुरोः त्याज्यताप्रतिपादनम्

महाविद्यां समाधा(दा)य वीराचारं ददाति न ।
स याति नरकं घोरं शिष्योऽपि पतितो ध्रुवम् ॥36॥

हे देवि ! जो पशुगुरु अपने शिष्य में मन्त्ररूपिणी महाविद्या का आधान अर्थात् स्थापना तो कर देता है, मन्त्रदान तो कर देता है, किन्तु उसे उस विद्या की साधना-विधि वीराचार का ज्ञान नहीं देता, वह घोर नरक में जाता है। और, केवल मन्त्ररूपिणी महाविद्या को प्राप्त करने वाला ऐसा शिष्य भी साधना-पथ का ज्ञान न होने के कारण साधना के पथ से पतित हो जाता है।

पशुभावस्थितो यो हि कालिका तारिणी मनुम् ।
तत्त्वाऽऽचारं वदेन्नैव नरकान्न निवर्तते ॥37॥

हे देवि ! पशुभाव में स्थित कोई गुरु यदि अपने शिष्य को काली अथवा तारा मन्त्र प्रदान करके इन शक्तियों की साधना की विधि पंचाचार नहीं बताता, तो वह नरक में जाता है और उस नरक से उसका उद्धार कभी नहीं होता।

तस्मात्पशुगुरुस्त्याज्यः साधकैः सर्वदा प्रिये ! ।
पशोर्दीक्षाऽधमा प्रोक्ता चतुर्वर्गविघातिनी ॥38॥

हे प्रिये ! तत्त्वाचार को न जानने वाले अथवा जानते हुए भी शिष्य को उसका उपदेश न करने वाले पशुगुरु का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। तत्त्वाचरणहीन दीक्षा अधम दीक्षा मानी जाती है और दीक्षित के धर्मादि चतुर्वर्ग को नष्ट कर देती है।

कौलगुरोः पुनर्दीक्षा ग्रहणम्

यदि दैवात्पशोर्दीक्षा लभते शक्तिमान्नरः ।
कौलात्तु कौलिकीं प्रार्थ्य तन्मनुं पुनरालभेत् ॥39॥

यदि कोई सुयोग्य अधिकारी साधक दुर्भाग्य से किसी पश्वाचारी गुरु से कालिका और तारिणी के मन्त्र की दीक्षा ले भी ले, तो उसे चाहिये कि किसी कौल गुरु से पुनः काली और तारा विद्या की दीक्षा ग्रहण करे ।

तदा विद्या प्रसन्ना स्यात् फलदा जननी समा ।
अन्यथा विमुखी देवी कुतस्तस्यैव सद्गतिः ॥40॥

किसी कौल गुरु से पुनर्दीक्षा ग्रहण करने पर ही उक्त विद्या प्रसन्न होकर साधक को माँ की भाँति मनोवांछित फल प्रदान करती है । ऐसा न करने पर विद्या अप्रसन्न हो जाती है और साधक को उसकी साधना का सुफल नहीं मिलता ।

दोषयुक्तदिव्यवीरयोरपि गुरुभावना निषेधः

पूर्वोक्तदोषयुक्तश्च दिव्यो वा वीर एव वा ।
तयोरपि न कर्तव्या शिष्येण गुरुभावना ॥41॥
किन्तु भाव्यं हितैषित्वं गुरुताभावनां त्यजेत् ।
दिव्ये वीरवरे वापि न दोषोऽत्र शिवाज्ञया ॥42॥

हे देवि ! यदि दिव्य अथवा वीरभाव में स्थित व्यक्ति भी उक्त दोषों से ग्रस्त हैं अर्थात् साधक को केवल तारा और काली के मन्त्र की ही दीक्षा देते हैं, तत्त्वाचरण का उपदेश नहीं करते, तो साधक को चाहिये कि उनमें भी गुरुत्व की भावना न करे, उन्हें गुरु न माने । किन्तु, तत्त्वाचरण का उपदेश न करने वाले दिव्याचारी और वीराचारी कौल साधकों के प्रति गुरुत्व भावना न रखते हुए भी साधक को चाहिये कि उनका हितैषी बना रहे । यह आगमगुरु सदाशिव का आदेश है, दिव्यों और वीरों का हितैषी होने में कोई दोष नहीं ।

भावत्रयस्थानां भेदकलक्षणे देव्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

दिव्यतो वीरतो देव ! पशुतः किं विशेषकः ।
वद मे परमेशान ! श्रोतुं मे चित्तमुत्सुकम् ॥43॥

देवी पार्वती ने कहा—हे परमेश्वर ! अभी आपने मुझे बताया कि तत्त्वाचरण की विधि न बताने वाले पशु, दिव्य और वीर तीनों भावों वाले व्यक्तियों से काली और तारा के मन्त्रों की दीक्षा नहीं लेनी चाहिये । ऐसे पशुगुरु का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, किन्तु तत्त्वाचरण

उपदेश न करने वाले दिव्य और वीर भाव में स्थित व्यक्तियों में गुरुत्वभावना न रखते हुए भी उनका त्याग न करके हितैषी बने रहना चाहिये ।

अब आप मुझे बताइये कि दिव्य और वीर में पशु से ऐसी कौन सी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण दिव्यों और वीरों का त्याग न करके उनका हितैषी बने रहा जाय ? यह जानने के लिये मेरे मन में परम उत्सुकता है ।

दिव्यलक्षणनिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! जगद्वन्द्ये ! यत् पृष्टं तत्त्वमुत्तमम् ।
दिव्यः सर्वमनोहारी मितवादी स्थिरासनः ॥44॥

श्रीशिव ने कहा—हे जगद्वन्दनीये ! देवि ! तुमने दिव्यादिभावों में स्थित साधकों में अन्तर के विषय में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तात्त्विक प्रश्न किया है, उसके विषय में सुनो। साधक तीन प्रकार के होते हैं—दिव्य, वीर और पशु । इनमें अन्तर उनमें स्थित गुणभिन्नता के कारण होता है । दिव्य साधक सबके हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने वाला, सर्वप्रिय और मितभाषी होता है । उसके मन और तन में अस्वाभाविक चंचलता नहीं होती और वह शान्त होता है ।

गम्भीरः शिष्टवक्ता च शतावधानकः सुधीः ।
गुरुपादाम्बुजे भीरुः सर्वत्र भयवर्जितः ॥45॥

दिव्य साधक के स्वभाव में गम्भीरता और वाणी में शिष्टता होती है । वह पवित्र मेधावाला शतावधानी अर्थात् सैकड़ों लोगों की बातें सुनने-समझने और उनके समाधान करने वाला व्यक्ति होता है । वह गुरुभक्त होता है । वह किसी से डरता नहीं । वह भयभीत होता है तो केवल अपने गुरु से कि कहीं उससे श्रीगुरु की अवज्ञा न हो जाय ।

सर्वदर्शी सर्ववक्ता* सर्वदुष्टनिवारकः ।
सर्वगुणान्वितो दिव्यः सोऽहं किं बहुवाक्यतः ॥46॥

अपनी गुरुभक्ति और साधना के बल से दिव्यसाधक त्रिकालदर्शी, सभी विषयों का जानकार और प्रभावी प्रवक्ता होता है । दिव्यसाधक शक्तिशाली, अतएव दुष्टदमनकारी भी होता है । उसमें समस्त सद्‌गुणों का समन्वय होता है । हे पार्वति ! मैं अधिक क्या कहूँ, वास्तव में, दिव्यसाधक मैं ही हूँ अर्थात् दिव्यसाधक मेरा ही स्वरूप है ।

वीरलक्षणम्

निर्भयोऽभयदो वीरो गुरुभक्तिपरायणः ।
वाचालो बलवान् शुद्धः पञ्चतत्त्वे सदा रतिः ॥47॥

* 'शिलष्टवक्ता' इति पाठः क्वचित् ।

हे देवि ! वीरसाधक सर्वत्र निर्भीक होता है । वह समस्त प्राणियों को निर्भयता प्रदान करता है । वह गुरुभक्तिपारायण, निर्भीक वक्ता और शक्तिशाली होता है । वह पवित्र आचरण वाला होता है तथा पंचतत्त्व के प्रति उसका निरन्तर लगाव होता है ।

महोत्साहो महाबुद्धिर्महासाहसिकोऽपि च ।
महाशयः सदा देवि ! साधूनां पालने रतः ॥48॥

वीरसाधक महान् उत्साही, महाबुद्धिमान्, महासाहसिक, महान् चिन्तक तथा सदा सज्जनों के पालन में रत रहने वाला होता है ।

तमोमयः सदा वीरो विनयेन महोत्सुकः ।
एवं बहुगुणैर्युक्तो वीरो रुद्रः स्वयं प्रिये ॥49॥

हे प्रिये ! वीरसाधक दुष्ट विध्वंसक तमस्प्रधान भगवान् रुद्र का अपना ही स्वरूप है । वह वीर होता है, किन्तु, उसमें विनय की भावना होती है । वह सभी, कुछ भी अच्छा करने के लिये सर्वदा सन्नद्ध रहता है ।

पशुलक्षणम्

पशून् शृणु महादेवि ! सर्वदेवबहिष्कृतान् ।
अधमान् पापचित्तांश्च पञ्चतत्त्वविनिन्दकान् ॥50॥

हे माहेश्वरि ! अब पशुसाधकों की विशेषताओं के बारे में सुनो । वे स्वभाव से अधम, निम्नमनोवृत्ति वाले और पंचतत्त्व की निन्दा करने वाले होते हैं । सभी देवता ऐसे अधम पशुसाधकों की अर्चना का बहिष्कार करते हैं ।

केचिच्छागोपमा देवि ! केचिन्मेषोपमा इह ।
केचित्खरोपमा भ्रष्टाः केचिच्च शूकरोपमा ॥51॥

पशुभाव के इन साधकों में से कुछ केवल दूसरों के लिये बलि बनने वाले बकरों की भाँति, कुछ परम्परानुगामी भेड़ों की भाँति, कुछ केवल अन्यों के हितार्थ कर्म करने वाले भारवाही गर्दभों की तरह तथा बहुत से भ्रष्ट ग्रामीण सुअरों की तरह होते हैं ।

इत्याद्याः पशवो देवि ! ज्ञेया दुष्टा नराधमाः ।
एषां देव्यार्चनं सिद्धिर्गणनं वा कुतो भवेत् ॥52॥

हे देवि ! ऐसे पशुसाधक स्वभावतः दुष्ट और निम्न श्रेणी के मनुष्य होते हैं । ऐसे नरपशुओं द्वारा भगवती की अर्चना और उनकी अर्चना की सिद्धि की चर्चा भी कैसे की जा सकती है ?

अतो हि पशवश्छेद्या भेद्याः खाद्याश्च वीरकैः ।
वर्जिता सर्वथा भद्रे ! परमार्थबहिष्कृताः ॥53॥

हे देवि ! ऐसे साधक छागादि पशुओं की भाँति होते हैं, इसीलिये तो ये परमार्थ से सर्वथा बहिष्कृत और वीराचारी साधकों द्वारा मारे-काटे जाने के योग्य हैं ।

पार्वत्याः सन्देहः

श्रीदेव्युवाच

किञ्चित् कथितं नाथ ! सन्देहः प्रबलीकृतः ।
क्षुद्रो हि पशुभावश्च गदितो यत् स्वयं त्वया ॥54॥

श्रीशिव की उक्त बातों को सुनकर आश्चर्यचकित भगवती पार्वती ने उनसे कहा— भगवन् ! जो अभी-अभी आपने कहा है कि 'पशुभाव' अत्यन्त निम्न श्रेणी का होता है । पशुसाधकों की क्षुद्रता की बात आप द्वारा पहले की गयी बातों के विरुद्ध अतएव बड़ी विचित्र है । ऐसी विचित्र बातें कहकर आपने मेरे मन के सन्देह को और भी प्रबल बना दिया है, उन्हें उच्छिन्न नहीं किया ।

अर्चितं पशुभावेन वरं साधारणं यदि ।
देवतां नैव जानाति तस्मात्समर्पितं न हि ॥55॥

हे देव ! यदि पशुभाव में स्थित होकर की गयी भगवती की साधना अत्यन्त निम्नकोटि की साधना है, पराशक्ति के स्वरूप को वह नहीं जानता और इसी कारण वह पूजाद्रव्य पंचतत्त्वादि यथाविधि उन्हें अर्पित नहीं करता, तो उसे साधक कैसे कहा जा सकता है और इसमें उसका क्या दोष है ?

भञ्ज भञ्जाशु सन्देहं करुणासागर ! प्रभो ! ।
सूर्यो यथा समाहन्ति चाऽन्धकारं क्षणादपि ॥56॥

हे करुणासागर शिव ! आप मेरे इन सन्देहों को उसी प्रकार तुरन्त नष्ट कर दें, जैसे सूर्य क्षणभर में गहन अन्धकार को नष्ट कर देता है ।

श्रीशिवेन यथार्थपशुभावनिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

भद्रमुक्तं त्वया विज्ञे ! तत्त्वं तु शृणु संस्कृतम् ।
य उक्तः पशुभावो हि कलौ कः तस्य पालकः ॥57॥

श्रीशिव ने कहा—हे कल्याणि ! तुमने ठीक कहा है । तुम परम विदुषी हो, इसीलिये मेरे उक्त वचनों में निहित विरुद्धता को तुमने रेखांकित किया है । अब मैं तुम्हारे सामने तथ्य का उद्‌घाटन करता हूँ, ध्यान से सुनो ! सच तो यह है कि जिसे पशुभाव कहा गया है, कलियुग में उसका पालन करने वाला कौन है ? कोई नहीं ।

पञ्चतत्त्वं न गृह्णाति तत्र निन्दां करोति न ।
शिवेन गदितं यत्तु तत्सत्यमिति भावयन् ॥58॥
निन्दायाः पातकं वेत्ति पाशवः स प्रकीर्तितः ।

हे देवि ! यह तो सच है कि पशुसाधक पंचतत्त्वों का उपयोग नहीं करता, लेकिन, 'पंचतत्त्व' की महत्ता के बारे में श्रीशिव ने जो कुछ कहा है वह सत्य है, ऐसा मानता हुआ वह पंचतत्त्वों अथवा उसके ग्रहण करने वालों की निन्दा करना पाप मानता है । वास्तव में, ऐसे ही साधक को 'पाशव' या पशुसाधक कहा जाता है ।

पश्वाचारप्रकथनम्

तस्याचारं वदाम्याशु शृणु संशयनाशकम् ॥59॥
हविष्यं भक्षयेन्नित्यं ताम्बूलं न स्पृशेदपि ।
ऋतुस्नातां विना नारीं कामभावैर्न हि स्पृशेत् ॥60॥

हे देवि ! अब मैं तुम्हारे मन में उठे संशयों को दूर करने वाले वास्तविक पश्वाचार का निरूपण करता हूँ, ध्यान से सुनो । पशुसाधक वह है, जो प्रतिदिन केवल देवी को समर्पित हविष्यान्न का भक्षण करता है, लेकिन, उसमें से पान को तो छूता भी नहीं, खाने की तो बात ही क्या ? वह ऋतुस्नाता नारी के अलावा कामभाव से उसका कभी स्पर्श भी नहीं करता ।

परस्त्रियं कामभावाद् दृष्ट्वा स्वर्णं समुत्सृजेत् ।
संत्यजेन्मत्स्यमांसानि पाशवो नित्यमेव च ॥61॥

यदि वह भूल से भी कभी परस्त्री को कामभाव से देख लेता है, तो उसे पाप मानकर प्रायश्चित्त के लिये विहित विधि से स्वर्णदान करता है । पशुसाधक मत्स्यमांस आदि का भी सेवन नही करता ।

गन्धमाल्यानि वस्त्राणि चीराणि प्रभजेन्न च ।
देवालये सदा तिष्ठेदाहारार्थं गृहं व्रजेत् ॥62॥

पाशव साधक तैलादि सुगन्धित पदार्थों, मालाओं तथा अन्य बहुमूल्य वस्त्राभूषणों आदि का उपयोग नहीं करता । वह सर्वदा देवालय में ही निवास करता है तथा केवल भोजन के लिये ही अपने घर जाता है ।

कन्यापुत्रादिवात्सल्यं कुर्यान्नित्यं समाकुलः ।
ऐश्वर्यं प्रार्थयेन्नैव यद्यस्ति तत्तु न त्यजेत् ॥63॥

हे देवि ! पशुसाधक यद्यपि कन्या तथा पुत्रादि के हित के लिये व्याकुल और उनके प्रति स्नेहशील होता है, फिर भी उनके तथा अपने लिये वह अवैध और अतिरिक्त धनप्राप्ति के लिये किसी से प्रार्थना या अनुरोध नहीं करता । लेकिन, जो भी धन उसके पास होता

है, उसका त्याग भी नहीं करता, बल्कि अपने तथा अपने परिवार के हित के लिये उसका उपयोग करता है ।

सदा दानं समाकुर्याद् यदि सन्ति धनानि च ।
कार्पण्यं नैव कर्तव्यं यदीच्छैदात्मनो हितम् ॥64॥

हे देवि ! पशुसाधक के पास यदि धन है, तो दान देने में कृपणता नहीं दिखाता, उसके पास जो है, जितना है, वह उसी से और उतने से सन्तुष्ट रहता है । वह न तो अवैधरूप से अधिक धन चाहता है, और न जो भी उसके पास है, उसे गलत रूप से व्यय ही करता है ।

विशेषेण महादेवि ! क्रोधं संवर्जयेदपि ।
कदाचिद् दीक्षयेन्नैव पाशवः परमेश्वरि ! ॥65॥

हे महादेवि ! पशुसाधक क्रोध नहीं करता । पाशव साधक कभी किसी को दीक्षा नहीं देता ।

दीक्षादाने पशोर्नाऽधिकारः

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नान्यथा वचनं मम ।
अज्ञानाद् यदि वा लोभान्मन्त्रदानं करोति च ॥66॥
सत्यं सत्यं महादेवि ! शिवशापः प्रजायते ।
इत्यादि बहुधाऽऽचाराः क्वचिद् ब्रूमः पशोर्मतः ॥67॥

हे परमेश्वरि ! मैं सत्य और पुनः-पुनः सत्य कह रहा हूँ कि पशुसाधक को दीक्षा देने का अधिकार नहीं है । यदि वह अपनी मूर्खता के कारण अथवा धनादि के लोभ से किसी को दीक्षा देता है, तो उसे पशुपति शिव का शाप लगता है । हे देवि ! पशुसाधक के लिये उपर्युक्त तथा ऐसे और बहुत से आचरण विहित हैं, जिनका उल्लेख मैं यथावसर करूँगा ।

पश्वाचारिणोर्न मोक्षो न च सिद्धिः

तथापि च न मोक्षः स्यात् सिद्धिश्चैव कदाचन ।
यदि चंक्रमणे शक्तः खड्गधारे सदा नरः ॥68॥
पश्वाचारः सदा कुर्यात् किन्तु सिद्धिर्न जायते ।

लेकिन, हे माहेश्वरि ! यदि किसी को तलवार की धार पर चलने में रुचि है तो चले, पर तलवार की धार पर चलकर वह अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकता, कभी न कभी तो गिरेगा ही । इसी प्रकार यदि किसी को पश्वाचरण का मार्ग अपनाना है, तो अपनाये, लेकिन, इससे उसे मोक्ष या सिद्धि की प्राप्ति तो नहीं ही होगी ।

युगानुसारभावाचरणम्

जम्बूद्वीपे कलौ देवि ! ब्राह्मणो हि कदाचन ॥69॥
पशुर्न स्यात्पशुर्न स्यात्पशुर्न स्यात् शिवाज्ञया ।

हे देवि ! इस कलिकाल में जम्बूदीप पर निवास करने वाले ब्राह्मणों को तो कभी पशुसाधक बन कर पश्वाचरण करने की तो सोचना भी नहीं चाहिये । यह मेरा आदेश है । ब्राह्मणों को सदा दिव्याचार अथवा वीराचार का ही आचरण करना चाहिये ।

सत्ये क्रमेच्चतुर्वर्गैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः ॥70॥
त्रेतायां पूजिता देवी घृतेन सर्वजातिभिः ।
मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजिता द्वापरे युगे ॥71॥
पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैः शवैः ।

हे देवि ! सत्ययुग में चारों वर्ण देवी की अर्चना दुग्ध, मधु और घृत के मिश्रण से किया करते थे । त्रेता में चारों वर्ण देवीपूजन घृत से तथा द्वापर में सभी वर्ण केवल मधु से किया करते थे । लेकिन, कलियुग में भगवती कामाख्या की अर्चना केवल मद्य और शव से की जानी चाहिये ।

कलावानुकल्पस्य निषेधः

नानुकल्पः कलौ दुर्गे नानुकल्पः कलौ युगे ॥72॥
नानुकल्पो ब्राह्मणानां शूद्रादीनां कलौ युगे ।
न सन्देहो न सन्देहो न सन्देहः कलौ युगे ॥73॥
सत्यमेतत्सत्यमेतत्सत्यमेतच्छिवोदितम् ।

हे पार्वति ! कुछ लोग भगवती शक्ति की अर्चना में मद्यादि के स्थान पर इनके अनुकल्पों के प्रयोग का समर्थन करते हैं, लेकिन, कलिकाल में अनुकल्प-व्यवस्था ब्राह्मणादि तीनों वर्णों सहित शूद्रादि के लिये भी वर्जित है । आगमगुरु शिव की इस व्यवस्था में सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है, यह सत्य है, सत्य है और पुनः सत्य है ।

सद्गुरोः शरणं नीत्वा कुलाचारं भजेन्नरः ॥74॥
दिव्यत्वं लभते किं वा वीरत्वं लभते शुभे ।

इसलिये हे देवि ! शक्तिपूजन में मद्यमांसादि मुख्य पंचतत्त्वों के सेवन में पाप आदि की व्यर्थ आशंकाओं का परित्याग कर देना चाहिये । श्रीसद्गुरु की आज्ञा लेकर मद्यादि मुख्य द्रव्यों से शक्ति के पूजन में कोई पाप नहीं है और न ही साधक द्वारा पहले सद्गुरु को निवेदित कर बाद में पंचतत्त्वों के स्वयं सेवन करने में ही कोई पाप है । हे कल्याणि ! शक्ति और सद्गुरु को समर्पित करके पंचतत्त्वों का सेवन करने वाला साधक दिव्य अथवा वीरभाव को प्राप्त करता है ।

दिव्यादिसाधकानां सिद्धिः

असाध्यं साधयेद् दिव्योऽप्यनायासेन यद् भुवि ॥75॥
वीरस्तं क्लेशतो देवि ! प्राप्नोतीह न चान्यथा ।
पशुः कल्पशतैर्वापि साधितुं न च तत्क्षमः ॥76॥
लङ्घितुं नैव शक्नोति यथा पङ्गुर्गिरिं क्वचित् ।

हे देवि ! जिस सिद्धि को दिव्यसाधक बिना किसी प्रयास के सरलता से प्राप्त कर लेता है, उसे प्राप्त करने के लिये वीरसाधक को कठिन साधना करनी पड़ती है । लेकिन, उसी सिद्धि को पशुसाधक सैकड़ों कल्पों तक अनगिनत प्रयासों के बाद भी इसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता, जैसे कभी कोई पदहीन व्यक्ति पर्वत नहीं लाँघ सकता ।

अतिगुह्यमिदं प्रोक्तं रहस्यं त्वयि सुन्दरि ! ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं सदाऽनघे ! ॥77॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



श्रीशिव ने भगवती पार्वती से कहा—हे निष्पाप सुन्दरि ! मैंने तुम्हारे सामने अतिगोपनीय रहस्य का उद्घाटन कर दिया है । लेकिन, तुमसे मेरा पुनः-पुनः अनुरोध है कि तुम इसे गोप्य ही रखना, किसी अनधिकारी साधक के सामने इस रहस्य का उद्घाटन न करना ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का चतुर्थ पटल समाप्त ।



अथ पञ्चम पटलः

पञ्चतत्त्वैरनर्चकः कः निन्द्यः

श्रीदेवी उवाच

कस्या देव्याः साधकानामेकान्तनिन्दनं महत् ।
न कृत्वा पञ्चतत्त्वैश्च पूजनं परमेश्वर ! ॥1॥

श्रीपार्वती ने प्रश्न किया—हे परमेश्वर ! क्या ऐसी कोई देवी है, जिसकी पूजा में पंचतत्त्वों की अनिवार्यता है ? पंचतत्त्वों से उसकी पूजा न किये जाने पर शाक्तसाधकों के बीच उसे पंचतत्त्वरहित पूजक और पूजा की घोर निन्दा की जानी चाहिये और की भी जाती है ।

पञ्चतत्त्वैरनर्चकः ब्राह्मणो निन्द्यः

श्रीशिव उवाच

कलौ तु सर्वशाक्तानां ब्राह्मणानां विशेषतः ।
पञ्चतत्त्वविहीनानां निन्दनं परमेश्वरि ! ॥2॥

श्रीशिव ने उत्तर दिया—हाँ, हे परेशि ! कलिकाल में यदि कोई शाक्तसाधक, विशेषरूप से ब्राह्मण जाति का शाक्तसाधक, देवी की अर्चना पंचतत्त्वों से नहीं करता, तो वह अवश्य निन्दनीय है ।

मद्यं विना कालिकातारार्चनं हास्यायैव

तन्मध्ये कालिकातारासाधकानां कुलेश्वरि ! ।
मद्यं विना साधनं च महाहास्याय कल्पते ॥3॥
यथा दीक्षा विना देवि ! साधनं हास्यमेव हि
तथानयोः साधकानां ज्ञेयं तत्त्वं विना सदा ॥4॥

कालिका और तारादेवी की अर्चना करने वाले ऐसे साधकों की निन्दा की जानी चाहिये, जो पंचतत्त्वों से इनकी अर्चना नहीं करते । क्योंकि, कालिका और तारादेवी की मद्यादि पंचतत्त्वविहीन अर्चना, अर्चना नहीं, अर्चना का केवल उसी भाँति उपहास है, जैसे दीक्षा के बिना साधना, साधना नहीं, साधना का उपहास मात्र है ।

पञ्चतत्त्वं विना देव्यर्चनं निष्फलम्

शिलायां सस्यवापैश्च न भवेदङ्कुरो यथा ।
अनावृष्ट्या क्षितौ देवि ! कर्षणं च यथा न हि ॥5॥
ऋतुं विना स्त्रियां देवि ! कुतोऽपत्यं प्रजायते
गमनं च विना क्वापि ग्रामप्राप्तिर्यथा न च ॥6॥
अतो देव्याः साधनेषु पञ्चतत्त्वं सदा लभेत् ।
पञ्चतत्त्वैः साधकेन्द्रो वाऽर्चयेतद् विधिना मुदा ॥7॥

हे देवि ! जिस प्रकार शिला पर बोये गये धान्यादि बीजों में अंकुरण नहीं होता, बिना वर्षा के धरती पर हल नहीं चलाया जा सकता, रजस्वला हुए बिना स्त्री से सन्तान नहीं हो सकती, बिना चले ग्रामादि गन्तव्य प्राप्त नहीं किये जा सकते, उसी प्रकार पंचतत्त्वों के बिना शक्तिपूजन से साधकों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती । इसलिये शाक्तसाधकों को चाहिये कि वे प्रसन्नतापूर्वक पंचतत्त्वों से भगवती की अर्चना करें ।

जगदम्बिका सदा मद्यादिभिरेवार्चनीया

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि ।
स्त्रीभिः सार्द्धं सदा साधुरर्चयेज्जगम्बिकाम् ॥8॥
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः ।
कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्त्वपरो भवेत् ॥9॥

हे पार्वति ! शाक्तसाधक को चाहिये कि वह मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा स्त्रियों के साथ मैथुनक्रिया से जगन्माता कामाख्या की अर्चना करे । यदि वह इन पंचतत्त्वों से देवी का पूजन नहीं करता, तो देवताओं और प्रबुद्ध शाक्तसाधकों द्वारा उसकी बहुत निन्दा की जाती है । इसलिये साधक को चाहिये कि वह देवीपूजन में तन, मन और वाणी से पंचतत्त्वों के प्रयोग का अनुपालन करे ।

मद्याऽलेही पतितो भवति

कालिकातारिणीदीक्षा गृहीत्वा मद्यलेहनम् ।
न करोति नरो यस्तु स कलौ पतितो भवेत् ॥10॥

हे भगवति ! कलियुग में कालिका और तारिणी तथा तत्स्वरूपा कामाख्या के मन्त्रों की दीक्षा प्राप्त करके भी जो साधक मद्यपान नहीं करता, वह साधना के पथ से पतित हो जाता है ।

मद्याऽपायी कालीताराद्यर्चकोऽब्राह्मणः

वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां जपेद्धोमबहिष्कृतः ।
अब्राह्मणः स एवोक्तः स एव हस्तिमूर्खकः ॥11॥

ऐसा मद्यपान न करने वाला साधक जन्म से ब्राह्मण और महान् विद्वान् होते हुए भी न तो वैदिकी सन्ध्या करने का अधिकारी है और न ही तान्त्रिक सन्ध्या करने का। जन्म तथा विद्वत्ता से ब्राह्मण होते हुए भी सन्ध्याविहीन अतएव ब्राह्मणत्त्व से पतित ऐसा ब्राह्मण 'हस्तिमूर्ख' है, अर्थात् हाथी की भाँति निन्दनीय है, जो महान् शक्ति और बृहदाकार के बावजूद अंकुशाधीन अतएव निंद्य होता है।

शूनीमूत्रसमं तस्य तर्पणं यत् पितृष्वपि।
अतो न तर्पयेत् सोऽपि यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥12॥

हे देवि ! काली-तारा मन्त्र से दीक्षित साधक यदि मद्यादि से देवी की समर्चना नहीं करता तो, यदि वह अपना भला चाहता है, तो उसे किसी भी देवता और अपने पितरों का तर्पण नहीं करना चाहिये। क्योंकि, शाक्तसाधकों द्वारा देवियों और पितरों का तर्पण मद्य से ही किये जाने का विधान है।

वीराचारविहीनस्य कालीतारामनुसाधकानामधोगतिः

कालीतारामनुं प्राप्य वीराचारं करोति न।
शूद्रत्वं तच्छरीरे तु प्राप्तं तेन न चान्यथा ॥13॥

हे देवि ! काली, तारा तथा इन दोनों के स्वरूप कामाख्या के मन्त्रों से दीक्षित होकर भी यदि कोई ब्राह्मण मद्यमांसादि पंचतत्त्वपरायण वीराचार का पालन नहीं करता तो उसे इसी जन्म में शूद्रत्व प्राप्त होता है।

क्षत्रियोऽपि तथा देवि ! वैश्यश्चाण्डालतां व्रजेत्।
शूद्रो हि शूकरत्वं च याति याति न संशयः ॥14॥

हे देवि ! कालीतारापूजक क्षत्रिय यदि पंचतत्त्वपरायण नहीं है तो, इसी जन्म में वह वैश्य तथा वैश्य चाण्डालत्व और शूद्र शूकरत्व प्राप्त करता है।

सर्वजातिभिर्देवी पञ्चतत्त्वैरर्चितव्या

अवश्यं ब्राह्मणो नित्यं राजा वैश्यश्च शूद्रकः।
पञ्चतत्त्वैर्भजेद् देवीं न कुर्यात् संशयं क्वचित् ॥15॥

इसलिये हे देवि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों को चाहिये कि वे बिना किसी संशय या सन्देह के मद्यादि पंचतत्त्वों से भगवती कामाख्या की अर्चना करें।

पञ्चतत्त्वैः कलौ देवि ! पूजयेद् यः कुलेश्वरीम्।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि विद्यते ॥16॥

हे देवि ! कलियुग में जो साधक पंचतत्त्वों से कुलेश्वरी कामाख्या काली की अर्चना करता है, त्रिभुवन में उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है।

स ब्राह्मणः स शाक्तो गाणपतोऽपि च ।
सौरः स परमार्थी च स एव पूर्णदीक्षितः ॥17॥
स एव धार्मिकः साधुर्ज्ञानी चैव महाकृती ।
याज्ञिकः सर्वकर्मार्हः स हि देवो न चाऽन्यथा ॥18॥

हे देवि ! कलियुग में पंचतत्त्वों से देवी की अर्चना करने वाला साधक ही वास्तविक ब्राह्मण है, वही शाक्त है, वही गाणपत्य है, वही सूर्योपासक है और वही सच्चा परमार्थी है । वही धार्मिक है, और वही सच्चा दीक्षित है । ऐसा साधक ही ज्ञानी है, वही कर्मी है, वही याज्ञिक है और वही सर्वकर्मा है । वास्तव में, उक्त विधि से साधना करने वाला साधक सर्वदेवमय है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

पावनानीह तीर्थानि सर्वेषामिति सम्मतम् ।
तीर्थानां पावनः कौलो गिरिजे बहु किं वचः ॥19॥

हे गिरिजे ! शास्त्रादि सभी का यह मत है कि तीर्थ सभी को पवित्र करते हैं । लेकिन, 'तीर्थों को कुलसाधक कौल पवित्र करते हैं' इस कथन में कोई सन्देह नहीं, इससे अधिक कुछ कहना व्यर्थ है ।

कौलसाधकस्य सर्वे सम्बन्धिनः धन्याः

अस्यैव जननी धन्या धन्या हि जनकादयः ।
धन्या जातिकुटुम्बाश्च धन्या आलापिनो जनाः ॥20॥

हे देवि ! पंचतत्त्वों से कामाख्या की अर्चना करने वाले वीरसाधक को जन्म देने वाले माता और पिता धन्य हैं, उसकी जाति तथा कटुम्ब वाले और उससे वार्तालाप आदि करने वाले भी धन्य हैं ।

नृत्यन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ।
अपि कश्चित् कुलेऽस्माकं कुलज्ञानी भविष्यति ॥21॥
तदा योग्या भविष्यामः कुलीनानां सभातले ।
समागन्तुमिति ज्ञात्वा सूत्सुकाः पितरः परे ॥22॥

ऐसे वीरसाधक के समस्त पितर प्रसन्नता से उसकी प्रशंसा करते हैं, उसके गुणों की कथाएँ कहते हैं, जबकि दूसरे कुलों के पितर लालसा करते हैं कि काश, हमारे कुल में भी कोई ऐसा कुलज्ञानी उत्पन्न होता, जिसके कारण हम भी कुलीन पितरों की सभा में सम्मिलित होने की योग्यता प्राप्त कर सकते ।

कुलाचारस्य माहात्म्यं किं ब्रूमः परमेश्वरि ! ।
पञ्चवक्त्रेण देवेशि ! सनातन्याः फलानि च ॥23॥

हे परेशि ! मैं अपने पाँचों मुखों का उपयोग करके भी कुलाचार, सनातनी शक्ति कामाख्या और उसकी उपासना से प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन नहीं कर सकता ।

श्रीदेव्या कामाख्यार्चासाधनं प्रति जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

साधनं वद कौलेश ! साधकानां सुखावहम् ।
दिव्यं रम्यं मनोहारि सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥24॥

श्रीशिव की बातें सुन भगवती शाम्भवी ने उनसे अनुरोध किया—हे शिव ! पराशक्ति कामाख्या की उपासना के लिये कोई दिव्य, मनोहारी और साधक की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला सरल साधन बताइये ।

श्रीशिवेन सुखावहसाधननिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

शृणु कामकलाकान्ते ! साधनं तु सुखावहम् ।
यत्किञ्चिद् गदितं पूर्वं विस्तृतं तद् वदाम्यहम् ॥25॥

श्री शिव ने शाम्भवी से कहा—कामकला में निष्णात हे देवि ! इस विषय में थोड़ा-बहुत उल्लेख तो मैं पहले ही कर चुका हूँ । अब विस्तार से बताता हूँ, ध्यान से सुनो ।

अतिसुललितदिव्यं स्थानमालोक्य भक्त्या
हृदि च परमदेवीं संविभावैकचित्तः ।
मधुरकुसुमगन्धैर्व्याप्तमाहृत्य साधु-
स्तदुपरि खलु तिष्ठन् साधनार्थी कुलज्ञः ॥26॥

हे देवि ! कामाख्या की साधना के लिये कौल साधक को चाहिये कि वह पहले विभिन्न पुष्पों की मन्द-मन्द सुगन्ध से व्याप्त किसी अति सुन्दर दिव्य स्थान की खोज करे । उचित स्थान मिल जाने के पश्चात् वहाँ बैठकर अपने हृदय में भगवती का ध्यान करे ।

जयवति यतमानः शब्दपुष्पं क्षिपेत् तत्
स खलु करकबीजान्यत्र दुर्गे ततो हि ।
चिरभवबकपुष्पं वर्जयित्वाऽर्चयित्वा
यदि जपति विधिज्ञस्तत्क्षणात् सोऽप्यहं च ॥27॥

जो साधक साधना करते हुए शब्दरूपी पुष्पों अर्थात् विभिन्न स्तोत्रों और स्तुतिवाक्यों तथा चिरभव (चिरविल्व या करंज) और बक (बकुल)* के पुष्पों को छोड़ अन्य पुष्पों से

* श्रीरामकुमाररायस्य 'डिक्शनरी ऑफ तन्त्रशास्त्रे' द्रष्टव्यम् ।

विधिपूर्वक भगवती की अर्चना करके करकबीज 'क्रुं' सहित 'क्रुं जय दुर्गे क्रुं जय दुर्गे' मन्त्र का जप करता है, वह क्षणभर में मेरा ही स्वरूप हो जाता है ।

विधिकृतलिङ्गलतापूजनम्

उपवनपरियुक्ते शुद्धरम्यालये यो
विधिकृतवरलिङ्गं लेपयित्वा सुगन्धैः ।
विविधकुसुमधूपैर्धूपयित्वा लतां स-
म्प्रति जपति सुभक्त्या त्वत्सुतो जायते सः ॥28॥

हे देवि ! उक्त रम्य उपवन में निर्मित किसी स्वच्छ कक्ष में योनिस्वरूपा कामाख्या तथा विधिकृत अर्थात् विधिपूर्वक निर्मित शिवलिंग पर विविध प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का लेपन तथा अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से पूजन करने के बाद 'विधिकृत अर्थात् विधाता द्वारा स्वकीय लिंग और लता लिंग की इसी प्रकार सुगन्ध लेपनादि से अर्चनापूर्वक तुम्हारे मन्त्र का जप करता है, वह तुम्हारा पुत्र हो जाता है ।

अचलशिखरमध्ये शीघ्रमालम्बयित्वा
कनककुसुमसार्द्धं शब्दपुष्पं निवेद्य ।
कृतबहुविधिपूजाः स्वं गुरुं भावयित्वा
जपति यदि विलासी विष्णुरेव स्वयं सः ॥29॥

हे भगवति ! शिवलिंग तथा कामाख्या और स्वलिंग एवं लता लिंग की अर्चना और मन्त्र के जप के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह अपने गुरु का ध्यान करके भगवान् शिव और भगवती कामाख्या को अपने अचलशिखर अर्थात् सर्वोच्च शिखर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर उन्हें स्वर्णपुष्प 'तडिल्लेखातन्वी' कुण्डलिनीसहित शब्दपुष्प अर्थात् आकाशोप-लक्षित समस्त भूतों का समर्पण कर, कुलकुण्डलिनी और परशिव का मेलन करा, विविध भाँति उनकी स्तुति-पूजन करे । ऐसा साधक विलासरूप विष्णु ही है ।

इस प्रकार यदि साधक ब्रह्मस्थान में शिवशक्ति के मेलनरूपी परापूजा सम्पन्न कर सषुम्नामार्ग से कुण्डलिनी को मूलाधार में लाकर अपने सद्गुरु का ध्यान कर, अपनी शक्ति योगिनी अर्थात् लता को स्वर्णादिरूप पुष्प और मधुर वचनों से प्रसन्न कर उसकी योनि को विपरीत रति की विधि से स्वलिंग के शीर्ष पर स्थापित कर कामाख्या मन्त्र का जप करता है, तो वह साधक विलासप्रिय कृष्ण का स्वरूप ही है ।

परिचरति स साधुः सिद्धवर्णः सशङ्कः
परवधूलतानां वक्त्रपद्मोपभोगी ।
जयति भुवनमध्ये निर्जरश्चामरोऽपि
व्रजति तमनु नित्यं सार्वभौमो नृणां सः ॥30॥

हे देवि ! सिद्धवर्ण अर्थात् मन्त्रसिद्ध ऐसा साधक यदि सावधानीपूर्वक स्वलता के अतिरिक्ति परस्त्री-लताओं के मुखकमल का भी आस्वादन करता है, तो वह संसारविजयी और वृद्धत्वरहित हो जाता है । ऐसे साधक का देवता भी अनुसरण करते हैं और मनुष्यों में तो वह सार्वभौम नृपति की भाँति सम्मानित हो जाता है ।

लिङ्गलतापूजास्थाननिरूपणम्

अभिनवशुभनीरं रक्तपद्मप्रकीर्णं
विविधकमलरम्यं भव्यमीनप्रयुक्तम् ।
अपरविहितवस्तु व्याप्तमीशेश्वरोऽपि
विगतजनसमूहे प्राप्य देवि ! प्रकीर्णे ॥31॥

जिस स्थान पर रक्तकमलों एवं अन्य विविध वर्ण के कमलों तथा आकर्षक रंग-बिरंगी मछलियों से सुशोभित निरन्तर बह रहे स्वच्छ जल वाला स्रोत हो, सुन्दरता तथा भव्यता बढ़ाने वाली अन्य विविध वस्तुएँ हों और जहाँ पर ईश्वरत्व अर्थात् दिव्यता की अनुभूति हो रही हो और जनाकीर्ण न हो, ऐसे नितान्त एकान्त स्थान का अन्वेषण कर (वहाँ भगवती की आराधना करनी चाहिये ।)

घनजनितसुशोभे विद्युदादीप्तरम्ये
हृदि च परमदेवीं चिन्तयित्वा सुभक्त्या ।
विधिविहितविधानैः स्नानपूजां समाप्य
प्रतिजपति निशायां गह्वरे ब्रह्म स स्यात् ॥32॥

जो स्थान आकाश में विचरण कर रहे काले-काले मेघसमूहों और रह-रह कर दमक रही दामिनियों से दीप्त हो रहा हो, वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक अपनी हृदयगुहा में परमेश्वरी कामाख्या का ध्यान कर, विधिविहित विविधविधियों से स्नानपूजनादि सम्पन्न करके जो साधक रात्रि में भगवती के मन्त्र का जप करता है, वह सामान्य साधक नहीं, अपितु ब्रह्म ही है ।

इह च गुरुवराज्ञां प्राप्य शीर्षे निधाय
प्रतिभजति कुलज्ञो भावभेदात्कुलेशि ! ।
सुरगुरुरिह को वा कोऽपि चन्द्रो दिनेशो
व्रजति भुवनमध्ये दिक्पतित्वं च कोऽपि ॥33॥

हे कुलेश्वरि ! यहाँ भी अर्थात् लता-पूजन के अवसर पर भी पूर्वोक्त विशेषता वाले स्थान पर, यदि कोई भी कुलज्ञानी साधक अपने गुरुवर की अनुमति से लता को लाकर पूर्ववत् भावभेद अर्थात् वीरभाव से उसका उपभोग करता है, वह इस संसार में बृहस्पति, चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्रादि दिक्पालों के समान हो जाता है ।

विधिकृतलिङ्गलतापूजनफलप्रकथनम्

इति परमदेव्याः साधनं यन्मयोक्तं
यदि भजति सुभव्यो गद्गदो वासनाभिः ।
अभिमतफलसिद्धिः सर्वलोकैर्वरेण्यो
भवति भुवनमध्ये पुत्रदारैर्युतोऽपि ॥34॥

हे देवि ! पराशक्ति कामाख्या की साधना के लिये मैंने जिस सरल मार्ग का उल्लेख किया है, यदि भगवती को अपने हृदय में भावित कर कोई वीराचारी महान् साधक तदनुरूप साधना करता है, तो वह संसार में स्त्रीपुत्रादि से परिपूर्ण और सभी का पूज्य हो जाता है तथा उसे समस्त वांछित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

अचलधनसमूहस्तस्य भोगे वसेत् तु
प्रतिदिनमभिपूजा देवताया गृहे च ।
परिजनगणशक्तिः सर्वदा तत्र तिष्ठेत्
सदसि वसति राज्ञः सादरः सोऽपि वन्द्यः ॥35॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे पञ्चम पटलः समाप्तः ।



हे पार्वति ! पूर्वोक्त विधि से पराशक्ति कामाख्या की उपासना करने वाला साधक सर्वदा निश्चल धनलक्ष्मी का उपभोग करता है, उसके घर में प्रतिदिन भगवती की पूजा होती रहती है, उसके पास सर्वदा उसके परिजनों की शक्ति बनी रहती है, परिजन सर्वदा उसका साथ देते हैं । इसके अतिरिक्त राजसभा में वह आदरणीय और पूज्य व्यक्ति के रूप में भी बना रहता है ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का पंचम पटल समाप्त ।



अथ षष्ठः पटलः

देव्याः शत्रुनाशकप्रयोगजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं रहस्यं देवेश ! कामाख्याया महेश्वर !
महाशत्रुविनाशाय साधनं किं वद प्रभो ! ॥1॥

श्रीदेवी ने कहा—हे महेश ! मैंने महामाया कामाख्या की महिमा, उनकी अर्चना, उनके मन्त्र, मन्त्रों की गोपनीय साधना, साधना में प्रयुक्त होने वाले पंचतत्त्व, कौलाचार और उससे प्राप्त होने वाले फलादि के विषय में रहस्यमय तथ्यों को आपसे सुना । हे स्वामिन् ! अब आप कृपया मुझे वह साधन बताइये, जिससे साधक शत्रुओं का विनाश कर सकता है ।

प्रयोगकर्तुरर्हता

श्रीशिव उवाच

अतिगुह्यतरं देवि ! तव स्नेहाद् वितन्यते ।
महाधीरः साधकेन्द्रः प्रयोगं तु समाचरेत् ॥2॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! तुमने शत्रुविनाश के जिस साधन के विषय में जिज्ञासा की है, वह अत्यन्त गोपनीय है । किन्तु तुम्हारे प्रति अतिस्नेह के वशीभूत होकर मैं इसे विस्तार से व्यक्त कर रहा हूँ । लेकिन, ध्यान रखना, वक्ष्यमाण शत्रुविनाशक साधनों का प्रयोग महाधैर्यवान् श्रेष्ठ साधक ही करे, सामान्य साधकों द्वारा किये गये प्रयोग हानिप्रद भी हो सकते हैं ।

प्रयोगात्पूर्वं पञ्चतत्त्वेन देव्याः पूजा

पूजयित्वा महादेवीं पञ्चतत्त्वेन साधयेत् ।
महानन्दमयो भूत्वा साधयेत्साधनं महत् ॥3॥

हे देवि ! शत्रुविनाशक प्रयोग करते समय सर्वप्रथम भगवती कामाख्या की अर्चना पंचतत्त्वों से करनी चाहिये । इसके बाद ही प्रसन्न मन से इस महासाधन का प्रयोग करना चाहिये ।

शत्रुनाशकस्वमूत्रप्रयोगः

स्वमूत्रं तु समादाय कूर्चबीजेन शोधयेत् ।
तर्पयेद् भैरवीं घोरां सकलं वा स्वयं पिबेत् ॥4॥

हे देवि ! शत्रुनाश के लिये साधक को चाहिये कि वह अपना मूत्र लेकर उसे कूर्चबीज 'हूं' से अथवा कलाबीजों से शोधित करके उससे घोराभैरवी का तर्पण करे और स्वयं पान भी करे ।

दश दिक्षु महापीठे प्रक्षिपेदाननेऽपि च ।
नग्नो भूत्वा रमेत् तत्र शत्रुनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥5॥

इसके बाद उस शोधित मूत्र से पूर्वादि दसों दिशाओं, पूजनीय लता की योनिरूपी महापीठ, उसके और अपने मुखमण्डलों को अभिषिंचित करे । इसके पश्चात् नग्न होकर लता के साथ रमण करे । ऐसा प्रयोग करने से निश्चित रूप से शत्रु का विनाश होगा ।

शुक्रादिषु घृणातो भैरव्याः कोपः

शुक्रशोणितमूत्रेषु वीरो यदि घृणी भवेत् ।
भैरवी कुपिता तस्य सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥6॥

हे देवि ! कोई वीर साधक यदि शुक्र, शोणित और मूत्र से घृणा करता है तो, मैं सत्य कहता हूँ, भगवती भैरवी उस पर क्रुद्ध हो जाती हैं ।

दृष्ट्वा श्रुत्वा महेशानि ! निन्दां करोति यो नरः ।
सहसा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥7॥

हे देवि ! शुक्र, शोणित और मूत्र अथवा इनसे किये जाने वाले प्रयोगों को देखकर अथवा इन प्रयोगों के बारे में सुनकर जो व्यक्ति घृणा करता है, वह तब तक नरक में रहता है, जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र का अस्तित्व है ।

वीराचारं महेशानि ! न निन्देन्मनसापि च ।
वीरो यस्तु महादेवि ! स्वेच्छाचारी सदा शुचिः ॥8॥

हे देवि ! वीराचार की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये । क्योंकि स्वेच्छाचरण करने वाला वीर साधक सदैव पवित्र ही होता है, मूत्रादि के स्पर्श से उसके अपवित्र होने का प्रश्न ही नहीं ।

मारणोच्चाटनाय स्वमूत्रप्रयोगः

मृत्पात्रं तु समादाय साध्यनाम लिखेच्छिवे ।
वायुना पुटितं कृत्वा स्वमूत्रं तत्र निक्षिपेत् ॥9॥
मायाबीजं महेशानि ! अष्टोत्तरशतं जपेत् ।
भैरव्यै दर्शयेद् (तर्पयेत् ?) देवि ! मारणोच्चाटनं भवेत् ॥10॥

हे देवि ! शत्रु को मारने या उसका उच्चाटन करने के लिये साधक को चाहिये कि वह मिट्टी के एक पात्र के भीतर वायुबीज 'यं' से सम्पुटित शत्रु का नाम लिखकर उसमें अपना मूत्र डाले । फिर उसे मायाबीज 'ह्रीं' के 108 बार जप से अभिमन्त्रित करके उससे भैरवी

का तर्पण करे । इस प्रयोग से साधक की कामना के अनुसार शत्रु की मृत्यु अथवा उसका उच्चाटन निश्चित होता है ।

उन्मत्तादिविधायकस्वमूत्रप्रयोगः

स्वमूत्रं च समादाय वामहस्तेन शङ्करि !
शोधितं भैरवीगात्रे निःक्षिपेत् साधकोत्तमः ॥11॥
उन्मादो जायते शत्रोर्म्रियते वा महेश्वरि !
मोहितः क्षोभितो वाऽपि वश्यो वाऽपि भवेद् ध्रुवम् ॥12॥

हे शंकरि ! अपने बायें हाथ में अपना मूत्र लेकर उसे कूर्चबीज से शोधित करके भैरवी के शरीर पर छिड़कने से साधक की कामना के अनुसार या तो शत्रु पागल हो जाता है, उसकी मृत्यु हो जाती है या भ्रान्त हो जाता है अथवा साधक के वश में हो जाता है ।

मूत्रसाधनमात्रेण सहस्राक्षसमं रिपुन् ।
नाशयेत्साधको वीरो नात्र कार्या विचारणा ॥13॥

हे महेश्वरि ! वीरसाधक केवल स्वमूत्रसाधन से ही इन्द्र के समान शक्तिशाली शत्रु को भी विनष्ट कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।

शुक्रादेः पवित्रतां प्रति पार्वत्याः सन्देहः

श्रीदेव्युवाच

शुक्रशोणितमूत्राणि शुद्धानीह कथं प्रभो !
तद् वदस्व महेशान ! सन्देहनाशनं मम ॥14॥

श्रीशिव द्वारा निरूपित स्वमूत्रप्रयोग की बात से चकित पार्वती ने उनसे प्रश्न किया— हे स्वामिन् ! शुक्र, शोणित और मूत्र भला कैसे पवित्र हो सकते हैं ? मुझे आपके उक्त कथनों पर सन्देह है । आप मेरे सन्देह को दूर कीजिये ।

श्रीशिवेन पार्वत्याः सन्देहनिवारणम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! रहस्यं च महाज्ञानं वदाम्यहम् ।
शुक्रोऽहं शोणितस्त्वं हि द्वयोरेवाखिलं जगत् ॥15॥
शुद्धं सर्वशरीरं तु शुक्रशोणितजं ततः ।

श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! सुनो, मैं एक अति रहस्य की बात बताता हूँ । शुक्र और कुछ नहीं, मैं ही हूँ, और शोणित तुम हो । शुक्र और शोणित स्वरूप हम दोनों ही पवित्र हैं और हम दोनों के संयोग से ही समस्त संसार उत्पन्न हुआ है । शुक्र-शोणित के योग से बना शरीर भी हम दोनों का रूप है । अतः यह सारा शरीर शुद्ध ही है ।

एवं भूतशरीरे तु यद्यद्वस्तु प्रजायते ॥16॥
अशुद्धं तु कथं देवि ! पामरो निन्दति ध्रुवम् ।

हे देवि ! परम शुद्ध शुक्र और शोणित से उत्पन्न शरीर में जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अपवित्र कैसे हो सकती है ? इस पवित्र शरीर से उत्पन्न शुक्र, शोणित और मूत्र की निन्दा तो घृणित पामर और अज्ञानी व्यक्ति ही करता है, तत्त्वज्ञानी साधक नहीं ।

सर्वं जगच्छुद्धमिदमेव ब्रह्मज्ञानम्

ब्रह्मज्ञानमिदं देवि ! मया ते गदितं किल॥17॥
अतः शुद्धं जगत्सर्वं स्वकायस्थे तु का कथा ।

हे देवि ! जो कुछ मैंने तुमसे कहा कि 'शुक्र और शोणित से उत्पन्न यह सारा जगत् ही शुद्ध है' यही वास्तविक तत्त्वज्ञान है, सामान्य कथनमात्र नहीं । शुक्र-शोणितरूप हम दोनों से उत्पन्न यह सारा संसार ही पवित्र है, अपने शरीर में स्थित शुक्रादि तत्त्वों का तो कहना ही क्या ? वे तो शुद्ध हैं ही ।

ब्रह्मज्ञानं विना मुक्तिर्नास्ति

ब्रह्मज्ञानं विना देवि ! न च मोक्षः प्रजायते ॥18॥
ब्रह्मज्ञानी शिवः साक्षाद् विष्णुर्ब्रह्मा च पार्वति ।

हे पार्वति ! शिव-शक्तिरूप शुक्र और शोणित से उत्पन्न यह समस्त जगत् पवित्र है, इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान की अनुभूति के बिना मोक्ष नहीं । ऐसा तत्त्वज्ञानी साक्षात् शिव है, ब्रह्मा है और वह विष्णु ही है ।

स वीरो दीक्षितः शुद्धो ब्राह्मणो वेदपारगः ।
क्रोडे तस्य वसन्तीह सर्वतीर्थानि निश्चितम् ॥19॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे षष्ठः पटलः समाप्तः ।



हे देवि ! जगत् को शिवशक्तिमय अतएव पवित्र मानने वाला साधक ही वीर है, वही दीक्षित है, वही शुद्ध है, वही ब्राह्मण है और वही वेदज्ञ है । सर्वदा पवित्र माने जाने वाले समस्त तीर्थ निश्चितरूप से ऐसे ज्ञानी के क्रोड में ही निवास करते हैं ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का षष्ठ पटल समाप्त ।



अथ सप्तमः पटलः

श्रीदेव्याः पूर्णाभिषेकजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

महादेव ! जगद्बन्धो ! करुणासागर ! प्रभो ! ।
पूर्णाभिषेकं कौलानां वद मे सुखमोक्षदम् ॥1॥

देवी पार्वती ने शिव से कहा—हे महादेव ! हे जगद्बन्धो ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! अब आप कौल साधकों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पूर्णाभिषेक का निरूपण कीजिये ।

श्रीशिवेन पूर्णाभिषेकविधिवर्णनोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! मम प्राणवल्लभे ! परमाद्भुतम् ।
पूर्णाभिषेकं सर्वाशापूरकं शिवताप्रदम् ॥2॥

श्रीशिव बाले—हे प्राणप्रिये ! देवि ! साधकों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले कल्याणप्रद परम अद्भुत पूर्णाभिषेक के बारे में सुनो ।

पूर्णाभिषेकाय गुरोः कर्तव्यता

आगत्य सद्गुरुः सिद्धो मन्त्रतन्त्रविशारदः ।
कौलः सर्वजनख्यातश्चाभिषेकविधिं चरेत् ॥3॥
अतिगुप्तालये शुद्धे रम्ये कौलिकसम्मते ।

हे देवि ! साधक का पूर्णाभिषेक सम्पादित करने के लिये मन्त्र-तन्त्रों के रहस्यों के ज्ञाता और इस विषय में सभी लोगों में प्रसिद्ध कौल गुरु को चाहिये कि वह कुलसाधकों द्वारा स्वीकृत मानकों के अनुसार स्वच्छ, पवित्र, रमणीय और गुप्त स्थान पर आकर पूर्णाभिषेक-विधि सम्पादित करे ।

पूर्णाभिषेकाय साधकस्य कर्तव्यता

वेश्याङ्गनाः समानीय तत्त्वानि च सुयत्नतः ॥4॥
विशिष्टकौलिकान् भक्त्या तत्रैव सन्निवेशयेत् ।

हे देवि ! पूर्णाभिषेकार्थी साधक को चाहिये कि वह अभिषेक-विधि आरम्भ होने से

पूर्व ही अभिषेक-स्थल पर इस विधि में प्रयुक्त की जाने वाली तत्त्वाचारपूजा के लिये प्रयत्नपूर्वक वेश्याओं, मद्य, मास, मत्स्य तथा मुद्रा की व्यवस्था कर विशिष्ट कौलजनों को आहूत कर उन्हें सम्मानपूर्वक वहाँ बैठाये ।

अर्चयेदभिषेकार्थं गुरुं वस्त्रादिभूषणैः ॥5॥
प्रणमेद् विधिवद् भक्त्या तोषयेत्स्तुतिवाक्यतः ।
प्रार्थयेच्छुद्धभावेन कुलधर्मं वदेति च ॥6॥

साधक को चाहिये कि वह अपने अभिषेक के लिये गुरु को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्हें वस्त्राभूषणादि तथा स्तुतिवाक्यों से सन्तुष्ट कर शुद्धभाव से प्रार्थना करे कि—'हे गुरो ! आप मुझे कुलधर्म का उपदेश करें' ।

कृतार्थं कुरु मां नाथ ! श्रीगुरो ! करुणानिधे ! ।
अभिषिञ्च साधकं च सेवार्थं शरणं गतम् ॥7॥

हे करुणानिधे ! गुरुदेव ! मैं आपकी शरण में आया हूँ । कृपया आप अभिषिक्त कर अनुग्रहीत करें ।

अभिषेके गुरोः कर्तव्यानि

ततोऽभिषेक्ता तत्त्वानि शोधयेच्छुद्धिमान् मुदा ।
स्थापयित्वा पुरः कुम्भं मन्त्रमुद्रादिभिः प्रिये ॥8॥
वितानैर्धूपदीपानां कृत्वा चामोदितं स्थलम् ।
नाना पुष्पैस्तथा गन्धैः सर्वोपकरणैर्यजेत् ॥9॥

साधक द्वारा अभिषेक के लिये प्रार्थना किये जाने पर अभिषेक-विधि सम्पन्न करने वाले शक्तिसम्पन्न कौलगुरु को चाहिये कि वह प्रसन्नतापूर्वक मण्डप निर्मित कर, उस स्थल को धूपादि से सुगन्धित तथा दीपों से प्रकाशित कर, विहित मन्त्रों से कुम्भ स्थापित कर पंचतत्त्वों का शोधन करे । तत्पश्चात् विविध प्रकार के पुष्पों, सुगन्धपदार्थों तथा पूजा के अन्य साधनों से भगवती की अर्चना करे ।

समाप्य महतीं पूजां तत्त्वानि सन्निवेद्य च ।
आदौ स्त्रीभिः समर्प्यैव प्रसादाल्पं भजेत् ततः ॥10॥

इस प्रकार समारम्भपूर्वक महापूजा समाप्त कर भगवती को समर्पित प्रसाद पहले अभिषेकक्रिया में उपस्थित स्त्रियों को देकर तत्पश्चात् स्वयं भी थोड़ा प्रसाद ग्रहण करे ।

चक्रालये मद्यादिसेवनम्

शुभचक्रं विनिर्माय आगमोक्तविधानतः ।
अभिषिक्त्वा साधकांश्च पाययेत्तु स्वयं पिबेत् ॥11॥

तत्पश्चात् देशिक को चाहिये कि वह आगमोक्त विधि से पवित्र कौलचक्र की रचना करके वहाँ उपस्थित साधकों का सुरा से अभिषिक्त कर, उन्हें सुरापान कराये तथा स्वयं भी करे ।

भुञ्जीरन् मत्स्यमांसाद्यैश्चर्व्यचोष्यादिभिश्च ते ।
रमेरन् परमानन्दैर्वेश्यायां च यथासुखम् ॥12॥

सुरापान के अनन्तर गुरु को चाहिये कि वह वहाँ उपस्थित साधकोंसहित मत्स्य, मांसादि तथा अन्य चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य तथा लेह्य व्यंजनादिकों का उपभोग करें और आनन्दपूर्वक चक्रालय में उपस्थित वेश्याओं के साथ रमण करे ।

वदेयुः कर्मकर्तुश्च सिद्धिर्भवतु निश्चला ।
अभिषेचनकर्मास्तु निर्विघ्नं चेति निश्चितम् ॥13॥

हे देवि ! मद्यमांसादि पंचतत्त्वों का यथेच्छ उपभोग कर रहे गुरु और अन्य साधक अभिषेकार्थी साधक को आशीर्वाद दें कि उसे साधना में स्थिर सिद्धि मिले और अभिषेक कर्म निर्विघ्न समाप्त हो ।

चक्रालयान्निःसरणनिषेधः

चक्रालयान्निःसरेन्न जन एकोऽपि शङ्करि ! ।
प्रातःकृत्यादिकर्माणि कुर्यात् तत्रैव साधकः ॥14॥

हे शाम्भवि ! यह ध्यान रखना चाहिये कि चक्रपूजन की समाप्तिपर्यन्त चक्रगृह से बाहर कोई भी न जाय । साधक भी शौच-दन्तधावनादि समस्त कृत्य चक्रालय के भीतर ही सम्पन्न करे ।

दिनानि त्रीणि संव्याप्य भक्त्या तांस्तु समर्चयेत् ।
शिष्यश्चादौ दिवारात्रमभिषिक्तो भवेत् ततः ॥15॥

अभिषेकार्थी साधक को चाहिये कि वह अभिषेकोत्सव में भाग ले रहे साधकों और अपने गुरु की तीन दिनों तक रात-दिन मद्यमांसादि से सम्मानित कर अभिषिक्त होने की पात्रता प्राप्त करे और तदनन्तर ही अभिषिक्त हो ।

अभिषेकार्थं वस्तूनां प्राक्व्यवस्था

अनुष्ठानविधिं वक्ष्ये सादरं शृणु पार्वति ! ।
न प्रकाण्डं न हि क्षुद्रं प्रमाणं घटमाहरेत् ॥16॥
ताम्रेण निर्मितं वापि स्वर्णेन निर्मितं च वा ।
प्रवालं हीरकं मुक्ता स्वर्णरौप्ये तथैव च ॥17॥
नानालङ्कारवस्त्राणि नानाद्रव्याणि भूरिशः ।
कस्तूरीकुङ्कुमादीनि नानागन्धानि चाहरेत् ॥18॥

हे पार्वति ! अब मैं अभिषेक-कर्म में सम्पन्न की जानेवाली विधियों का निरूपण करता हूँ, इन्हें आदर और ध्यान से सुनो । सबसे पहले न तो बहुत बड़े और न ही बहुत छोटे आकार वाले ताम्र अथवा स्वर्णनिर्मित कलश की व्यवस्था कर लेनी चाहिये । स्वर्ण या ताम्र कलश के अतिरिक्त कलशपूजन में प्रयुक्त होने वाले मूँगा, हीरा, मोती, स्वर्ण तथा रजत् नामक पंचरत्नों* की व्यवस्था भी चक्रालय में पहले से ही कर लेनी चाहिये । इनके अलावा आचार्य, साधक तथा साधिकाओं को दक्षिणादि प्रदान करने के लिये स्वर्ण, रजत, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा आभूषणों आदि की व्यवस्था भी चक्रालय में पहले से कर लेनी चाहिये । हे परेशि ! इनके अलावा कस्तूरी, कुंकुम, चन्दनादि विभिन्न सुगन्धिप्रद वस्तुओं की व्यवस्था भी कर लेनी चाहिये ।

नाना पुष्पाणि माल्यानि पञ्चतत्त्वानि यत्नतः ।
विहितान् धूपदीपांश्च घृतेन परमेश्वरि ! ॥19॥

उक्त वस्तुओं के अलावा भी विभिन्न प्रकार के पुष्प, माला, मद्यादि पंचतत्त्व, घृत सहित धूपदीपादि की व्यवस्था भी अभिषेक-कर्म आरम्भ करने से पूर्व ही कर लेनी चाहिये । क्योंकि, पूजन के दौरान इन वस्तुओं को लाने के लिये चक्रालय से बाहर कोई व्यक्ति जा नहीं सकता ।

ततः शिष्यं समानीय गुरुः शुद्धालये प्रिये ! ।
वेश्याभिः साधकैः सार्द्धं पूजनं च समाचरेत् ॥20॥
पटलोक्तविधानेन भक्तितः परिपूजयेत् ।
पूजां समाप्य देव्यास्तु स्तवैस्तु प्रणमेन्मुदा ॥21॥

हे देवि ! अभिषेकोपयोगी उक्त सभी वस्तुओं की चक्रालय में उपलब्धता निश्चित कर लेने के पश्चात् गुरु को चाहिये कि वह अभिषेकार्थी साधक को चक्रालय में अभिषेक के लिये निर्धारित पवित्रस्थल पर आहूत करके वेश्याओं और साधकों के साथ भक्तिपूर्वक पटलोक्त विधि से भगवती की अर्चना करे और विधिपूर्वक देवी की पूजा सम्पन्न करके स्तुतिवाक्यों से उन्हें प्रसन्न कर प्रणाम करे ।

ततो हि शिवशक्तिभ्यो गन्धमाल्यानि दापयेत् ।
आसनं वस्त्रभूषां च प्रत्येकेन कुलेश्वरि ! ॥22॥

हे कुलस्वामिनि ! भगवती की अर्चना समाप्त कर लेने के बाद साधक को चाहिये कि वह अभिषेक-कर्म में भाग ले रहे शिव-शक्तिरूप प्रत्येक साधक और साधिका को सुगन्धित द्रव्य, माला, आसन, वस्त्र तथा आभूषणादि प्रदान करे ।

---

* प्रवालं हीरकं मुक्ता स्वर्णरौप्ये तथैव च । (7:17)

घटस्थापनम्

ततः शङ्खादिवाद्यैश्च मङ्गलाचरणैः परैः ।
घटस्थापनकं कुर्यात् क्रमं तत्र शृणु प्रिये ! ॥23॥

हे प्रिये ! तत्पश्चात् भव्य मंगलमय गीतों और शंखादि की ध्वनियों से गुंजरित मण्डप में कलश की स्थापना करनी चाहिये । मैं अब कलश-स्थापन के क्रम का उल्लेख कर रहा हूँ, ध्यान से सुनो ।

कामबीजेन सम्प्रोक्ष्य वाग्भवेनैव शोधयेत् ।
शक्त्या कलशमारोप्य मायया पूरयेज्जलैः ॥24॥

हे देवि ! अभिषेक्ता गुरु कलश को कामबीज 'क्लीँ' से प्रोक्षित, वाग्भवबीज 'ऐं' से शोधित और शक्तिबीज 'सौः' से (27 कुशों से निर्मित आधार कूर्च पर*) स्थापित कर मायाबीज 'ह्री' से उसमें जल भरे ।

प्रवालादीन् पञ्चरत्नान् विन्यसेत् तत्र यत्नतः ।
आवाहयेच्च तीर्थानि मन्त्रेणानेन देशिकः ॥25॥

हे देवि ! कलश में जलपूरण के बाद उसमें पूर्वोक्त मूँगा, हीरक, मुक्ता, स्वर्ण तथा रजत् नामक पंचरत्न डालकर अभिषेक्ता गुरु और सभी साधक-साधिकाओं द्वारा निम्न मन्त्रों से गंगादि तीर्थों का उस कलश में आवाहन करना चाहिये ।

कलशे तीर्थादीनामावाहनम्

ओं गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुदाश्च सरांसि च ।
सर्वे सागराः सरितः सरांसि जलदा नदाः ॥26॥
ह्रदाः प्रस्त्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥27॥

देवनदी गंगा, यमुना तथा सरस्वती संज्ञक पवित्र नदियों, सभी समुद्रों, पुष्करादि सरोवरों, समस्त महासागरों, नर्मदादि अन्य सरिताओं, नयनादि तालों, जलराशि से परिपूर्ण ब्रह्मपुत्र तथा शोणादि नदों, स्वर्ग, पाताल और धरती पर विद्यमान समस्त बृहदाकार गभीर ह्रदों और सभी पवित्र तीर्थों का इस पवित्र कलश में उपस्थित होने के लिये हम आह्वान करते हैं ।

कलशसंस्कारः

रमाबीजेन जप्तेन पल्लवं प्रतिपादयेत् ।
कूर्चेन फलदानं स्याद् गन्धवस्त्रहृदात्मना॥28॥

---

* सप्तविंशतिदर्भैश्च कूर्चं तस्योपरिक्षिपेत् ।　　(परमानन्दतन्त्रे, 12:25)

कलश में गंगादि सभी तीर्थों का आह्वान करने के पश्चात् रमाबीज 'श्रीं' से कलश के मुख पर (आम्रादि अथवा कुलवृक्षों* के) पल्लव रखने चाहिये। कूर्चबीज 'हूं' से फल तथा हृद्बीज 'नमः' से कलश पर गन्ध पदार्थ तथा वस्त्र रखने चाहिये।

ललनयैव सिन्दूर पुष्पं दद्यात् तु कामतः।
मूलेन दूर्वां प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं* ततः ॥29॥

हे देवि ! ललनाबीज 'स्त्रीं' से कलश पर सिन्दूर लगाना चाहिये, कामबीज 'क्लीं' से पुष्प, देवी के मूलमन्त्र से दूर्वा चढ़ाकर प्रणव अर्थात् ओंकार से कलश कर अभ्युक्षण करना चाहिये।

हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद् दर्भैस्तु ताडनम्।
विचिन्त्य मूलपीठं तु तत्र संयोज्य पूजयेत् ॥30॥

हे देवि ! अभ्युक्षण के पश्चात् कुशों द्वारा 'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से ताडन करके घट में देवी के मूलपीठ की भावना करके पीठपूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

ब्रह्मकलशप्रार्थनम्

स्वतन्त्रोक्तविधानेन प्रार्थयेदमुना बुधैः।
तद्घटे हस्तमारोप्य शिष्यं पश्यन् गुरुश्च सः ॥31॥

हे देवि ! कलश में पीठपूजा के उपरान्त गुरु को चाहिये कि वह शिष्य की ओर देखते हुए कलश पर हाथ रखकर कौलतन्त्र में निर्दिष्ट विधानानुसार कलश से निम्नोक्त प्रार्थना करे।

उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश ! देवताभीष्टदायकः।
सर्वतीर्थाम्बुसम्पूर्ण ! पूरयास्य मनोरथम् ॥32॥

'समस्त तीर्थों के पवित्र जल से पूर्ण और देवताओं की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हे ब्रह्मकलश ! उठो, जाग्रत् होकर अभिषेकार्थी इस साधक की अभिलाषा पूर्ण करो।'

अभिषिंचेद् गुरुः शिष्यं ततो मन्त्रैश्च पार्वति !।
मङ्गलैर्निखिलैर्द्रव्यैः साधकैः शक्तिभिः सह ॥33॥
पल्लवैराम्रकाद्यैश्च लतां संवीक्ष्य एव च।
आनन्दैः परमेशानि ! भक्तानां हितकारिणि ! ॥34॥

हे भक्तहितैषिणि देवि ! कलश-प्रार्थना के अनन्तर गुरु को चाहिये कि वह वहाँ उपस्थित समस्त साधकों और योगिनियों के साथ वक्ष्यमाण मन्त्रों का उच्चारण करते हुए मंगलमय पवित्र द्रव्यमिश्रित जल से 'लतां संवीक्ष्य एव च' साधक नम्रता से झुके शिरोधरांश शिष्य का उसकी शक्ति के साथ अभिषेक करना आरम्भ करे।

* 'नतिमच्छिश्यमेव' चेति पाठः क्वचित्।

अभिषेकमन्त्राः

अस्याभिषेकमन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति, ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
शक्तिर्देवता, अमुकस्य सर्वसङ्कल्पसिद्धये विनियोगः ॥

हे देवि ! मैं अभिषेक के जिन मन्त्रों का उल्लेख कर रहा हूँ, उनके साक्षात्कारकर्ता ऋषि दक्षिणामूर्ति, छदस् अनुष्टुप् तथा देवता महामाया शक्ति हैं। इन मन्त्रों का विनियोग समस्त संकल्पों की सिद्धि के लिये किया जाता है।

ओं राजराजेश्वरीशक्तिर्भैरवी कालभैरवी ।
श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैरवी ॥35॥
त्रिकुटा त्रिपुरा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुरमालिका ॥36॥
त्रिपुरानन्दिनी देवी तथैव त्रिपुरातनी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥37॥

हे पार्वति ! अभिषेक मन्त्रों को प्रणवोच्चारणपूर्वक इस प्रकार बोलना चाहिये—हे प्रिय शिष्य ! भगवती राजराजेश्वरी शक्ति, भैरवी, कालभैरवी, श्मशानभैरवी, त्रिपुरानन्द-भैरवीदेवी, त्रिकुटादेवी, त्रिपुरादेवी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेशी, महादेवी, त्रिपुरमालिका, त्रिपुरा-नन्दिनी देवी और त्रिपुरातनी नामक देवियाँ कलश के इस मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें।

छिन्नमस्ता महादेवी तथैवैकजटेश्वरी ।
तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी ॥38॥
त्वारिताख्या महादेवी तथैव च त्रिखण्डिका॥
नित्या च नित्यरूपा च वज्रप्रस्तारिणी तथा॥39॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

महादेवी छिन्नमस्ता, एकजटेश्वरी, तारा, जयदुर्गा, शूलिनी, भुवनेश्वरी, महादेवी त्वरिता, त्रिखण्डिका, नित्या, नित्यरूपा तथा वज्रप्रस्तारिणी नामक देवियाँ कलश के इस पवित्र जल से तुम्हारा अभिषेक करें।

अश्वारूढा महेशानी तथा महिषमर्दिनी ॥40॥
दुर्गा च नवदुर्गा च श्रीदुर्गा भगमालिनी ।
तथा भगन्दरी देवी भगक्लिन्ना तथा परा ॥41॥
सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा नीलसरस्वती ।
सर्वसिद्धिकरी देवी सिद्धगन्धर्वसेविता ॥42॥
उग्रतारा महादेवी तथा च भद्रकालिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥43॥

अश्वारूढा, महेशानी, महिषमर्दिनी, दुर्गा, नवदुर्गा, श्रीदुर्गा, भगमालिनी, देवी, भगन्दरी, भगक्लिन्ना, परा, देवी, सर्वचक्रेश्वरी, नीलसरस्वती, सर्वसिद्धिकरीदेवी, सिद्धगन्धर्वसेविता, उग्रतारा तथा महादेवी भद्रकालिका कलश के मन्त्रपवित्र इस जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

क्षेमङ्करी महामाया चानिरुद्धसरस्वती ।
मातङ्गिनी चान्नपूर्णा राजराजेश्वरी तथा ॥44॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे शिष्य ! क्षेमंकरी, महामाया, अनिरुद्धसरस्वती, मातंगिनी तथा राजराजेश्वरी अन्नपूर्णा कलश के मन्त्रपवित्र इस जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥45॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥46॥

उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती चण्डरूपा, अतिचण्डिका नामक देवियाँ कलश के मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा शुभदंष्ट्रा कपालिनी ।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ॥47॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे प्रिय साधक ! उग्रदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, शुभदंष्ट्रा, कपालिनी, भीमनेत्रा, विशालाक्षी, मंगला, विजया तथा जया नामक देवियाँ कलश के मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

मङ्गला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कीर्तिर्यशस्विनी ॥48॥
पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशा शोभा जया धृतिः ।
श्रीनन्दा च सुनन्दा च नन्दिनी नन्दपूजिता ॥49॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे साधक ! मंगला, नन्दिनी, भद्रा, लक्ष्मी, कीर्ति, यशस्विनी, पुष्टि, मेधा, शिवा, साध्वी, यशा, शोभा, जया, धृतिः, श्रीनन्दा, सुनन्दा, नन्दिनी तथा नन्दपूजिता नामक देवियाँ कलश के मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

विजया मङ्गला भद्रा धृतिः शान्तिः शिवाः क्षमाः ॥50॥
सिद्धिस्तुष्टिरुमापुष्टिः श्रीः ऋद्धिश्च रतिस्तथा ।
दीप्ता कान्तिर्यशोलक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च ॥51॥
एतास्त्वामभिषिंचन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे अभिषेकार्थिन् ! विजया, मंगला, भद्रा, धृतिः, शान्ति, शिवा, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि,

उमा, पुष्टि, श्री, ऋद्धि, रति, दीप्ता, कान्ति, यशोलक्ष्मी, ईश्वरी तथा बुद्धि नामक देवियाँ कलश के मन्त्रपूत जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

चक्री जयावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता ॥52॥
अजिता मानवी श्वेता दितिश्चाऽदितिरेव च ।
माया चैव महामाया मोहिनी क्षोभिणी तथा ॥53॥
कमला विमला गौरी शरण्यम्बुधिसुन्दरी ।
दुर्गा क्रियाऽरुन्धती च घण्टाकर्णा कपालिनी ॥54॥
एतास्त्वामभिषिंचन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे साधक ! चक्री, जयावती, ब्राह्मी, जयन्ती, अपराजिता, अजिता, मानवी, श्वेता, दिति, अदिति, माया, महामाया, मोहिनी, क्षोभिणी, कमला, विमला, गौरी, शरणी, अम्बुधिसुन्दरी, दुर्गा, क्रिया, अरुन्धती, घण्टाकर्णा तथा कपालिनी कलश के मन्त्रपूत इस जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

रौद्री काली च मायूरी त्रिनेत्रा चापराजिता ॥55॥
सुरूपा बहुरूपा च तथैव विग्रहात्मिका ।
चर्चिका चापरा ज्ञेया तथैव सूरपूजिता ॥56॥
एतास्त्वामभिषिंचन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे साधक ! रौद्री, काली, मायूरी, त्रिनेत्रा, परा, अजिता, सुरूपा, बहुरूपा, विग्रहा आत्मिका, चर्चिका, अपरा, अज्ञेया तथा सुरपूजिता संज्ञक शक्तियाँ तुम्हें कलश के मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें ।

वैवस्वती च कौमारी तथा माहेश्वरी परा ॥57॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कार्तिकी कौषिकी तथा ।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमालाविभूषिता ॥58॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे साधक ! वैवस्वती, कौमारी, माहेश्वरी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, कार्तिकी, कौषिकी, शिवदूती, चामुण्डा तथा मुण्डमालाविभूषिता महाकाली तुम्हें कलश के मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें ।

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ॥59॥
पवनो धनदेशानौ ब्रह्माऽनन्तो दिगीश्वराः ।
एतास्त्वामभिषिञ्चिन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥60॥

हे साधक ! इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त नामक दिक्पति तुम्हें कलश के मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें ।

संवत्सरश्चायनौ च मासाः पक्षौ दिनानि च ।
तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥61॥

वर्ष, अयन, मास, पक्ष, दिन तथा तिथियाँ तुम्हें इस कलश के मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें ।

रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः ।
राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥62॥

हे साधक ! रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु नामक नौ ग्रह इस मन्त्रपूत कलश-जल से निरन्तर तुम्हें अभिषिक्त करें ।

नक्षत्रं करणं योगोऽमृतं सिद्धिस्ततः परम् ।
दग्धं पापं तथा भद्रा योगा वाराः क्षणास्तथा ॥63॥
वारवेला कालवेला दण्डराश्यादयस्तथा ।
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥64॥

हे साधक ! नक्षत्र, करण, योग, अमृत, सिद्धि, दग्धपाप, भद्रा, योग, वारा, क्षण, वारवेला, कालवेला, दण्ड तथा राशि आदि इस मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हें निरन्तर अभिषिक्त करें ।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणाख्यश्च संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥65॥
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे शिष्य ! असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार नामक अष्ट भैरव इस मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हें निरन्तर अभिषिक्त करते रहें ।

डाकिनीपुत्रकाश्चैव राकिणीपुत्रकास्तथा ॥66॥
लाकिनीपुत्रकाश्चान्ये काकिनीपुत्रकाः परे ।
शाकिनीपुत्रका भूयो हाकिनीपुत्रकास्तथा ॥67॥
ततश्च दक्षिणीपुत्रा देवीपुत्रास्ततः परम् ।
मातृणां च तथा पुत्रा ऊर्ध्वमुख्याः सुताश्च वै ॥68॥
अधोमुख्याः सुताश्चैव उन्मुख्याश्च सुताः परे ।
अभिषिञ्चन्तु ते सर्वे मन्त्रपूतेन वारिणा ॥69॥

डाकिनीपुत्र, राकिणीपुत्र, लाकिनीपुत्र, काकिनीपुत्र, शाकिनीपुत्र, हाकिनीपुत्र, दक्षिणीपुत्र, देवीपुत्र, अष्टमातरपुत्र, ऊर्ध्वमुखी के पुत्र, अधोमुखी के पुत्र तथा उन्मुखी आदि के पुत्र मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥70॥

हे साधक ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हें अभिषिक्त करें ।

पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडशः ।
आत्माऽन्तरात्मा परमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ॥71॥
आत्मनश्च गुणाश्चैव स्थूलाः सूक्ष्माश्च येऽपरे ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥72॥

हे साधक ! पुरुष, प्रकृति, महदादि सोलह विकार, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, तीन गुण, अन्य भी तो स्थूल-सूक्ष्मादि तत्त्व हैं, वे सभी मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

वेदादिबीजं हुंबीजं स्त्रीबीजं मीनकेतनम् ।
शक्तिबीजं रमाबीजं मायाबीजं सुधाकरम् ॥73॥
चिन्तामणिर्महाबीजं नारसिंहं च शाङ्करम् ।
मार्तण्डभैरवं दौर्गं बीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥74॥
गाणपत्यं च वाराहं कालीबीजं भयापहम् ।
एतानि चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥75॥

वेदादिबीज ओंकार, वराहबीज हुं, स्त्रीबीज स्त्रीं, मीनकेतनबीज क्लीं, शक्तिबीज सौः, रमाबीज श्रीं, मायाबीज ह्रीं, सुधाकरबीज सं, महाबीज चिन्तामणि र्क्ष्म्र्यौंऊं, नारसिंह बीज क्ष्रौं, शांकरबीज हं, मार्तण्डभैरवबीज हर्ष्व्र्यूं* सूर्यबीज मं, भैरवबीज भं, (ओं ह्री हुं†) दुर्गाबीजं दुं तथा श्रीपुरुषोत्तमबीज क्लीं, गणपतिबीज गं, वाराहबीज हूं तथा भयविनाशक कालीबीज क्रीं मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

गङ्गा गोदावरी रेवा यमुना च सरस्वती ।
आत्रेयी भारती चैव सरयूर्गण्डकी तथा ॥76॥
करतोया चन्द्रभागा श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ॥77॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

हे प्रिय ! गंगा, गोदावरी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, आत्रेयी, भारती, सरयू, गण्डकी, करतोया, चन्द्रभागा, श्वेतगंगा, कौशिकी अर्थात् विश्वामित्री, पातालप्रवाहिनी भोगवती तथा स्वर्गप्रवाहिनी गंगा मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

---

* आकाशमग्निपवनसाद्यान्तार्धीशबिन्दुमत् ।
मार्तण्डभैरवं नाम बीजमेतदुदाहतम् ॥ (पुरश्चर्यार्णवेऽष्टमतरङ्गे)

† तारत्रपारोषबीजम् ...... । (पुरश्चर्याणवे एकादशतरङ्गे)

भैरवो भीमरूपश्च शोणो घर्घर एव च ॥78॥
सिन्धुश्चैव ह्रदश्चैव तथा पातालसम्भवाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥79॥

भयंकर गर्जना करते हुए बहने वाला विशालाकार शोण, घर्घर सिन्धु नामक महानद तथा धरा को फोड़कर पाताल से निकलने वाले गहरे ह्रद अर्थात् ताल (स्रोत) मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तानि त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥80॥

हे अभिषेक्य साधक ! उपर्युक्तों के अतिरिक्त भी जो महान् और पवित्र तीर्थ अर्थात् जलनिधि हैं, वे सब भी मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

मतिश्च वल्लभा वह्नेर्वषट्कूर्चमतः परम् ।
वौषट्कारं हुं फट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥81॥

नमः, अग्निप्रिया स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् स्वरूप जो षडंगमन्त्र हैं, वे भी मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

जम्बुद्वीपादयो द्वीपाः सागरा लवणादयः ।
अनन्ताद्यास्तथा नागाः सर्पा ये तक्षकादयः॥82॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।

जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामक सप्तद्वीप, लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जल वाले सात सागर, नागराज अनन्तसहित समस्त नाग जातियाँ तथा सर्पराज वासुकिसहित तक्षकादि समस्त सर्प जातियाँ मन्त्रपूत कलश-जल से तुम्हारा अभिषेक करें ।

नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये ॥83॥
पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेण ताडिताः ।

प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षस, दानव, पिशाच, गुह्यक तथा भूतदि हैं वे सभी अभिषेक के पवित्र कलश-जल से प्रताडित होकर नष्ट हो जायँ ।

अलक्ष्मीः कालकर्णी च पापानि च महान्ति च ॥84॥
नश्यन्तु चाभिषेकेण ताराबीजेन ताडिताः ।

हे साधक ! भगवती तारा के बीज 'स्त्रीं' से अभिमन्त्रित पवित्र कलश-जल से प्रताडित अलक्ष्मी, कालकर्णी तथा बड़े-बड़े पातक भी नष्ट हो जायें ।

रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्तविक्रिया ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण वाग्बीजेनैव ताडिताः ॥85॥

हे साधक ! तुम्हारे सभी रोग, शोक, दारिद्र्य, दौर्बल्यं तथा भ्रान्त्यादि चित्तविकार वाग्बीज 'ऐं' से अभिमन्त्रित इस पवित्र कलश-जल के अभिषेक से नष्ट हो जायें।

***लोकानुरागत्यागश्च दौर्भाग्यमपि दुर्यशः ।**
नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेन च ताडिताः ॥86॥

साधक के प्रति जनानुराग की समाप्ति, दुर्भाग्य, अपयश आदि भी कामबीज 'क्लीं' से ताडित होकर नष्ट हो जायें ।

तेजो ह्रासो बलह्रासो बुद्धिह्रासस्तथैव च ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण शक्तिबीजेन ताडिताः ॥87॥

साधक के वर्चस्, बल और बुद्धि का ह्रास शक्तिबीज 'सौं' से अभिमन्त्रित कलश-जल से ताड़ित होकर नष्ट हो जायें ।

विषाऽपमृत्युरोगाश्च डाकिन्यादिभयं तथा ॥88॥
घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रहा नागास्तथा परे ।
नश्यन्तु चाभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः ॥89॥

हे साधक ! शत्रुओं द्वारा तुम पर किये गये समस्त विष, अपमृत्यु, रोग, डाकिन्यादि-भय, तथा उनके भयंकर अभिचार-प्रयोग क्रूर ग्रहों तथा नागादि से उत्पन्न होने वाले सभी भय कालीबीज 'क्रीं' से अभिमन्त्रित इस कलश-जल के अभिषिंचन से नष्ट हो जायें ।

साधकायाशीर्वादप्रदानम्

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेण शाक्तेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥90॥

हे देवि ! अन्त में इस शाक्तकौलाभिषेकोत्सव में सम्मिलित सभी साधकों और साधिकाओं सहित अभिषेक्ता गुरु अभिषिक्त साधक को आशीर्वाद प्रदान करे—

'हे कौलसाधक ! इस शाक्ताभिषेक से तुम्हारे जीवनमार्ग में आने वाली समस्त विपदाएँ दूर हों । तुम्हें सर्वदा अचल सम्पदाएँ प्राप्ति हों और तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हों ।'

साधकाय पुनर्दीक्षा

ततो गुरुः प्राप्तमन्त्रं दीक्षयेत्पुनरेव हि ।
तदा सिद्धिर्भवेत्सत्यं नान्यथा वचनं मम ॥91॥

अभिषेक के पश्चात् मन्त्रप्राप्ति शिष्य को गुरु पुनः दीक्षा दे । ऐसा करने पर ही निश्चितरूप से सिद्धि की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं ।

---

* अधिकपाठः क्वचित्

गुरोः दक्षिणाप्रदानम्

ततो देवीं गुरुं चैव प्रणमेद् बहुधा मुदा ।
दक्षिणा गुरवे दद्यात् स्वर्णकाञ्चनमानतः ॥92॥

गुरु से दुबारा दीक्षा प्राप्त करने के बाद साधक को चाहिये कि वह भगवती महामाया कामाख्या और अपने गुरु को प्रणाम करके गुरु को सम्मानपूर्वक स्वर्णकांचनादि के रूप में शास्त्र-विहित दक्षिणा प्रदान करे ।

नानावस्त्रैरलङ्कारैर्गन्धमाल्यादिभिस्तथा ।
तोषयेत्स्तुतिवाक्यैश्च प्रणमेत्पुनरेव हि ॥93॥

इसके अलावा भी दीक्षित शिष्य को चाहिये कि वह विविध प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों, गन्धमाल्यादिकों तथा प्रशंसावचनों द्वारा गुरु को प्रसन्न कर उन्हें बार-बार प्रणाम करे ।

श्रीगुरुणाशीर्वादप्रदानम्

कायेन मनसा वाचा गुरुः कुर्यात् तथाशिषः ।
वात्सल्यैर्विविधैः शिष्यं ग्राहयेत् तत्त्वमुत्तमम् ॥94॥

दीक्षित शिष्य से प्रभूत दक्षिणा प्राप्त करने के बाद गुरु को चाहिये कि वह मन, वाणी, कर्म तथा स्नेहिल वचनों से उसे आशीष दे और उत्तम कोटि का मद्य पिलाये ।

दीक्षानन्तरं सर्वैः सहानन्दोत्सवः

गुरुश्च भैरवैः सार्द्धं शक्तिभिर्विहरेन्मुदा ।
भैरवाः शक्तयश्चापि कुर्युराशीः सुयत्नतः ॥95॥

शिष्य को उत्तम कोटि का मद्य प्रदान करने के बाद गुरु को भी चाहिये कि वह वहाँ विद्यमान भैरवोंसहित लताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक उन्मुक्त विहार करे । भैरवों और भैरवियों को भी चाहिये कि वे नव अभिषिक्त दीक्षित साधक को मनसा, वाचा कर्मणा आशीष दें ।

अष्टमे दिवसे पुनरभिषेचनम्

तथा त्रिदिवसं व्याप्य भोजयेद् भैरवान् बुधः ।
अष्टमे दिवसे शिष्यं पुनः कुर्यात् तु सेचनम् ॥96॥
ताम्रपात्रोदकैर्देवि ! विद्यारत्नं जपन् सुधीः ।
कुल्लुकांश्च तथा सप्तसम्पत्तिहेतवे प्रिये ! ॥97॥

हे देवि ! इस प्रकार बुद्धिमान् गुरु को चाहिये कि वह शेष तीन दिनों तक भैरवों के साथ चक्रालय में ही रुक कर विहार करे तथा आठवें दिन साधक की समस्त आकांक्षाओं

की पूर्ति के लिये कुल्लकादिसहित मन्त्रराज कामाख्या मन्त्र का जप करते हुए ताम्र-कलश के जल से पुनः उसका अभिषेक करे ।

पूर्णशाक्ताभिषेकसमाप्तिः

शक्तिभ्यो भैरवेभ्योऽपि ततो वस्त्रादिभूषणम् ।
दद्यात्प्रयत्नतः साधुर्विद्धि देवि ! समापनम् ॥98॥

हे पार्वति ! अन्त में साधक को चाहिये कि वह लताओं और भैरवों को भी आदरपूर्वक वस्त्रभूषणादि प्रदान कर उन्हें विसर्जित करे । दे देवि ! उक्त सभी क्रियाओं के सम्पन्न होने के साथ ही अभिषेक-कर्म की समाप्ति समझनी चाहिये ।

श्रीदेव्याः कौलगुरुलक्षणजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं रहस्यं देवेश ! चाऽभिषेचनकर्मणि ।
गुरुः कौलाधिकारी स्यादत्र तन्मे वद प्रभो ! ॥99॥

श्रीपार्वती ने भगवान् शिव से कहा—हे महादेव ! शाक्ताभिषेक की रहस्यात्मक विधियों के बारे में मैंने जान लिया । आपने कहा है कि उक्त अभिषेक क्रिया की सिद्धि के लिये योग्य गुरु और योग्य शिष्य की अपेक्षा होती है । कृपया आप यह बताइये कि ऐसे कौल अधिकारी गुरु के क्या लक्षण हैं ?

श्रीशिवेन कौलगुरोर्लक्षणनिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

महाज्ञानी कौलिकेन्द्रः शुद्धो गुरुपरायणः ।
निग्रहाऽनुग्रहे शक्तः शिष्यपालनतत्परः ॥100॥
पुत्रदारादिभिर्युक्तः सज्जनस्तु प्रपूजितः ।
श्रद्धावानागमे नित्यं सोऽधिकर्ता न चान्यथा ॥101॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! महान् ज्ञानी, कौलिकों में श्रेष्ठ, शुद्धाचरण, गुरुभक्त, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, शिष्यों के कल्याण में रत, पुत्रस्त्री आदि परिवारजनों से सम्पन्न, सज्जनों द्वारा नित्य सम्मानित तथा श्रद्धावान् साधक ही कौलगुरु बनने का अधिकारी हो सकता है, अन्य नहीं ।

गुरुत्वेऽनधिकारित्वकथनम्

अन्धं खञ्जं तथा रुग्णं स्वल्पज्ञानयुतं पुनः ।
सामान्यकौलं वरदे ! वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥102॥

हे देवि ! किसी अन्ध, खंज, रुग्ण, अल्पज्ञ तथा साधारण कौल साधक को भी गुरु नहीं बनाना चाहिये ।

उदासीनाद् दीक्षा वन्ध्या नारी इव

उदासीनं विशेषेण वर्जयेन्मतिमान् सदा ।
उदासीनमुखाद् दीक्षा वन्ध्या नारी यथा प्रिये ॥103॥

हे प्रिये ! संसार से उदासीन (विरक्त संन्यासी) किसी व्यक्ति को तो विशेष रूप से कभी गुरु बनाना ही नहीं चाहिये । उदासीन गुरु से ली गयी दीक्षा वन्ध्या नारी की भाँति निष्फल होती है ।

उदासीनगुरुणा दीक्षितस्य पदे पदे विघ्नाः

अज्ञानाद् यदि वा मोहादुदासीनात्तु पामरः ।
अभिषिक्तो भवेत् देवि ! विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥104॥

हे देवि ! यदि कोई व्यक्ति अज्ञान अथवा भूल से संन्यासी व्यक्ति से दीक्षा प्राप्त कर लेता है, तो ऐसे नीच व्यक्ति के जीवन में पद-पद पर बाधायें आती हैं ।

उदासीनतः दीक्षा निष्फला

किं तस्य जपपूजाभिः किं ध्यानैः किं च भक्तितः ।
सर्वं हि विफलं तस्य नरकं याति चान्तिमे ॥105॥

हे देवि ! विरक्त गुरु से दीक्षित साधक का जप, पूजा, ध्यान तथा देवता के प्रति भक्ति सब कुछ निष्फल होता है और मृत्यु के अनन्तर ऐसा साधक नरक में जाता है ।

उदासीनतः दीक्षा नरकाय भवति

कल्पकोटिशतं देवि ! भुङ्क्ते स नरकं सदा ।
ततो हि बहुजन्मेभ्यो देवीमन्त्रमवाप्नुयात् ॥106॥

हे देवि ! विरक्त गुरु से दीक्षा लेने वाला साधक करोड़ों कल्पों तक नरक भोगने के बाद अनेक जन्मों के पश्चात् किसी योग्य कौलगुरु से देवी की साधना का मन्त्र प्राप्त करने में सफल होता है ।

गृहस्थकौलगुरुतः पुनर्दीक्षायाः ग्राह्यत्वम्

ततो हि विहितं शुद्धं गृहस्थं गुरुमालभेत् ।
अभिषेचनकर्माणि पुनः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥107॥

हे देवि ! दुर्भाग्य से यदि कोई साधक उदासीन गुरु से दीक्षा प्राप्त कर ले, तो उसे चाहिये कि किसी पवित्राचरण गृहस्थ गुरु से दीक्षा लेकर उससे विधिपूर्वक पुनः अभिषेक-कर्म सम्पादित कराये ।

सफलं हि सदा कर्म सर्वं तस्य भवेद् ध्रुवम् ।
विद्यापि जननी तुल्या पालितं सततं प्रिये ॥108॥

अयोग्य गुरु को त्यागकर योग्य कौलगुरु से पुनः दीक्षित होने के पश्चात् साधक जो भी साधना करता है, वह सफल होती है और कुलविद्या भी माता की भाँति सर्वदा उसका पालन करती है ।

कौलिकगुरुतः पुनरभिषेचनम्

यथा पशुं परित्यज्य कौलिकं गुरुमालभेत् ।
उदासीनं परित्यज्य तथाऽभिषेचनं मतम् ॥109॥

हे देवि ! जिस प्रकार कोई साधक पशुगुरु को छोड़कर कौलगुरु का वरण करता है, उसी प्रकार उदासीन गुरु का त्याग कर योग्य गृहस्थ गुरु से अभिषिक्त और दीक्षित होना चाहिये ।

अभिषिक्तः शिवः साक्षादभिषिक्तो हि दीक्षितः ।
स एव ब्राह्मणो धन्यो देवीदेवपरायणः ॥110॥

हे पार्वति ! योग्य और अधिकारी कौलगुरु से अभिषिक्त साधक साक्षात् शिव है और ऐसा अभिषिक्त साधक ही दीक्षित कहा जाता है । वही ब्राह्मण है, वही सच्चा देवी-देव भक्त है । वास्तव में ऐसा अभिषिक्त साधक धन्य है ।

गृहस्थगुरुतो दीक्षा सर्वार्थसाधिकी

तस्यैव सफलं जन्म धरण्यां शृणु पार्वति ! ।
तस्यैव सफलं कर्म तस्यैव सफलं धनम् ॥111॥
तस्यैव सफलो धर्मः कामश्च सफलो मनुः ।
दीक्षा हि सफला देवि ! क्रिया च सफला तनुः ॥112॥

हे पार्वति ! इस धरती पर गृहस्थ कौलगुरु से अभिषिक्त और दीक्षित साधक का ही जन्म सफल है, उसी के कर्म सफल हैं तथा उसी का धन सार्थक है । ऐसे साधक द्वारा सम्पादित धर्म और काम सफल हैं, उसी की दीक्षा, क्रियाएँ तथा शरीर सफल हैं ।

सर्वं हि सफलं तस्य गिरिजे ! किं बहु वचः ।
यत्र देशे वसेत्साधुः सोऽपि वाराणसीसमः ॥113॥
तस्य क्रोडे वसन्तीह सर्वतीर्थानि निश्चितम् ।
सत्यं सत्यं महामाये ! पुनः सत्यं मयोदितम् ॥114॥

हे गिरिजे ! अधिक क्या कहूँ ? ऐसे साधक का सब कुछ सफल है । ऐसा साधक जहाँ भी रहता है, वह स्थान काशी के समान पवित्र है । समस्त तीर्थ उसकी गोद में निवास करते हैं । हे महामाये ! मेरा यह कथन सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।

शाक्ताभिषेकविधिः महीयसी

उक्तानि यानि यानीह सेचनानि च पार्वति !
सर्वतन्त्रेषु नाऽन्यस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ॥115॥

हे पार्वति ! विभिन्न तन्त्रों में जो भी अभिषेक-विधियाँ बतायी गयी हैं, वे इस अभिषेक विधि का, जिसका निरूपण मैंने अभी यहाँ किया है, महत्त्व में षोडशांश भी नहीं है ।

योग्यं गुरुं तथा शिष्यं विनैतत्पटलं न हि ।
जायते देवदेवेशि ! सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥116॥

हे देवि ! मैं सत्य कह रहा हूँ । योग्य गुरु और योग्य शिष्य के बिना मेरे द्वारा निरूपित यह अभिषेक हो ही नहीं सकता ।

इदं तु सेचनं देवि ! त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
गणेशः पात्रमत्रैव कार्तिकेयोऽपि पार्वति ! ॥117॥

हे देवि ! मेरे द्वारा वर्णित विधि से सम्पन्न अभिषेक तीनों लोकों में दुर्लभ है । ऐसे अभिषेक का पात्र गणेश और कार्तिकेय ही है ।

मम तुल्यो ब्रह्मतुल्यो विष्णुतुल्योऽत्र भाजनम् ।
पञ्चवक्त्रैश्च शक्तो न वर्णितुं परमेश्वरि ! ॥118॥

हे परेशि ! इस प्रकार के अभिषेक का पात्र वही हो सकता है, जो मुझ जैसा, ब्रह्मा जैसा या विष्णु जैसा हो । अधिक क्या ? मैं अपने पाँच मुखों से भी इस अभिषेक की महिमा का वर्णन करने में सक्षम नहीं हूँ ।

शाक्ताऽभिषेकविधेर्गोपनीयत्वम्

इति ते कथितं गुप्तं सेचनं परमं महत् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥119॥

हे देवि ! मैंने तुम्हारे समक्ष अत्यन्त महिमाशाली और अति गोपनीय शाक्ताभिषेक का निरूपण किया है । मेरा अनुरोध है कि इसे गोपनीय ही रखना, इसका उल्लेख किसी अनधिकारी से न करना ।

यथा रतिर्गोपनीया यथा कि स्तनमण्डलम् ।
यथा योनिर्गोपनीया तथाऽभिषेचनं परम् ॥120॥

हे भगवति ! जिस प्रकार रतिकर्म गोपनीय है, जैसे उरोजमण्डल गोपनीय है, जैसे योनि गोपनीय है, उसी प्रकार मेरे द्वारा वर्णित यह अभिषेक-कर्म भी गोपनीय है ।

निखाते धनमागत्य गोपयेत् तु यथा नरः ।
तथैव तु महामाये ! गोपनीयं ममाज्ञया ॥121॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे देवीशिवसंवादे सप्तमः पटलः समाप्तः ॥



हे महादेवि ! जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने धन को गहरे और गुप्त स्थान पर सुरक्षित करता है, उसी प्रकार तुम भी अभिषेक की इस विधि को अपने हृदय की गहराइयों में छिपा कर रखना, यह मेरा आदेश है ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का सप्तम पटल समाप्त ।



अथाष्टमः पटलः

मुक्तितत्त्वं प्रति देव्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

मुक्तितत्त्वं महादेव ! वद मे करुणानिधे ! ।
यस्मिन् षड्दर्शनानीह चोपहास्यगतानि च ॥1॥

श्रीदेवी ने पूछा—हे करुणानिधे ! जिस मुक्ति नामक तत्त्व के स्वरूप के विषय में किसी निर्णय पर न पहुँच पाने और परस्पर विपरीत बातें कहने के कारण न्याय-वेदान्तादि छह दर्शन उपहास के पात्र बनते हैं, आप उस मुक्ति के स्वरूप के बारे में मुझे बताइये ।

श्रीशिव उवाच

श्रृणु देवि ! शुभे ! विज्ञे ! यत्पृष्टं तत्त्वमुत्तमम् ।
एतन्मर्म च देवेशि ! अहं वेद्मि तथा हरिः ॥2॥

श्रीशिव ने कहा—हे कल्याणि ! विदुषि ! देवि ! जिस मुक्ति नामक तत्त्व के स्वरूप के विषय में तुमने पूछा है, उसे या तो मैं जानता हूँ, या विष्णु ।

श्रीशिवस्योत्तरम्
षड्दर्शनानि लोकमोहनान्येव

मोदकेन तथा लोकः प्रतारयति बालकान् ।
लगुडेन यथा देवि ! बध्नाति दुर्जनं नृपः ॥3॥
तथा मुग्धीकृता लोका दर्शनैर्बर्बरो मया ।
दुर्जने यदि मुक्तिः स्याच्छङ्कीयति शुभानने ! ॥4॥

हे देवि ! दर्शनों द्वारा मुक्ति के स्वरूप का ज्ञान नहीं कराया जा सकता । जिस प्रकार लड्डुओं से बच्चों को बहलाया या बहकाया जाता है, उसी प्रकार दर्शनों द्वारा अल्पबुद्धि लोगों को बहकाने के लिये मैने ही दर्शनों की रचना की है ।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार कोई शासक अपराधियों को कारागार आदि में बन्द कर उन्हें नियन्त्रित करता है, उसी प्रकार शास्त्रों में नरकादि में पतन का भय दिखाकर दुष्ट लोगों को दुष्कर्म से रोकने के लिये मैंने ही शास्त्रों का अवतरण किया है । बस, शास्त्रों का महत्त्व इतना है, इससे अधिक नहीं । हे पार्वति ! परस्पर-विरुद्ध और अनिश्चित बात कहने वाले शास्त्रों के अध्ययन या पठन से मुक्ति की बात तो शंकास्पद ही है ।

षड्दर्शनकूपे पतिताः पशवः एव

षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः प्रिये ! ।
परमार्थं न जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥5॥

हे पार्वति ! षड्दर्शन तो ऐसे गहरे अन्धकूप हैं, जिनमें गिरकर पशु व्यक्तियों को ज्ञान का प्रकाश कभी मिल ही नहीं सकता । दर्शनों के भ्रमजाल में फँसे पाशव लोग परमार्थ के ज्ञान का आनन्द उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते, जैसे कड़छी किसी व्यंजन के रस का आनन्द नहीं ले सकती ।

दर्शनेषु मुक्तिनिषेधः

न सारः कदलीवृक्षे नैरण्डे तु शुभानने ! ।
दर्शनेषु तथा मुक्तिर्नास्ति देवि ! मयोदितम् ॥6॥

हे निष्पापदेवि ! जिस प्रकार कदली और एरण्ड के वृक्ष में कोई सारतत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार दर्शन नि:सार हैं, उनमें मुक्तिरस का अभाव है ।

दर्शनैर्मुक्त्याशा मृगमरीचिका एव

यथा मरीचिकायास्तु निर्वर्तन्ते पुनर्मृगाः ।
दर्शनेभ्यो निवर्तन्ते तथा मुमुक्षवः पुनः ॥7॥

हे पार्वति ! जिस प्रकार जल की लालसा में मरीचिका के पीछे भागते हुए मृग अन्त में निराश होकर वापस लौट आते हैं, उसी प्रकार दर्शनों में मुक्तितत्त्व खोजने वाले मुमुक्षु उनमें मुक्तितत्त्व न पाकर उन्हें छोड़कर साधना की ओर वापस लौट आते हैं ।

कौतुकायैव शास्त्रोपयोगिता

श्रीगुरोश्च प्रसादेन मुक्तिमादौ सदा लभेत् ।
विचरेत्सर्वशास्त्रेषु कौतुकाय ततः सुधीः ॥8॥

हे पार्वति ! दर्शनों में भटकने से मुक्ति नहीं मिल सकती । इसलिये मुमुक्षु को चाहिये कि वह पहले श्रीगुरु को प्रसन्न कर उनसे मोक्षतत्त्व को जाने । इसके बाद मनोविनोद के लिये वह शास्त्रों का अध्ययन कर सकता है ।

श्रीशिवेन मुक्तितत्त्वनिर्वचनम्

मुक्तितत्त्वं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु पार्वति ! ।
शरीरधारणं यस्य कुर्वन्तीह पुनः पुनः ॥9॥

अच्छा तो, हे पार्वति ! अब तुम उस मुक्तितत्त्व के स्वरूप के बारे में आदर और ध्यानपूर्वक सुनो, जिसे प्राप्त करने के लिये मानव इस धरा पर जन्म लेता है ।

आदावनुग्रहो देव्याः श्रीगुरोस्तदनन्तरम् ।
तदाननात् ततो दीक्षा भक्तिः तस्याः प्रजायते ॥10॥

हे देवि ! मुक्ति के लिये पहले तो भगवती के अनुग्रह की आवश्यकता होती है, फिर सद्गुरु की कृपा से उमके श्रीमुख से मन्त्रदीक्षा की । गुरुमुख से मन्त्रदीक्षा से साधक के हृदय में भगवती के प्रति अनन्य भक्ति उत्पन्न होती है ।

ततो हि साधनं शुद्धं तस्माज्ज्ञानं सुनिर्मलम् ।
ज्ञानान्मोक्षो भवेत्सत्यमिति शास्त्रस्य निर्णयः ॥11॥

हे देवि ! साधक में भगवती के प्रति अनन्य भक्ति से मोक्ष के लिये आवश्यक शुद्ध साधनों की उपलब्धि होती है और साधनप्राप्ति से विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, यही शाक्तशास्त्र का निर्णय है ।

मुक्तेश्चतुर्विधत्वकथनम्

मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता सालोक्यं तु शुभानने ! ।
सारूप्यं सहयोज्यं च निर्वाणं तु परात्परम् ॥12॥

हे सुमुखि ! सालोक्य, सारूप्य, सहयोज्य और निर्वाण-भेद से मुक्ति चार प्रकार की कही गयी है । 'निर्वाण' मुक्ति का परात्पर स्वरूप है ।

सालोक्यं वसतिर्लोके सारूप्यं तु स्वरूपता ।
सायुज्यं कलया युक्तं निर्वाणं तु मनोलयः ॥13॥

हे पार्वति ! देवी के साथ उनके लोक में ही साधक का निवास सालोक्य मुक्ति, भगवती के स्वरूप की प्राप्ति सारूप्य मुक्ति, देवी की कलाओं से युक्त होना सायुज्य तथा उनके स्वरूप में मनस् का लय निर्वाणमुक्ति कहलाता है ।

सम्यक्लयः स्वरूपे देव्या जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

सम्यग् लयो जनस्यैव निर्वाणं यत् तु कथ्यते ।
तत् किं वद महादेव ! संशयं लयसात्कुरु ॥14॥

देवी पार्वती ने कहा—हे शिव ! अभी आपने कहा कि व्यक्ति के मनस् अर्थात् अहन्ता का देवी में लय निर्वाण है । यह भी कहा जाता है कि जीव का पराशक्ति में सम्यक् लय निर्वाण है । मनस् और जीव में भेद है । तो कृपया यह बताकर आप मेरे सन्देह को दूर कीजिये कि पराशक्ति में मनस् का लय (जो व्यक्ति की जीवित अवस्था में ही सम्भव है) निर्वाण है, या जीव का लय (जो मृत्यु के बाद ही सम्भव है) निर्वाण है ?

श्रीशिव उवाच

व्यक्तिर्लयात्मिका मुक्तिरसुराणां दयानिधे !।
दुर्जनत्वाल्लोपयित्वा क्रीडयामि सुरानहम् ॥15॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते है—आसुरीवृत्तिवाले और दैवीवृत्तिवाले । आसुरीवृत्तिवाले स्वभाव से दुष्ट होते हैं । उनकी भी लयात्मिका मुक्ति होती है, किन्तु यह मुक्ति इस लोक से उनकी दैहिक मुक्ति के रूप में होती है । मैं उन्हें मारकर सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य अथवा निर्वाणरूपा मुक्ति नहीं देता, अपितु उन्हें उनके कर्मों के अनुसार पुन: जन्म देता हूँ । लेकिन, जो लोग दैवीवृत्ति वाले होते हैं, उन्हें मैं उनकी साधनानुसार सालोक्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति प्रदान कर उनके साथ कीडा करता हूँ ।

मनोलयात्मिका मुक्तिरिति जानीहि शङ्करि !।
प्राप्ता मया विष्णुना च ब्रह्मणा नारदादिभिः ॥16॥

लेकिन, हे शाम्भवि ! वास्तविक मुक्ति तो मनोलयात्मिका ही होती है । जीव के बन्ध और मोक्ष का कारण तो उसका अपना मनस् ही है । मन का अपने इष्ट में विलयन हो जाना ही वास्तविक मोक्ष है । ऐसा मोक्ष प्राप्त करना साधारण साधक के वश में नहीं है । ऐसी मुक्ति तो स्वयं मैंने, विष्णु ने तथा नारदादि कुछ महर्षियों ने ही प्राप्त की है ।

सालोकी केवलं यत् तु याति सारोप्ययुक् द्वयम् ।
त्रिधा सायोज्यवानेति निर्वाणी सर्वमेव हि॥17॥

हे देवि ! सालोक्य मुक्ति में साधक मेरे लोक में निवास करते हैं, लेकिन, मुझमें वे आत्मसात् नहीं होते, उनका 'जीवात्मक अस्तित्व' अलग ही बना रहता है । 'सारोप्य' मुक्ति में साधक को 'शिवत्व' प्राप्त हो जाता है, उसे 'शिवोऽहं' का ज्ञान तो हो जाता है, लेकिन, 'सर्वोऽहम्' की अनुभूति नहीं होती, द्वैत बना रहता है । तीसरे प्रकार की मुक्ति 'सायुज्य' होती है । इसमें जीव शिव के साथ जुड़ तो जाता है, लेकिन, उसमें 'अहन्ता' बनी रहती है । निर्वाणमुक्ति में साधक को 'अहमेवमिदं सर्वम्' अर्थात् 'सब कुछ मैं ही हूँ' की अनुभूति हो जाती है ।

नीलोत्पलदलश्यामाश्यामैव मुक्तिः

नीलोत्पलदलश्यामा मुक्तिर्द्विदलवर्तिनी ।
मुक्तस्यैव सदा स्फीता स्फुरत्यविरतं प्रिये ! ॥18॥

हे देवि ! नीलकमल की आभावली यह निर्वाण मुक्ति तो दो दलों 'शिव और जीव' के बीच 'शक्ति' के रूप में विद्यमान है । जीव और ईश के बीच विद्यमान शक्ति जब अपना विस्तार करती है, तो वह जीव की अहन्ता को अपने अन्दर समा लेती है । ऐसी स्थिति में जीव की अहन्ता 'देवी देहे प्रलीयते' जीव का अपने इष्ट के साथ निश्चल ऐक्य स्थापित

हो जाने पर जीव संसार से मुक्त हो जाता है । जीव का शक्ति में लय हो जाना ही निर्वाण है ।

सनातनी जगद्वन्द्या सच्चिदानन्दरूपिणी ।
परा च जननी सैव सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥19॥

हे पार्वति ! साधकों को आत्मसात् कर उन्हें लयात्मिका मुक्ति प्रदान करने वाली भगवती कामाख्या सनातनी, जगद्वन्दनीया, सच्चिदानन्दरूपिणी, समस्त ब्रह्माण्ड की जननी, साधकों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली परात्पर परमेश्वरी हैं ।

कुलज्ञानमेव मुक्तिज्ञानम्

इष्टे निश्चलसम्बन्धः स च निर्वाणमीरितम् ।
मुक्तिज्ञानं कुलज्ञानं नान्यज्ञानं कुलेश्वरि ! ॥20॥

इस प्रकार हे कुलस्वामिनि ! ! जैसा मैंने कहा कि इष्ट में अपने मन को विलीन कर निश्चल सम्बन्ध बना लेना ही निर्वाण है । मुक्ति के इस स्वरूप को समझना और उसकी अनुभूति करना ही 'कुलज्ञान' है । इससे भिन्न ज्ञान कुलज्ञान नहीं है ।

साधूनां देवदेवेशि ! सर्वेषां विद्धि निश्चितम् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये मुक्ता भवन्ति हि ॥21॥
बभूवुश्च भविष्यन्ति सर्वेषां मुक्तिरीदृशी ।

हे देवि ! तीनों लोकों में जो भी मुक्त हैं या होंगे, उनकी मुक्ति का सच्चा स्वरूप उनका अपने इष्ट में मनोलयात्मक ही होगा ।

मुक्तेः साधनं पञ्चतत्त्वम्

तथा च साधनं ज्ञेयं पञ्चतत्त्वैश्च मुक्तिदम् ॥22॥

इस मनोलयात्मिका मुक्ति का साधन मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन नामक पंचतत्त्व ही है । इस प्रकार की मुक्ति इन पंचतत्त्वों के बिना किन्हीं अन्य साधन से सम्भव नहीं है ।

अनुग्रहस्तु देव्या यः कुलमार्गप्रदर्शकः ।
दीक्षा कुलात्मिका देवि ! श्रीगुरोर्मुखपङ्कजात् ॥23॥

हे देवि । निर्वाण प्राप्ति के लिये कुलमार्ग पर चलना आवश्यक है । कुलमार्ग का ज्ञान भगवती की कृपा के बिना सम्भव नहीं है । भगवती की कृपा से सद्गुरु के मुखकमल से कुलात्मिका दीक्षा प्राप्त होती है ।

कुलद्रव्येषु भक्तिरेव मुक्तिप्रदा

कुलद्रव्येषु या भक्तिः सा मोक्षदायिनी मता ।
ज्ञात्वा चैवं प्रयत्नेन कुलज्ञानं भजेद् बुधः ॥24॥

हे पार्वति ! साधक को विश्वास होना चाहिये कि मद्यादि कुल द्रव्यों के प्रति अनुराग से मोक्ष की प्राप्ति होती है । ऐसा निश्चय करके ही उसे कुलज्ञान प्राप्ति के लिये प्रवृत्त होना चाहिये ।

यदि भाग्यवशाद् देवि ! मन्त्रमेतत् तु लभ्यते ।
मुक्तेश्च कारणं तस्याः स्वयं ज्ञातं न चान्यथा ॥25॥

हे देवि ! यदि सौभाग्य से किसी साधक को यह मन्त्र अर्थात् तथ्य ज्ञात हो जाये कि इष्ट में मनोलय ही मुक्ति है और इस मनोलय का साधन पंचतत्त्व है, तब उसे मुक्ति का साधन स्वयं ज्ञात हो जायेगा, अन्यथा नहीं । इस प्रकार भगवती के साथ साधक की अद्वैतानुभूति के अतिरिक्त मुक्ति और कुछ नहीं होती* ।

अश्रुतं मुक्तितत्त्वं हि कथितं ते महेश्वरि ! ।
आत्मयोनिर्यथा देवि ! तथा गोप्यं ममाज्ञया ॥26॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे श्रीदेवीशिवसंवादे अष्टमः पटलः समाप्तः ।



हे माहेश्वरि ! मैंने तुम्हारे समक्ष मुक्ति के जिस स्वरूप का निर्वचन किया है, उसके बारे में अब तक किसी ने सुना भी नहीं । मुक्ति का यह स्वरूप और इसे प्राप्त करने के उपाय अतिगोपनीय हैं । तुम इसे स्वयोनि की भाँति ही गोपनीय रखना, यह मेरा आदेश है ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दी विवृत्ति का अष्टम पटल समाप्त ।



---

* 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः' ॥ (गीता)
'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ।

अथ नवमः पटलः

केऽयं कामाख्येति देव्याः प्रश्नः

श्रीदेव्युवाच

कामाख्या या महादेव ! कीर्तिता कामरूपिणी ।
का सा वद जगन्नाथ ! कपटं मा कुरु प्रभो ! ।।1।।

श्रीदेवी ने कहा—हे प्रभो ! आपने जिसे कामस्वरूपा कामाख्या कहा है, वह देवी वास्तव में है कौन ? आप कुछ छिपाइये नहीं, सब सच-सच बताइये ।

कुर्यास्तु कपटं नाथ ! यदि मे शपथस्त्वयि ।
रतौ का कामिनी योनिं सम्यक् सन्दर्शयेत्पतिम् ।।2।।

हे स्वामिन् ! यदि आप छिपायें तो, आपको मेरी शपथ है । वह कामिनी कौन है, जो रति के समय अपने पति को अपनी योनि को पूरी तरह भली भाँति दिखाती है ? (जैसा कि आपने योनिपूजा के सन्दर्भ में निरूपित किया है) नहीं न ? वह पति के अनुरोध पर गोपनीय अंग पति को दिखा देती है । हम दोंनों में परस्पर प्रेम है । इसलिये जिस कामिनी की चर्चा आप कर रहे हैं, उसका परिचय चाहे कितना ही गोपनीय हो, आप मुझसे छिपा नहीं सकते ।

श्रीशिव उवाच

श्रुत्वैतद् गिरिजावाक्यं प्रहस्योवाच शङ्करः ।
श्रृणु देवि ! मम प्राणवल्लभे ! कथयामि ते ।।3।।

श्रीपार्वती की बात सुनकर शिव ने हँसकर कहा—हे प्राणप्रिये ! सुनो, उसका नाम सुनो ।

या देवी कालिका तारा सर्वविद्यास्वरूपिणी ।
कामाख्या सैव विख्याता सत्यं सत्यं न चान्यथा ।।4।।

हे प्रिये । सर्वमन्त्रस्वरूपिणी जो देवी कालिका और तारा के नाम से प्रसिद्ध हैं, वही तो कामाख्या कही जाती है । मैं सत्य कह रहा हूँ । इसमें सन्देह न करो ।

सैव ब्रह्मेति जानीहि संज्ञार्थं दर्शनानि च ।
विचरन्ति चोत्सुकानि यथा चन्द्रे चकोरकाः ।।5।।

हे प्रिये ! कामाख्या ही 'ब्रह्म' है, ब्रह्माण्डस्वरूपा हैं । जिस प्रकार चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों की उपलब्धि की आशा में चकोरगण शान्त-स्निग्ध ज्योत्स्ना के स्रोत को ढूँढ़ते हुए आकाश में विचरण करते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी भगवती कामाख्या की सच्चिदानन्द-मयी आनन्दराशि में मूलस्रोतस्वरूपिणी भगवती कामाख्या की खोज में भटकते फिरते हैं ।

कामाख्या स्वरूपवर्णनम्

अस्या हि जायते सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
लीयन्ते पुनरस्यां च सन्देहं मा कुरु प्रिये* ॥6॥

हे पार्वति ! ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती कामाख्या ही जगद्योनि हैं । समस्त स्थावर-जंगम संसार इन्हीं से जन्मता है, इन्हीं में स्थित रहता हे और कल्पान्त में इन्हीं में लीन हो जाता है । हे प्रिये ! तुम मेरी बातों में सन्देह न करो ।

स्थूला सूक्ष्मा परा देवी सच्चिदानन्दरूपिणी ।
अमेयविक्रमा श्यामा करुणासागरा मता ॥7॥

हे देवि ! सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती कामाख्या स्थूल से भी स्थूल और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं । करुणानिधि, अमितविक्रमशालिनी कामाख्या का एक नाम 'श्यामा' भी है ।

मुक्तिमयी जगद्धात्री सदानन्दमयी तथा ।
विश्वम्भरी क्रियाशक्तिस्तारा चैव सनातनी ॥8॥

कामाख्या देवी मुक्तिस्वरूपा, विश्व की धात्री, सर्वदा आनन्दरूपा, विश्व का भरण-पोषण करने वाली क्रियाशक्ति हैं । तारा संसार-तारिणी तथा नित्या हैं ।

कामाख्या एव दक्षिणाकाली

यथा कर्मसमाप्तौ च दक्षिणा फलसिद्धिदा ।
तथा मुक्तिरसौ देवि ! सर्वेषां फलदायिनी ॥9॥
अतो हि दक्षिणा काली कथ्यते वरवर्णिनि ।

हे शोभनांगि ! जिस प्रकार व्यक्ति के यज्ञादि कर्म की समाप्ति पर ऋत्विगादि को दक्षिणा देने से कर्म की सफलता मानी जाती है, उसी प्रकार इस संसार में जन्मे व्यक्ति के कर्मों के अनुसार मुक्ति आदि फल प्रदान करने के कारण कामाख्या को 'दक्षिणा काली' भी कहा जाता है ।

---

* 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्यभिनिविशन्ति तद् ब्रह्म' ।

काल्याः कृष्णवर्णकथनम्

कृष्णवर्णा सदा काली कथ्यते वरवर्णिनि ॥10॥
उक्तानि सर्वतन्त्राणि तन्त्रेणाऽनेन निश्चितम् ।

हे पार्वति ! कामाख्या कृष्णवर्णा हैं । इसलिये सभी तन्त्रों की भाँति इस तन्त्र में भी इन्हें 'काली' भी कहा है । इस प्रकार कामाख्या काली, तारा तथा श्यामा आदि नामों से जानी जाती हैं ।

कामाख्यातन्त्रस्य महत्त्वम्

कृत्वा सङ्कल्पसिद्धौ तत्कामेषु पाठयेद् बुधः ॥11॥
पठित्वा श्रावयेद्वापि शृणोति पूजयेद्यदि ।
तं तं काममवाप्नोति श्रीमत्कालीप्रसादतः ॥12॥
यथा स्पर्शमणिर्देवि ! तथैतत्तन्त्रमुत्तमम् ।
यथा कल्पतरुर्दाता यथा ज्ञेयं मनीषिभिः ॥13॥

हे देवि ! जिस भी अभिलाषा से बुद्धिमान् साधक इस कामाख्या का पाठ करता है, या इसे पढ़कर किसी को सुनाता है, या पूजन करता है, भगवती काली की कृपा से उसकी वह अभिलाषा अवश्य पूर्ण होती है । हे देवि ! मनीषियों के अनुसार यह कामाख्या तन्त्र पारसमणि और कल्पवृक्ष की भाँति साधकों के समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाला है ।

यथा सर्वाणि रत्नानि सागरे सन्ति निश्चितम् ।
तथाऽत्र सिद्धयः सर्वा भुक्तिर्मुक्तिर्वरानने ! ॥14॥

हे सुमुखि ! जिस प्रकार समस्त रत्न सागर में विद्यमान हैं, उसी प्रकार इस कामाख्या तन्त्र में कथित विधि के अनुसार भगवती कामाख्या काली की साधना में समस्त सिद्धियाँ तथा भोग और मोक्ष निहित हैं ।

सर्वदेवाश्रयो मेरुर्यथा सिद्धं तथा पुनः ।
सर्वविद्यायुतं तन्त्रं शपथेन वदाम्यहम् ॥15॥

हे देवि ! जिस प्रकार सुमेरु पर्वत समस्त देवताओं का आलय है, उसी प्रकार कामाख्यातन्त्र भी समस्त विद्याओं का आलय है, यह बात मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ ।

यस्य गेहे स्थितं देवि ! तन्त्रमेतद् भयापहम् ।
रोगशोकपातकानां लेशो नास्ति कदाचन ॥16॥

हे गौरि ! समस्त भीतियों को दूर करने वाला यह कामाख्यातन्त्र जिस व्यक्ति के घर (अर्थात् हृदय) में विद्यमान होता है, उसके जीवन में रोग, शोक तथा पातकों का अस्तित्व लेशमात्र भी नहीं होता ।

तत्र दस्युभयं नास्ति ग्रहराजभयं न च ।
न चोत्पातभयं तत्र न च मारीभय तथा ॥17॥

जिस साधक के गृह में कामाख्यातन्त्र है, उसे कभी भी चौरभय, ग्रहभय, राजभय, उत्पातभय तथा महामारी आदि का भय नहीं होता ।

न पराजयमेषां हि भयं देवि ! मयोदितम् ।
भूत-प्रेत-पिशाचानां दानवानां च रक्षसाम् ॥18॥

हे शिवे ! ऐसा साधक किसी से पराजित नहीं होता । उसे किसी भूत, प्रेत, पिशाच, दानव तथा राक्षस का भय भी नहीं होता ।

न भयं क्वापि सर्वेषां व्याघ्रादीनां भयं च न ।
कूष्माण्डानां भयं नैव वह्न्यादीनां भयं न च ॥19॥

उसे कभी भी और कहीं भी व्याघ्रादि क्रूर वन्यजीवों, कूष्माण्डों तथा अग्नि आदि पंचभूतों से भी डर नहीं होता ।

विनायकानां सर्वेषां गन्धर्वाणां तथा च न ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सन्ति भयानकाः ॥20॥

कामाख्यासाधक को विघ्न उपस्थित करने वाले विनायकादि विघ्नपतियों अथवा गन्धर्वादि मानवेतर देवजातियों अथवा स्वर्ग, धरती, पातालादि भुवनों में जो भी हिंसक प्राणी हैं, उनसे भय नहीं होता ।

हिंस्रा विघ्नकराश्चैव न तेषां भयमीश्वरि ! ।
यमदूताः पलायन्ते विमुखा भयविह्वलाः ॥21॥

हे भगवति ! जीवन में जो भी विघ्न उत्पन्न करने वाले अथवा हिंसक प्राणी हैं, उनका भय साधक में नहीं रह जाता । उसे देखकर डर से भयभीत यमराज के क्रूर दूत भी भाग खड़े होते हैं ।

सत्यं सत्यं महादेवि ! शपथेन वदाम्यहम् ।
सम्पत्तिरतुला तत्र तिष्ठेत् तु साप्तपौरुषम् ॥22॥
वाणी तथैव देव्यास्तु प्रसादादचलेरिता ।
एतत् ते कथितं देवि ! न प्रकाश्यं कदाचन ॥23॥

हे शाम्भवि ! मैं शपथपूर्वक सत्य कह रहा हूँ कि कामाख्या के उपासक को देवी की कृपा से सातपुस्तों तक चलने वाली महालक्ष्मी तथा अव्यभिचारिणी वाक्शक्ति भी प्राप्त होती है । हे पार्वति ! मैंने यहाँ तुमसे जो बात कही है, उसे किसी अनधिकारी व्यक्ति के सामने प्रकट नहीं करना ।

कामाख्याविद्यायामनधिकारिणः

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं सदा प्रिये !।
पशोरग्रे विशेषेण गोपनीयं प्रयत्नतः ॥24॥

हे प्रिये ! इस रहस्य को गोपनीय ही रखना, विशेषतया किसी पशुभाव में स्थित व्यक्ति के सामने तो इसे पूर्णतः गोपनीय ही बनाये रखना ।

भ्रष्टानां साधकानां च सान्निध्ये न वदेदपि ।
न दद्यात्काणखञ्जेभ्यो विगीतेभ्यस्तथैव च ॥25॥

हे पार्वति ! आचरण से पतित साधकों के सम्मुख कामाख्याविद्या की चर्चा भी नहीं करना, और न ही काने, लँगड़े और बदनाम व्यक्तियों को कामाख्याविद्या प्रदान करना ।

उदासीनजनस्यैव सान्निध्ये न वदेदपि ।
दाम्भिकाय न दातव्यमभक्ताय विशेषतः ॥26॥
मूर्खाय भावहीनाय दरिद्राय ममाज्ञया ।

हे देवि ! कामाख्याशक्ति सृष्टिकारिणी हैं । इन्हें अपने रचना-संसार से निःसीम लगाव है । अतः संसार से उदासीन किसी विरागी व्यक्ति के सामने कामाख्या विद्या की चर्चा भी नहीं करनी चाहिये । विशेष रूप से यह विद्या किसी भक्तिहीन अहंकारी साधक को नहीं देनी चाहिये । इसके अलावा किसी मूर्ख, वीरादिभावहीन तथा धन-मन से दरिद्र व्यक्ति को भी कामाख्याविद्या प्रदान नहीं करनी चाहिये । हे गौरि ! इसे मेरा आदेश समझो ।

कामाख्याविद्यायामधिकारिणः

दद्यात् शान्ताय शुद्धाय कौलिकाय महेश्वरि ! ॥27॥
कालीभक्ताय शैवाय वैष्णवाय शिवाज्ञया ।
अद्वैतभावयुक्ताय महाकालप्रजापिने ॥28॥
सुरा-स्त्री-वन्दकायापि शिवाबलिप्रदाय च ॥29॥

इति श्रीकामाख्यातन्त्रे श्रीदेवीशिवसंवादे नवमः पटलः समाप्तः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।



हे शिवानि ! महाकाल के मन्त्र का जप करने वाले अद्वैतभाव वाले, सुरा और सुन्दरी का सम्मान करने वाले तथा भगवती भवानी को बलि प्रदान करने वाले साधकों को ही कामाख्याविद्या प्रदान करनी चाहिये ।

श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दी विवृत्ति का नवम पटल समाप्त ।



श्रीदेवीशिवसंवादरूपकामाख्यातन्त्रे

परिशिष्टम्

कामाख्यास्तोत्रम्

कामेशि ! चामुण्डे ! जयभूताऽपहारिणि ! ।
जय सर्वगते देवि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
विश्वमूर्ते ! शुभे ! शुद्धे ! विरूपाक्षि ! त्रिलोचने ! ।
भीमरूपे ! शिवे ! विद्ये ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ! ।।
मालाजये ! जम्भे ! भूताक्षि ! क्षुभितेऽक्षये ।
महामाये ! महेशानि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
भीमाक्षि ! भीषणे ! देवि ! सर्वभूतक्षयंकरि ! ।
कालि ! विकरालि ! च कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
कालि । करालविक्रान्ते ! कामेश्वरि ! हरप्रिये ! ।
सर्वशास्त्रसारभूते ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
कामरूपप्रदीपे ! च नीलकूटनिवासिनि ! ।
निशुम्भशुम्भमथिनि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
कामाख्ये ! कामरूपस्थे ! कामेश्वरि ! । हरिप्रिये ! ।
कामनां देहि मे नित्यं कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
*वपानाढ्यमहावक्त्रे ! तथा त्रिभुवनेश्वरि !
महिषासुरवधे ! देवि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
छागतुष्टे ! महाभीमे ! कामाख्ये ! सुरवन्दिते ! ।
जय कामप्रदे ! तुष्टे ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः ।।
संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कण्टकं पुनः ।
य इदं शृणुयाद् भक्त्या तव देवि ! समुद्भवम् ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ।
श्रीकामरूपेश्वरि ! भास्करप्रभे ! प्रकाशिताम्भोजनिभायतानने !
सुरारिरक्षःस्तुतिपातनोत्सुके ! त्रयीमये ! देवनुते ! नमामि ।।

---

* वपानम्-शुक्रम् (Semen) इत्यर्थः ।

सिताऽसिते ! रक्तपिशंगविग्रहे रूपाणि यस्याः प्रतिभान्ति तानि ।
विकाररूपा च विकल्पितानि शुभाऽशुभानामपि तां नमामि ॥
कामरूपसमुद्भूते कामपीठावतंसिके ।
विश्वाधारे ! महामाये ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥
अव्यक्तविग्रहे शान्ते सन्तते ! कामरूपिणि ।
कालगम्ये ! परे ! शान्ते ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥
या सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यते ज्योतिरूपिणीम् ।
प्रणतोऽस्मि परां वीरां कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥
दंष्ट्राकरालवदने मुण्डमालोपशोभिते ।
सर्वतः सर्वगे ! देवि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥
चामुण्डे ! च महाकालि ! कालि ! कपालहारिणि ! ।
पाशहस्ते ! दण्डहस्ते ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥
चामुण्डे ! कुलमालास्ये ! तीक्ष्णदंष्ट्रे ! महाबले ! ।
शवयानस्थिते ! देवि ! कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे कामाख्यास्तोत्रम्



कामाख्याकवचम्

ओं कामाख्याकवचस्य मुनिर्बृहस्पतिः स्मृतः ।
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते ॥
विनियोगः सर्वसिद्धौ तं च शृण्वन्तु देवताः ।
शिरः कामेश्वरी देवीकामाख्या चक्षुषी मम ॥
शारदा कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं तथा ।
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ॥
कामाख्या जठरे पातु शारदा पातु नाभितः ।
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ॥
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ।
जानुनी शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः ॥
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ।
केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ॥
शुभगा दन्तसन्धाते मातङ्ग्यवतु चाङ्गयोः ।
बाह्वोर्मा ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी ॥
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलीषु श्रीकामा नखकोटिषु ।
रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदाऽवतु ॥
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ।
जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाऽभ्यन्तरेऽवतु ॥
पातु नश्चान्तरे वक्षः ईः पातु जठरान्तरे ।
सामिन्दुः पातु मां वस्तो बिन्दुर्बिन्द्वन्तरेऽवतु ॥
ककारस्त्वचि पां पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ।
लकारः सर्वनाडीषु ईकारः सर्वसन्धिषु ॥
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु बिन्दुर्मज्जासु सन्ततम् ।
पूर्वस्यां दिशि चाग्नेय्यां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ॥
वारुणे चैव वायव्यां कौबेरे हरमन्दिरे ।
अकाराद्यास्तु वैष्णवा अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः ॥
पान्तु तिष्ठन्तु सततं समुद्भवविवृद्धये ।
ऊर्ध्वाधः पातु सततं पान्तु सेतुद्वयं सदा ॥
नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदा मन्त्रगोचरे ।
नवस्वरास्तु मां नित्यं नासादिषु समन्ततः ॥
वातपित्तकफेभ्यस्तु त्रिपुरायास्तु त्र्यक्षरम् ।
नित्यं रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च ॥

तत्सेतु सततं पाता क्रव्याद्भ्यो मान्निवारकौ ।
नमः कामेश्वरी देवीं महामायां जगन्मयीम् ।।
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्यं तनोति जगदायतम् ।।
कामाख्यामक्षमालाऽभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम् ।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्या-
मग्नौ विन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि विद्ध्यै रतिस्थाम् ।।
मध्ये मध्यस्य भागे सततविनमिता भावहारावली या
लीला लोकस्य कोष्टे सकलगुणयुता व्यक्तरूपैकनम्रा ।
विद्या विद्यैकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वरास्या
नित्यं पायात्पवित्रप्रणवकरा कामपूर्वेश्वरी नः ।।
इति हराकवचं तनुके स्थितं शमयति व्यतिक्रम्य शिवे यदि ।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चाऽमरैः ।।
इतीदं कवचं यस्तु कामख्यायाः पठेद् बुधः ।
सकृत् तं तु महादेवी तनु व्रजति नित्यदा ।।
नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्याद्भ्यां भयं तथा ।
नाग्नितो नापि तोयभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः ।।
दीर्घायुर्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
आवर्तयन् शतं देवी मन्दिरे मोदते परे ।।
यथा तथा भवेत् बद्धः सङ्ग्रामेऽन्यत्र वा बुधः ।
तत्क्षणादेव मुक्तः स्यात्स्मरणात्कवचस्य तु ।। (इति कालिकापुराणे)



(2)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

मायातन्त्रम्

•

विवृतिकार: सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

मायातन्त्र का सार

ईश्वर-पार्वती संवादरूप द्वादश पटलात्मक मायातन्त्र के **प्रथम पटल** में शिव ने पार्वती को बताया कि एक समय ऐसा था जब सर्वत्र जल ही जल था । यदि कुछ भी था तो मात्र सद्रूप परम ब्रह्म ।

सृष्टि का आरम्भ होने ही वाला था । तब उस 'सत्' ने अपनी पराशक्ति माया का स्मरण किया । स्मरण करते ही माया उस जलराशि में 'वटपत्र' के रूप में अभिव्यक्त हुई । उसने जलराशि में निराकार रूप में व्याप्त परमेश्वर को साकार करके अपने वटपत्रकार आधार में धारण कर लिया ।

उस अनन्त जलराशि में एक वटवृक्ष तब भी शेष था । उस पर बैठे महामुनि मार्कण्डेय ने उस जलौघ में वटपत्र पर शयन कर रहे अव्यक्त परमेश्वर को व्यक्त रूप में देखा और उनका स्तवन किया ।

परमेश्वर का स्तवन करने के साथ ही मार्कण्डेय मुनि ने भगवती माया की भी स्तुति की और उनसे संसार का पुनः सृजन करने का अनुरोध किया ।

भगवती महामाया का स्तवन समाप्त करते ही उन्होंने अपने सामने वटपत्र पर शयन कर रहे भगवान् विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न दिव्य शिशुरूपधारी चतुर्मुखी रक्तवर्णी भगवान् ब्रह्मा को देखा । भगवती महामाया ने ब्रह्मा को संसार के सृजन का कार्य करने का आदेश दिया ।

महामाया के आदेश पर ब्रह्मा ने ध्यान करके स्वकृत पूर्वसृष्टि के समान ही रचना करने का निर्णय कर अपने संकल्प से ही दस पुत्रों को उत्पन्न किया । ब्रह्मा के वे मानस पुत्र सृष्टि न रच सके, क्योंकि उनमें शक्ति न थी । सृष्टि के लिये शक्ति और उसकी योनि की आवश्यकता होती है । शक्ति ही अपनी योनि को सृष्टि के आधार के रूप में प्रस्तुत करती है । अतः 'योनि' की आवश्यकता का अनुभव करके ब्रह्मा ने 'सृष्टियोनि' की संकल्पना की ।

विधाता ने पूर्वकल्प की रचना के सदृश ही मिथुनात्मक रचना हेतु कश्यप नामके एक मुनि और एक कन्या (अदिति) उत्पन्न किया और उन दोनों को मैथुनी सृष्टि रचने को कहा । तब कश्यग और अदिति ने विभिन्न योनियों, आकारों और जातियों वाली मैथुनी सृष्टि को जन्म दिया ।

वटपत्र का रूप ग्रहण कर अव्यक्त रूप में नीर में व्याप्त नारायण को 'धारण' करने से प्रसन्न विष्णु ने माया को 'सनातन धर्मस्वरूपा' कहते हुए वर दिया कि इस धरती पर उत्पन्न

मनुष्य अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु धर्मस्वरूपा माया की आराधना 'धँ धर्माय नमः' छह अक्षरों वाले मन्त्र से करेंगे ।

द्वितीय पटल में कहा गया है कि शिव ने ही पार्वती को बताया कि माया परमेश्वर की चिदात्मिका शंक्ति हैं । परेश की इस चिच्छक्ति को ही दुर्गा कहते हैं । इन्हें ही महाकाली, तारा तथा बगलामुखी कहते हैं । माया ही गृहस्थों के घर में कल्पवृक्षस्वरूपिणी अन्नपूर्णा है । गृहिणीरूपिणी माया ही मानव को भोग और मोक्ष की साधिका है । गृहिणीरूपिणी माया से ही मानव पूर्ण बनता है, इसीलिये इसे 'पूर्णा' कहते हैं । शिव ने बताया कि सगुण उपासकों के लिये परेश की यह पराशक्ति 'माया' है और निर्गुणोंपासकों के लिये यह उनकी अपनी ही चिच्छक्ति है । जन्म-जन्मान्तरों के पुण्यों से ही माया प्रसन्न होकर जीव को अपने भ्रमजाल से मुक्त करती हैं ।

शिव ने पार्वती को बताया कि माया दुर्दमनीय है । यह मुनियों को भी मोहित कर लेती है, सामान्यजन की तो बात ही क्या ? माया ने गोपालकन्या राधा का रूप धारण कर परमेश्वर श्रीकृष्ण को भी मोह लिया था । लेकिन, राधारूपी माया की निरन्तर आराधना करके परात्पर ईश्वर श्रीकृष्ण ने अपने प्रकृत नररूप में समस्त सांसारिक प्रपंचों में निरत रहते हुए भी लोगों को अपने वश में कर लिया था ।

माया के स्वरूप के निर्वचन के बाद शिव ने माया के 'ह्रीं' रूप महामन्त्र का उद्घाटन करते हुए बताया कि इस 'ह्रीं' मन्त्र के द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् त्रिष्टुब् और देवता भुवनेश्वरी हैं तथा इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास इसी मायामन्त्र से करके चार भुजाओं वाली, रक्तवर्णा, पद्मपर विराजमान, अनेक अलंकारों से सुशोभित, कौशेयवस्त्रधारिणी, मधुरनाद करने वाली मंजीर से अलंकृत, हार, भुजबन्ध, वलय और प्रवालरचित अनेक अलंकारों से विभासित, शिर पर सूर्य और चन्द्रांकित मुकुटधारिणी, त्रिनयना महामाया का षोडशोपचारों से पूजन करना चाहिये ।

महामाया के मन्त्र 'ह्रीं' के उद्घाटन के पश्चात् शिव ने महामाया के दुर्गास्वरूप के मन्त्र का उद्घाटन करते हुए उन्हें बताया कि भगवती दुर्गा का परम मन्त्र 'दूँ' है । इस महाविद्या 'दूँ' के ऋषि नारद, छन्दस् गायत्री तथा देवता भगवती दुर्गा ही हैं । दुर्गामन्त्र की साधना में हृदयादि षडंगन्यास भगवती माया के निजबीज ह्रीँ के षड्दीर्घरूपों दां दीं दूं, ह्रीं आदि से करना चाहिये । अथवा माया के निजबीज ह्रीं के षड्दीर्घरूपों ह्रां, ह्रीं आदि से करनां चाहिये । इसकी साधना से चतुर्वर्ग की प्राप्ति के साथ ही बड़े से बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं । शिव ने कहा कि तीनों लोकों में एकाक्षरी महाविद्या 'दूं' के सदृश और कोई विद्या नहीं है । यह एकाक्षरी महामन्त्र गन्ध-पुष्पादि अर्पित किये बिना, केवल जपमात्र से ही सिद्ध होता है ।

श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि इस एकाक्षरी महाविद्या के अनेक रूप हैं । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस मन्त्र के आरम्भ में कूर्चबीज 'हूँ' का योग

करना चाहिये । अथवा इसे 'ऐँ' से पुटित कर इसके अन्त में अग्निप्रिया मन्त्र 'स्वाहा' का प्रयोग कर 'ऐँ दूँ स्वाहा' के रूप में जपना चाहिये । इस विद्या का जप इसके आरम्भ में लज्जाबीज 'ह्रीँ' और अन्त में 'फट्' का योग कर भी किया जा सकता है । आरम्भ में बधूबीज 'स्त्रीँ' और अन्त में 'स्वाहा' लगाकर भी इसे जपा जा सकता है । इस विद्या के आरम्भ में लक्ष्मीबीज 'श्रीँ' का योग करके अथवा मात्र वाग्भवबीज को आरम्भ में जोड़कर 'ऐँ दूँ' के रूप में भी जपा जा सकता है । दुर्गामन्त्र की साधना में हृदयादि षडंगन्यास भगवती माया के निजबीज ह्रीं के षड्दीर्घरूपों दां दीं दूं, ह्रीं आदि से करना चाहिये । अथवा माया के निजबीज ह्रीं के षड्दीर्घरूपों ह्रां, ह्रीं आदि से करना चाहिये । शंकर ने पार्वती से कहा कि साधक को सिंहराज की पीठ पर विराजमान, अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत, चार भुजाओं वाली नागयज्ञोपवीतधारिणी, रक्तवसना, बालसूर्यप्रभा, नारदादि महर्षिमण्डला, त्रिवलियुता, क्षीणकटिनी, पद्मासना भगवती दुर्गा का ध्यान करना चाहिये ।

यहाँ शिव ने यह भी बताया कि दुर्गामन्त्र की साधना में पहले भूतशुद्धि करके शरीर के विभिन्न अंगों में सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम से मातृकान्यास तथा षडंगादि न्यास सम्पन्न करना चाहिये । तदनन्तर पद्मासनादि सहज आसन में बैठ अपने दोनों हाथों को उत्तानावस्था में गोद में रख प्राणायाम करके 'हंसः' मन्त्र से हृदयस्थित जीव को दीपकशिखा की भाँति प्रदीप्त कर उसे सहस्रारस्थित परशिव में मिलाकर उसे मूलाधारस्थित पृथिवी, स्वाधिष्ठान-स्थित जल, मणिपूरस्थित अग्नि, हृदयस्थित वायु, कण्ठस्थित आकाश तथा आज्ञास्थित मनस्तत्त्व को भी क्रमशः ऊपर उठा ऊर्ध्वोर्ध्व तत्त्वों में विलीन करते हुए सहस्रारस्थित परमव्योम अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर परमशिव में स्थापित करना चाहिये ।

ईश्वर ने पार्वती से कहा कि प्राणायाम के विविधरूपों और कुण्डलिनी के आवागमन सुषुम्नामार्ग की जानकारी गुरु से प्राप्त कर सभी चक्रों को प्रदीप्त अर्थात् जाग्रत् कर अपने सूक्ष्म कर्ममय शरीर का ध्यान कर उसकी वामकुक्षि में स्थित कज्जलवर्णी पापपुरुष का शोषण तथा दाहन करके शुद्ध शरीर का निर्माण कर जीव को मूलाधार में लाकर प्लावन करना चाहिये । तत्पश्चात् 'सोऽहं' मन्त्र से परशिवा कुण्डलिनी को जीव के साथ मूलाधार से उन्नयन कर सहस्रार में स्थित परशिव से मिलन कराके 'हंसः' मन्त्र से मूलाधार में लाना चाहिये । शिव ने पार्वती को बताया कि उन्होंने उक्त पापपुरुष के शोषण, दाहन, प्लावन तथा कुण्डलिनी को सोऽहं मन्त्र से सहस्रार तक आरोहण और 'हंसः' मन्त्र से वहाँ से मूलाधार तक अवरोहण की समस्त क्रिया का निरूपण 'भूतशुद्धितन्त्र' में पहले ही कर दिया है ।

तृतीय पटल में शिवप्रिया ने शिव से उस आश्चर्यजनक यन्त्र और स्तुति के बारे में पूछा है जिससे ब्रह्मा ने महामाया की पूजा और स्तुति की थी । पार्वती की जिज्ञासा पर शिव ने उन्हें बताया है कि उस यन्त्र के निर्माण के लिये सबसे पहले एक त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण निर्मित कर उसे आठ दलों वाले तीन वृत्तों से आवृत कर तीन रेखाओं वाले भूपुर से घेर देना चाहिये । ऐसा यन्त्र निर्मित कर उसके मध्य में सिंहवाहिनी कमलासना मूलप्रकृति स्वरूपिणी भगवती दुर्गा तथा यन्त्र के नौ कोणों में बायें से दायें पूर्वादि क्रम में

प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा नामक नौ शक्तियों की तथा यन्त्र के मध्य में स्थित माया देवी के वाम ओर दक्षिण शंख और पद्म नामक निधियों की षोडशोपचार अर्चना करनी चाहिये। पूजन में रक्तचन्दन का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। पूजन के अन्त में अर्घ्य भी निश्चितरूप से देना चाहिये। माया के चारों ओर पूर्वादि क्रम में अंगपूजा तथा आठ दलों के अग्रभाग में ब्रह्माणी आदि अष्टमाताओं और इनके वज्रादि आयुध भी पूजे जाने चाहिये।

तदनन्तर शिव ने पार्वती को ब्रह्मा द्वारा की गयी महामाया दुर्गा की स्तुति—

दुर्गे मातर्नमो नित्यं शत्रुदर्पविनाशिनि !
भक्तानां कल्पलतिके नारायणि नमोऽस्तु ते।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके !।
शरण्ये त्र्यम्बके ! गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते।
नमो नगात्मजे शैलावासे शीलसमन्विते।
भक्तेभ्यो वरदे मातर्नारायणि नमोऽस्तु ते।
निशुम्भशुम्भमथिनि ! महिषासुरमर्दिनि !।
आर्तार्तिनाशिनि ! शिवे नारायणि नमोऽस्तुते।
इन्द्रादिदिविषद्वृन्दवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहे।
नानालङ्कारसंयुक्ते नारायणि ! नमोऽस्तु ते।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः।
पुरः कृताञ्जलिपुटे नारायणि ! नमोऽस्तु ते॥
देवराजकृतस्तोत्रे व्याधराजप्रपूजिते।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि ! नमोऽस्तु ते॥
अज्ञानज्ञानतरणि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते।

—सुनाते हुए कहा कि जो साधक पूजा के समय भगवती माया की ऐसी स्तुति करता है, भगवती दुर्गा उसे त्रिविध तापों से मुक्त करती हैं।

पुनः पार्वती के अनुरोध पर शंकर ने उन्हें विनियोग सहित निम्नांकित दुर्गाकवच इसे धारण करने के फल के साथ सुनाया—

अथ श्रीजगद्धात्री दुर्गाकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप् छन्दः, श्रीजगद्धात्री दुर्गा देवता चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे विनियोगः।

अथ कवचम्

ओंकारो मे शिरः पातु ह्रींकारः पातु भालकम्।
दुं पातु वदनं दुर्गा ङेयुक्ता पातु चक्षुषी॥
नासिका मे नमः पातु कर्णावष्टाक्षरी सदा।
प्रणवो मे गलं पातु केशान् श्रीबीजमन्ततः॥

लज्जा दन्तान् समारक्षेज्जिह्वां दुर्गा सदावतु ।
यै नमः पातु वक्त्रान्तं तालुं दुंकाररूपिणी ।।
एकाक्षरी महाविद्या वक्षो रक्षतु सर्वदा ।
कूर्चाद्या विविधा विद्या बाहू मे परिरक्षतु ।।
ओं दुर्गे पातु जङ्घे द्वे दुर्गा रक्षतु जानुनी ।
कटिं सदा जया पातु नाभिं मे विजयावतु ।।
उदरं पातु मे कीर्तिः पृष्ठं प्रीतिः सदावतु ।
प्रभा पादाङ्गुलीः पायात् श्रद्धा स्कन्धौ सदावतु ।।
मेधा कराङ्गुलीः सर्वा नखरान् श्रुतिमेव च ।
शङ्खो गुल्फं तु पायान्मे चक्रं लिङ्गं सदावतु ।।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु शङ्खो रक्षतु सर्वतः ।
दुर्गा मां पातु सर्वत्र जयदुर्गा च दारकान् ।।
यद् यदङ्गं महेशानि ! वर्जितं कवचेषु च ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! पतिपुत्रान्विता सती ।

कवच-धारण के फल का उल्लेख करते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर यदि पुरुष दायीं भुजा और नारी बायीं भुजा पर धारण करे तो एक वर्ष के भीतर ही उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । उन्होंने पार्वती को यह भी बताया कि इस कवच को जाने बिना जो साधक दुर्गा के उक्त मन्त्रों का जप करता है, वह निःसन्देह अल्पायु, निर्धन और मूर्ख होता है ।

चतुर्थ पटल में कुलाचार विधि से पूर्वोक्त मन्त्रों की पुरश्चर्या विधि का निरूपण करते हुए शिव ने पार्वती को बताया है कि पुरश्चरण की सिद्धि के लिये सबसे पहले मन्त्र का 1 लाख 8 बार जप कर घृतसिक्त तिलों से दस हजार आठ हवन, हवन के बाद एक हजार आठ तर्पण तथा एक सौ आठ बार अभिषेक तथा दस ब्राह्मणों को भोजन-दक्षिणादि से सम्मानित कर अपने गुरु को दक्षिणादि से सम्मानित करना चाहिंये । इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है । मन्त्रसिद्ध साधक को ही विभिन्न प्रयोजनों के लिये मन्त्र के प्रयोग का अधिकार है ।

शिव ने यह भी कहा कि महामाया दुर्गा की अर्चना जपा, यावक, सिन्दूर, रक्तचन्दन, आदि सुगन्धित पुष्पों सहित स्वयंभूपुष्प (हरसम्पर्कहीना युवती का रजस्) तथा शुक्र, सुगन्धिक द्रव्यों से सुसंस्कृत मंगलकारी पवित्र पदार्थों तथा काक, शुक, पेचक, मेष, छाग, गज, उष्ट्र, गर्दभ आदि के मन्त्रों से शोधित मांस से करनी चाहिये ।

इसके बाद शिव ने मन्त्र के जप के लिये अक्षमाला के ग्रथन की विधि बताते हुए कहा कि पचास मनकों वाली अक्षमाला के प्रत्येक मनके को क्रमशः बिन्दुयुक्त अकारादि-क्षकारान्त पचास वर्णबीजों से अभिमन्त्रित करके ही उससे जप करना चाहिये । शक्ति द्वारा काते गये सूत्र में सुमेरु से लेकर पृथ्वी तक अकार से क्षकार तक बीजवर्णों से अभिमन्त्रित अक्षमाला सिद्धिदायिनी होती है । शिव ने कहा कि (अन्तर्जपमाला तो सुषुम्ना में स्थित है,

लेकिन) बाह्य जप के लिये कमलबीज, शंख, रुद्राक्ष, पुत्रजीवक, मोती, स्फटिक, मणि, रत्न, प्रवाल, स्वर्ण, रजत तथा कुशमूल से अक्षमालिका का निर्माण किया जाता है ।

तदनन्तर विभिन्न प्रकार के मनकों से बनी मालाओं से प्राप्त होने वाले अपेक्षित फल का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया कि मन्त्र का जप अँगुलियों से गिनकर करने से जितना निर्धारित फल प्राप्त होता है, उसका आठगुना अधिक फल अँगुलियों के पर्वों से जपने से प्राप्त होता है । पुत्रजीवक की माला से जप करने से विहित फल से दस गुना अधिक फल मिलता है । शंखों से निर्मित माला से विहित का हजार गुना और मूँगा, मणि तथा रत्नों की माला से जप करने से दस हजार गुना अधिक फल मिलता है । स्फटिक की माला से जप करने से विहित फल का दस हजार गुना ही फल प्राप्त होता है । लेकिन, मोतियों से निर्मित माला से जप करने से विहित का लाख गुना अधिक फल प्राप्त होता है । कमलगट्टे की माला से जप करने से विहित का दस लाख गुना तथा स्वर्णमाला से जप करने से करोड़ गुना अधिक फल मिलता है । कुशग्रन्थियों से निर्मित माला से जपने पर सौ करोड़ गुना तथा रुद्राक्ष की माला से जप करने से अनन्त फल मिलता है । मूँगे की माला से जप करने से प्रभूत धन प्राप्त होता है ।

अक्षमाला के ग्रथन की विधि बताते हुए शंकर ने कहा कि साधिका शक्ति, देवेन्द्र, पुण्यशीला नारी द्वारा काते गये गाँठ रहित त्रिगुणित सूत्र को त्रिगुणित किये गये कपास अथवा रेशमी सूत्र में मनकों को मुख से मुख तथा पूँछ से पूँछ मिला एकान्त स्थान में माला का ग्रथन करके उसका शोधन आरम्भ करना चाहिये ।

माला शोधन-क्रिया में ''सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवेऽभवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः' ऋचा का पाठ करते हुए पंचगव्य से माला को धोकर 'वामदेवाय नमः, ज्येष्ठाय नमः, रुद्राय नमः, कालाय नमः, कलविकलाय नमः, बलाय नमः, बलविकलाय नमः, बलप्रमथनाय नमः, सर्वभूतदमनाय नमः, मनोन्मनाय नमः'' मन्त्र का पाठ करते हुए चन्दन, अगरु तथा गन्धादि से मिश्रित पंचगव्य जल से माला का घर्षण करना चाहिये । तत्पश्चात् ''अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः । नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः'' का पाठ करते हुए माला को धूपित करके ''तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'' मन्त्र से उस पर चन्दनादि का लेप करना चाहिये । अन्त में पंचम ऋचा ''ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्बह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्'' का पाठ करते हुए माला को अभिमन्त्रित करना चाहिये । तत्पश्चात् ईशान मन्त्र का न्यास मेरु में करके माला के प्रत्येक मनके में मूलमन्त्र का न्यास करना चाहिये । इस प्रकार की माला का संस्कार करके उसमें उपास्य देवता के प्राणों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये । फिर, माला में उपास्य देवता के प्राणों की प्रतिष्ठा करके—

'ओं मां माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गत्वयिन्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥'

—मन्त्र से माला का पूजन करके ही उससे जप करना चाहिये । श्रीशिव ने यह भी बताया कि माला को गोमुखी आदि में मातृजार की भाँति गोपनीय रखना चाहिये । अक्षमाला, स्वकीय मन्त्र तथा गुरु का प्रकाशन कभी भी नहीं करना चाहिये ।

पंचम पटल में शंकर ने पार्वती को 'दुर्गा' नामकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा कि 'दुर्गा' नाम महामंगलमय है । 'दुर्गा' नामका एक बार जप करना अन्य किसी भी देवता के नाम का हजार बार जप करने के बराबर है । यह नाम जिस व्यक्ति की चेतना में स्थिर हो जाता है, वह व्यक्ति संसार में रहते हुए भी मुक्त है । वह देवताओं द्वारा भी सम्पूज्य और नम्य है । जो साधक 'दुर्गा' नाम का जप करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । शिव ने बताया कि किसी भी कार्य को आरम्भ करते समय जो व्यक्ति दुर्गा नाम का स्मरण करता है, बहुत शीघ्र उसका वह कार्य सम्पन्न हो जाता है ।

शिव ने बताया कि भगवती दुर्गा के नाम की साधना की सिद्धि के लिये इस नाम का एक करोड़ जप, दस लाख हवन तथा 1 लाख तर्पण करके दस हजार साधकों और ब्राह्मणों को भोजन कराने पर साधना-काल में की गयी समस्त कमियाँ दूर हो जाती हैं और साधक को सिद्धि प्राप्त होती है ।

'दुर्गा' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए शंकर ने कहा कि दुर्गा के नामके समान महिमाशाली अश्वमेधादि यागादि भी नहीं हैं । कलिकाल में दुर्गा नामके जप के समान अन्य कोई भी साधना नहीं है । महादेव ने कहा कि साधक को चाहिये कि वह शरत्कालीन दुर्गोत्सव के दिनों में दुर्गा की मूर्ति-चित्रादि के सामने बैठकर जप करे ।

चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय दुर्गा नामके जप की चर्चा करते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि ग्रहण के समय जितना हो सके, बिना गिने हुए, दुर्गा नाम का जप करना चाहिये । ग्रहण के समय स्नान और दान की तो गिनती की जाती है, लेकिन जप में गिनती की आवश्यकता नहीं होती, जितना हो सके, अधिक से अधिक जप करना चाहिये । सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय जप से बड़ी अन्य क्रिया नहीं है । इसलिये साधक को चाहिये कि वह सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय अन्य सभी धर्मकर्मादि से सम्बन्धित क्रियाओं को छोड़ केवल जप करे । जप से ही समस्त वांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, इसमें संशय की आवश्यकता ही नहीं ।

चन्द्र-सूर्य के ग्रहण की बाह्य घटना के साथ व्यक्ति के आन्तरिक जगत् में घटने वाली रहस्यमयी घटना का उल्लेख करते हुए शंकर ने देवी पार्वती को बताया कि जब चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण होता है, उस समय सुषुम्ना में भगवती दुर्गा प्रकाशित होती हैं । बाह्य आकाश में घटित हो रही घटना का जैसा दृश्य दिखायी देता है, वैसी ही घटना सभी लोगों की सुषुम्ना नाडी के भीतर भी घटित होती है । साधक को वह घटना सुषुम्नार्गत हो रहे देवी के प्रकाश से दिखायी देती है । अत: साधक को चाहिये कि वह बाह्य आकाश की ओर न देखकर एकाग्र मन से जप करता हुआ अपनी सुषुम्ना में घटित हो रहे ग्रहण के दृश्य का अवलोकन करे ।

ग्रहण की समाप्ति के पश्चात् स्नान तथा हवनादि सम्पन्न करके ब्राह्मणों, साधकों, शिवाओं और कुलकन्याओं को अनेक प्रकार के मिष्ठान्नों आदि का भोजन कराके गुरुओं, अथवा गुरुओं के वहाँ उपस्थित न रहने पर, साधकों को विभवानुसार यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने से साधक का मन्त्र सिद्ध हो जाता है और सिद्धमन्त्र साधक अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर सकता है ।

भगवान् शंकर ने पार्वती से कि 'दुर्गा' नामकी साधना के इस अद्भुत परम रहस्य को किसी दम्भी, नास्तिक, शठ, शिव में भक्ति न रखने वाले, दुष्ट, विशेषत: द्वेषी स्वभाव वाले, भक्तिभावरहित और दुर्विनीत व्यक्ति को प्रकट नहीं करना चाहिये ।

षष्ठ पटल में सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय व्यक्ति की सुषुम्ना के भीतर घटने वाले अद्भुत सूर्यग्रहण पर्व और चन्द्रग्रहण पर्व की विस्तार से चर्चा करते हुए शंकर ने उमा को बताया कि सुषुम्ना में घटित होने वाला सूर्यग्रहणपर्व परात्पर महत्त्वपूर्ण है । सुषुम्ना में सम्पन्न सूर्यग्रहण पर्व के समय वहाँ ब्रह्मादि देवगण भी जपरूपी यज्ञ सम्पन्न करने में निरत हो जाते हैं, निम्नबुद्धि बेचारे मानवों की तो बात ही क्या ? ग्रहण के समय पुष्करादि तीर्थों में निवास कर जपादि करने वाले कुछ मानवों को छोटी-मोटी कुछ सिद्धियाँ अवश्य मिल जाती हैं, लेकिन महासिद्धियाँ तो सुषुम्नान्तर्गत चन्द्र-सूर्य के ग्रहण को सुषुम्ना में सम्पन्न होता हुआ देखने वाले साधकों को ही प्राप्त होती हैं । जप करने योग्य बाह्य सूर्य-चन्द्रग्रहण तो भाग्य से ही प्राप्त होता है । किन्तु, सुषुम्ना में घटित होने वाला ऐसा चन्द्रग्रहण और भी दुर्लभ है ।

शिव ने पार्वती से कहा कि ग्रहण की घटना में चन्द्र, सूर्य और राहु तीन पात्र हैं । व्यक्ति के आध्यात्मिक जगत् में भी भौतिक जगत् की भाँति ही ग्रहण की घटना घटती है । यहाँ भी चन्द्र, सूर्य और राहु वर्तमान हैं । व्यक्ति के सहस्रारकमल में चन्द्रमा, मूलाधार में सूर्य तथा स्वाधिष्ठान में राहु की स्थिति है । भौतिक जगत् की भाँति ही आन्तरिक जगत् में भी ये तीनों ग्रहण के पात्र बनते हैं। स्वाधिष्ठानवर्ती राहु के कारण सूर्य-चन्द्रग्रहण होता है । तो, जिस समय भौतिक जगत् में सूर्यग्रहण हो रहा हो, उस समय साधक को चाहिये कि वह अपने मनस् को सहस्रार में और चन्द्रग्रहण के समय मूलाधार में स्थिर करे । क्योंकि, बाह्यजगत् में घटित हो रहे चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय यदि दर्शक अपने मनस् को ब्रह्मकमल अर्थात् सहस्रार में स्थित चन्द्र में तथा चन्द्रग्रहण के समय मूलाधारस्थित सूर्य में स्थिर नहीं करता, तो उसके द्वारा सम्पन्न जपादि समस्त कर्म निष्फल हो जाता है ।

ग्रहण के अवसर पर तीर्थादि में स्नान की परम्परा की ओर संकेत करते हुए शिव ने कहा कि मानव के शरीर के भीतर ही साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी सुषुम्ना नामक जो महान् सरिता है, उसी में गंगा, सरस्वती, सिन्धु, भैरव, शोण, ब्रह्मपुत्र आदि समस्त तीर्थ, प्रयाग, बदरी, हरिद्वार, गया, काशी, अयोध्या, मथुरा, कांची, गुप्तकाशी, मायापुरी, अवन्तिका, द्वारका आदि समस्त पवित्र तीर्थस्थान सशरीर वर्तमान हैं । इसलिये बाह्य ग्रहण के समय प्रयागादि बाह्य तीर्थस्थानों को छोड़ अपनी सुषुम्ना में वर्तमान इन तीर्थों-सरिताओं में ही अपने मनस् को निमज्जित करना चाहिये ।

श्रीशिव ने कहा कि स्वाधिष्ठानवर्ती राहुकृत चन्द्रग्रहण की घटना को अपने सहस्रार में तथा सूर्यग्रहण की घटना को मूलाधार में घटती हुई देख मनस् को अपने उस हृदय में स्थापित करना चाहिये, जहाँ नित्या महामाया रुद्ररूपिणी वह सुषुम्ना स्थित है, जिसके वामभाग में इडा तथा दक्षिण भाग में पिंगला नामक नाडियाँ स्थित हैं । चन्द्र-सूर्यग्रहण काल में जो साधक इडा, पिंगला और सुषुम्ना के मिलनस्थल अपने हृदयसरोवर में स्नान करता है, वह शिवशक्तिमय हो जाता है ।

श्रीशंकर ने पार्वती को बताया कि भौतिक जगत् में चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय प्रत्येक साधक को तब तक जप करना चाहिये जब तक कि चन्द्र और सूर्य राहुकृत ग्रहण से मुक्त न हो जायें । श्रीशिव ने कहा कि सुषुम्ना में घटने वाले जिस ग्रहण के रहस्यात्मक तत्त्व का निरूपण उन्होंने किया है, उसे या तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जानते हैं, अथवा मायापति भगवान् विष्णु । इन्द्रादि अन्य देवताओं को तो यह रहस्यात्मक ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब उनके पुण्यों का उदय होता है । आगे उन्होंने बताया कि ग्रहण के समय की गयी साधना के जिन फलों का उल्लेख किया गया है, पूर्वोक्त विधि से साधना करने पर उनमें से कुछ न कुछ फल पुष्करद्वीप निवासियों को भी अवश्य प्राप्त होता है । किन्तु, भारत में पूर्वोक्त साधना दीर्घकाल तक करने पर ही फलवती होती है । क्योंकि, यह समय अनेक दोषों से पूर्ण साक्षात् कलिरूप है ।

श्रीशंकर ने बताया कि चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय देव, नाग, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता तथा नागादि जातियों के लोग मनोरथ सिद्धि के लिये सुषुम्नापथ स्थित चन्द्रस्थान (सहस्रार) और सूर्यस्थान (मूलाधार) में जाकर जप करते हैं ।

श्रीशंकर ने पार्वती को यह भी बताया कि भौतिक जगत् में चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय प्रत्येक साधक को तब तक जप करना चाहिये जब तक कि चन्द्र और सूर्य राहुकृत ग्रहण से मुक्त न हो जायें । चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय ब्रह्माण्ड में जो महत् तेजस् उत्पन्न होता है, उस तेजस् को ग्रहण करके ब्रह्मादि देवता भी तेजस्वी बनते हैं, फिर भारतवासी पापिष्ठ मानवों की तो बात ही क्या ? उन्हें तो अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिये ग्रहण के समय उक्त विधि से साधना करनी ही चाहिये । कलियुग से अतिशय प्रभावित भारत में स्वभावत: अनेक दोष उत्पन्न होते रहते हैं । इसी कारण मन्त्रादि साधना की सिद्धि नहीं हो पाती । यहाँ साधनासिद्धि का केवल एक ही उपाय है । वह है, अनन्यभक्ति से भगवती महामाया की अर्चना । और कोई दूसरा मार्ग नहीं । इसलिये परम भक्ति के साथ भगवती की अर्चना करते रहना चाहिये । अन्त में शिव ने पार्वती से अनुरोध किया कि वे उक्त आन्तरिक ग्रहण के रहस्य की चर्चा किसी अनधिकारी व्यक्ति से न करें ।

सप्तम पटल में शिव ने उस मन्त्र का उद्घाटन किया है जिसे सूर्यग्रहण के अवसर पर जपा जाता है । वह त्रिखण्डात्मक मन्त्र (ओं ओं ओं) (ह्रीं), (ओं) (ह्रीं), और (ओं)

अर्थात् 'ओं ओं ओं ह्रीं ओं ह्रीं ओं' है । इस त्रिखण्डात्मक सप्ताक्षरी मन्त्र का दस बार जप करके ग्रहण देखने से ग्रहणदर्शन का दोष स्पर्श नहीं करता । ये मन्त्र गोपनीय हैं । इन दोनों मन्त्रों का उल्लेख किसी भी तन्त्र में नहीं किया गया है । सूर्य और चन्द्र के ग्रहण और मोक्ष में किसी तिथि, व्रत या हवन का विधान नहीं है । ग्रास से मोक्षपर्यन्त केवल इन मन्त्रों में से किसी एक का निरन्तर बाह्य तथा आन्तरिक जप करते रहना चाहिये ।

ग्रहण के समय सभी तीर्थ और सामान्य जल अपनी विशिष्टता त्यागकर पवित्र तीर्थों के पवित्र जल के समान हो जाते हैं । उस समय सामान्य जल भी गंगाजल की भाँति पवित्र हो जाता है । ग्रहण के समय किये गये स्नान, दान तथा श्राद्ध का फल सामान्य से करोड़ गुना अधिक मिलता है तथा सूर्यग्रहण के समय किये गये स्नान, दान तथा श्राद्ध का फल सामान्य से दस गुना अधिक । श्रीशिव ने बताया कि पृथ्वी पर स्थित अन्य पुष्करादि द्वीपों तथा इलादि वर्षों में अनेक तीर्थ हैं । वहाँ के निवासी देवताओं के समान हैं और उनको विविध भोग स्वतः प्राप्त हैं । लेकिन, भारतवासियों को सौभाग्य से चन्द्रदेव और सूर्यदेव के ग्रहण के महापर्व का अवसर मिलता है, जिसमें केवल जप मात्र से मोक्षादि का अक्षय्य फल प्राप्त हो जाता है । ग्रहण के अवसर पर पवित्र हुए जल में स्नानमात्र से सभी भारतवासी चतुर्भुज भगवान् विष्णु के सदृश हो जाते हैं ।

भगवान् शंकर ने कहा कि सूर्य और चन्द्रग्रहण के अतिरिक्त भी कई ऐसे पर्व हैं, जो इन ग्रहणपर्वों से भी करोड़ों गुना अधिक फल देने वाले हैं । जैसे, सोमवार तथा मंगलवार की चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियाँ करोड़ों सूर्यग्रहण के समान हैं । इसी प्रकार शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथियाँ भी श्रेयस्करी हैं । इन तिथियों को भगवती की अर्चना अवश्य करनी चाहिये । इन तिथियों में पूजा न करने से साधक तत्त्वहीन हो जाता है और तत्त्वहीन साधक द्वारा किये गये सारे जपयज्ञादि कर्म निष्फल रहते हैं । यदि शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथियों में पूजा नहीं की जाती तो भगवती भवानी रुष्ट हो जाती हैं और इस कारण, साधक भले ही शिव जैसा ही क्यों न हो, उसके द्वारा किये गये समस्त जपहोमादि कर्म बिना फल दिये ही नष्ट हो जाते हैं ।

शिव ने कहा कि ब्राह्मणादि चारों वर्णों को चाहिये कि वे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण में से सूर्यग्रहण को अधिक महत्त्वपूर्ण मानें । क्योंकि सूर्यग्रहण से अधिक महत्त्वपूर्ण काल इस पृथ्वी पर कोई भी नहीं है । यह काल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है । चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय यदि कोई दीक्षित साधक अपने गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जप नहीं करता, तो उसके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् वह मल का कीड़ा बनता है । ग्रहणकाल में मन्त्र का जप करने में तिथि, नाम, गोत्रादि सहित किसी संकल्प की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती, केवल जप ही करना होता है ।

श्रीशिव ने आगे कहा कि इस कलियुग में यवनों की प्रधानता है । वे मद्य पीने तथा मांस खाने में रुचि रखते हैं, सर्वदा मदिरा पीते रहते हैं और सर्वदा दुराचरण में लगे रहते

हैं। इस कारण उनके द्वारा जपे गये मन्त्र सिद्ध नहीं होते। लेकिन, मद्य-मांस और दुराचरण में रत ऐसे यवनों को भी साधना करके सिद्धि पाने का अधिकार है। उनके लिये त्र्यक्षरी मन्त्र ब्रह्मस्वरूप है। यह मन्त्र पहले कलावती बीज, तदनन्तर 'वज्रिणि' पद, फिर रतिबीज, तब रुद्रयोगिनि' के योग से बनता है। जब यह विद्या संयुक्त हो जाती है, तो यह एकाक्षरी विद्या बन जाती है। श्रीशिव ने कहा कि यह सच है कि सदाचार पारायण ब्राह्मणादि साधकों को साधना की सिद्धि दीर्घकाल तक साधना करने पर ही मिलती है, और दुराचरण में रत लोग इन साधनाओं को करने से स्वयं नष्ट हो जाते हैं। लेकिन, साधनारत सदाचरणशील ब्राह्मणादिकों को भी उनकी साधना का फल शीघ्र मिल जाये, इसके भी सैकड़ों उपाय तन्त्रान्तरों में बताये गये हैं। उन उपायों को नियम और विधिपूर्वक यथोक्त विधि से सम्पादित करने पर ब्राह्मणादिक साधक भी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् श्रीशिव ने माहेश्वरी को चेताया कि वे इसे किसी अन्य व्यक्ति को न बताएँ।

अष्टम पटल में गोपनीय पुरश्चर्या विधि तक की गयी पूजा और उससे प्राप्त होने वाले फलों की चर्चा है। यहाँ शिव ने पार्वती को बताया है कि यदि कोई साधक किसी रजस्वला शक्ति को देख उसमें भगवती की भावना कर कुलाचार विधि से पूजन और लगातार सोलह दिनों तक मन्त्र का 108 बार जप करे तो इसके प्रभाव से वह निश्चितरूप से वाक्पति बृहस्पति के समान बन जाता है।

कुलाचार विधि से कुलशक्ति का पूजक महासाधक यदि रात्रि के समय चन्द्रमा के बिम्ब को देखता और मद्यपान करता हुआ बार-बार शक्ति का आलिंगन कर उसके उरोजों का मर्दन करे, तो वह शीघ्र ही महान् कवि बन जाता है।

यदि कोई साधक 'हे भगवति ! आप प्रसन्न हों ! प्रसन्न हों ! ऐसी प्रार्थना करता हुआ पूर्वोक्त मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित कुण्डोद्भव और गोलोद्भव पुष्प महादेवी महामाया को समर्पित कर आहूत करे, तो यह आहुतिकर्म देवी के लिये समस्त जगत् की आहुति कर देने के समान है। महादेवी को कुण्डगोलोद्भव पुष्प चढ़ाने वाले को साधक को यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है कि आवश्यकता होने पर वह क्रोध में काल के समान अजेय, दान में कुबेर के समान, वाणी में बृहस्पति के समान, कामिनियों के लिये कामदेव के समान और अधिक क्या, साक्षात् शिव के समान ही हो जाता है। कुलाचार की विधि से भगवती की अर्चना में निरत साधक मन्त्र का दस हजार जप करके नौ कुमारियों को भोजन कराये तथा अपने गुरु को दक्षिणादि प्रदान कर प्रसन्न करे, तो वह सर्वप्रिय हो जाता है।

प्रतिपदा से लेकर अगली प्रतिपदा तक प्रतिदिन तारिणी दुर्गा के एकाक्षरी महामन्त्र का दस हजार जप और एक हजार हवन सम्पन्न करने के बाद शक्ति की अनुमति लेकर शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने वाला साधक शत्रुओं पर निश्चित विजय प्राप्त करता है। प्रतिदिन प्रातःकाल उक्त मन्त्र से 108 बार अभिमन्त्रित जल पीने से पाषाण की भाँति जड़, मूक तथा विजड़ित व्यक्ति भी बृहस्पति के समान विद्वान् वक्ता हो जाता है।

त्रिलोकी को वश में करने वाली तारिणी दुर्गा के मन्त्र का 1 लाख जप पूर्ण कर भगवती का ध्यान करने वाले व्यक्ति को शत्रु, राजा तथा दस्यु आदि किसी से भी कभी भय नहीं रहता । त्रैलोक्यमोहिनी दुर्गा का ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का दस हजार जप करने से अनावृष्टि समाप्त होकर प्रभूत वृष्टि होती है । इस मन्त्र से मधुमिश्रित घृत के साथ मालती, मल्लिका तथा जाती के पुष्पों का हवन करने से पत्थर के समान जड़ तथा मूक व्यक्ति को भी वागीशत्व प्राप्त होता है । जपा अथवा कनेर के पुष्पों के हवन से साधक स्वर्ग, पृथिवी तथा पाताल तीनों लोकों के निवासियों को वश में कर लेता है । कर्पूर, केशर तथा कस्तूरी का हवन करने से हवनकर्ता मान्त्रिक सौभाग्य, विलास और सामर्थ्य में कामदेव से भी बढ़कर हो जाता है । चम्पा तथा पाटलपुष्पों के हवन से साधक महान् धनलक्ष्मी प्राप्त करता है तथा उसमें संसार को स्तम्भित करने की भी शक्ति आ जाती है । चन्दन, गुग्गुलु, अगरु तथा चन्द्र का हवन करने से साधक असुर, सुर, नाग तथा इन्द्रादि देवलोकों की नारियों को ही नहीं, समस्त लोकों को अपने वश में कर लेता है ।

केवल तीन पल की मात्रा में मधु का एक लाख हवन करने से दरिद्र और भयभीत व्यक्ति को भी राज्य की प्राप्ति होती है तथा उसके समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं । मधुरत्रय एवं रक्तसहित बकरे के मांस से विहित विधि से हवन करने से साधक इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह अपने पराक्रम से शत्रु के राष्ट्र और दुर्ग को नष्ट कर सकता है । गाय के दूध, दही, घृत तथा मधु के अलग-अलग हवन से साधक को आयु, धन, आरोग्य तथा महासमृद्धि की प्राप्ति होती है । गाय के दूध और मधु से अलग-अलग हवन करने से पीड़ा नष्ट हो जाती हैं । दही और शहद के हवन से सौभाग्य और धन की प्राप्ति होती है तथा केवल शर्करा के हवन से शत्रु का स्तम्भन होता है ।

दधि, घृत, दुग्ध तथा लाजा के हवन से साधक रोग, काल तथा मृत्यु को पराजित कर देता है, इसमें संशय नहीं । रक्तकमलों के हवन से प्रभूत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । लाल कमल का हवन संसार को वश में करने वाला है । इससे राजा भी वश में हो जाते हैं । नील कमलों का हवन करने से निःसन्देह बड़े-बड़े दुष्ट वश में हो जाते हैं और श्वेत कमलों का हवन करने से वांछित राज्य की प्राप्ति होती है । गाय के दूध, दही, घृत तथा मधु के अलग-अलग हवन से साधक को आयु, धन, आरोग्य तथा महासमृद्धि की प्राप्ति होती है । एक-एक करके गाय के दूध और मधु से हवन करने से पीड़ा नष्ट हो जाती है । दही और शहद के हवन से सौभाग्य और धन की प्राप्ति होती है तथा केवल शर्करा के हवन से शत्रु का स्तम्भन होता है। दधि, घृत, दुग्ध तथा लाजा के हवन से साधक रोग, काल तथा मृत्यु को पराजित कर देता है, इसमें संशय नहीं । लाल कमलों के हवन से प्रभूत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । लाल कमल का हवन संसार को वश में करने वाला है । इससे राजा भी वश में हो जाते हैं ।

मन्त्रसिद्धि के लिये एक विशेष प्रयोग बताते हुए शंकर ने पार्वती से कहा कि चन्दन के द्रव से अक्षमाला का पूजन करके उस माला से दुर्गा मन्त्र का 1 लाख जप करने से साधक

के मन में साधना के प्रति पहले कुछ भ्रान्ति उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति आने पर साधक को एक लाख जप और करना चाहिये। इस प्रकार दो लाख जप करने से साधक को जप से डिगाने के लिये पाताललोकवासिनी कन्याएँ अपने कटाक्षों से उसे मोहित करने लगती हैं। ऐसी स्थिति आने पर साधक को मन्त्र का एक लाख जप और करना चाहिये। मन्त्र के इस तीसरे लाख के जप से साधक को डिगाने के लिये स्वर्गलोक की ललनाएँ अपने गर्व, सौन्दर्य के गर्व, मान के जाल में उसे फँसाने का प्रयास करती हैं। इस स्थिति में दृढ़ मानस साधक अपने साधनापथ पर अटल रहते हुए उन ललनाओं को अपने वश में करने में समर्थ हो जाता है।

इस प्रकार मन्त्र का तीन लाख जप साधक के लिये श्रेयस्कर और उसके समस्त पापों का विनाशक होता है। स्थिरमानस साधक द्वारा मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण कर लिये जाने पर स्वर्ग तथा भूलोक में निवास करने वाले समस्त स्त्री-पुरुष तथा चराचर संसार साधक के वश में हो जाते हैं। इस प्रकार की वशीकरण की शक्ति प्राप्त होने पर साधक को अपने जप की पूर्णता के लिये समाहित मन से मन्त्र का तीन लाख जप पुनः करना चाहिये।

आगे श्रीशिव ने पार्वती को चक्रपूजन की विधि बताते हुए कहा कि चक्र का आलेखन किसी शान्त वन की रमणीय भूमि पर गोरोचन आदि पवित्र पदार्थों से करना चाहिये। चक्र का अंकन हो जाने पर उसके मध्य भगवती महामाया दुर्गा के नाम से युक्त उनकी तेजस्पूर्ण सुन्दर प्रतिमा की स्थापना करनी चाहिये। उस प्रतिमा पर भगवती दुर्गा का महाबीज भी अंकित होना चाहिये।

विधिपूर्वक प्रतिमा की स्थापना के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह उस प्रतिमा के सामने स्थिर बैठकर भगवती का ध्यान और मन्त्र का जप करे। इस साधना के प्रभाव से साधक द्वारा पहले देखी गयी राजकन्या या राजपत्नी भी मन्त्रमुग्ध-सी होकर राजभय और लोकलाज की चिन्ता किये बिना साधक के पास आ जाती है।

चक्रपूजा के बाद भी साधक को चाहिये कि वह सर्वदा स्वयं तथा अपने साध्य को भगवती दुर्गा की उदित हो रहे सूर्य की अरुण आभा से मण्डित अरुणाभ रूप में चक्र के मध्य बैठा हुआ-सा चिन्तन करता रहे। इस क्रमयोग की साधना से साधक कामदेव के समान सुन्दर, समस्त प्रकार के सौभाग्यों से मण्डित और सभी को वश में करने वाला हो जाता है। शिव ने बताया कि जो साधक रक्तवर्ण के गन्धपुष्पादि सामग्रियों और आवश्यक मुद्रादि के प्रत्यक्ष प्रदर्शन के साथ किसी भी देवता के नाम से विदर्भित चक्र का पूजन करता है, वह कुबेर के समान धनाढ्य अथवा राजा हो जाता है। भगवान् श्रीशिव ने भगवती उमा से कहा कि जिस गोपनीय साधना का उल्लेख उन्होंने किया है, उसे प्राणों पर संकट आ पड़ने पर भी वे किसी को न बतायें।

नवम पटल में प्रयोजनानुसार विविध कुण्डों की चर्चा करते हुए शंकर ने पार्वती को बताया कि 'शान्ति, पुष्टि और आरोग्य के उद्देश्य से किये जाने वाले हवन के लिये चतुरस्र

कुण्ड, आकर्षण कर्म में त्रिकोणात्मक कुण्ड तथा उच्चाटन तथा माण के लिये वर्तुल कुण्ड का उपयोग करना चाहिये। पौष्टिक कर्म के लिये हवन-कुण्ड का निर्माण उत्तर दिशा में, शान्तिकर्म में पश्चिम, उच्चाटन में वायव्य तथा मारण कर्म के लिये हवन-कुण्ड दक्षिण दिशा में बनाना चाहिये।

ब्राह्मणों को चतुरस्र, क्षत्रियों के लिये वर्तुल, वैश्यों के लिये अर्धचन्द्राकार तथा शूद्रों के लिये तिकोने कुण्ड के प्रयोग का विधान है। कुछ तान्त्रिकों के अनुसार शान्त्यादि सभी कर्मों में हवन के लिये चतुरस्त्र कुण्ड का ही प्रयोग करना चाहिये। वास्तव में, चतुष्कोण कुण्ड सभी जातियों के साधकों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले शान्ति-पुष्ट्यादि सभी कर्मों में हवन के लिये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। गृहादि के निर्माण में लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई आदि की माप हाथ से करना चाहिये। रथ, दोला, पोत तथा बाणादि के माप के लिये अँगुलियों को मानक बनाना चाहिये, मुष्टि, अरत्नि आदि कथित मानों का उपयोग नहीं करना चाहिये। पूर्वोक्त गृहादि की मापक्रिया में यजमान के हाथ और अँगुलियों का ही प्रयोग करना चाहिये। जहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं, वहाँ पैमाइश करने वाले के हाथ और अँगुलियों को मानक बनाया जा सकता है। एक अँगुलि मान आठ यवों या तण्डुलों के बराबर होता है। 1 हजार हवन के लिये 1 हाथ के कुण्ड का प्रयोग किया जाता है। दस हजार हवन के लिये दो हाथ, 1 लाख वाले हवन के लिये 4 हाथ, 4 लाख हवन के लिये छह हाथ, 10 लाख हवन के लिये 8 हाथ तथा 1 करोड़ हवन के लिये दस हाथ के बराबर कुण्ड के निर्माण का विधान है। धरती पर दस हाथ से अधिक कुण्ड बनाने का विधान नहीं है। हाँ, 1 करोड़ होम से अधिक दस लाख तक अधिक हवन के लिये प्रत्येक एक लाख पर कुण्ड की माप एक हाथ बढ़ायी जा सकती है, इससे अधिक नहीं। नाल और मेखला के मध्य एक यन्त्र पवित्रा स्थापन के लिये और दूसरा मेखला के ऊपर बनाना चाहिये। हस्तमान दायें हाथ की मध्यमा अँगुलि के सर्वोच्च पर्व के उच्चस्थान से लेकर हाथ के मध्यभाग तक माना जाता है। 1 अँगुलि मान आठ यवों या तण्डुलों के बराबर होता है। अन्य कुण्डों में भी प्रत्येक लाख अधिक हवन पर छह अंगुल और दो यव के बराबर माप बढ़ाना चाहिये। कुण्डों में नाभि का निर्माण भी यथविधि करना चाहिये। योनिकुण्ड में योनि और अब्जकुण्ड में नाभि का निर्माण नहीं करना चाहिये। नाभिभाग को तीन भागों में विभक्त कर मध्यभाग में कर्णिका का निर्माण करना चाहिये। कर्णिका के बाहर कमलपत्राकार आठ पत्रों की रचना करनी चाहिये। पूर्व, आग्नेय और दक्षिण दिशा में निर्मित कुण्डों में योनि उत्तराभिमुखी होनी चाहिये तथा अन्य दिशाओं वाले कुण्डों में पूर्वाभिमुखी। उत्तर के कुण्ड में योनि पूर्व या ईशानाभिमुखी होनी चाहिये। संक्षिप्त हवन कम्र में वेदी चतुष्कोणीय, 1 हाथ लम्बीं 1 अंगुल ऊँची और चारों ओर समान होनी चाहिये।

पूर्व दिशा की ओर मुख कर, दाहिने हाथ में स्रुवा लेकर प्रज्वलित अग्नि के मुख में त्रिमधुरादि से निर्मित हवि का हवन करना चाहिये। हवन कर्म में यह नियम है कि 'नमः' अन्त वाले मन्त्रों के अन्त में 'नमः' शब्द का तथा 'स्वाहा' अन्त वाले मन्त्रों में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करते हुए हवन करना चाहिये।'

दशम पटल में मन्त्रसिद्धि के लिये पुरश्चर्या विधान का निरूपण किया गया है। बताया गया है कि पुरश्चर्या के लिये स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे और पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये। आसन पर बैठकर वह पहले एकाग्र मन से गायत्री का जप करे। जप समाप्त करने के बाद वह वेदी पर कीलक का आरोपण कर उस पर पूजन करे। वेदी पर स्थापना के लिये लकड़ी 12 अंगुल की और उदुम्बर की होनी चाहिये तथा उस पर भूतों, भैरवों, जयदुर्गा, गणेश, विष्णु, शिव तथा लोकपालों की यथाक्रम यथोचित अर्चना करनी चाहिये। भैरवादि की अर्चना के पश्चात् संकल्प करके प्रात:काल से लेकर दोपहर तक भगवती महामाया दुर्गा के मन्त्र का जप करना चाहिये। सत्ययुग में 12 लाख , त्रेता में तीन लाख, द्वापर में 4 लाख और कलियुग में केवल 1 लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

जप पूर्ण करके प्रज्ज्वलित अग्नि में जपित मन्त्र का दशांश हवन और हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मणभोज कराना चाहिये। ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् गुरु को विभवानुसार दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।

मन्त्र के जप का नियम तो यही है। इस प्रकार के जप से मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाता है और जिस साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है, वह साक्षात् शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं। यदि उक्त विधि से जप करने पर मन्त्र सिद्ध नहीं होता, तो मन्त्र की सिद्धि के लिये पुन: इसी विधि से मन्त्र का अनुष्ठान करना चाहिये। यदि विधि से दुबारा पुरश्चर्या से भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता, तब श्रीबीज अथवा प्रणव को पुटित कर मन्त्र का दस हजार जप करने से मन्त्र अवश्य ही सिद्ध हो जाता है।

एकादश पटल में भगवान् श्रीशिव ने पार्वती के समक्ष भावानुसार साधना का निरूपण किया है। उन्होंने पार्वती को बताया कि शाक्त और शैव साधना में तीन भाव होते हैं—पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। इन भावों में स्थित होकर साधना करने से साधक इहलोक में सुख तथा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है। पशुभाव से साधना करने से दीर्घकाल में मन्त्र सिद्ध होता है। किन्तु, जो साधक दिव्यभाव में स्थित हो जाता है, वह तो साक्षात् शिव ही है।

कलियुग में वीरभाव से की गयी मन्त्रसाधना शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है। इस साधना में साधक को दिन में हविष्य का भोजन करना चाहिये तथा रात्रि में अपनी शक्ति के साथ पंचाचारों से भगवती की अर्चना करनी चाहिये। इस भाव की अर्चना में शक्ति अर्थात् लता की प्रधानता होती है। वीर साधक को चाहिये कि वह लता अर्थात् शक्ति का पूजन मातृभाव से करे। वीरभाव की पूजा में चाहिये कि साधक दुर्गा तथा तारा नामक देवियों को काली का ही रूप मानकर उनकी पूजा भी काली की भाँति ही करे। क्योंकि, महामाया ही काली हैं, वे ही महादुर्गा हैं, वे ही दुर्गा और तारिणी हैं। महामाया की इस साधना में ध्यान दुर्गा और काली के स्वरूप का ही किया जाता है। श्रीशिव कहा कि साधक को चाहिये कि वह देवी की पूर्वोक्त विधि से आन्तरिक तथा बाह्य उपासना करे। ऐसा करने से किसी भी कारण

सिद्ध न हो रहा मन्त्र दोषरहित शुद्ध हो जाता है । भगवती दुर्गा के सभी मन्त्रों का जापक केवल कुलीन ही हो सकता है, कुलीन ही सभी मन्त्रों के जप का अधिकारी है । कुलीन साधक दुर्गा तारिणी आदि सभी पराशक्तियों का प्रिय होता है । कलियुग में कुलाचार साधना से बड़ी कोई अन्य साधना नहीं है ।

लता-साधना की गोपनीय विधि का उद्घाटन करते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि रूपयौवनादि विशिष्ट गुणों से युक्त किसी युवा लता को चक्रपूजा के स्थल पर लाकर उसे साक्षात् भगवतीरूप मानते हुए विहित विधि से उसकी पूजा करने के बाद उसके ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श कर सौ बार, ललाट का स्पर्श कर सौ बार, सीमन्त का स्पर्श कर सौ बार, सौ-सौ बार दोनों उरोजों का स्पर्श कर, सौ बार नाभि का स्पर्श कर, सौ बार योनि का स्पर्श करके उसे खड़ी करके उसके समस्त शरीर का स्पर्श करते हुए तीन सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिये । इस प्रकार एक हजार बार जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ।

लतासाधन की एक अन्य विधि का निरूपण करते हुए शिव ने भवानी को बताया कि पूर्वोक्त गुणों से युक्त किसी रजस्वला लता को लाकर उसे अपनी इष्ट देवता भगवती का साक्षात् स्वरूप मानते हुए तीन दिनों तक उक्त विधि से उसे अर्चित करके उसका स्पर्श करके प्रतिदिन 336 बार मन्त्र का जप करना चाहिये । इस साधना से साधक को शव-साधना से भी हजार गुना अधिक फल प्राप्त होता है । शिव ने कहा कि भगवती के श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि वह पाप-पुण्य की चिन्ता किये बिना परोपकार में निरत रहते हुए अपना समय देवी के कवचादि का पाठ करते हुए ही व्यतीत करे, व्यर्थ की बकवास में नहीं ।

इसी पटल में शिव ने भगवती के पूजाधारों का भी निरूपण किया है । तदनुसार भगवती महामाया की अर्चना स्नान करने के यन्त्र पर, शिलायन्त्र पर, बिल्ववृक्ष के नीचे, कलश पर, लिंग पर, महापीठ योनि पर, निर्जन भवन में, चौराहे पर, कुट्टिनी के घर में, कदलीमण्डप में, रजस्वला के भग में, वेश्या के घर में, महा अरण्य में, नितान्त एकान्त में, शव पर अथवा शक्तिसंगम स्थल पर करनी चाहिये ।

भगवती के साधक को चाहिये कि वह पंचतत्त्वों के सेवन से प्राप्त आनन्द में मग्न रहते हुए उनकी साधना करे । इस साधना से उसे वह सब कुछ प्राप्त होगा, जो वह चाहता है । जहाँ तक धन का प्रश्न है, स्वयं कुबेर उसके घर आकर धन प्रदान करेगा ।

महामाया की इस साधना से प्राप्त उनकी कृपा से साधक को वह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह वायु की गति अवरुद्ध कर सकता है, जल का प्रवाह रोक सकता है, सूर्य की गति स्तम्भित कर सकता है और अग्नि को भी शीतल कर सकता है । भगवती के साधक के लिये संसार में कुछ असाध्य नहीं है ।

इस पटल में साधना की एक अन्य विधि का उद्घाटन करते हुए शंकर ने बताया कि योनिकुण्ड का निर्माण कर उसमें कामबीज 'क्लीं' लिख, उसमें शिव की स्थापना कर

पूजन और हवन करने वाला साधक साक्षात् शिव बन जाता है । पटल के अन्त में शिव ने कहा है कि जो साधक कवच का 100 बार पाठ करता है, वह एक मास के भीतर ही महान् वक्ता बन जाता है । उसे शीघ्र ही सुखकरी कवित्व शक्ति प्राप्त हो जाती है और वह संसार में सर्वत्र शिव की भाँति पूज्य और सम्मानित होता है । शिव ने पार्वती से अनुरोध किया कि गुप्तसाधना की जो यह विधि उन्हें बतायी गयी है, उसे वे किसी अन्य को न बताएँ ।

एकादश पटल के अन्त में शिव ने स्त्रियों की महत्ता का निरूपण किया है । उन्होंने पार्वती से कहा कि दुर्गामन्त्र के साधकों के लिये उनकी पत्नियाँ समस्त विभूतियों में वृद्धि करने वाली गृहलक्ष्मी होती हैं । लेकिन, यदि वे क्रुद्ध हो जायें, तो उसके धन और आयु के नाश का कारण भी बन जाती हैं । अपनी पत्नी का अप्रिय करने वाले साधक का न्यास, पूजा, जप, स्तुति, दक्षिणासहित किया गया हवन कर्म सब कुछ व्यर्थ है । जो व्यक्ति अपनी पत्नी की निन्दा करता है उसके बुद्धि, बल, यश, रूप, आयु, धन तथा पुत्रादि सब नष्ट हो जाते हैं । भले ही अपने माता-पिता, शंकर-विष्णु यहाँ तक कि भगवती दुर्गा को त्याग देना पड़े, अपनी पत्नी का त्याग कभी नहीं करना चाहिये । भले ही लोगों की निन्दा का पात्र बनना पड़े, अथवा अपयश का भागी बनना पड़े, या प्राणों का त्याग करना पड़े, स्त्रियों का बुरा कभी नहीं करना चाहिये । स्त्रियों का अपकार करने वाले व्यक्ति की रक्षा ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा सनातन नारी भगवती दुर्गा भी नहीं कर सकतीं । भगवती दुर्गा की साधना करने वाला साधक महापातकों के सम्पर्क से उत्पन्न दोषों से मुक्त रहता है । महापातकों से वह उसी प्रकार अलिप्त रहता है, जैसे जल में स्थित कमलपत्र जल से असम्पृक्त रहता है ।

द्वादश पटल में शिव ने उस दुर्गा कवच को प्रकट किया है जिसका पाठ कर देवराज इन्द्र ने स्वर्ग का महान् राज्य प्राप्त किया था, कृष्ण पाँचभौतिक संसार पर विजय प्राप्त कर योगेश्वर बने थे और जिसे धारण करने से शुकदेव भी सभी प्रकार के योगों में पारंगत हो गये थे । श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि इस कवच का विनियोग समस्त प्रयोजनों के लिये होता है । कवच के पाठ के समय अभिलषित कार्य में विनियोग करने के बाद प्राणायाम और तब भावनासहित निम्नांकित कवच का पाठ करना चाहिये—

मायाबीजं शिरः पातु कामबीजं तु वालकम् ।
दुर्गाबीजं नेत्रयुग्मं नासिकां मन्त्रदामनुः ॥
वदनं दक्षिणाबीजं ताराबीजं तु गण्डयोः ।
षोडशी मे गलं पातु कण्ठं मे भैरवीमनुः ॥
हृदयं छिन्नमस्ता च उदरं बगला तथा ।
धूमावती कटिं पातु मातंगी पातु सर्वतः ॥
सर्वांगं मे सदा पातु सर्वविद्याश्वरूपिणी ।

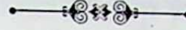
माया कवच के उल्लेख के अनन्तर शिव ने पार्वती को कवच के पाठ की महिमा से भी अवगत कराते हुए कहा कि मायादेवी का कवच मैंने तुम्हें बता दिया । इसे पढ़ने अथवा

धारण करने से साधक विद्यावान् और धनवान्, पुत्रपौत्रादि से रहता है तथा मृत्यु के बाद मोक्ष को प्राप्त होता है । शिव ने बताया कि यद्यपि यह कवच गोपनीय है, फिर भी इसे साधक को दिया जा सकता है । किन्तु, भगवती दुर्गा के अतिरिक्त अन्य देवता की साधना करने वाले और आचरण से भ्रष्ट व्यक्ति को कभी नहीं देना चाहिये ।

अन्त में श्रीशिव ने देवी पार्वती से कहा कि अब तक त्रिलोकी में गुप्त इस मायाकवच के पठन तथा धारण से महापातकों का भी विनाश हो जाता है । इसे साक्षात् कल्पवृक्ष मानते हुए इसकी अर्चना करके समृद्धि प्राप्त करनी चाहिये ।



मायातन्त्रम्



अथ प्रथमः पटलः

ओं नमः परमदेवतायै
सृष्ट्यादौ सिसृक्षोद्भवे विष्णोः मायास्मरणम् ।

श्रीईश्वर उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि तत्त्वमन्यद् यथा पुरा ।
तोयव्याप्ते तु सर्वत्र स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥1॥
विश्वे चैकार्णवीभूते न सुरासुरमानवाः ।
न च क्षितिर्नि वा किञ्चित् तोयमात्रावशेषितम् ॥2॥

भगवान् शिव ने पार्वती से कहा—एक समय ऐसा था जब स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में सब जगह जल ही जल था । जल के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं था । समस्त विश्व एक सागर बन चुका था । देवता भी नहीं बचे थे और न बचे थे असुर । मानव भी नहीं रह गये थे । क्योंकि धरती तो डूब ही चुकी थी । यदि कहीं कुछ शेष था, तो वह था जल, केवल जल, और कहीं कुछ नहीं ।

तदा विश्वोद्भवाद् देवात् सिसृक्षा समजायत ।
ध्यात्वा सर्गादिसमये मायां सस्मार च प्रभुः ॥3॥

हे पार्वति ! तब भी ऐसा कुछ था, जिससे सब कुछ होता है । वह था, इसलिये वह 'सत्' था । वह चेतन था, इसलिये वह 'चित्' था । वह सबमें व्याप्त था, पर सबसे परे भी था । अतः वह परम था । वह था 'सर्व' का त्राता । वह था सभी बीजों का रक्षक, सभी बीजों को अपने में समेटे वह उस नीरनिधि में भी व्याप्त था । अतः वह 'नारायण' था । सबमें व्याप्त होकर भी सब उसमें थे । लेकिन वह सबसे परे भी था । सब उसमें थे, अतः वह सब का शास्ता था । अतः सबका ईश्वर था । वह परम भी था और ईश्वर भी था, अतः वह परमेश्वर था ।

हे पार्वति ! सृष्टि का आरम्भ होने ही वाला था । किसी अज्ञात अकल्पित क्षण में एक घटना घटी । सृष्टि के बीज जिस परमेश्वर में हैं, जिससे सृष्टि के बीज आविर्भूत होते

है, अंकुरित होते हैं। जिसमें पुष्पित और फलित होते हैं, और अन्त में जिसमें सब समा जाते हैं—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रत्यभिनिविशन्ति' उसमें 'सिसृक्षा' सृजन की 'इच्छा' जगी। उस प्रभु ने सोचा—'मैं अकेला हूँ, अनेक हो जाऊँ'—'एकोऽहं बहु स्याम'।

उसने स्मरण किया, अपनी पराशक्ति 'माया' का, उस मायाशक्ति का, जिसके विविधरूप हैं—'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'।

मायया वटपत्रे विष्णोः धारणम्

तदा वटदलं भूत्वा तोयाऽन्तः समवस्थितम्।
ततो नारायणं देवं सा दधार स्वलीलया ॥4॥

हे पार्वति! अपने आपको ही समस्त सृष्टि रूपों में परिणत होने की इच्छा से उस प्रभु ने माया का स्मरण किया। उस माया का जो 'मा या' है। 'मा' नहीं, 'या' जो वास्तव में है ही नहीं। उस परमेश्वर से पृथक् जिसका कोई अस्तित्व ही नही। फिर भी वह 'मा' 'या' है, अर्थात् 'जो' सृष्टि की 'मा' है।

प्रभु ने अपनी पराशक्ति माया का स्मरण किया। स्मरण करते ही अघटितघटना-पटीयसी वह माया उस जलराशि में 'वटपत्र' के रूप में अभिव्यक्त हुई। उसने जलराशि में निराकार रूप में व्याप्त परमेश्वर को साकार करके अपने वटपत्रकार आधार में धारण कर लिया-वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं····।

मार्कण्डेयेन विष्णोः स्तुतिः

विचचार तदा तोये स्वेच्छाचारः स्वयं विभुः।
विचरन्तं वटदले तोयेषु परमेश्वरम् ॥5 ॥
वटवृक्षस्थितस्तत्र मार्कण्डेयो महामुनिः।
ददर्श परमेशानं शिवमव्यक्तरूपिणम् ॥6॥

हे पार्वति! उस अनन्त जलराशि में विश्व समा चुका था। पर, एक अक्षय्य वटवृक्ष तब भी शेष था। उस पर बैठे थे महामुनि मार्कण्डेय। उन्होंने उस जलौघ में वटपत्र पर शयन कर रहे अव्यक्त परमेश्वर को व्यक्त रूप में विचरण करते हुए देखा।

तुष्टाव स तदा हृष्टो मुनिः परमकारणम्।
नमस्ते देवदेवेश! सृष्टिस्थित्यन्तकारक ॥7॥
ज्योतीरूपाय विश्वाय विश्वकारणहेतवे।
निर्गुणाय गुणवते गुणभूताय ते नमः ॥8॥
केवलाय विशुद्धाय विशुद्धज्ञानहेतवे।
मायाधाराय मायेशरूपाय परमात्मने ॥9॥

नमः प्रकृतिरूपाय पुरुषायेश्वराय च ।
गुणत्रयविभागाय ब्रह्मविष्णुहराय च ॥10॥

महामुनि हर्षित थे । वे सृष्टि के मूलकारण उस परमेश्वर को पहचान गये । वे उसकी स्तुति करने लगे—'जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विलयन के कारणभूत हे देवों के देव ! आपको नमस्कार । हे प्रकाशरूप ! विश्वरूप, विश्व के आदिकारण ! निर्गुण ! सगुण ! स्वयंगुणरूप ! परमेश्वर ! आपको मेरी प्रणति । हे कैवल्यरूप ! हे विशुद्धस्वरूप ! हे विशुद्ध ज्ञान के कारणरूप । हे माया के आधार ! हे मायापते ! हे परमेश्वर आपको प्रणाम है । हे प्रकृतिरूप! हे पुरुषरूप ! हे ईश्वर ! हे त्रिगुणात्मक जगत् का विभाजन करने वाले ! हे ब्रह्माविष्णुहररूप परात्पर परमेश्वर ! आपको मेरा नमन है ।

मार्कण्डेयेन मायायाः स्तुतिः विश्वसृष्टयेऽनुरोधश्च

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
मायायै परमेशान्यै मोहिन्यै ते नमो नमः ॥11॥
जगदाधाररूपायै प्रकाशायै नमो नमः ।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपायै प्रकाशायै नमो नमः ॥12॥
जगदाधाररूपायै जगतां प्राणहेतवे ।
***..................................जगतां भोगहेतवे ॥13॥**
प्रपन्नोऽस्मि महामाये विश्वसृष्टिर्विधीयताम् ।
इति स्तुत्वा मुनिस्तत्र विरराम सुसंयतः ॥14॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवत् प्रपपात् च ।

हे पार्वति ! परमेश्वर का स्तवन करने के साथ ही मार्कण्डेय मुनि ने भगवती माया की ओर उन्मुख होते हुए कहा कि—'देवी माया को मैं नमन करता हूँ । महादेवी शिवा के लिये मेरा सतत नमस्कार । परमेश्वरी माया के लिये मेरा नमन । हे मोहिनि ! मेरा आपको नमस्कार, पुनः नमस्कार है । जगत् की प्रकाशिका एवं जगदाधारस्वरूपा महामाया को मैं नमन करता हूँ ।

ज्ञानियों के लिये ज्ञानस्वरूपा, प्राणियों को जीवनदायिनी भगवती माया को मैं नमस्कार करता हूँ । संसार के प्राणियों के लिये भोग तथा मोक्ष की हेतुभूता मायाशक्ति को मैं नमन करता हूँ । हे महामाये ! मैं आपकी शरण हूँ । कृपया आप संसार का पुनः सृजन करें' ।

भगवती महामाया का स्तवन करके मुनि मार्कण्डेय ने हाथ जोड़ शान्तभाव से महामाया को दण्डवत् प्रणाम किया ।

---

* अपूर्णेऽयं पंक्तिः मूलपुस्तके ।

मायया ब्रह्माणं सृष्टिकरणे नियोजनम्

तत उत्थाय देवेशं नाभिपद्मसमुद्भवम् ॥15॥
चतुर्वक्त्रं रक्तवर्णं ददर्श परमं शिशुम् ।
सृष्टौ नियोजयामास तं ब्रह्माणं सुरेश्वरम् ॥16॥

प्रणाम करके जब वे उठे तो उन्होंने अपने सामने भगवान् विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न दिव्य शिशुरूपधारी चतुर्मुखी रक्तवर्णी भगवान् ब्रह्मा को देखा । मुनि के समक्ष ही भगवती महामाया ने देवताओं के स्वामी ब्रह्मा को संसार के सृजन का कार्य करने का आदेश दिया ।

ब्रह्मणा सृष्टये योनिकल्पनम्

ध्यात्वा ब्रह्मा तदा तत्र सप्तर्षीन् परमेश्वरि !
जनयामास मनसा मानसास्ते ह्यतः प्रिये ॥17॥
विना शक्तिं न शक्तास्ते सृष्टिं कर्तुं मुनीश्वराः ।
योनौ सृष्टिरतो ज्ञेया ततो योनिमकल्पयत् ॥18॥

महामाया का आदेश प्राप्त कर ब्रह्मा ने ध्यान करके स्वकृत पूर्वसृष्टि की रचना-विधि का स्मरण कर उसके समान ही ('सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्') अपने संकल्प से ही दस पुत्रों को उत्पन्न किया । ब्रह्मा के उन मानस पुत्रों में वह शक्ति नहीं थी कि वे अपने संकल्पों से सृष्टि-रचना के कार्य को आगे बढ़ा सकें । क्योंकि सृष्टि के लिये शक्ति की और उसकी योनि की आवश्यकता होती है । शक्ति अपनी योनि को सृष्टि के आधार के रूप में प्रस्तुत करती है । सृष्टि के आधार के रूप में 'योनि' की आवश्यकता का अनुभव करके ब्रह्मा ने 'योनि' की संकल्पना की ।

कश्यपस्योत्पत्तिः प्रजोत्पादनं च

ततः कश्यपनामानं मुनिं पुनरजीजनत् ।
पुनः सृष्टौ च तं पुत्रं ब्रह्मा प्रोवाच यत्नतः ॥19॥
जनयामास ततः कन्यां गुणरूपसमन्विताम् ।
नियोज्य मुनये तां तु ब्रह्मा प्रोवाच सृष्टये ॥20॥
नानायोन्याकृतीस्तासु समस्तजीवजातयः ।
उत्पादयामास तदा प्रजापतिरथ स्थितः ॥21॥

विधाता ने पूर्वकल्प की रचना के सदृश ही सर्वप्रथम कश्यप नामके मुनि को उत्पन्न किया और अपने उस पुत्र को सृष्टि करने को कहा और मिथुनात्मक रचना हेतु रूप और गुणों से सम्पन्न एक कन्या (अदिति) भी उत्पन्न की और उसे कश्यप मुनि के साथ सन्तति-उत्पत्ति के कार्य में नियोजित किया । तब कश्यप और अदिति ने विभिन्न योनियों, आकारों

और जातियों वाली मैथुनी सृष्टि को जन्म दिया। इस कारण विभिन्न रूपाकार जीवजातियों के प्रजननकर्ता कश्यप प्रजापति के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

नारायणेन मायायाः धर्मरूपताकथनम्

ततो नारायणो देवस्तुष्टो मायामुवाच सः।
वटपत्रस्वरूपा त्वं यतो मां विधृताम्भसि ॥22॥
अतो धर्मस्वरूपासि जगत्यस्मिन् सनातनी॥
आराधयिष्यन्ति भुवि मनुजास्त्वां सनातनीम् ॥23॥
सर्वकामेश्वरो लोके मायां धर्मस्वरूपिणीम्।

भगवती माया की प्रेरणा और लीला से आरम्भ सृष्टि-रचना से प्रसन्न भगवान् नारायण ने प्रसन्न होकर माया से कहा—'हे माये ! तुमने वटपत्र का रूप ग्रहण कर अव्यक्त रूप में नीर में व्याप्त मुझ नारायण को धारण किया। इस धारण कार्य के कारण तुम इस सृष्टि में सर्वदा के लिये 'सनातन धर्मस्वरूपा' हो—'धारणाद्धर्म उच्यते' हो। हे माये ! इस धरती पर उत्पन्न मनुष्य-जाति अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये धर्मस्वरूपा तुम्हारी आराधना करेंगे।

शिवेन मायामन्त्रोद्घाटनम्

मन्त्रमाराधने चास्याः प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये ॥24॥
नादेन्दुसंयुतं दान्तं धर्माय हृत् ततः परम्।
षडक्षरो महामन्त्रो धर्मस्याराधने मतः ॥25॥

हे प्रिये ! धर्मस्वरूपा माया की आराधना के लिये मैं मन्त्र बता रहा हूँ। अतः तुम सावधान होकर इस मन्त्र को सुनो। नाद (अनुस्वार), इन्दु (चन्द्र ँ) अर्थात् ँ, द के अन्त वाला वर्ण (ध) अर्थात् 'धँ', इसके बाद 'धर्माय' पद और इसके पश्चात् 'हृद्' (नमः) को मिलाने से बनने वाला 'धँधर्माय नमः' छह अक्षरों वाला मन्त्र धर्मस्वरूपा भगवती माया का आराधना मन्त्र है।

यं यं कामं समुद्दिश्य पूजयिष्यन्ति मानवाः।
अचिरादेव पश्यन्ति सर्वं कामं न संशयः ॥26॥

हे माये ! मानव जिन-जिन कामनाओं की पूर्ति के लिये इस मन्त्र से तुम्हारी आराधना करेंगे, अतिशीघ्र ही उनकी वे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी।

एवं ते कथितं देवि ! मायासम्भवविस्तरम्।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥27॥

इति श्रीमायातन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे
प्रथमः पटलः समाप्तः।



हे पार्वति ! मैंने तुम्हें माया की उत्पत्ति का विवरण सुना दिया है । तुम किसी को बताना नहीं । बोलो, और क्या सुनना चाहती हो ?

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्रीहिन्दी विवृत्ति का प्रथम पटल समाप्त: ।



अथ द्वितीयः पटलः

पार्वत्या मायाया आराधनविधौ जिज्ञासा

देव्युवाच

कथयेशान ! सर्वज्ञ ! यतोऽहं तव वल्लभा ।
ब्रूयुः स्निग्धाय शिष्याय गुरुवो गुह्यमप्यतः ॥1॥
आराधनं तु मायायाः कथयस्वाऽनुकम्पया ।
येन लोकास्तरिष्यन्ति महामोहात्सुरेश्वर ! ॥2॥

पार्वती ने अनुरोध किया—हे स्वामिन् ! मैं आपकी बहुत प्रिय हूँ । मुझे बताइये, माया की आराधना की विधि । तब भी बताइये जब यह गोपनीय ही क्यों न हो । मैं आपकी शिष्य हूँ । आप मेरे गुरु हैं । गुरुओं ने गोपनीय से गोपनीय बातें भी अपने प्रिय शिष्यों को बताई हैं । मैं यह अपने स्वार्थ के लिये नहीं पूछ रही । माया की आराधना-विधि को जान और उस विधि से आराधना करके बहुत से मानव महामोहरूपीसागर को पार कर सकेंगे ।

शिवेन मायास्वरूपनिर्वचनम्

श्रीईश्वर उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तस्याश्चाराधनं महत् ।
या चिच्छक्तिः सैव माया सा दुर्गा परिचक्ष्यते ॥3॥
या दुर्गा सा महाकाली तारिणी बगलामुखी ।
अन्नपूर्णा च सा माया गृहिणी कल्पशाखिनी ॥4॥
भोगदा मोक्षदा देवी तस्मात्पूर्णेति चक्ष्यते ।
माया गुणवतां देवि निर्गुणानां चिदात्मिका ॥5॥

उमा के प्रश्न पर ईश्वर ने कहा—हे ईश्वरि ! सुनो, मैं माया की महती साधना की विधि बताता हूँ । माया तो परमेश्वर की चिदात्मिका शक्ति ही हैं । परेश की इस चिच्छक्ति को ही दुर्गा कहते हैं । दुर्गा को ही महाकाली, तारा तथा बगलामुखी कहते हैं । माया ही गृहस्थों के घर में कल्पवृक्षस्वरूपिणी अन्नपूर्णा बन बैठी है । गृहिणीरूपिणी माया ही मानव के भोग और मोक्ष की साधिका है—श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव—। गृहिणीरूपिणी माया से ही मानव पूर्ण बनता है—स्त्रिया हि अयं लोकः पूर्यते—इसीलिये इसे 'पूर्णा' कहते हैं ।

हे देवि ! सगुण उपासकों के लिये परेश की यह पराशक्ति 'माया' है—'मम माया दुरत्यया—भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' लेकिन, अभेदोपासकों-निर्गुणोपासकों के लिये यह उनकी अपनी ही चिच्छक्ति है ।

यदि सा बहुभिः पुण्यैः प्रसीदति जनान् प्रति ।
तदैव कृतकृत्यास्ते संसारात् ते बहिष्कृताः ॥6॥

हे देवि ! मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संचितपुण्यों के फल उदित होने पर ही भगवती माया प्रसन्न होती है । प्रसन्न होने पर वह जीव को अपने भ्रमजाल से मुक्त कर देती है— 'मायामेता तरन्ति ते' । मायामुक्त होने पर जीवात्मा अपने 'सच्चिदानन्द' रूप को जानकर इस मायामय संसारसागर से बाहर हो जाता है—नाऽहं मनुष्यो न च देवयक्षौ—

दुरन्ता चावशा माया मुनीनामपि मोहिनी ।
श्रीकृष्णं मोहयामास सा राधा गोकुले स्थिता ॥7॥
स चैव देवकीपुत्रस्तामाराध्य निरन्तरम् ।
प्रकृताचारनिरतो जनानादेशयत्प्रभुः ॥8॥

हे पार्वति ! प्राणियों को जन्म-मृत्यु के अपने चक्रयन्त्र में घुमाने वाली यह माया दुर्दमनीय है । इसे अपने वश में करना किसी के वश में नहीं है । यह बड़े-बड़े मननशील-विचारवान् मुनियों को भी मोहित कर लेती है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्यमोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ (दुर्गास० 1.55)

हे भगवति ! सामान्यजन की तो बात ही क्या ? माया ने गोपालकन्या राधा का रूप धारण कर वरात्पर परमेश्वर श्रीकृष्ण को भी मोह लिया था । लेकिन, राधारूपी माया की निरन्तर आराधना करके परात्पर ईश्वर श्रीकृष्ण ने अपने प्रकृत नररूप में समस्त सांसारिक प्रपंचों में निरत रहते हुए भी लोगों को अपने वश में कर लिया था ।

शिवेन मायामन्त्रप्रकथनम्

अस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
शिवो वह्निसमारूढो वामनेत्रेन्दुभूषणः* ॥9॥
एषा तु परमा विद्या देवैरपि सदुर्लभा ।

हे पद्ममुखी पार्वति ! अब मैं भगवती माया की आराधना के मन्त्र का उद्घाटन कर रहा हूँ, ध्यान से सुनो ! वामनेत्र (ई) और इन्दु (अनुस्वार) से सशोभित, अग्नि (र) पर विराजमान शिव (ह्) अर्थात् 'ह्रीं' महामाया का मन्त्र है । यह महामन्त्र देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम् ॥10॥

---

* ईकारो वामनेत्रं स्याद् रकारो वह्निरुच्यते ।
हकारं तु शिवं विद्यादिन्दुश्चानुस्वारकम् ॥

देवता मुनिभिः प्रोक्ता माया श्रीभुवनेश्वरी ।
चतुर्वर्गेषु मेधावी विनियोगः प्रकीर्तितः ॥11॥

हे पार्वति ! मुनियों ने बताया है कि माया के इस 'ह्रीं' मन्त्र के द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् त्रिष्टुप् और देवता भुवनेश्वरी हैं ।

मायायाः ध्यानस्वरूपनिर्वचनम्

अङ्गानि माययान्यस्य ध्यायेद् देवीं चतुर्भुजाम् ।
रक्तवर्णां पद्मसंस्थां नानालङ्कारभूषिताम् ॥12॥
पट्टवस्त्रपरीधानां कलमञ्जीररञ्जिनीम् ।
हारकेयूरवलयप्रवालपरिशोभिताम् ॥13॥
अर्केन्दुशेखरां बालां नयनत्रितयान्विताम् ।
एवं ध्यात्वा महामायामुपचारैः समर्चयेत् ॥14॥

हे देवि ! महामाया के इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास इसी मायामन्त्र (ह्रां ह्रीं आदि षड्दीर्घो) से करके चारभुजाओं वाली, रक्तवर्णा, पद्म पर विराजमान, अनेक अलंकारों से सुशोभित, कौशेयवस्त्रधारिणी, मधुरनाद करने वाली मंजीर से अलंकृत, हार, भुजबन्ध, वलय और प्रवालरचित अनेक अलंकारों से विभासित, शिर पर सूर्य और चन्द्रांकित मुकुटधारिणी, त्रिनयना महामाया की षोडशोपचारों से अर्चना करनी चाहिये ।

गुरुं प्रणम्य विधिवद् गह्णीयात् परमं मनुम् ।
ततो देवीं प्रसाद्यैवं कृतकृत्यो भवेत्सुधीः ॥15॥

भगवती महामाया की पूजा उक्त विधि से सम्पन्न करके गुरु को प्रणाम कर उनसे विधिपूर्वक इस परम मन्त्र (ह्रीँ) की दीक्षा लेकर बुद्धिमान् साधक को अपना जीवन सफल करना चाहिये ।

शिवेन दुर्गामन्त्रप्रकथनम्

अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने ! ।
यस्या प्रसादमासाद्य भवेद् गङ्गाधरः स्वयम् ॥16॥

हे कमलवदनी पार्वति ! अब मैं उस महामाया के दुर्गास्वरूप के मन्त्र का उद्घाटन कर रहा हूँ, जिसकी कृपा प्राप्त करके साधक स्वयं गंगा को धारण करने वाले भगवान् शिव का स्वरूप हो जाता है ।

***थान्तं बीजं समुद्धृत्य वामकर्णविभूषितम् ।**
इन्दुबिन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभाम् ॥17॥
चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ।

* मूले 'खान्त'मिति भ्रान्तपाठः ।

हे पार्वति ! इन्दु (ॅ) तथा बिन्दु (ं) अर्थात् (ँ) से विभूषित तथा वामकर्ण (ऊ) से युक्त, थकार के अन्त का बीज (द) 'दूँ' भगवती दुर्गा का परम मन्त्र है । इसकी साधना से साधक को धर्मादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है और बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं।

एकाक्षरीविद्याप्रसंशनम्

एकाक्षरी समा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये ॥18॥
विना गन्धैर्विना पुष्पैर्विना होमपुरःसरैः ।
विनाऽऽयासैर्महाविद्या जपमात्रेण सिद्धिदा ॥19॥

हे देवि ! तीनों लोकों में एकाक्षरी महाविद्या 'दूँ' के सदृश और कोई विद्या नहीं है । यह एकाक्षरी महामन्त्र गन्ध-पुष्पादि पूजन-सामग्री के बिना, बिना हवन और किसी विशेष प्रयास के बिना केवल जप करने से ही सिद्ध हो जाती है ।

एकाक्षरीविद्यायाः ऋष्यादिकथनम्

नारदोऽस्य ऋषिर्देवि ! गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
देवता च जगद्धात्री दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥20॥
चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा सर्वसत्त्वेषु संस्थिता ।
विविधा सा महाविद्या तच्छृणुष्व गणेश्वरि ! ॥21॥

महाविद्या 'दूँ' के ऋषि महर्षि नारद हैं । इसका छन्दस् गायत्री तथा देवता संसार का पालन करने वाली दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा हैं । मानव को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-प्रदात्री दुर्गा सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित हैं । इस महाविद्या के अनेक प्रकार हैं । मैं इसके स्वरूप का निर्वचन करता हूँ, सावधानी से सुनो ।

एकाक्षरीविद्याया विविधरूपाणि

कूर्चाद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये ।
वाग्भवाद्यां ज़पेद् विद्यां तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥22॥
लज्जाद्यां वा जपेद् विद्यां फडन्तां वा जपेत्पुनः ।
बधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तां प्रजपेत्कृती ॥23॥
लक्ष्म्याद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये ।
वाग्भवाद्या जपेद्वापि प्रणवाद्यां जपेत्तथा ॥24॥
एवमेकाक्षरी विद्या कथिता ब्रह्मयोनिना ।

हे देवि ! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष संज्ञक चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये इस मन्त्र के आरम्भ में कूर्चबीज 'हूँ' का योग करना चाहिये । चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये 'ऐँ' से पुटित कर इसके अन्त में अग्निप्रिया 'स्वाहा' का प्रयोग कर 'ऐँ दूँ स्वाहा' के रूप में जपना

चाहिये। हे सुन्दरि ! इस विद्या का जप इसके आरम्भ में लज्जाबीज 'ह्रीँ' और अन्त में 'फट्' का योग कर भी किया जा सकता है। इसके आरम्भ में बधूबीज 'स्त्रीँ' और अन्त में 'स्वाहा' लगाकर भी इसे जपा जा सकता है। इस विद्या के आरम्भ में लक्ष्मीबीज 'श्री' का योग करके अथवा मात्र वाग्भवबीज 'ऐं' को आरम्भ में जोड़कर भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये जपा जा सकता है। हे पार्वति ! इस प्रकार ब्रह्मयोनि महर्षि नारद ने एकाक्षरी विद्या का निरूपण किया है। उन्होंने ही महाविद्या त्र्यक्षरी का भी साक्षात्कार किया है।

('एवं सा त्र्यक्षरी विद्या' ऐसा पाठ मानने पर ज्ञातव्य है कि त्र्यक्षरी विद्या रहस्यतन्त्र में निरूपित की गयी है। इसमें दुर्गासप्तशती के 700 श्लोकों के स्थान पर प्रत्येक के तीन-तीन बीजों का जप किया जाता है।)

एकाक्षर्या: ऋष्यादिकथनम्

दीर्घषट्कसमायुक्तनिजबीजानि पार्वति ! ॥25॥
विन्यसेदात्मनो देहे हृदयादिषु शाम्भवि !

हे शाम्भवि ! दुर्गामन्त्र की साधना में हृदयादि षडंगन्यास भगवती दुर्गा के निजबीज दूँ के षड्दीर्घरूपों दां दीं दूं दैँ दौँ द: से करना चाहिये। अथवा माया के निजबीज ह्रीं के षड्दीर्घरूपों ह्रां, ह्रीं आदि से करना चाहिये।

एकाक्षरीविद्याधिष्ठात्रीदुर्गाया: ध्यानस्वरूपनिर्वचनम्

ध्यानमस्या: प्रवक्ष्यामि शृणु पर्वतनन्दिनि ॥26॥
सिंहस्कन्धसमारूढां नानालङ्कारभूषिताम्।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥27॥
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीतनुम्।
नारदाद्यैर्मुनिगणै: सेवितां भवगेहिनीम् ॥28॥
त्रिबलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीम्।
रत्नद्वीपमयद्वीपे सिंहासनसमन्विते ॥29॥
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत् तां भवसुन्दरीम्।
एवं ध्यात्वा यजेद् देवीमुपचारै: पृथक् पृथक् ॥30॥

हे पर्वतनन्दिनि ! अब भगवती दुर्गा के ध्यानस्वरूप का चित्रण करता हूँ, ध्यान से सुनो। साधक को अपने हृदय में ऐसी देवी की साकार भावना करनी चाहिये जो सिंहराज की पीठ पर विराजमान हैं, अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं तथा जो नागराज को यज्ञोपवीत की भाँति धारण किये हैं। जिनके वस्त्र रक्तवर्ण के हैं, सारा शरीर प्रात:कालीन सूर्य की भाँति दमक रहा है। शंकरप्रिया भगवती दुर्गा नारद आदि महर्षियों से

घिरी हुई हैं । त्रिवली से अलंकृत जिनकी कटि कमलनाल की भाँति क्षीण है और जो रत्ननिर्मित मणिद्वीप में निर्मित सिंहासन पर खिले हुए पद्मपुष्प पर विराजमान हैं । इस रूप में भगवती दुर्गा का ध्यान करके उनकी अलग-अलग अर्घ्यादि सोलह उपचारों से अर्चना करनी चाहिये ।

भूतशुद्धिविधिकथनम्

भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा न्यसेद् देहेषु पार्वति ! ।
स्वाङ्के उत्तानकौ हस्तौ प्रणिधाय तत परम् ॥31॥
हृदये हंसमन्त्रेण जीवं दीपनिभं सुधीः ।
स्थापयेत्परमे व्योम्नि पृथिव्यादीनि च क्रमात् ॥32॥

हे पार्वति ! दुर्गामन्त्र की साधना करते समय सबसे पहले भूतशुद्धि करके अपने शरीर के विभिन्न स्थानों में सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम से मातृकान्यास तथा षडंगादिन्यास सम्पन्न करना चाहिये । तदनन्तर पद्मासनादि किसी भी सहज आसन में बैठ अपने दोनों हाथों को उत्तानावस्था में गोद में रख प्राणायाम करना चाहिये । इसके पश्चात् 'हंस:' मन्त्र से हृदयस्थित जीव को दीपकशिखा की भाँति प्रदीप्त कर उसे सहस्रारस्थित परशिव में मिलाना चाहिये ।

इसी प्रकार मूलाधारस्थित पृथिवी, स्वाधिष्ठानस्थित जल, मणिपूरस्थित अग्नि, हृदयस्थित वायु, कण्ठस्थित आकाश तथा आज्ञास्थित मनस्तत्त्व को भी क्रमश: ऊपर उठा उर्ध्वोर्ध्व तत्त्वों में विलीन करते हुए सहस्रारस्थित परमव्योम अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर परमशिव में स्थापित कर देना चाहिये ।

शिवापद्मादिभेदेन भिद्यते मरुतो गतिः ।
मरुत्सखेन तेनेह पच्यते भुक्तमेव तु ॥33॥
तस्मान्मत्री गुरोर्ज्ञात्वा नयेत्सर्वं परोपरि ।
दीपयेदव्यवच्छिन्नं पावकं सर्वतोमुखम् ॥34॥

हे देवि ! कुम्भकादि प्राणायाम के अभ्यास से प्राण की गति बदलती है । प्राणायाम से प्राण इडा और पिंगला अपना प्राकृत मार्ग छोड़कर सुषुम्ना में प्रवेश करके भगवती शिवा अर्थात् कुण्डलिनी के मूल आधार मूलाधारचक्र पर पहुँच वहाँ प्रसुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत् कर देता है । जाग्रत् कुण्डलिनी मूलाधारस्थित पृथ्वीतत्त्व का बेधन करती है । तदनन्तर कुण्डलिनी प्राण के साथ मूलाधार से ऊपर उठती हुई स्वाधिष्ठान में पहुँच जलतत्त्व का भेदन करती है । स्वाधिष्ठान में जलतत्त्व का भेदन कर आगे मणिपूर में पहुँच अग्नितत्त्व का भेदन करती है ।अग्नितत्त्व के भेदन से योगी द्वारा खाया-पिया समस्त पदार्थ पच जाता है । कुण्डलिनी मणिपूर से भी आगे के चक्रों में स्थित तत्त्वों पर विजयप्राप्त करती हुई सहस्रार में जाकर शिव से मिलती है । साधक को चाहिये कि वह प्राणायाम के विविध रूपों और

कुण्डलिनी के आवागमन सुषुम्ना पथ की जानकारी गुरु से प्राप्त कर सभी चक्रों को प्रदीप्त करे अर्थात् जाग्रत् करे ।

पश्येदवान्तरं देहं कर्मरूपं ततः परम् ।
वामकुक्षिस्थितं पापं पुरुषं कज्जलप्रभम् ॥35॥
तं संशोष्य तथा दह्य जीवाधारं तु प्लावयेत् ।

तदनन्तर साधक को चाहिये कि वह अपने सूक्ष्म कर्ममय शरीर का ध्यान कर उसकी वामकुक्षि में स्थित कज्जलवर्णी पापपुरुष का शोषण तथा दहन करके शुद्ध शरीर का निर्माण कर जीव को मूलाधार में लाकर प्लावन करे ।

मूलाधारात् ततो जीवं सोऽहंमन्त्रेण देशिकः ॥36॥
नयेत्परशिवां हंसमन्त्रेणाधारमानयेत् ॥

तत्पश्चात् 'सोऽहं' मन्त्र से जीव को मूलाधार से उन्नयन कर परशिवा कुण्डलिनी को सहस्त्रार में स्थित परशिव तक ले जाकर उनसे मिलन कराके 'हंस:' मन्त्र से मूलाधार में लाये ।

एषा भूतशुद्धितन्त्रे* प्रक्रिया कथिता मया ॥37॥
तव स्नेहेन देवेशि ! चेदानीं प्रकटीकृता ॥38॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
द्वितीय: पटल: समाप्त: ।



हे पार्वति ! तुम्हारे प्रति असीम स्नेह के वशीभूत मैंने पापपुरुष के शोषण, दहन, प्लावन तथा कुण्डलिनी को सोऽहं मन्त्र से सहस्त्रार तक आरोहण और 'हंस:' मन्त्र से वहाँ से मूलाधार तक अवरोहण की समस्त क्रिया का निरूपण 'भूतशुद्धितन्त्र' में पहले कर दिया है और तुम्हारे सामने अब पुन: प्रकट कर रहा हूँ ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत 'मीराश्री'हिन्दी
विवृत्ति का द्वितीय पटल समाप्त ।



---

* भूतशुद्धितन्त्रस्य षष्ठे पटले द्रष्टव्यम् ।

अथ तृतीयः पटलः

पार्वत्याः दुर्गायन्त्रे कवचे च जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

कथयस्व महादेव ! देव्या यन्त्रं स्तवं तथा ।
कवचं परमाश्चर्यं यदुक्तं परमेष्ठिना ॥1॥

भगवती पार्वती ने कहा—हे महादेव ! अब आप हमें देवी माया के उस आश्चर्यजनक यन्त्र का वर्णन काजिये, जिसमें कभी ब्रह्माजी ने महामाया की पूजा की थी । वह स्तुति भी सुनाइये जिससे उन्होंने भगवती का स्तवन किया था और साथ ही उस आश्चर्यजनक कवच का भी कथन कीजिये जिससे ब्रह्माजी ने उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना की थी ।

ईश्वरेण यन्त्रस्वरूपनिर्वचनम्

श्री ईश्वर उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यन्त्रं परमदुर्लभम् ।
त्रिकोणं विन्यसेत् पूर्वं बहिः षट्कोणमेव च ॥2॥
त्रिबिम्बसंस्थितं सर्वमष्टपत्रसमन्वितम् ।
त्रिरेखासहितं कार्यं तत्र भूपुरसंयुतम् ॥3॥

महादेव ने पार्वती की जिज्ञासा पर उनसे कहा कि—हे देवि ! माया की अर्चना के लिये ब्रह्मा ने जिस महान् यन्त्र का उपयोग किया था, उसके निर्माण के लिये सबसे पहले एक त्रिकोण बनाकर उसके बाहर षट्कोण निर्मित कर उसे आठ दलों वाले तीन वृत्तों से आवृत कर तीन रेखाओं वाले भूपुर से घेर देना चाहिये ।

समीकृत्य यथोक्तेन विलिखेद् विधिनाऽमुना ।
नानास्त्रसंयुतं कार्यं यन्त्रं मन्त्रसमन्वितम् ॥14॥

हे देवि ! त्रिकोण, षट्कोण, त्रिवृत तथा अष्टपत्राादिकों को तन्त्रोक्त विधि से समन्वित करकें दुर्गा देवी तथा इनकी प्रभा आदि नौ शक्तियों को अस्त्रों के अंकन सहित दुर्गायन्त्र का निर्माण करना चाहिये ।

यन्त्रे आवरणपूजाविधिः

तत्र तां पूजयेद् देवीं मूलप्रकृतिरूपिणीम् ।
पद्मस्थां पूजयेद् दुर्गां सिंहपृष्ठनिषेदुषीम् ॥5॥
प्रभाद्याः पूजयेत् तास्तु .... ।

हे देवि ! इस प्रकार का यन्त्र निर्मित कर उसे वक्ष्यमाण नौ शक्तियों को उनके विविध अस्त्रों और मन्त्रों से युक्त करके उन प्रभा आदि शक्तियों तथा सिंह की पीठ पर स्थित कमलासन पर आसीन मूलप्रकृति स्वरूपिणी भगवती दुर्गा की अर्चना करनी चाहिये ।

दुर्गायाः नव शक्तिनामानि

प्रभाद्याः शक्तयः पूज्या गन्धाद्यैर्नवकोणके ॥6॥
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः ।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नव शक्तयः ॥7॥

हे भगवति ! इस यन्त्र के नौ कोणों में गन्धादि पदार्थों से क्रमशः पूज्य नौ शक्तियों के नाम प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा हैं ।

ह्रीमाद्या पूजयेत् तास्तु गन्धचन्दनवारिणा ।
ओंकारं पूर्वमुच्चार्य ह्रींकारं तदनन्तरम् ॥8॥
यथा पदं चतुर्थ्यन्तं पूजयेत्क्रमतः प्रिये ! ।
शङ्खपद्मनिधी देव्या वामदक्षिणयोगतः ॥9॥

हे माहेश्वरि ! यन्त्र के मध्य में भगवती माया की गन्ध, पुष्प, चन्दन तथा अर्घ्यादि से षोडशोपचार अर्चना करके यन्त्र के नौ कोणों में इन नौ शक्तियों की अर्चना बायें से दायें पूर्वादि क्रम से करनी चाहिये । इन शक्तियों के नाम के आरम्भ में ओंकार और ह्रीं का योग और नाम को चतुर्थ्यन्त करके 'ओं ह्रीं प्रभायै नमः' आदि के रूप में निर्मित इनके स्वमन्त्र से अर्चना करनी चाहिये । यन्त्र के मध्य में स्थित माया देवी के वाम और दक्षिण शंख और पद्म नामक निधियों की अर्चना करनी चाहिये ।

पूजयेत्परया भक्त्या रक्तचन्दनपूर्वकैः ।
अर्घ्यदानं सदा कुर्यात् पूजान्ते नगनन्दिनी ॥10॥
अङ्गावृतीः पुनः पूज्याः पत्रकोणेषु मातरः ।
वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकनायकाः ॥11॥
एवं सम्पूज्य देवेशि ! स्तोत्रं च कवचं पठेत् ।

हे पर्वतराजकन्ये ! भगवती माया और इनकी शक्तियों की पूजा बड़ी भक्ति से करनी चाहिये । पूजन में रक्तचन्दन का प्रयोग अवश्य करना चाहिये । पूजन के अन्त में अर्घ्य भी निश्चितरूप से देना चाहिये । यन्त्र में स्थित दूँ बीज के चारों ओर पूर्वादि क्रम में अंगपूजा तथा आठ दलों के अग्रभाग में ब्रह्माणी अदि अष्टमाताओं और इनके वज्रादि आयुध भी पूजे जाने चाहिये । भगवती माया की सावरण पूजा समाप्त करने के बाद उनके स्तोत्र और कवच का पाठ करना चाहिये ।

शृणु स्तोत्रं महेशानि ! यदुक्तं परमेष्ठिना ॥12॥

हे भगवति ! मैंने यन्त्र के निर्माण, मायादेवी की आवरणपूजा तथा पूजन-मन्त्रों के स्वरूप का निर्वचन कर दिया । अब मैं ब्रह्मा द्वारा प्रयुक्त माया के उस स्तोत्र और कवच का कथन करता हूँ, जिसकी तुमने जिज्ञासा की है ।

श्रीदुर्गास्तोत्रम्

दुर्गे मातर्नमो नित्यं शत्रुदर्पविनाशिनि !
भक्तानां कल्पलतिके नारायणि नमोऽस्तु ते ।।13।।

हे देवि ! परमेष्ठी ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भ में आदि प्रकृतिरूपिणी माया का स्तवन करते हुए कहा कि—शत्रुओं के अहंकार का दलन करने वाली हे माँ दुर्गे ! आपको नमस्कार है । भक्तों के कल्याणार्थ कल्पवृक्ष की भाँति उनका मनोरथ पूर्ण करने वाली हे नारायणि ! आपको मेरा नमस्कार ।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ! ।
शरण्ये त्र्यम्बके ! गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।14।।

समस्त मंगलों की भी मंगलस्वरूपे ! हे कल्याणरूपिणि ! हे समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली ! हे अशरणशरणदायिनि ! हे त्रिनयने ! हे गौरि ! हे नारायणि ! आपको नमस्कार है ।

नमो नगात्मजे शैलवासे शीलसमन्विते ।
भक्तेभ्यो वरदे मातर्नारायणि नमोऽस्तु ते ।।15।।

हे नगनन्दिनि ! हे शैलनिवासिनि ! हे सुशीले ! हे भक्तवरदायिनि ! हे मातः ! हे नारायणि ! आपको नमन ।

निशुम्भशुम्भमथिनि ! महिषासुरमर्दिनि ! ।
आर्तार्तिनाशिनि ! शिवे ! नारायणि नमोऽस्तु ते ।।16।।

शुम्भ तथा निशुम्भ को मारने वाली हे देवि ! हे महिषासुरमर्दिनि ! पीड़ितों की पीड़ा हरने वाली हे कल्याणमयि ! शिवानि ! हे नारायणि ! आपको नमन है ।

इन्द्रादिदिविषद्वृन्दवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहे ।
नानालङ्कारसंयुक्ते नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।17।।

देवलोकनिवासी इन्द्रादि देवताओं से वन्दित चरणकमलों वाली, विविध अलंकारों से विभूषित हे देवि ! नारायणि ! आपको नमस्कार है ।

नारदाद्यैर्मुनिगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।
पुरः कृताञ्जलिपुटे नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।18 ।।

नारद आदि मुनिगण, विद्याधर तथा नागादि जिसके सम्मुख करबद्ध होकर खड़े रहते हैं, ऐसी हे नारायणि ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

देवराजकृतस्तोत्रे व्याधराजप्रपूजिते ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥19॥
अभक्तभक्तिदे चण्डि मुग्धबोधस्वरूपिणि ।
अज्ञानज्ञानतरणि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥20॥

देवराज इन्द्र ने जिसका स्तवन और व्याधराज ने जिसका पूजन किया, जो त्रिलोकी की रक्षिता हैं, ऐसी हे नारायणीशक्ति ! आपको मेरा नमन है । अभक्त को भक्ति तथा अज्ञानी के लिये ज्ञान स्वरूपा चण्डि ! आपको नमस्कार है । अज्ञान से मुक्त कर ज्ञान प्रदान करने वाली हे नारायणि ! आपको मेरा नमन है ।

इदं स्तोत्रं पठेद् यस्तु प्रदक्षिणपुरःसरम् ।
तस्य शान्तिप्रदा देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥21॥

हे पार्वति । जो साधक पूजा के समय भगवती माया की प्रदक्षिणा करता हुआ इस स्तोत्र का पाठ करता है, दुर्गतिहारिणी भगवती दुर्गा उसे त्रिविधतापों से मुक्त कर शान्ति प्रदान करती हैं ।

देव्याः कवचश्रवणे जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

कथिताः परमेशान ! दुर्गामन्त्रास्त्वनेकधा ।
कवचं कीदृशं नाथ ! पूर्वं मे न प्रकाशितम् ॥22॥
तद् वदस्व महादेव ! यतोऽहं शरणं गता ।

पार्वती ने कहा—हे परमेश्वर ! आपने पहले भी अनेक बार दुर्गादेवी के मन्त्र का कथन किया है, लेकिन, कवच के बारे में कुछ भी नहीं बताया । हे महेश्वर ! मैं आपकी शरण हूँ । अत: कृपा करके अब कवच भी बताइये ।

शम्भुना देव्यै कवचप्रकथनम्

श्रीमहादेव उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥23॥
पुरा देवासुरे युद्धे यदुक्तं शम्भुना त्वयि ।
त्वं न स्मरसि कार्येण मुग्धा प्रायो हि योषितः ॥24॥

महादेव ने कहा—हे प्रिये ! मैं तुम्हें कवच के बारे में पहले भी कई बार बता चुका हूँ लेकिन, प्राय: कार्यों में व्यस्त होने के कारण महिलाएँ कई बातें भूल जाया करती हैं । तो, अब मैं पुन: तुम्हें पहले देवासुर-युद्ध के समय जो बताया था वही कवच पुन: बता रहा हूँ ।

अथ श्रीजगद्धात्री दुर्गाकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः,
श्रीजगद्धात्रीदुर्गा देवता चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

शिव ने बताया कि जगन्माता दुर्गा के वक्ष्यमाण कवच के ऋषि नारद, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता दुर्गा हैं। इस कवच का विनियोग धर्मादि चतुर्वर्ग प्राप्ति के लिये किया जाता है।

कवचे विविधदुर्गामन्त्राणामुद्घाटनम्

ओंकारो मे शिरः पातु ह्रीङ्कारः पातु भालकम् ।
दूं पातु वदनं दुर्गा ङेयुक्ता पातु चक्षुषी ॥25॥
नासिका मे नमः पातु कर्णावष्टाक्षरी सदा ॥

अष्टाक्षरी दुर्गा मन्त्र 'ओं ह्रीं दूँ दुर्गायै नमः' मन्त्र का प्रथमाक्षर 'ओम्' मेरे सिर की रक्षा करे। द्वितीयाक्षर 'ह्रीं' मेरे ललाट की रक्षा करे। तृतीयाक्षर 'दूं' मेरे मुख की रक्षा करे। ङे अर्थात् चतुर्थी विभक्ति वाला दुर्गा अर्थात् 'दुर्गायै' पद के चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठाक्षर संयुक्त रूप से मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करे। मन्त्र के 'नमः' पद के सप्तम तथा अष्टमाक्षर मेरी नासिका की रक्षा करे तथा मन्त्र के 'ओं ह्रीं दूं दुर्गायै नमः' ये आठों अक्षर सर्वदा मेरे दोनों श्रोत्रों की रक्षा करें।

प्रणवो मे गलं पातु केशान् श्रीबीजमन्ततः ॥26॥
लज्जा दन्तान् समारक्षेज्जिह्वां दुर्गा सदाऽवतु ।
यै नमः पातु वक्त्रान्तं तालुं दुङ्काररूपिणी ॥27॥
एकाक्षरी महाविद्या वक्षो रक्षतु सर्वदा ।

'ओं श्रीं ह्रीं दुर्गायै नमः' इस अष्टाक्षरी मन्त्र का ओंकार सदा मेरे गले की रक्षा करे। मेरे केशों की रक्षा 'श्रीं' बीज करे। लज्जाबीज 'ह्रीं' मेरे दाँतों की रक्षा करे। 'दुर्गा' पद मेरी जिह्वा की सर्वदा रक्षा करे तथा 'यै नमः' अक्षरसमूह मेरे मुख के भीतर के अंगों की रक्षा करें। एकाक्षरी महाविद्या 'दुं' सदैव मेरे वक्षस्थल की रक्षा करे।

कूर्चाद्या विविधा विद्या बाहू मे परिरक्षतु ॥28॥
ओं दुर्गे पातु जङ्घे द्वे दुर्गा रक्षतु जानुनी ।

कूर्च बीज 'हुं' से युक्त उक्त 'हुं ओं ह्रीं दूं दुर्गायै नमः' 'हुँ ओं श्रीं ह्रीं दुर्गायै नमः' 'हुं ह्रीं दुर्गायै नमः' 'हुं दूं दुर्गायै नमः' आदि विविधरूपिणी विद्या मेरे बाहुओं की रक्षा करें। 'ओं दुर्गे' मन्त्र मेरी जंघाओं की रक्षा करें तथा मेरे घुटनों की रक्षा 'दुर्गा' करे।

द्वौ पदे पातु युगलं रक्षिणि स्वाहयान्विता ॥29॥
जय दुर्गा सदा पातु गुल्फे द्वे चण्डिकाऽवतु ।

'स्वाहा' से अन्वित 'दुर्गा' और 'रक्षणि' अर्थात् 'दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' मेरे दोनों चरणों की रक्षा करें तथा 'जय दुर्गा' तथा चण्डिका मेरे टखनों या पिंडलियों की रक्षा सदैव करें।

कटिं जया पातु सदा नाभिं मे विजयाऽवतु ॥30॥
उदरं पातु मे कीर्तिः पृष्ठं प्रीतिः सदाऽवतु ।

मेरी कटि की रक्षा जया करें और विजया मेरी नाभि की रक्षा करें। कीर्ति मेरे उदर की रक्षा करें तथा प्रीति देवी मेरी पीठ की रक्षा सदा करती रहें।

प्रभा पादाङ्गुलीः पायात् श्रद्धा स्कन्धौ सदाऽवतु ॥31॥
मेधा कराङ्गुलीः सर्वा नखरान् श्रुतिमेव च ।

मेरे चरणों की अँगुलियों की रक्षा प्रभा करे तथा श्रद्धा मेरे कन्धों की रक्षा करें। मेरे हाथों की समस्त अँगुलियों की रक्षा मेधा करें तथा श्रुति देवी मेरे नखों की रक्षा करे।

शङ्खिखो गुल्फं तु पायान्मे चक्रं लिङ्गे सदाऽवतु ॥32॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु शंखो रक्षतु सर्वतः ।

मेरी दोनों पिण्डलियों की रक्षा भगवती दुर्गा का आयुधशंख करे तथा लिंग की रक्षा चक्र करे। शंख सर्वदा और सब ओर से मेरे समस्त अंगों की रक्षा करे।

दुर्गा मां पातु सर्वत्र जयदुर्गा च दारकान् ॥33॥
यद् यदङ्गं महेशानि ! वर्जितं कवचेषु च ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! पतिपुत्रान्विता सती ॥34॥
इति ते कथितं देवि ! कवचं वज्रपञ्जरम् ।

भगवती दुर्गा सब ओर से मेरी रक्षा करें और जयदुर्गा मेरी पत्नियों की रक्षा करें। हे माहेश्वरि ! इस कवच में जिन-जिन अंगों का उल्लेख नहीं किया गया है, उन सबकी रक्षा अपने पति शंकर और पुत्र गणपति एवं कार्तिकेय सहित भगवति दुर्गे आप स्वयं करें। शिव ने कहा—हे पार्वति ! मैंने तुम्हारे अनरोध पर यह वज्रनिर्मित पंजर जैसा प्रभावी दुर्गाकवच उद्घाटित कर दिया है।

कवचधारणफलानि

धृत्वा रक्षोभयाच्छक्रो दिवि दैत्यगणान् बहून् ॥35॥
विधृत्य कवचं वाणी दुन्दुभिं च सहानुजम् ।
हत्वा सर्वत्र कपिराड् विजयी वानरोत्तमः ॥36॥

इस कवच को धारण करके स्वर्ग में देवराज इन्द्र ने बहुत से राक्षसों का वध किया और इसे धारण करके ही वाणी ने अनुजसहित दुन्दुभि को मारा तथा वानरश्रेष्ठ कपिराज ने सर्वत्र विजय प्राप्त की।

सयन्त्रं कवचं चैव लिखित्वा भूर्जपत्रके ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ॥37॥
अभीष्टं लभते मर्त्यो वत्सरान्नात्र संशयः ।

हे भगवति ! इस कवच को यन्त्रसहित भोजपत्र पर लिखकर यदि पुरुष दायीं भुजा और नारी बायीं भुजा पर धारण करे तो एक वर्ष के भीतर ही उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

बह्वपत्या जीववत्सा बन्ध्या धृत्वा प्रसूयते ॥38॥
काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ।

हे देवि ! इस कवच को भोजपत्र पर यन्त्रसहित लिखकर धारण करने से वन्ध्या स्त्री के भी न केवल अनेक सन्तानें होती हैं, अपितु वे दीर्घकाल तक जीवित भी रहती हैं ।

कवचस्य पुरश्चर्याविधिः

शतमष्टोत्तरावृत्तिः पुरश्चर्या विधीयते ।
षण्मासतो भवेत्सिद्धिर्यथावत्परिचारतः ॥39॥

हे पर्वतनन्दिनि ! इस कवच का पुरश्चरण इसके एक सौ आठ बार की आवृत्तियों से किया जाता है । इस प्रकार का पुरश्चरण करने से छह मास के भीतर ही साधक को कवच सिद्ध हो जाता है ।

कवचपाठं विना मन्त्रजपाद्धानिकथनम्

अज्ञात्वा कवचं चैतद् दुर्गामन्त्रांस्तु यो जपेत् ।
अल्पायुर्निर्धनो मूखर्शो भवत्येव न संशयः ॥40॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
तृतीयः पटलः समाप्तः



हे पार्वति ! इस कवच को यथार्थ में जाने बिना जो साधक दुर्गा के उक्त मन्त्रों का जप करता है, वह निःसन्देह अल्पायु, निर्धन और मूर्ख होता है ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का तृतीय पटल समाप्त ।



अथ चतुर्थः पटलः

मायामन्त्राणां पुरश्चर्याविधिः

श्रीईश्वर उवाच

शृणु पार्वति ! मन्त्राणां पुरश्चर्याविधिं प्रिये ।
जपेदष्टाधिकं लक्षं पुरश्चरणसिद्धये ॥1॥

श्रीशिव ने कहा—हे प्रियपार्वति ! अब मैं मन्त्र के पुरश्चरण की विधि बताता हूँ, ध्यान से सुनो । पुरश्चरण की सिद्धि के लिये सबसे पहले मन्त्र का एक लाख आठ जप करना चाहिये ।

दशांशं होमयेदाज्यैस्तिलमिश्रैः सुसाधकः ।
तर्पणं चाभिषेकं च तद्दशांशत आचरेत् ॥2॥

एक लाख आठ जप पूर्ण हो जाने पर उसका दशांश अर्थात् दस हजार आठ हवन घृतसिक्त तिलों से करना चाहिये । हवन के बाद एक हजार आठ बार तर्पण तथा एक सौ आठ बार अभिषेक कर दस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ।

ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते दक्षिणां गुरवे ददेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगांस्तु समाचरेत् ॥3॥

हवनादि के बाद तर्पण की दशांश संख्या में ब्राह्मणों को भोजनादि से सम्मानित कर अपने गुरु को दक्षिणा से सम्मानित करना चाहिये । हे पार्वति ! इस विधि से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । साधक को ही विभिन्न प्रयोजनों के लिये मन्त्र के प्रयोग का अधिकार है ।

कुलाचारे दुर्गापूजनविधिः

मत्स्यमांसैः सूपपूपैर्मृगैः शशकशल्लकैः ।
पूजयेत्परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥4॥

हे पार्वति ! साधक को चाहिये कि वह मत्स्य और शशक, शल्लकादि के मांस, सूप तथा पूगादि समर्पित करके अनन्य पराशक्ति से दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा की पूजा सम्पन्न करे ।

स्वयम्भुकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः ।
जपायावकसिन्दूररक्तचन्दनसंयुतैः ॥5॥
नानामांसैः शुभैर्द्रव्यैर्गन्धद्रव्यादिसंस्कृतैः ।
काकैः शुकैः पेचकैश्च मेषैश्छागैर्नरैरपि ॥6॥

गजैरुष्ट्रैः खरैर्गृद्धैः पूजयेद् विधिनाऽमुना ।
तदा भवेन्महासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥7॥

हे पार्वति ! महामाया दुर्गा की अर्चना जपा, अलक्तक, सिन्दूर, रक्तचन्दन, आदि सुगन्धित पुष्पों सहित स्वयंभूपुष्प (हरसम्पर्कहीना युवती का रजस्) तथा शुक्र से करनी चाहिये। इनके साथ ही सुगन्धित द्रव्यों से सुसंस्कृत मंगलकारी पवित्र पदार्थों तथा काक, शुक, पेचक, मेष, छाग, गज, उष्ट्र, गर्दभ आदि के पवित्र मांस से करनी चाहिये।

अक्षमालास्वरूपम्

मालाविधानं परमं शृणुष्व कमलानने ।
अकारादिक्षकारान्ताः पञ्चाशद्बिन्दुसंयुताः ॥8॥

हे पद्ममुखी पार्वति ! अब मैं तुम्हें जप में प्रयुक्त होने वाली माला की निर्मिति की विधि बताता हूँ। जपमाला को अक्षमाला कहते हैं। यह पचास मणियों अर्थात् मनकों वाली होती है। इस अक्षमाला के प्रत्येक मनके को क्रमशः बिन्दुयुक्त अकारादि-क्षकारान्त पचास वर्णबीजों से अभिमन्त्रित किया जाता है।

सुमेरुका महीप्रान्ता वर्णमाला सुसिद्धिदा ।
ग्रथिता शक्तिसूत्रेण वर्णादिप्रतिरोहतः ॥9॥

साधना में पूजित शक्ति द्वारा काते गये सूत्र में सुमेरु से लेकर पृथ्वी तक (माला के उच्चस्थान से नीचे तक) अकार से क्षकार तक के बीजवर्णों से अभिमन्त्रित अक्षमाला सिद्धिदायिनी होती है।

मालाभिमन्त्रणविधिः

जपेदेकाग्रमनसा साष्टवर्गाक्षरान् क्रमात् ।
पुच्छादिषु महादेवि ! यावन्मुखमतन्त्रतः ॥10॥
क्षकारं तु मुखं देवि ! मेरुं तद् विद्धि पार्वति ! ।

हे महादेवि ! माला को अभिमन्त्रित करने के लिये माला के पुच्छ से आरम्भ कर मुखपर्यन्त क्रमशः अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग के पचास वर्णबीजों से अभिमन्त्रित करना चाहिये। हे पार्वति ! वर्णमाला का अन्तिम अक्षर 'क्ष' को मेरु कहा जाता है।

मालानिर्माणे प्रयोज्यमणयः

पद्मबीजादिभिर्माला बहिर्यागे शृणुष्व ताः ॥11॥
पद्माक्षशङ्खरुद्राक्ष पुत्रजीवकमौक्तिकैः ।
स्फाटिकैर्मणिरत्नैश्च सौवर्णैर्विदुमैस्तथा ॥12॥
राजतैः कुशमूलैश्च गृहस्याक्षरमालिका ।

हे पार्वति ! (अन्तर्जपमाला तो सुषुम्ना में स्थित है, लेकिन) बाह्य जप के लिये कमलबीज, शंख, रुद्राक्ष, पुत्रजीवक, मोती, स्फटिक, मणि, रत्न, प्रवाल, स्वर्ण, रजत तथा कुशमूल से अक्षमालिका का निर्माण किया जाता है ।

मालामण्यनुरूपजपफलानि

अङ्गुलीगणनादेकं पर्वण्यष्टगुणं भवेत् ॥13॥
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शङ्खैः सहस्त्रकम् ।
प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसहस्त्रकं मतम् ॥14॥

हे देवि ! मन्त्र का जप अँगुलियों से गिनने से जितना निर्धारित फल प्राप्त होता है, उसका आठगुना अधिक फल अँगुलियों के पर्वो से जपने से प्राप्त होता है । पुत्रजीवक की माला से जप करने से विहित फल से दसगुना अधिक फल मिलता है । शंखों से निर्मित माला से विहित का हजारगुना और मूंगा, मणि तथा रत्नों की माला से जप करने से दस हजारगुना अधिक फल मिलता है ।

तदेव स्फाटिकं प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।
***पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात्सौवर्णैः कोटिरुच्यते ॥15॥**
कुशग्रन्थ्या कोटिशतं रुद्राक्षैः स्यादनन्तकम् ।
प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत् पुष्कलं धनम् ॥16॥
वैष्णवे तुलसीकाष्ठैर्गजदन्तैर्गणेश्वरे ।

हे भगवति ! स्फटिक की माला से जप करने से विहित फल का दश हजार गुना ही फल प्राप्त होता है । लेकिन, मोतियों से निर्मित माला से जप करने से विहित का लाखगुना अधिक फल प्राप्त होता है । कमलगट्टे की माला से जप करने से विहित का दस लाख गुना तथा स्वर्णमाला से जप करने से करोड़गुना अधिक फल मिलता है । कुशग्रन्थियों से निर्मित माला से जपने पर सौ करोड़गुना तथा रुद्राक्ष की माला से जप करने से अनन्त फल मिलता है । मूँगे की माला से जप करने से प्रभूत धन की प्राप्ति होती है । वैष्णव साधना में तुलसी और भगवान् गणपति की साधना में हाथी के दाँत की बनी माला का उपयोग करना चाहिये ।

त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षैः रक्तचन्दनैः ॥17॥
भुवनेश्या: प्रवालैश्च तद्भेदेषु च पार्वति !
शिवे रुद्राक्षभद्राक्षैः काष्ठैर्वापि सुनिर्मितैः ॥18॥
राजपटैर्मञ्जुघोषैः कथितो मालनिर्णयः ।
मालाविधिरिति प्रोक्तः शृणु सूत्रविधिं प्रिये ॥19॥

हे पार्वति । भगवती त्रिपुरा की मन्त्र साधना में जप के लिये रुद्राक्ष और रक्तचन्दन की माला श्रेष्ठ मानी जाती है । भुवनेश्वरी के विभिन्न मन्त्रों के जप में मूँगे की माला प्रशस्त

है। भगवान् शिव के मन्त्रों का जप रुद्राक्ष, भद्राक्ष अथवा काष्ठ से सुनिर्मित माला से किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त राजपट ? तथा मंजुघोष ? वाली माला का उपयोग किया जाना चाहिये। हे देवि ! यह तो हुई जपमाला की, अब सूत की बात सुनो।

मालाग्रथनविधिः

पृथिवीदेवेन्द्रपुण्यस्त्रीकीर्तितं ग्रन्थितवर्जितम्* ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य पट्टसूत्रमथापि वा ॥20॥
मुखे मुखं तु संयोत्य पुच्छे पुच्छं नियोज्य च ।
ग्रथयेन्निर्जने मन्त्री ततः शोधनमाचरेत् ॥21॥

हे देवि ! पृथिवीदेवेन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण अथवा पवित्र आचरण वाली नारी द्वारा कपास अथवा रेशम के काते गये गाँठरहित त्रिगुणित सूत्र को पुनः त्रिगुणित करके उसमें मनकों को मुख से मुख तथा पूँछ से पूँछ मिलाकर पिरो किसी एकान्त स्थान में माला का निर्माण करके उसका शोधन आरम्भ करना चाहिये।

मालाशोधनविधिः

क्षालयेत्पञ्चगव्येन सद्योजातेन तज्जलैः ।
चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ॥22॥
धूपयेत्तामघोरेण लेपयेत् तत्पुरुषेण तु ।
मन्त्रयेत्पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु सकृत्सकृत् ॥23॥

हे भगवति ! माला की शोधन-क्रिया में 'सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे अभवे अनादि भवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः' ऋचा का पाठ करते हुए पंचगव्य से माला को धोना चाहिये।

इसके बाद 'वामदेवाय नमः, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमः, रुद्राय नमः, कालाय नमः, कलविकलाय नमः, बलविकलाय नमः, बलाय नमः, बलप्रमथनाय नमः, सर्वभूतदमनाय नमः, मनोन्मनाय नमः' मन्त्र का पाठ करते हुए चन्दन, अगरु तथा गन्धादि से मिश्रित

---

* ततो द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्जितम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्यपट्टसूत्रमथापि वा ॥ (द्वितीयमुण्डमालातन्त्रे, 2:29-30)

कन्या च कर्तयेत्सूत्रं पतिपुत्रवती तथा ।
विधवा सधवा वापिपुत्रहीनापि ब्राह्मणी ॥
क्षत्राणी वैश्यदारा च कर्तयेन्न च शूद्रिणी
दीक्षिता यदि सा भद्रे शुद्धा सा सूत्रकर्तने ।
असद् शूद्रा महेशानि ! निन्दिता सूत्रकर्तने ॥ (गायत्रीतन्त्रे, 5:26-28)

पंचगव्य जल से माला का घर्षण करना चाहिये अर्थात् रगड़-रगड़ कर धोना चाहिये। इसके बाद अघोर मन्त्र 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वत: सर्वसर्वेभ्य: नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य:' का पाठ करते हुए माला को धूपित करनी चाहिये तथा 'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र: प्रचोदयात्' मन्त्र से माला पर चन्दनादि का लेप करना चाहिये। अन्त में पंचम ऋचा 'ईशान: सर्वविद्यानामीश्वर: सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्' का पाठ करते हुए माला को अभिमन्त्रित करना चाहिये।

मेरुं च विन्यसेत् तेन मूलेनापि पृथक् पृथक्।
संस्कृत्यैवं ततो मालां तत्प्राणांस्तत्र योजयेत्।
मूलमन्त्रेण ता मालां पूजयेत् साधकोत्तम: ॥24॥
देवप्राणांस्तु तत्रैव प्रतिष्ठाप्य यजेच्च ताम्।

ईशान मां का न्यास मेरु में करके माला के प्रत्येक मनके में मूलमन्त्र का न्यास करना चाहिये। इस प्रकार की माला का संस्कार करके उसमें उपास्य देवता की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।

ओं मां माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि ॥25॥
चतुर्वर्गस्त्वयिन्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।
मायाबीजादिकां कृत्वा रक्तै: पुष्पै: समर्चयेत् ॥26॥

हे देवि ! माला में उपास्य देवता के प्राणों की प्रतिष्ठा करने के बाद साधक को चाहिये कि वह 'ओं मां माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयिन्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव'। मन्त्र से माला का पूजन करे।

अक्षमालादेर्गोपनीयता

गोमुखादौ ततो मालां गोपयेन्मातृजारवत्।
अक्षमालां स्वमन्त्रं तु गुरुं नैव प्रकाशयेत् ॥27॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
चतुर्थ: पटल: समाप्त:।



तदनन्तर माला को गोमुखी आदि में मातृजार की भांति गोपनीय रखना चाहिये। अक्षमाला, स्वकीय मन्त्र तथा गुरु का प्रकाशन कभी भी नहीं करना चाहिये।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का चतुर्थ पटल समाप्त।



अथ पञ्चमः पटलः

पार्वत्याः दुर्गानामफलजिज्ञासा
शम्भुना तत्प्रकथनं च

श्रीदेव्युवाच

कथयेशान ! सर्वज्ञ ! दुर्गानामफलं प्रभो !
श्रुतं किञ्चिन्मया पूर्वं यदुक्तं सुरसंसदि ॥1॥

श्रीपार्वती ने कहा—हे स्वामिन् ! एक बार कभी आपने देवताओं की सभा में 'दुर्गा' नाम की महिमा और इसके जप से प्राप्त होने वाले फल का कथन किया था । अब मैं इसे सुनना चाहती हूँ । कृपया आप पुनः बतायें ।

श्रीशिवेन दुर्गानामफलप्रकथनम्

श्रीईश्वर उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं सदेवासुरसङ्गरे ॥2॥

शंकर ने कहा—हे प्रिये ! गोपनीय से भी गोपनीय भगवती दुर्गा के नामकी महिमा सुनो । इस नाम की महिमा का उल्लेख कभी अतीत में देवासुर-संग्राम में ब्रह्मा ने देवों के बीच किया था ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं प्रजापुष्टिविवर्द्धनम् ।
सहस्त्रनामभिस्तुल्यं दुर्गानाम वरानने ॥3॥

हे पार्वति ! भगवती दुर्गा के नाम का एक बार जप करना अन्य किसी भी देवता के नाम का हजार बार जप करने के बराबर है । 'दुर्गा' नामका जप धन, कीर्ति, आयु, सन्तान ओर पुष्टि प्रदान करता है ।

महापदि महादुर्गे आयुषो नाशमागते ।
जातिध्वंसे कुलोच्छेदे महानिगडबन्धने ॥4॥
व्याधिशरीरसम्पाते दुश्चिकित्सामयेऽपि वा ।
शत्रुभिः समनुप्राप्ते बन्धुभिस्त्यक्तसौहृदे ॥5॥
जपेद् दुर्गायुतं नाम ततस्तस्मात्प्रमुच्यते ।

हे देवि ! किसी भी बड़ी आपत् में, दुःसाध्य कष्ट में अथवा मृत्यु का संकट आने पर, जातिनाश, कुलनाश, भयानक बन्धन, रोगों से शरीर नष्ट हो जाने की स्थिति उपस्थित

होने पर, कष्टसाध्य रोग होने की दशा में, शत्रुओं से घिर जाने पर, सगे-सम्बन्धियों द्वारा सम्बन्ध त्याग देने की दशा में 'दुर्गा' सहस्रनाम का जप करने से व्यक्ति इन सभी बाधाओं से मुक्त हो जाता है ।

दुर्गेति मङ्गलं नाम यस्य चेतसि वर्तते ॥6॥
स मुक्तो देवि संसारात्स नम्यः सुरकैरपि ।
दुर्गेति द्व्यक्षरं मन्त्रं जपतो नास्ति पातकम् ॥7॥
कार्यारम्भे स्मरेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ।

हे नगनन्दिनि ! 'दुर्गा' नाम महामंगलमय है । यह नाम जिस व्यक्ति की चेतना में स्थिर हो जाता है, वह व्यक्ति संसार में रहते हुए भी मुक्त है । वह देवताओं द्वारा भी संपूज्य और नम्य है । हे भगवति ! जो साधक 'दुर्गा' नामका जप करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । हे देवि ! किसी भी कार्य को आरम्भ करते समय जो व्यक्ति दुर्गा नाम का स्मरण करता है, बहुत शीघ्र उसका वह कार्य सम्पन्न हो जाता है ।

दुर्गानामजपहवनादिसङ्ख्याप्रकथनम्

दुर्गेति नामजप्तव्यं कोटिमात्रं सुरेश्वरि ॥8॥
तत्तद् दशांशतो हुत्वा तर्पयित्वा तदंशतः ।
अभिषिच्य च विप्रेन्द्रान् भोजयित्वा दशांशतः ॥9॥
असाध्यं साधयेद् देवि ! साधको नात्र संशयः ।
होमाद्यशक्तो देवेशि ! द्विगुणं जपमाचरेत् ॥10॥
अथवा ब्राह्मणान्तं च साधकानां च भोजनात् ।
व्यङ्गं साङ्गं भवेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥11॥

हे सुरेश्वरि ! भगवती दुर्गा के नामकी साधना की सिद्धि के लिये इस नामका एक करोड़ जप, दस लाख हवन तथा एक लाख तर्पण करके दस हजार साधकों और ब्राह्मणों को भोजन कराने पर साधक असाध्य लक्ष्य भी प्राप्त कर सकता है, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं । हे देवि ! साधक यदि होम-तर्पणादि में असमर्थ है, तो उक्त निर्धारित संख्या से दोगुना जप करना चाहिये । अथवा ब्राह्मणों और साधकों को भोजन कराने से ही साधनाकाल में की गयी समस्त कमियाँ दूर हो जाती हैं और साधक को सिद्धि प्राप्त होती है ।

एतत्कल्पसमा देवि ! नाश्वमेधादयः परे ।
दुर्गानामजपात् तुल्यं नान्यदस्ति कलौ भुवि ॥12॥

हे भगवति ! दुर्गा नाम के समान महिमाशाली अश्वमेधादि यागादि भी नहीं हैं । कलिकाल में दुर्गा नामके जप के समान अन्य कोई भी साधना नहीं है ।

शरत्काले ग्रहणे च दुर्गानामजपविधिः

शरत्काले तु दुर्गायाः पुरतो जपमाचरेत् ।
अगणया च चन्द्रादिग्रहणे जपमाचरेत् ॥13॥
गणनं स्नानदानादौ न जपे परमेश्वरि ! ।
रवीन्द्वोर्ग्रहणे पृथ्व्यां जपतुल्या न च क्रिया ॥14॥

हे परमेश्वरि ! साधक को चाहिये कि वह शरत्कालीन दुर्गोत्सव के दिनों में दुर्गा की मूर्ति-चित्रादि के सामने बैठकर जप करे । इसके अतिरिक्त चन्द्र और सूर्य-ग्रहण के समय जितना हो सके, बिना गिने हुए, दुर्गा नाम का जप करे । हे देवि ! स्नान और दान में तो गिनती की जाती है, लेकिन जप में गिनती की आवश्यकता नहीं होती, जितना हो सके, अधिक से अधिक जप करना चाहिये । सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय जप से बड़ी अन्य कोई भी क्रिया है ही नहीं ।

तस्मात्सर्वं परित्यज्य जपमात्रं समाचरेत् ।
तेनैव सर्वसिद्धिः स्यान्नात्रकार्या विचारणा ॥15॥

इसलिये साधक को चाहिये कि वह सूर्य-चन्द्रग्रहण के समय अन्य सभी धर्मकर्मादि से सम्बन्धित क्रियाओं को छोड केवल जप करे । जप से ही समस्त वांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, इसमें संशय की आवश्यकता ही नहीं ।

सुषुम्नायामुपरागः तत्र जपविधिश्च

उपरागो यदाकाशे तदा देवी प्रकाशते ।
सुषुम्नान्तस्तथैवासौ दृश्यते नगनन्दिनि ! ॥16॥
मनस्तत्रैव संन्यस्य ध्यात्वा तत्परमाद्भुतम् ।
जपेदेकाग्रमनसा नाकाशमवलोकयेत् ॥17॥

हे पर्वतात्मजे ! मैं एक और रहस्य की बात तुम्हें बताता हूँ । वह यह कि जब चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण होता है, उस समय सुषुम्ना में भगवती दुर्गा प्रकाशित होती हैं । बाह्याकाश में घटित हो रही घटना का जो दृश्य दिखायी देता है, वैसी ही घटना सभी लोगों की सुषुम्ना नाडी के भीतर भी घटित होती है । उस समय सुषुम्नान्तर्गत हो रहे देवी के प्रकाश में सुषुम्ना के घटित हो रही वह घटना दिखायी देती है ।

अतः साधक को चाहिये कि वह बाह्य आकाश की ओर न देखकर एकाग्र मन से जप करता हुआ अपनी सुषुम्ना में घटित हो रहे ग्रहण के दृश्य का अवलोकन करता रहे ।

ग्रहणान्ते करणीयहोमादिकथनम्

विदधीत जपं तावन्मुक्तिर्यावद् भवेत् तयोः ।
ततः स्नात्वा च होमादि ग्रहणान्ते समाचरेत् ॥18॥

साधकान् भोजयेद् विप्रान् मिष्टान्नैर्बहुविस्तरैः ।
युवतीः कुलकन्याश्च शिवाः सम्भोजयेच्छिवे ॥19॥

हे देवि ! ग्रहण के समय तब तक जप करते रहना चाहिये, जब तक कि चन्द्र और सूर्य ग्रहण से मुक्त न हो जाय । ग्रहण समाप्त हो जाने के अनन्तर स्नान करके यथोक्त हवनादि सम्पन्न करके ब्राह्मणों, साधकों, शिवाओं और कुलकन्याओं को अनेक प्रकार के मिष्ठान्नों आदि का भोजन कराना चाहिये ।

ततस्तु दक्षिणां दद्याद् विभवस्यानुसारतः ।
गुरुभ्यस्तदभावे तु साधकेभ्यः प्रदापयेत् ॥20॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत्सकलेप्सितान् ।

साधकों-ब्राह्मणों आदि को भोजन कराने के बाद साधक को चाहिये कि वह गुरुओं, अथवा गुरुओं के वहाँ उपस्थित न रहने पर, साधकों को विभवानुसार यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे । हे देवि ! इस साधना से साधक का मन्त्र सिद्ध हो जाता है और सिद्धमन्त्र साधक अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर सकता है ।

सुषुम्नाग्रहणरहस्यस्यप्रकटने निषेधः

एतत्ते कथितं देवि ! रहस्यं परमाद्भुतम् ॥21॥
नैतत् त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
शिवाभक्ताय दुष्टाय द्वेष्टे चैव विशेषतः ॥22॥
अशुश्रूषवेऽभक्ताय दुर्विनीताय च दीयताम् ।
इति ते कथितं गुह्यं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥23॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
पंचमः पटलः समाप्तः ।



हे भगवति ! मैंने 'दुर्गा' नाम की साधना का यह अद्भुत परम रहस्य तुम्हें बता दिया है । इसे तुम किसी दम्भी, नास्तिक, शठ, शिव और शिवा में भक्ति न रखने वाले, दुष्ट, विशेषतः द्वेषी स्वभाव वाले, भक्तिभावरहित और दुर्विनीत व्यक्ति को नहीं बताना । हे भगवति ! यह रहस्य तो मैंने तुम्हें बता दिया, अब और क्या जानना चाहती हो ?

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का पंचम पटल समाप्त ।



अथ षष्ठः पटलः

सुषुम्नावर्तिग्रहणरहस्ये देव्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

देवदेव ! महादेव ! कथयस्वानुकम्पया ।
यदि न कथ्यते देव ! विमुञ्चामि तदा तनुम् ॥1॥
सर्वतत्त्वमयस्त्वं हि सर्वयोगमयः सदा ।
सुषुम्नान्तर्गतं देव ! यद्दृष्टं परमेश्वर ।
एतद्रहस्यं परमं सर्वयोगोत्तमोत्तमम् ॥2॥

भगवान् शिव की बातें सुनकर भगवती पार्वती ने उनसे कहा कि हे ईश ! हाँ, मैं कुछ और जानना चाहती हूँ । कृपा करके आप मुझे बताइये । और, यदि आप नहीं बतायेंगे, तो मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँगी । हे देव ! आप सर्वतत्त्वमय हैं । आप ही समस्त योगरूप हैं । आपने अभी-अभी बताया कि सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय व्यक्ति की सुषुम्ना में भी यह ग्रहण घटता है । मैं जानना चाहती हूँ कि सुषुम्ना में ग्रहण के समय जो कुछ दिखायी देता है वह कैसा और क्या है ? हे देव ! मुझे लगता है कि सुषुम्नान्तर्गत घटित होने वाली यह रहस्यात्मक घटना सभी प्रकार के रहस्यात्मक योगों में सर्वोत्तम है ।

शिवेन रहस्योद्घाटनम्

श्रीईश्वर उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि सुषुम्नामध्यसंस्थितम् ।
सूर्यपर्व महेशानि ! चन्द्रपर्व तथैव च ॥3॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! सुषुम्ना के भीतर घटने वाले अद्भुत सूर्यग्रहणपर्व और चन्द्रग्रहणपर्व के विषय में सब कुछ बताता हूँ ।

सुषुम्नावर्त्ममध्यस्थं सूर्यपर्व परात्परम् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जपयज्ञेषु तत्पराः ॥4॥
किं पुनर्मानवाश्चैव वराकाः क्षुद्रबुद्धयः ।
पुष्करद्वीपवासाश्च ये चान्ये मानवाः प्रिये ॥5॥
तेषां च परमेशानि ! किञ्चित्सिद्धिः प्रजायते ।

हे पार्वति ! सुषुम्ना में घटित होने वाला सूर्यग्रहणपर्व परात्पर महत्त्वपूर्ण है । सुषुम्ना में सम्पन्न सूर्यग्रहणपर्व के समय वहाँ ब्रह्मादि देवगण भी जपरूपी यज्ञ सम्पन्न करने में निरत हो जाते हैं, निम्नबुद्धि बेचारे मानवों की तो बात ही क्या ?

हे देवि ! चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण के समय पुष्करादि तीर्थों में निवास कर जपादि करने वाले कुछ मानवों को छोटी-मोटी कुछ सिद्धियाँ अवश्य मिल जाती हैं, लेकिन महासिद्धियाँ तो सुषुम्नान्तर्गत चन्द्र-सूर्य के ग्रहण को सुषुम्ना में सम्पन्न होता हुआ देखने वाले साधकों को ही प्राप्त होती हैं ।

सूर्यपर्व वरारोहे बहुभाग्येन लभ्यते ॥6॥
तथैव चन्द्रपर्वाख्यं जपयोग्यं सुदुर्लभम् ।
नातः परतरः कालः कश्चिदस्ति वरानने ! ॥7॥

हे सुन्दरि ! जप करने योग्य सूर्यग्रहण तो बड़े भाग्य से प्राप्त होता है । इसी प्रकार सुषुम्ना में घटित होने वाला ऐसा चन्द्रग्रहण भी दुर्लभ है । हे पार्वति ! इस प्रकार के सूर्य और चन्द्रग्रहण से अधिक महत्त्वपूर्ण समय अन्य नहीं ।

सहस्रारे महापद्मे चन्द्रस्तिष्ठति सर्वदा ।
मूलाधारे महेशानि ! स्वयं सूर्यः प्रकाशते ॥8॥
स्वाधिष्ठाने तु देवेशि ! राहुस्तिष्ठति सर्वदा ।

हे महादेवि । वास्तव में, चन्द्र और सूर्यग्रहण भौतिक जगत् की एक अद्भुत घटना होती है । चन्द्र, सूर्य और राहु इस अद्भुत घटना के तीन पात्र हैं । व्यक्ति के आध्यात्मिक जगत् में भी भौतिक जगत् की भाँति ही ग्रहण की घटना घटती है । यहाँ भी चन्द्र, सूर्य और राहु वर्तमान हैं । व्यक्ति के सहस्रारकमल में चन्द्रमा, मूलाधार में सूर्य तथा स्वाधिष्ठान में राहु की स्थिति है । भौतिक जगत् की भाँति ही आन्तरिक जगत् में भी ये तीनों ग्रहण के पात्र बनते हैं ।

बाह्योपरागकालेऽन्तःसाधना

सूर्यचन्द्रग्रहं देवि यदा भवति राहुतः ॥9॥
तदैव सहसा देवि ! सहस्रारे मनो न्यसेत् ।
सूर्यपर्वणि माहेशि ! मूलाधारे मनो दधे ॥10॥

हे देवि ! स्वाधिष्ठानवर्ती राहु के कारण सूर्य-चन्द्रग्रहण होता है । तो, जिस समय भौतिक जगत् में सूर्यग्रहण हो रहा हो, उस समय साधक को चाहिये कि वह अपने मनस् को सहस्रार में और चन्द्रग्रहण के समय मूलाधार में स्थिर करे ।

बाह्यपर्व महेशानि ! दृष्ट्वा पूर्णं न दर्शकः* ।
मनो निवेश्य चार्वङ्गि चन्द्रे च ब्रह्मपङ्कजे ॥11॥
सूर्ये वा चञ्चलापाङ्गि ! सर्वं भवति निष्फलम् ।

* मूले 'च देशिकः' इति पाठः अनवधानजन्यः ।

हे पार्वति ! यदि दर्शक अपने मनस् को बाह्य जगत् में घटित हो रहे सूर्यग्रहणपर्व के समय ब्रह्मकमल अर्थात् सहस्रार में स्थित चन्द्र में तथा चन्द्रग्रहण के समय मूलाधारस्थित सूर्य में स्थिर नहीं करता, तो उसके द्वारा किया गया जपादि समस्त कर्म निष्फल हो जाता है ।

सुषम्नायां सर्वतीर्थानां स्थितिप्रकथनम्

सुषुम्नाख्या नदी यत्र साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी ॥12॥
गङ्गादि सर्वतीर्थानि प्रयागं बदरी तथा ।
हरिद्वारश्च चार्वङ्गि ! गया काशी सरस्वती ॥13॥
सिन्धुभैरवशोणाद्या ब्रह्मपुत्रश्च सुन्दरि ! ।
अयोध्या मथुरा काञ्ची काशी माया अवन्तिका ॥14॥
द्वारावती च तीर्थेषु भूत्वा प्रकृतिमूर्तितः ।
गयादिसर्वतीर्थानि तत्र तिष्ठन्ति सन्ततम् ॥15॥

हे पार्वति ! अपने शरीर के भीतर ही साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी सुषुम्ना नामक जो महान् सरिता है, उसी में गंगा, सरस्वती, सिन्धु, भैरव, शोण, ब्रह्मपुत्र आदि समस्त तीर्थ, प्रयाग, बदरी, हरिद्वार, गया, काशी, अयोध्या, मथुरा, कांची, गुप्तकाशी, मायापुरी, अवन्तिका, तथा द्वारका आदि समस्त पवित्र तीर्थस्थान सशरीर वर्तमान हैं । इसलिये बाह्य ग्रहण के समय गयादि बाह्य तीर्थस्थानों को छोड़ अपनी सुषुम्ना में वर्तमान इन तीर्थ-सरिताओं में ही अपने मनस् को निमज्जित करना चाहिये ।

चन्द्रसूर्यग्रहणे करणीया साधना

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि ! मनो ह्यन्तर्दधे शिवे ।
यः पश्येच्चञ्चलापाङ्गि ! सहस्रारे निशाकरम् ॥16॥
मूलाधारे महेशानि ! यः पश्येत् सूर्यपर्वणि ।
राहुग्रस्तसमायुक्तमन्तरात्मनि पार्वति ॥17॥
दृष्ट्वाश्चर्यमिदं भद्रे स्थापयेद् हृदयाम्बुजे ।
यत्र नित्या महामाया सुषुम्ना रुद्ररूपिणी ॥18॥
यस्या वामे इडा नाडी दक्षिणे पिङ्गला मता ।
स्नात्वा तत्र ह्रदे वीरः शिवशक्तिमयो भवेत् ॥19॥

हे देवि ! चन्द्र और सूर्यगहण के समय मनस् को अपनी सुषुम्ना के भीतर समाहित कर देना चाहिये । हे शिवे ! स्वाधिष्ठानवर्ती राहुकृत चन्द्रग्रहण की अद्‌भुत घटना को अपने सहस्रार में तथा सूर्यग्रहण की घटना को मूलाधार में घटती हुई देख अपने मनस् को अपने उस हृदयकमल में स्थापित कर देना चाहिये, जहाँ वह नित्या महामाया रुद्ररूपिणी सुषुम्ना स्थित है, जिसके वामभाग में इडा तथा दक्षिण भाग में पिंगला नामक नाडियाँ स्थित हैं ।

चन्द्रसूर्यग्रहणकाल में जो साधक इडा, पिंगला और सुषुम्ना के मिलनस्थल अपने हृदयसरोवर में स्नान करता है, वह साक्षात् शिवशक्तिमय हो जाता है ।

शिवशक्तिमयीसन्ध्यास्नाननिरूपणम्

शिवशक्तिमयी साक्षात्सा सन्ध्या वरवर्णिनि ।
सन्ध्यास्नानं मयैतत् ते कथितं योगिदुर्लभम् ॥20॥
सुषुम्नावर्त्ममध्यस्थं यद् दृष्टं वरवर्णिनि !।

हे शुभांगि ! इडा और पिंगला का सुषुम्ना से सन्धि का स्थान हृदय ही शिवशक्तिमयी परम सन्ध्या है, यहाँ मनस् को निमज्जित करना ही सन्ध्यास्नान है । ऐसा संन्ध्यास्नान योगियों के लिये भी दुर्लभ है ।

हे सुन्दरि ! भौतिक चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय मैंने सुषुम्ना में जो कुछ घटते हुए देखा, वह तुम्हें बता दिया ।

ग्रहणे जपकालावधिः

दृष्ट्वा चन्द्रग्रहं भद्रे ! सूर्यं वा जपमाचरेत् ॥21॥
तावत्कालं जपेन्मत्रं यावन्मोक्षं वरानने !

हे प्रिये ! भौतिक जगत् में चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय प्रत्येक साधक को तब तक जप करना चाहिये जब तक कि चन्द्र और सूर्य राहुकृत ग्रहण से मुक्त न हो जायें ।

ग्रहणे जपस्य कर्तव्यता फलं च

एतत्तत्त्वं महेशानि ! ब्रह्मा जानाति माधवः ॥22॥
इन्द्राद्या देवताः सर्वा बहुभाग्येन लभ्यते ।
ज्ञात्वा तत्त्वमिदं देवि ! देव्या नागादयोऽपरे ॥23॥
प्रजप्यते इष्टविद्यां शीघ्रं सिद्धिमवाप्तये ।

हे माहेश्वरि ! जिस रहस्यात्मक तत्त्व का निरूपण तुम्हारे समक्ष मैंने किया है, उसे या तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जानते हैं, अथवा मायापति भगवान् विष्णु । इन्द्रादि अन्य देवताओं को तो यह रहस्यात्मक ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब उनके पुण्यों का उदय होता है ।

पुष्करादिनिवासाश्च ये लोकाः सुरवन्दिते ॥24॥
ते सर्वे च महेशानि ! किञ्चित्फलमवाप्नुयुः ।

हे देवि ! चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय की गयी साधना के जिन फलों का उल्लेख मैंने किया है, पूर्वोक्त विधि से साधना करने पर उनमें से कुछ न कुछ फल पुष्करद्वीप-निवासियों को भी अवश्य प्राप्त होता है ।

भारते बहुकालेन सिद्ध्यन्ति नगनन्दिनि ॥25॥
नानादोषवृतः कालः कलिरेव तु मूर्तिमान् ।

किन्तु, हे भगवति ! भारत में पूर्वोक्त साधना दीर्घकाल तक करने पर ही फलवती होती है । क्योंकि, यह समय अनेक दोषों से पूर्ण है । हे देवि ! यह समय सामान्य समय नहीं, साक्षात् कलिरूप है ।

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य देवा नागादयः परे ॥26॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
चन्द्रसूर्यपदं गत्वा प्रजपन्तीष्टसिद्धये ॥27॥

हे देवि ! चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय देव, नाग, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता तथा नागादि जातियों के लोग मनोरथसिद्धि के लिये सुषुम्नापथस्थित चन्द्रस्थान (सहस्रार) और सूर्यस्थान (मूलाधार) में जाकर जप करते हैं ।

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि ! यत्तेजस्तूपजायते
तत्सर्वं चञ्चलापाङ्गि ! ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥28॥
वहन्ति चञ्चलापाङ्गि ! मानुषास्त्वधमाः कुतः ।
***सूर्यचन्द्रग्रहे देवि ! लोका भारतवासिनः ॥29॥**

हे देवि ! चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय ब्रह्माण्ड में जो महत् तेजस् उत्पन्न होता है, उस तेजस् को ग्रहण करके ब्रह्मादि देवता भी तेजस्वी बनते हैं, फिर भारतवासी पापिष्ठ मानवों की तो बात ही क्या ? उन्हें तो अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिये ग्रहण के समय उक्त विधि से साधना करनी ही चाहिये ।

कलिकालस्य लोके तु भारते वरवर्णिनि! ।
नानादोषाः प्रजायन्ते अतो नैव च सिद्ध्यति ॥30॥
तत्पूजयेदेकभक्त्या नान्यथा तु कदाचन ।

हे वरवर्णिनि ! कलियुग से अतिशय प्रभावित इस भारत में स्वभावतः अनेक दोष उत्पन्न होते रहते हैं । इसी कारण मन्त्रादि साधना की सिद्धि नहीं हो पाती । हाँ, साधनासिद्धि का केवल एक ही उपाय है । वह है, अनन्यभक्ति से भगवती महामाया की अर्चना । और कोई दूसरा मार्ग नहीं । इसलिये परम भक्ति के साथ भगवती की अर्चना करते रहना चाहिये ।

ग्रहणकाले स्नानदानादीनां फलम्

स्नानं दानं तथा श्राद्धमिन्दोः कोटिगुणं भवेत् ॥31॥
सूर्ये दशगुणं देवि ! नान्यथा मम भाषितम् ।
जपेत्तर्हि फलं यद्वन्नान्यथा तद्भवेत्क्वचित् ॥32॥

---

* मूले नास्ति पंक्तिरियम् ।

हे देवि ! चन्द्रग्रहण के समय किये गये स्नान, दान तथा श्राद्ध का फल सामान्य से करोड़गुना अधिक मिलता है तथा सूर्यग्रहण के समय किये गये स्नान, दान तथा श्राद्ध का फल सामान्य से दस गुना अधिक । मेरा यह कथन मिथ्या नहीं हो सकता ।

सुषुम्नान्तरवर्तिग्रहमकथ्यम्

एतत्सर्वं हि कथितं सुषुम्नामार्गसंस्थितम् ।
अतिगोप्यं महत्पुण्यं सारात्सारं परात्परम् ।
न कस्मैचित्प्रवक्तव्यं यदि कल्याणमिच्छसि ॥33॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
षष्ठः पटलः समाप्तः ।



हे पार्वति ! चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय सुषुम्ना में घटित होने वाली रहस्यमयी घटना और उस समय की जाने वाली साधना का अत्यन्त गोपनीय, पुण्यकर, सार का भी साररूप और महत् से भी महत् तथ्य का उद्घाटन तुम्हारे समक्ष किया है । हे भगवति ! यदि तुम अपना कल्याण चाहती हो, तो इसकी चर्चा किसी अनधिकारी व्यक्ति से न करना ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृति का षष्ठ पटल समाप्त ।



अथ सप्तमः पटलः

श्रीशिवेन सुषुम्नावर्त्ममध्यस्थमन्त्रोद्घाटनम्

श्रीईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि अतिगुह्यं परात्परम् ।
सुषुम्नावर्त्ममध्यस्थं यन्मन्त्रं तच्छृणु प्रिये ! ॥1॥
एतन्मन्त्रमविज्ञाय यो जपेत्सूर्यपर्वणि ।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यादन्ते नरकमाप्नुयात् ॥2॥

भगवान् श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! अब मैं सुषुम्नामार्ग के मध्य में स्थित उस मन्त्र का उद्घाटन कर रहा हूँ, जिसे सूर्यग्रहण के अवसर पर जपा जाता है । इस मन्त्र को जाने बिना जो मान्त्रिक सूर्यग्रहणपर्व पर किसी अन्य मन्त्र का जप करता है, उसके समस्त उद्देश्य नष्ट हो जाते हैं और मरने के बाद वह सूअर की योनि में जन्म लेता है ।

श्रृणु मन्त्रं वरारोहे ! प्रशस्तं पर्वदर्शने ।
मोक्षकाले च चार्वङ्गि ! प्रशस्तं यच्छृणुष्व तत् ॥3॥

हे शुभांगि ! सूर्यग्रहणपर्व पर ग्रहण और मोक्ष के समय जपे जाने वाले महामन्त्र का मैं उद्घाटन कर रहा हूँ, ध्यान से सुनो ।

प्रणवत्रयमुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत् ।
ततः प्रणवमुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत् ॥4॥
ततः प्रणवमुद्धृत्य त्रयमेतत्सुदुर्लभम् ।
एतत्सप्ताक्षरं मन्त्रं प्रजप्य दशधा प्रिये ! ॥5॥
यः पश्येद् ग्रहणं देवि ! प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
मोक्षकाले च चार्वङ्गि ! देवानामपि दुर्लभम् ॥6॥

हे देवि ! तीन बार ओंकार (ओं ओं ओं), फिर मायाबीज (ह्रीं), पुनः प्रणव (ओं), फिर मायाबीज (ह्रीं), और अन्त में पुनः प्रणव (ओं) अर्थात् 'ओं ओं ओं ह्रीं ओं ह्रीं ओं' इस त्रिखण्डात्मक सप्ताक्षरी मन्त्र अर्थात् 'ओं ओं ओं ह्रीं ओं ह्रीं ओं' का दस बार जप करके ग्रहण देखने ग्रहणदर्शन का दोष स्पर्श नहीं करता, अतः प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं होती । हे शुभांगि ! मोक्ष के समय भी इस मन्त्र का जप प्रशस्त माना जाता है ।

मायाबीजत्रयं लिख्यं प्रणवं तदनन्तरम् ।
पुनर्मायात्रयं देवि ! मन्त्रोद्धारमिदं शुभम् ॥7॥
एतन्मन्त्रद्वयं देवि ! सर्वत्रैव प्रशस्यते ।

वैष्णवेषु च सौरषु शाक्ते शैवे वरानने ! ॥8॥
प्रशस्तं चञ्चलापाङ्गि ! नान्यथा तु कदाचन ।

हे शिवानि ! ग्रहण के समय जपने योग्य एक और मन्त्र है । उसका कथन भी मैं करता हूँ । पहले तीन बार मायाबीज (ह्रींह्रींह्रीं), फिर प्रणव (ओं), पुनः तीन बार मायाबीज (ह्रींह्रींह्रीं) अर्थात् 'ह्रींह्रींह्रीं ओं ह्रींह्रींह्रीं' यह दूसरा मन्त्र है ।

मन्त्रमविज्ञाय ग्रहणदर्शने दोषः

एतन्मन्त्रमविज्ञाय यः पश्येद् ग्रहणं शुभे ॥9॥
सर्वं तस्य वृथा देवि ! चान्ते शूकरतां व्रजेत् ।

हे शुभे । इस मन्त्र को जाने बिना जो व्यक्ति ग्रहण देखता है, उसके लिये सब व्यर्थ है । वह मृत्यु होने पर सूअर की योनि में जन्म लेता है ।

अनयोर्मन्त्रयोर्जपविधिः

दर्शने मोक्षणे वैतन्मन्त्रद्वयमुदीरितम् ॥10॥
यन्नोक्तं सर्वतन्त्रेषु चेदानीं प्रकटीकृतम् ।
न तिथिर्न व्रतं होमो ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ॥11॥
ग्रासादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
यथा बाह्ये महेशानि ! तथा चैवान्तरात्मनि ॥12॥
उभयोरेकतां कृत्वा प्रजपेन्मनसा शुचि ।

हे देवि ! चन्द्र-सूर्य के ग्रहण और मोक्ष के दिखायी पड़ने पर उक्त दोनों मन्त्रों का जप करना चाहिये । ये मन्त्र गोपनीय हैं । इन दोनों मन्त्रों का उल्लेख किसी भी तन्त्र में नहीं किया गया है । इन्हें आज ही प्रकट कर रहा हूँ । सूर्य और चन्द्र के ग्रहण और मोक्ष में किसी तिथि, व्रत या हवन का विधान नहीं है । ग्रास से मोक्षपर्यन्त केवल इन दोनों मन्त्रों को एक मानते हुए इनका निरन्तर बाह्य तथा आन्तरिक जप करते रहना चाहिये ।

चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणकारणम्

राहुर्यदा महेशानि ! चन्द्रं सूर्यं च धावति ॥13॥
वैरभावमनुस्मृत्य विकलाङ्गस्तु पार्वति ! ।
तदोपरागो भवति सर्वयोगमयं विदुः ॥14॥

हे पार्वति ! समुद्र-मन्थन के समय अमृत-पान के प्रयास में सूर्य और चन्द्र के कारण अपना कबन्ध खोकर विकलांग बना राहु इन दोनों से अपनी पुरानी शत्रुता का स्मरण कर समय-समय पर इन पर जब आक्रमण करता है, तब उपराग अर्थात् ग्रहण की घटना घटती है । उपरागकाल सर्वयोगमय होता है ।

ग्रहणकाले समस्तदेवतीर्थानां सूर्यचन्द्रमण्डले आगमनम्

***अत एव महेशानि ! इन्द्राद्यास्त्रिदिवोकसः ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे गङ्गाद्यास्तीर्थकोटयः ॥15॥
सूर्यमण्डलमासाद्य प्रजपन्तीष्टमन्त्रकम् ।
तान् दृष्ट्वा सहसा राहुः पलायति भयात्ततः ॥16॥
अन्यथा तत्क्षणात्सर्वं ब्रह्माण्डं नाशमाप्नुयात् ।**

हे माहेश्वरि ! चन्द्र-सूर्यग्रहण का समय सर्वयोगमय होता है । इस पर्व में किये जप-तप का फल अक्षय्य होता है, इसलिये जपादि करके के लिये ब्रह्मादि समस्त देवता और गंगादि करोड़ों तीर्थ सूर्यग्रहण के समय सूर्य-मण्डल में तथा चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमण्डल में जाकर अपने इष्टमन्त्र का जप करते हैं । इन देवताओं और तीर्थों को वहाँ उपस्थित देखकर राहु भयभीत होकर वहाँ से भाग जाता है । यदि ऐसा न होता, तो सूर्य-चन्द्र के राहु द्वारा निगल लिये जाने पर समस्त ब्रह्माण्ड तत्क्षण नष्ट हो गया होता ।

**तत्क्षणे सर्वतीर्थानि सामान्यमुदकं प्रिये ! ॥17॥
यान्ति स्वपदमुत्सृज्य सर्वतीर्थोदकं ततः ।
सामान्यमुदकं तत्तु गङ्गातोयसमं भवेत् ॥18॥**

हे देवि ! ग्रहण के समय सभी तीर्थ और सामान्य जल अपनी विशिष्टता त्यागकर पवित्र तीर्थों के पवित्र जल के समान हो जाते हैं । उस समय सामान्य जल भी गंगाजल की भाँति पवित्र हो जाता है ।

ग्रहणस्नानेन प्राप्तफलम्

**तत्क्षणे चञ्चलापाङ्गि ! तज्जले स्नानमात्रतः ।
चतुर्भुजसमाः सर्वे लोकाः भारतवासिनः ॥19॥
तत्क्षणाद् गिरिजे ! सत्यं मोक्षं ब्रह्मपुरं व्रजेत् ।
भारते विविधापूजा भारते विविधा जपः ॥20॥
तथापि बहुकालेन सिद्ध्यन्यते सङ्गदोषतः ।**

हे पार्वति ! ग्रहण के अवसर पर पवित्र हुए जल में स्नानमात्र से सभी भारतवासी चतुर्भुज भगदान् विष्णु के सदृश हो जाते हैं । हे गिरिपुत्रि ! ग्रहण के समय पवित्र तीर्थजलों में स्नान करने वाला व्यक्ति केवल ग्रहणस्नान के पुण्य से तुरत ही सत्यलोक, ब्रह्मलोक या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । लेकिन, भारतवर्ष में विविध प्रकार की अर्चनाओं और जपों

---

* मुद्रिते नास्ति पंक्तिरेषा ।

आदि के बावजूद, अनेक दोषों के कारण मोक्षादि की प्राप्ति दीर्घकाल तक जपादि के करने से ही होती है ।

मान्धातृप्रमुखाः सर्वे रामो दाशरथिस्तथा ॥21॥
प्रजप्यतारिणीं दुर्गां मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयुः ।

हे पार्वति ! मान्धाता आदि नृपतिगण तथा दशरथपुत्र राम ने ग्रहण के अवसर पर ही भगवती तारिणी दुर्गा के मन्त्र का जप करके मन्त्र की सिद्धि प्राप्त की थी ।

अन्यद्वीपेषु वर्षेषु नाना तीर्थानि सन्ति वै ॥22॥
नानाभोगयुता लोका देववत्सर्वथा प्रिये ।
ते सर्वे देवताप्राया नानाभोगविलासिनः ॥23॥
नित्यसुखमयाः सर्वे दिव्यस्त्रीशतसेविताः ।
तेषां गेहे महेशानि ! नानातीर्थानि सन्ति वै ॥24॥

हे देवि ! पृथ्वी पर स्थित अन्य पुष्करादि द्वीपों तथा इलादि वर्षों में अनेक तीर्थ हैं। वहाँ के निवासी देवताओं के समान हैं और उनको विविध भोग स्वतः प्राप्त हैं । वे सभी सर्वदा सुखी और अप्सराओं द्वारा सेवित रहते हैं तथा उनके घरों में विभिन्न तीर्थ निवास करते हैं ।

ग्रहणं चन्द्रदेवस्य सूर्यदेवस्य सुन्दरि ! ।
बहुभाग्येन चार्वङ्गि ! लोका भारतवासिनः ॥25॥
प्राप्तिमात्रेण यज्जप्तं तत्सर्वमक्षयं भवेत् ।

हे सुन्दरि ! लेकिन, भारतवासियों को सौभाग्य से चन्द्रदेव और सूर्यदेव के ग्रहण के महापर्व का अवसर मिलता है, जिसमें केवल जप-मात्र से मोक्षादि का अक्षय फल प्राप्त हो जाता है ।

चतुर्दश्यादितिथिषु तीर्थे स्नानफलम्

चतुर्दशी पौर्णमासी सोममङ्गलसंयुता ॥26॥
यदा भवति लोकेस्मिन् तदा सूर्यग्रहेण किम् ।
एषा तु चञ्चलापाङ्गि ! कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥27॥

हे चपलनयने ! सूर्य और चन्द्रग्रहण के अतिरिक्त भी कई ऐसे पर्व हैं, जो इन ग्रहणपर्वों से भी करोड़ोंगुना अधिक फल देने वाले हैं । जैसे, सोमवार तथा मंगलवार की चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियाँ करोड़ों सूर्यग्रहण के समान हैं ।

पर्वदिवसे पूजालोपे दोषः

शुक्लाष्टम्यां नवम्यां वा चतुर्दश्यां तथैव च ।
संक्रान्त्यां पर्वदिवसे पूजालोपं न कारयेत् ॥28॥

नावश्यं पूजयेद्यस्तु तत्त्वहीनो भवेत्प्रिये ! ।
तत्त्वहीनस्य देवेशि ! जपयज्ञादिदिष्फलम् ॥29॥

हे प्रिये ! इसी प्रकार शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथियाँ भी श्रेयस्करी हैं । इन तिथियों को भगवती की अर्चना अवश्य करनी चाहिये । इन तिथियों में पूजा न करने से साधक तत्त्वहीन हो जाता है और तत्त्वहीन साधक द्वारा किये गये सारे जपयज्ञादि कर्म निष्फल रहते हैं ।

शाम्भवी कुप्यते तेन ब्रह्महत्या पदे पदे ।
यद्यत्पूर्वकृतं कर्म जपहोमादिकं च यत् ॥30॥
तत्सर्वं नाशमायाति मम तुल्यो भवेद्यपि ।

हे पार्वति ! यदि शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथियों में पूजा नहीं की जाती तो भगवती भवानी रुष्ट हो जाती हैं और इस कारण, साधक भले ही मुझ जैसा ही क्यों न हो, उसके द्वारा किये गये समस्त जपहोमादि कर्म बिना फल दिये ही नष्ट हो जाते हैं ।

चन्द्रग्रहणात्सूर्यग्रहणस्य प्रशस्तता

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि ! न चन्द्रं गणयेत्प्रिये ॥31॥
ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यस्तथा शूद्रश्च पार्वति ! ।
सूर्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ॥32॥
सः कालः परमेशानि ! परब्रह्म स्वरूपवान् ।

हे देवि ! ब्राह्मणादि चारों वर्णों को चाहिये कि वे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण इन दोनों पर्वों में से सूर्यग्रहण को अधिक महत्त्वपूर्ण मानें । क्योंकि सूर्यग्रहण से अधिक महत्त्वपूर्ण काल इस पृथ्वी पर कोई भी नहीं है । हे परमेश्वरि ! यह काल साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है ।

ग्रहणे जपाऽकरणे दोषनिरुक्तिः

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य न जपेद् यदि दीक्षितः ॥33॥
सर्वं पुण्यं परित्यज्य विष्ठायां जायते कृमिः ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं ग्रहणे जपपूजनम् ॥34॥
न तिथिर्नामगोत्रं वा न च सङ्कल्पमाचरेत् ।

हे पार्वति ! चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के समय यदि कोई दीक्षित साधक अपने गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जप नहीं करता, तो उसके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् वह मल का कीड़ा बनता है । हे देवि ! ग्रहणकाल में मन्त्र का जप करने में तिथि, नाम, गोत्रादिसहित किसी संकल्प की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती, केवल जप ही करना होता है ।

यवनानां कृते त्र्यक्षरीमन्त्रस्य जपविधिः

कलिकाले तु देवेशि ! यवना बलवत्तमाः ॥35॥
मत्स्यमांसरताः सर्वे सर्वदा मद्यसेविनः ।
अनाचाररतास्ते न सिद्ध्यन्ति यवनाः कलौ ॥36॥

हे देवेश्वरि ! इस कलियुग में यवनों की प्रधानता है । वे मद्य पीने तथा मांस खाने में रुचि रखते हैं, सर्वदा मदिरा पीते रहते हैं और सर्वदा दुराचरण में लगे रहते हैं । इस कारण उनके द्वारा जपे गये मन्त्र सिद्ध नहीं होते ।

शिवेन त्र्यक्षरीविद्याप्रकथनम्

यवनानां महेशानि ! त्र्यक्षरीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
निगदामि वरारोहे ! सावधानाऽवधारय ॥37॥

हे माहेश्वरि ! मद्य-मांस और दुराचरण में रत ऐसे यवनों को भी साधना करके सिद्धि पाने का अधिकार है । उनके लिये त्र्यक्षरी मन्त्र ब्रह्मस्वरूप है । अतः उनके उद्धार के लिये मैं त्र्यक्षरी मन्त्र का उद्घाटन करता हूँ, सावधान होकर सुनो ।

कलावतीं समद्धृत्य वह्निणीं तदनन्तरम् ।
रतिबीजं ततो देवि ! ततस्तु रुद्रयोगिनीम् ॥38॥
एषा तु त्र्यक्षरी विद्या भुवनेषु प्रतिष्ठिता ।
संयुक्तैषा यदा विद्या तदैवैकाक्षरी भवेत् ॥39॥

हे महादेवि ! पहले कलावती बीज क्, तदनन्तर वह्निणि बीज ऋ, फिर रतिबीज ई, तब रुद्रयोगिनि बीज म् यह त्रिलोकी में ख्यात कृीं (क्रीं) रूप त्र्यक्षरी विद्या है । जब यह त्र्यक्षरी विद्या संयुक्त हो जाती है, तो यह एकाक्षरी विद्या बन जाती है ।

आचारात्सिद्धिः अनाचारात्प्रणाशः

साचारा ब्राह्मणाद्यास्तु सिद्ध्यन्ति बहुकालतः ।
अनाचाराः प्रणश्यन्ति सत्यमेतन्न संशयः ॥40॥
उपाया ब्राह्मणादीनां तेनोक्ताः शतशो मया ॥
सिद्ध्यन्ति ते तथोक्तेन नियमैश्च यथाविधि ॥41॥

श्रीशिव ने कहा—हे उमे ! यह सच है कि सदाचार पारायण ब्राह्मणादि साधकों को सिद्धि दीर्घकाल तक साधना करने पर ही मिलती है, और दुराचरण में रत लोग इन साधनाओं को करने से स्वयं नष्ट हो जाते हैं । लेकिन, साधनारत सदाचरणशील ब्राह्मणादिकों को भी उनकी साधना का फल शीघ्र मिल जाय, इसके भी सैकड़ों उपाय मैंने तन्त्रान्तरों में बताये हैं । उन उपायों को नियम और विधि से सम्पादित करने पर ब्राह्मणादिक साधक भी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ।

इति ते कथितं देवि ! रहस्यं परमाद्भुतम् ।
न कस्मैचित्प्रवक्तव्यं यदि तेऽस्ति दया मयि ॥42॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
सप्तमः पटलः समाप्तः ।



हे माहेश्वरि ! मैंने अत्यन्त रहस्यात्मक उक्त गोपनीय तथ्यों का निरूपण तुम्हारे समक्ष कर तो दिया, लेकिन, यदि तुम मेरे पर कृपालु हो, तो इसे किसी अन्य व्यक्ति को न बताना ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का सप्तम पटल समाप्त ।



अथाष्टमः पटलः

देव्या गुह्यसाधने जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

कथितः परमेशान ! मन्त्रयन्त्रस्त्वनेकधा ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि साधनं परमेश्वर ! ।
पुरश्चर्याविधिं देव ! कथयस्वानुकम्पया ॥1॥

श्रीपरमेश्वरी ने ईशान शिव से कहा—हे परमेश्वर ! आपने भगवती माया के मन्त्रों और यन्त्रों के विषय में अनेक बार अनेक बातें बतायी हैं । अब मैं इन मन्त्रों और यन्त्रों से की जाने वाली साधना की विधि जानना चाहती हूँ । इसलिये हे देव ! कृपा करके आप मुझे पुरश्चर्या की विधि बताइये ।

श्रीशिवेन गुह्यसाधनाविधेः तत्फलस्य
च निरूपणम्

श्रीमहादेव उवाच

गोपितं सर्वतन्त्रेषु विश्वसारे प्रकाशितम् ।
तत्रैव गुह्यं यद्यत् ते कथयामि शृणुष्व तत् ॥2॥

महादेव ने कहा—हे पार्वति ! पुरश्चर्या की गोपनीय विधि का निरूपण मैंने सभी तन्त्रों में नहीं किया है । हाँ, जो भी गोपनीय है, वह विश्वसारतन्त्र में अवश्य प्रकाशित कर दिया है । वह मैं पुनः बताता हूँ, सावधान होकर सुनो ।

भगवती की कुलाचार पद्धति से साधना के मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन नामक पाँच साधन हैं । शक्तिपूजा इस साधना का अभिन्न अंग है । इसमें भगवती का प्रतीक मानकर कुलांगनाओं की विविध भाँति से पूजा की जाती है । यह शक्तिपूजा बड़ी पवित्र और रहस्यमयी है ।

वाक्पतित्वादिप्राप्तये कुलसाधनस्य प्रयोगविधिः

पृथिवीमृतुवतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः ।
जपेदेकाग्रमनसा कुलपूजारतः सुधीः ॥3॥
आषोडशदिनं यावद् वाक्पतिर्भवति ध्रुवम् ।
एवमष्टोत्तरशतं कृत्वा धनपतिर्भवेत् ॥4॥

हे देवि ! यदि कोई साधक किसी रजस्वला शक्ति को देख उसमें कुलाचार विधि से भगवती की भावना कर कुलाचार विधि से पूजन और लगातार सोलह दिनों तक मन्त्र का 108 बार जप करे तो इसके प्रभाव से वह निश्चितरूप से वाक्पति बृहस्पति के समान बन जाता है ।

मधुपानरतो रात्रौ चन्द्रबिम्बं प्रचक्ष्य च ।
पुनः पुनः साधकाग्र्यो भवेत्कविवरः क्षणात् ॥5॥
मर्दयन् गिरियुगं देवि ! तत आलिग्य यत्नतः ।

हे देवि ! उक्त विधि से कुलशक्तिपूजक महासाधक यदि रात्रि के समय चन्द्रमा के बिम्ब (साधिका शक्ति के मुखचन्द्र) को देखता और मद्यपान करता हुआ बार-बार शक्ति का आलिंगन कर पर्वत के समान गुरु दोनों उसके उरोजों का मर्दन करे, तो वह शीघ्र ही महान् कवि बन जाता है ।

कुण्डगोलोद्भवं पुष्पं समादाय प्रयत्नतः ॥6॥
निवेदयन् महादेव्यै प्रसीदेति क्रमाचरेत् ।
शताभिमन्त्रितं कृत्वा होमयेदखिलं जगत् ॥7॥

हे देवि ! यदि कोई साधक 'हे भगवति ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों', ऐसी प्रार्थना करता हुआ पूर्वोक्त मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित कुण्डोद्भव और गोलोद्भव (सधवा और विधवा का रजस्) पुष्प महामाया को समर्पित कर उसकी आहुति दे, तो यह आहुतिकर्म देवी के लिये समस्त जगत् की आहुति समर्पित कर देने के समान है ।

क्रोधे कालमयो नित्यं दाने वासववत् प्रिये ।
बृहस्पतिसमो वक्ता कामवत्कामिनीषु च ॥8॥
किमन्यैर्बहुधालापैः स शिवो नात्र संशयः ।

हे गिरिजे ! महादेवी को कुण्डगोलोद्भव पुष्प चढ़ाने वाले साधक को यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है कि आवश्यकता होने पर वह क्रोध में काल के समान अजेय, दान में कुबेर के समान, वाणी में बृहस्पति के समान, कामिनियों के लिये कामदेव के समान और अधिक क्या कहें, वह साक्षात् शिव के समान ही हो जाता है ।

कुलपूजायां जपादिविधिः

कुलपूजाविधियुतो ध्यात्वा च परमेश्वरीम् ॥9॥
अयुतं यदि जप्त्वैवं कुमारीं भोजयेत् ततः ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् भवेत्सर्वजनप्रियः ॥10॥

हे भगवति ! कुलाचार की इस विधि से भगवती की अर्चना में निरत साधक को चाहिये कि वह उक्त रीति से मन्त्र का दस हजार जप करके नौ कुमारियों को भोजन कराये तथा

अपने गुरु को दक्षिणादि प्रदान कर प्रसन्न करे। इस विधि से देवी की साधना करने से साधक सर्वप्रिय हो जाता है।

शत्रुञ्जयप्रयोग:

प्रतिपद्दिनमारभ्य जपेत्प्रतिपदन्तरम्।
सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा जप्त्वा च परमं मनुम् ॥11॥
शक्त्यनुज्ञां गृहीत्वा च रिपून् हन्यान्न संशयः।

हे देवि ! प्रतिपदा की तिथि से लेकर अगली प्रतिपदा तक प्रतिदिन तारिणी दुर्गा के त्र्यक्षरी या एकाक्षरी महामन्त्र का दस हजार जप और एक हजार हवन सम्पन्न करने के बाद शक्ति की अनुमति लेकर शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने वाला साधक शत्रुओं पर निश्चित विजय प्राप्त करता है।

मूकस्य वाक्पतित्वप्राप्तये प्रयोग:

प्रातः प्रातः पिबेत्तोयमष्टोत्तरशतं जपेत् ॥12॥
अनेन मूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत्तथा।
अनेन जलपानेन साक्षाद् वाक्पतिसन्निभः ॥13॥

प्रतिदिन प्रात:काल उक्त मन्त्र से 108 बार अभिमन्त्रित जल पीने से पाषाण की भाँति जड़, मूक तथा विजड़ित व्यक्ति भी बृहस्पति के समान विद्वान् वक्ता हो जाता है।

निर्भयत्वप्राप्तिप्रयोग:

लक्षं जप्त्वा ततो ध्यात्वा त्रैलोक्यवशकारिणीम्।
शत्रुतो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा ॥14॥
न तस्य विद्यते भीतिः कदाचिदपि शङ्करि !।

हे शाम्भवि ! त्रिलोकी को वश में करने वाली तारिणी दुर्गा के उक्त मन्त्र का 1 लाख जप पूर्ण कर भगवती का ध्यान करने वाले व्यक्ति को शत्रु, राजा तथा दस्यु आदि किसी से भी कभी भय नहीं रहता।

वृष्टिकारकप्रयोग:

ध्यात्वा हृत्पद्ममध्ये तु दुर्गां त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥15॥
जपेदयुतसाहस्रं वृष्टिमाप्नोत्यसंशयः।

हे देवि ! त्रैलोक्यमोहिनी दुर्गा का हृदयकमल में ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का दश हजार जप करने से अनावृष्टि समाप्त होकर प्रभूत वृष्टि होती है।

वागीशत्वप्राप्तिप्रयोगः

मालती-मल्लिका-जाती-कुसुमैर्मधुमिश्रितेः ॥16॥
घृतैस्तु हवनाद् देवि ! वागीशत्वं प्रजायते ।
मूकस्यापीह मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा ॥17॥

हे देवि ! इस मन्त्र से मधुमिश्रित घृत के साथ मालती, मल्लिका तथा जाती के पुष्पों का हवन करने से पत्थर के समान जड़ तथा मूक व्यक्ति को भी वागीशत्व प्राप्त होता है।

जगन्मोहनप्रयोगः

जपापुष्पैः राज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः ।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः ॥18॥

जाति के पुष्पों के साथ जपा अथवा कनेर के पुष्पों के हवन से साधक स्वर्ग, पृथिवी तथा पाताल तीनों लोकों के निवासियों को वश में कर लेता है।

कामविजयिप्रयोगः

कर्पूरं कुङ्कुमं देवि ! मिश्रं मृगमदेन हि ।
हवनान्मदनो देवि ! मन्त्रिणा विजितो भवेत् ॥19॥
सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनापि सुव्रते ! ।

हे सुव्रते ! कर्पूर, केसर तथा कस्तूरी का हवन करने से हवनकर्ता मान्त्रिक सौभाग्य, विलास और सामर्थ्य में कामदेव से भी बढ़कर हो जाता है।

स्तम्भनप्रयोगः

चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥20॥
प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम् ।

चम्पा तथा पाटलपुष्पों के हवन से साधक महान् धनलक्ष्मी प्राप्त करता है तथा उसमें संसार को स्तम्भित करने की भी शक्ति आ जाती है।

सर्वलोकवशीकरणप्रयोगः

श्रीखण्डं गुग्गुलं चन्द्रमगरुं होमयेत् ततः ॥21॥
नागेन्द्रासुरदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ।
सर्वलोकवशास्तस्य भवत्येव न संशयः ॥22॥

हे देवि ! चन्दन, गुग्गुलु, अगरु तथा चन्द्र का हवन करने से साधक असुर, सुर, नाग तथा इन्द्रादि देवलोकों की नारियों को भी मोहित कर सकता है। इतना ही नहीं, समस्त लोक उसके वश में हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

राज्यप्राप्तिप्रयोगः

लक्षहोमाल्लभेद्राज्यं दरिद्रभयपीडितः ।
दुर्गोपशमनं देवि! पलत्रिमधुहोमतः ॥23॥

प्रत्येक बार केवल तीनपल की मात्रा में मधु का एक लाख हवन करने से दरिद्र और भयभीत व्यक्ति को भी राज्य की प्राप्ति होती है तथा उसके समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं ।

शत्रुराष्ट्रध्वंसकप्रयोगः

रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः ।
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः ॥24॥
परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्मरणं भवेत् ।

हे देवि ! मधुरत्रय एवं रक्तसहित बकरे के मांस से विहित विधि से हवन करने से साधक इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह अपने पराक्रम से शत्रु के राष्ट्र और दुर्ग को नष्ट कर सकता है ।

आयुर्धनादिप्राप्तिप्रयोगः

गोक्षीरं मधुदध्याज्यं पृथक् हुत्वा वरानने ॥25॥
आयुर्धनं महारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ।
क्रमेणाब्जेन गोक्षीरमधुभ्यां शूलनाशनम् ॥26॥
दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यधनमाप्नुयात् ।

हे देवि ! गाय के दूध, दही, घृत तथा मधु के अलग-अलग हवन से साधक को क्रमानुसार आयु, धन, आरोग्य तथा महासमृद्धि की प्राप्ति होती है । एक-एक करके गाय के दूध और मधु से हवन करने से पीड़ा नष्ट हो जाती है । हे देवि ! दही और शहद के हवन से सौभाग्य और धन की प्राप्ति होती है ।

वैरिस्तम्भनप्रयोगः

शीतया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः ॥27॥

केवल शर्करा के हवन से शत्रु का स्तम्भन होता है ।

होमो दधिघृतक्षीरलाजैश्च वीरवन्दिते ।
रोगहन्ता कालहन्ता मृत्युहन्ता न संशयः ॥28॥

हे वीरवन्द्ये भगवति ! दधि, घृत, दुग्ध तथा लाजा के हवन से साधक रोग, काल तथा मृत्यु को पराजित कर देता है, इसमें संशय नहीं ।

जगद्वश्यप्रयोगः

कमलैर्वारुणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिकारकः ।
रक्तोत्पलं जगद्वश्यं राजानश्च वशाः क्षणात् ॥29॥

लाल कमलों के हवन से प्रभूत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । लाल कमल का हवन संसार को वश में करने वाला है । इससे राजा भी वश में हो जाते हैं ।

महादुष्टवश्यकरप्रयोगः

नीलैत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा ।
श्वेतोत्पलैः प्रियं राज्यं लभते हवनात्प्रिये ॥30॥

हे देवि ! नीलकमलों का हवन करने से निःसन्देह बड़े-बड़े दुष्ट वश में हो जाते हैं और श्वेत कमलों का हवन करने से वांछित राज्य की प्राप्ति होती है ।

चराचरवश्यप्रयोगविधिः तत्र विघ्नाश्च

अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन प्रपूजिताम् ।
समाश्रित्य जपेद् विद्यां लक्षमात्रं सदा प्रिये ॥31॥
योधितो भ्रामयत्येव मनस्तस्य सुनिश्चितम् ।

हे देवि ! चन्दन के द्रव से अक्षमाला का पूजन करके उस माला से उक्त दुर्गामन्त्र का प्रथम एक लाख जप पूर्ण करने के दौरान साधक के मन में साधना के प्रति कुछ भ्रान्ति उत्पन्न होती है ।

तदा द्वितीयलक्षं तु जपेत्साधकसत्तमः ॥32॥
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम् ।
तासां कटाक्षजालैस्तु सम्मोहयन्ति साधकम् ॥33॥

ऐसी स्थिति आने पर साधक को एक लाख जप और करना चाहिये । इस प्रकार दो लाख जप करने से साधक को जप से डिगाने के लिये पाताल लोकवासिनी कन्याएँ अपने कटाक्षों से उसे मोहित करने लगती हैं ।

तृतीयलक्षे सञ्जप्ते भ्रामयन्ति पुराङ्गनाः ।
अतिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारणाः ॥34॥
साधको भ्रामयत्येव तत्रासौ स्थिरमानसः ।

हे देवि ! ऐसी स्थिति आने पर साधक को मन्त्र का एक लाख जप और करना चाहिये । मन्त्र के इस तृतीय लाख के जप से साधक को डिगाने के लिये स्वर्गलोक की ललनाएँ अपने गर्व, सौन्दर्य के गर्व भान के जाल में उसे फँसाने का प्रयास करती हैं । इस स्थिति में दृढ मानस साधक अपने साधनापथ पर अटल रहे ।

तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम् ॥35॥
एवं लक्षत्रये जप्ते साधकः स्थिरमानसः ।
सन्मोहयन्ति स्वर्लोकं भूर्लोकतलवासिनः ॥36॥
पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरजनाः प्रिये ।
तदा लक्षत्रयं जप्यात् साधकः स्थिरमानसः ॥37॥

हे भगवति ! इस प्रकार मन्त्र का तीन लाख जप साधक के लिये श्रेयस्कर और उसके समस्त पापों का विनाशक होता है । स्थिरमानस साधक द्वारा मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण कर लिये जाने पर स्वर्ग तथा भूलोक में निवास करने वाले समस्त स्त्री-पुरुष तथा चराचर संसार साधक के वश में हो जाते हैं । इस प्रकार की वशीकरण की शक्ति प्राप्त होने पर साधक को अपने जप की पूर्णता के लिये समाहित मन से मन्त्र का तीन लाख जप पुनः करना चाहिये ।

चक्रराजे आकर्षणप्रयोगः

गोरोचनादिद्रव्यैश्च चक्रराजं समालिखेत् ।
वन्द्यं वसुन्धरां रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां पराम् ॥38॥
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम् ।
चिन्तयेत् तु महादेवीं योजनानां सहस्रतः ॥39॥
या दृष्टपूर्वा देवेशि ! क्रमशोऽत्र सुदुर्लभा ।
राजकन्याऽथवा भार्या भयलज्जाविवर्जिता ॥40॥
आयाति साधकं सम्यक् मन्त्रमूढा सती प्रिये ! ।

हे देवि ! जप पूर्ण करने के बाद साधक को चक्रपूजा करनी चाहिये। चक्र का आलेखन किसी शान्त वन की रमणीय भूमि पर गोरोचन आदि पवित्र पदार्थों से करना चाहिये । चक्र का अंकन हो जाने पर उसके मध्य भगवती महामाया दुर्गा के नाम से युक्त उनकी तेजस्पूर्ण सुन्दर प्रतिमा की स्थापना करनी चाहिये । उस प्रतिमा पर भगवती दुर्गा का महाबीज दूं भी अंकित होना चाहिये । विधिपूर्वक प्रतिमा की स्थापना के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह उस प्रतिमा के सामने स्थिर बैठकर भगवती का ध्यान करे । हे शिवे ! इस साधना के प्रभाव से साधक द्वारा पहले देखी गयी (वांछित) राजकन्या या राजपत्नी भी मन्त्रमुग्ध-सी होकर राजभय ओर लोकलाज की चिन्ता किये बिना साधक के पास आ जाती है ।

सर्वदा सर्वलोकवशंकरप्रयोगः

चक्रमध्यगतो भूयः साधकश्चिन्तयेत्सदा ॥41॥
उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत्परमेश्वरि ॥42॥

चक्रपूजा के बाद साधक को चाहिये कि वह सर्वदा स्वयं तथा अपने साध्य को भगवती दुर्गा की उदित हो रहे सूर्य की अरुण आभा से मण्डित अरुणाभ रूप में चक्र के मध्य बैठा हुआ-सा चिन्तन करता रहे ।

अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपभाक् ।
सर्वसौभाग्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः ॥43॥

हे महादेवि ! इस क्रमयोग की साधना से साधक कामदेव के समान सुन्दर, समस्त प्रकार के सौभाग्यों से मण्डित और सभी को वश में करनेवाला हो जाता है ।

धनाढ्यत्वप्राप्तिप्रयोगः

सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहितविग्रहः ।
चक्रं सम्पूजयेद् यो हि यस्य नाम विदर्भितम् ।
स भवेद्वासवो देवि! धनाढ्यो वापि भूपतिः ॥44॥

हे भगवति ! जो साधक रक्तवर्ण के गन्धपुष्पादि सामग्रियों और आवश्यक मुद्रादि के प्रत्यक्ष प्रदर्शन के साथ किसी भी देवता के नाम से विदर्भित चक्र का पूजन करता है, वह कुबेर के समान धनाढ्य अथवा राजा हो जाता है ।

गुह्यसाधनस्य गोपनीयत्वप्रकथनम्

इदं गुह्यं महेशानि ! यदुक्तं तव सन्निधौ ।
न कस्मैचित्प्रवक्तव्यं प्राणे संकटमागते ॥45॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
अष्टमः पटलः समाप्तः ।



हे माहेश्वरि ! मैंने जो यह गोपनीय साधना का उल्लेख तुम्हारे सामने किया है, उसे प्राणों पर संकट आ पड़ने पर भी किसी को न बताना ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का अष्टम पटल समाप्त ।



अथ नवमः पटलः

श्रीदेव्याः हवनाधारे जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

हवनं कुत्र कर्तव्यं विशेषेण वदस्व मे ।
समावेदय मे नाथ ! यतोऽहं तव वल्लभा ॥1॥

श्रीदेवी ने श्रीशिव से कहा—हे भगवन् ! मैं आपकी प्रिया हूँ । आपने मुझे बहुत-सी रहस्यमय बातें बतायी । अब आप विशेषरूप से यह बताइये कि जप के पश्चात् विहित हवन कहाँ करना चाहिये ?

शान्त्यादिषट्कर्मानुरूपकुण्डग्रहणनियमः

श्रीमहादेव उवाच

धन्ये ! प्रियतमे ! देवि ! शृणुष्वावहिता भव ।
होमं कुर्यात्कुण्डमध्ये प्रकारं कथयामि ते ॥2॥

पार्वती की बात सुनकर श्रीशिव ने कहा—देवि ! तुम धन्य हो, इसलिये कि तुमने एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न किया है । हवन कुण्ड में करना चाहिये । कुण्डों के जो कई प्रकार हैं, उन्हें बताता हूँ । हवन के उद्देश्यानुसार कुण्ड का चयन करना चाहिये ।

शान्तौ पुष्टौ तथाऽऽरोग्ये कुण्डं च चतुरस्त्रकम् ।
आकर्षणे त्रिकोणं स्यादुच्चाटे वर्तुलं तथा ॥3॥
मारणे च तथा योज्यं वर्तुलं मन्त्रिभिः सदा ।

शान्ति, पुष्टि और आरोग्य के उद्देश्य से किये जाने वाला हवन चतुरस्त्र कुण्ड में करना चाहिये । आकर्षण कर्म में त्रिकोणात्मक कुण्ड में तथा उच्चाटन में वर्तुल कुण्ड में हवन करना चाहिये । मारण कर्म के लिये भी हवन वर्तुल कुण्ड में ही करना चाहिये ।

षट्कर्मणि कुण्डनिर्माणदिशाः

औदीच्यं पौष्टिके कुण्डं वारुणं शान्तिकादिषु ॥4॥
उच्चाटे चानिलं कुण्डं याम्यं च मारणे भवेत् ।

हे देवि ! पौष्टिक कर्म के लिये हवन-कुण्ड का निर्माण मण्डप की उत्तर दिशा में करना चाहिये । शान्तिकर्म में पश्चिम, उच्चाटन में वायव्य तथा मारण कर्म के लिये हवन-कुण्ड दक्षिण दिशा में बनाना चाहिये ।

ब्राह्मणादिजात्यनुसारकुण्डचयनम्

विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद् राज्ञां वर्तुलमिष्यते ॥5॥
वैश्यानामर्धचन्द्रं हि शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम् ।
चतुरस्त्रं च सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ॥6॥

हे उमे ! ब्राह्मणों को चतुरस्त्र, क्षत्रियों के लिये गोल, वैश्यों के लिये अर्धचन्द्रकार तथा शूद्रों के लिये तिकोने कुण्ड के प्रयोग का विधान है। कुछ तान्त्रिकों के अनुसार सभी को चतुरस्त्र कुण्ड का ही प्रयोग करना चाहिये ।

चतुरस्त्रे महेशानि ! सर्वकर्माणि साधयेत् ।
सर्वाधिकारिकं कुण्डं सर्वदं चतुरस्त्रकम् ॥7॥

हे महादेवि ! शान्त्यादि सभी कर्मों में हवन के लिये चतुरस्त्र कुण्ड का ही प्रयोग करना चाहिये। वास्तव में, चतुष्कोण कुण्ड सभी जातियों के साधकों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले शान्ति-पुष्ट्यादि सभी कर्मों में हवन के लिये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ।

गृहादिकरणे हस्तादिमाननियमः

गृहादिकरणे हस्तनियमं कथयामि ते ।
रथादिदोलिका चैव पोतं नाराचमेव च ॥8॥
मानाङ्गुलेन कर्तव्यं नान्येनापि कदाचन ।
मुष्ट्यरत्निप्रमाणानि यत्किञ्चित्कथितानि च ॥9॥

हे पार्वति ! गृहादि के निर्माण में लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई आदि की माप हाथ से करना चाहिये। रथादि, दोला, पोत तथा बाणादि के माप के लिये अँगुलियों को मानक बनाना चाहिये। मुष्टि, अरत्नि आदि कथित मानों का उपयोग नहीं करना चाहिये ।

यजमानस्य कर्तव्यो नान्यस्यापि कदाचन ।
मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्तरि ॥10॥
मानं तद् यजमानस्य विदुषामेष निर्णयः ।

हे पार्वति ! पूर्वोक्त गृहादि की मापक्रिया में यजमान के हाथ और अँगुलियों का ही प्रयोग करना चाहिये । जहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं, वहाँ पैमाइश करने वाले के हाथ और अँगुलियों को मानक बनाया जा सकता है। इस स्थिति में मानकर्ता की अंगुलियों आदि का मान यजमान का ही मान माना जायगा, यह विद्वानों का निर्णय है ।

चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ॥11॥
कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिपर्वणः ।
मध्यस्य दैर्ध्यमानेन मानाङ्गुलमुदाहृतम् ॥12॥

तान्त्रिकों के अनुसार मापक की चौबीस अँगुलियों के बराबर एक हाथ होता है। 'हस्त'

का मानमाप करने वाले अथवा यजमान के दायें हाथ की मध्यमा अँगुली के मध्य वाले पर्व मान (माप) को ही अंगुलिमान कहा जाता है ।

यवानां तण्डुलश्चैवमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ।
अदीर्घायाजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलैः ॥13॥
अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्येष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः ।
कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमंङ्गुलं प्राणवल्लभे ! ॥14॥

हे प्रिये ! आठ यवों या तण्डुलों के बराबर एक अंगुलि का माप होता है, और चौबीस अंगुलियों का एक हाथ माना जाता है । आठ यवों वाले एक अंगुलि माप को उत्तम, सात यवों के माप को मध्यम तथा छह यवों के बराबर एक अंगुलि माप को कनिष्ठ या अधम माना जाता है ।

होतव्यसङ्ख्यानुसारकुण्डमाननियमः

सहस्रे खलुहोतव्ये कुर्यादेककरात्मकम् ।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम् ॥15॥

हे पार्वति ! एक हजार हवन के लिये एक हाथ के कुण्ड का प्रयोग किया जाता है । दस हजार हवन के लिये दो हाथ के कुण्ड का तथा एक लाख वाले हवन के लिये चार हाथ के कुण्ड का उपयोग करना चाहिये ।

षट्करो वेदलक्षन्त्वष्टहस्ते दशलक्षकम् ।
दशहस्ते तु कोटिर्वै हस्तसङ्ख्या व्यवस्थिता ॥16॥

हे देवि ! चार लाख हवन के लिये छः हाथ और दस लाख हवन के लिये आठ हाथ के हवनकुण्ड का विधान है । एक करोड़ हवन के लिये दस हाथ के कुण्ड का विधान है ।

दशहस्तात्परं कुण्डं नास्ति होमो महीतले ।
एकहस्तमिते देवि ! लखमेकं विधीयते ॥17॥
लक्षाणां दशकं यावत् तावद्धस्तेन वर्द्धयेत् ।

हे देवि ! इस धरती पर दस हाथ से अधिक कुण्ड बनाने का विधान नहीं है । हाँ, एक करोड़ होम से अधिक दस लाख तक अधिक हवन के लिये प्रत्येक एक लाख पर कुण्ड की माप एक हाथ बढ़ायी जा सकती है । इससे अधिक नहीं ।

नालमेखलयोर्मध्ये पवित्रास्थापनाय च ॥18॥
यन्त्रं कुर्यात् तथा विद्वान् द्वितीये मेखलोपरि ।

नाल और मेखला के मध्य एक यन्त्र पवित्रास्थापन के लिये और दूसरा मेखला के ऊपर बनाना चाहिये ।

नेत्रवेदाङ्गुलोपेताः कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥19॥
यवद्वयप्रमाणेन नाभिं पृथगुदाहृतम् ।

अन्य कुण्डों में भी प्रत्येक लाख अधिक हवन पर छह अंगुल और दो यव के बराबर माप बढ़ाना चाहिये । कुण्डों में नाभि का निर्माण भी यथाविधि करना चाहिये ।

कुण्डे योनिनिर्माणे नियमः

योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेत् ॥20॥
नाभिक्षेत्रं त्रिधा कृत्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम् ।
बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत् ॥21॥

हे देवि ! योनिकुण्ड में योनि और अब्जकुण्ड में नाभि का निर्माण नहीं करना चाहिये । नाभिभाग को तीन भागों में विभक्त कर मध्यभाग में कर्णिका का निर्माण करना चाहिये । कर्णिका के बाहर कमलपत्राकार आठ पत्रों की रचना करनी चाहिये ।

इन्द्राग्नियमदिक्कुण्डे योनिः सौम्यमुखी स्मृता ।
योनिः पूर्वमुखान्येषु पूर्वैशान्योत्तरा स्मृता ॥22॥

हे देवि ! पूर्व, आग्नेय और दक्षिण में निर्मित कुण्डों में योनि उत्तराभिमुखी होनी चाहिये तथा अन्य दिशाओं वाले कुण्डों में पूर्वाभिमुखी । उत्तर के कुण्ड में योनि पूर्व या ईशानाभिमुखी होनी चाहिये ।

होमे स्थण्डिलनिर्माणनियमः

हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि ।
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥23॥

संक्षिप्त हवन कर्म में वेदी चतुष्कोणीय, 1 हाथ लम्बी, 1 अंगुल ऊँची और चारों ओर समान होनी चाहिये ।

हविदाननियमः

आदाय दक्षिणे पाणौ स्रुवं त्रिमधुरं हविः ।
प्राङ्मुखो वह्निजायन्ते जुहुयान्न्युब्जपाणिना ॥24॥

पूर्व दिशा की ओर मुख कर, दाहिने हाथ में स्रुवा लेकर प्रज्ज्वलित अग्नि के मुख में त्रिमधुरादि हवि का हवन करना चाहिये ।

नमोऽन्तेन नमो दद्यात्स्वाहान्ते द्विठमेव च ।
पूजायामाहुतौ चाऽपि सर्वत्रायं विधिः शिवे ॥25॥

हवन-कर्म में यह नियम है कि 'नमः' अन्त वाले मन्त्रों के अन्त में 'नमः' शब्द का तथा 'स्वाहा' अन्त वाले मन्त्रों में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करते हुए हवन करना चाहिये ।

एवं प्रकारो देवेशि ! कथितो होमनिर्णयः ।
गुह्याद् गुह्यतरो देवि ! सुखमोक्षप्रदो नृणाम् ॥26॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
नवमः पटलः समाप्तः ।



हे देवेश्वरि ! मैंने तुम्हारे समक्ष गोपनीय से गोपनीय और मानवों को इहलोक में सुख तथा अन्त में मोक्षप्रदायक होमविधि और इसके भेदों का निरूपण कर दिया ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृति का नवम पटल समाप्त ।



अथ दशमः पटलः

श्रीदेव्या मन्त्रसिद्धिलक्षणे जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

नमस्यामि नमस्यामि देवदेव ! महेश्वर ! ।
इदानीं कथयेशान ! मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम् ॥1॥

भगवती उमा ने शिव से पूछा—हे महेश्वर! आपको पुनः पुनः नमन । हे ईश्वर ! अब आप मन्त्रसिद्धि का लक्षण बताइये ।

श्रीशिवेन मन्त्रसिद्धये विहिताचारप्रकथनम्

श्रीमहादेव उवाच

पुरश्चर्याविधिं देवि ! इदानीं कथयामि ते ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥2॥

महादेव ने कहा—हे उमे ! पहले मैं तुम्हें पुरश्चरण की विधि बताता हूँ । साधक को चाहिये कि वह पुरश्चया के लिये स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे और पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाय ।

कीलकोपरिभूतभैरवादीनां पूजनम्

जपेदेकाग्रमनसा गायत्रीसंयुतं तथा ।
वेद्यां कीलकमारोप्य पूजयेत्कीलकोपरि ॥3॥

आसन पर बैठकर वह पहले एकाग्र मन से गायत्री का जप करे । जप समाप्त करने के बाद वह वेदी पर कीलक का आरोपण कर उस पर पूजन करे ।

द्वादशाङ्गुलमितं काष्ठमुदुम्बरभवं प्रिये ।
तस्योपरि यजेद् देवि ! विग्रहान् भूतभैरवान् ॥4॥
जयदुर्गां गणेशं च विष्णवीशान् लोकपालकान् ।
ततो भुक्त्वा हविष्यान्नं ततः परदिने जपेत् ॥5॥

वेदी पर स्थापना के लिये लकड़ी 12 अंगुल की और उदुम्बर की होनी चाहिये तथा उस पर भूतों, भैरवों, जयदुर्गा, गणेश, विष्णु, शिव तथा लोकपालों की यथाक्रम यथोचित अर्चना करनी चाहिये ।

दुर्गामन्त्रजापे नियमः

कृतसङ्कल्प एवासौ पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥6॥

भैरवादि की अर्चना के पश्चात् संकल्प करके प्रात:काल से लेकर दोपहर तक भगवती महामाया दुर्गा का मन्त्र जपना चाहिये ।

न्यूनाधिकं न जप्तव्यं देवताभावसिद्धये ।
युगभेदविधानं हि कथयामि शृणुष्व तत् ॥7॥

हे देवि ! स्वयं में देवत्व की सिद्धि के लिये जिस युग में जितनी जपसंख्या का विधान किया गया है, उससे कम या अधिक जप नहीं करना चाहिये ।

सत्ये द्वादशलक्षं तु त्रेतायां त्रिलक्षकम् ।
चतुर्लक्षं द्वापरे च एकलक्षं कलौ जपेत् ॥8॥

हे देवि ! सत्ययुग में 12 लाख, त्रेता में तीन लाख, द्वापर में 4 लाख और कलियुग में केवल 1 लाख जप करने से मन्त्र सिद्धि हो जाता है ।

एवंविधं जपं कृत्वा होमयेज्ज्वलदिन्धने ।
दशांशं परमेशानि ! तद्दशांशं तु तर्पयेत् ॥9॥

उक्त संख्या में जप पूर्ण करके प्रज्ज्वलित अग्नि में जपित मन्त्र का दशांश हवन और हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये ।

तद्दशांशाभिषेकं च ब्राह्मणान् भोजयेत् तथा ।
गुरुवे दक्षिणां दद्याद् विभवस्यानुरूपतः ॥10॥

हे देवि ! तर्पण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मणभोज कराना चाहिये । ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् गुरु को विभवानुसार दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये ।

एतज्जपं महेशानि ! मन्त्रः सिध्यति निश्चितम् ।
सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः ॥11॥

हे शिवे ! मन्त्र के जप का नियम तो यही है । इस प्रकार के जप से मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाता है और जिस साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है, वह साक्षात् शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं ।

सिद्ध्यप्राप्तौ पुनः पुरश्चर्यानियमः

सम्यगनुष्ठिते मन्त्रे यदि सिद्धिर्न जायते ।
पुनस्तेनैव कर्तव्यं साधकैर्मन्त्रसिद्धये ॥12॥

यदि उक्त विधि से जप करने पर मन्त्र सिद्ध नहीं होता, तो मन्त्र की सिद्धि के लिये पुन: इसी विधि से मन्त्र का अनुष्ठान करना चाहिये ।

ततो यदि न सिध्येत तदुपायं शृणु प्रिये !।
श्रीबीजपुटितं कृत्वा जपेदयुतमानतः ॥13॥

हे देवि ! उक्त विधि से दुबारा पुरश्चर्या से भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता, तो भी उपाय है । वह उपाय मैं बताता हूँ, ध्यान से सुनो । तब श्रीबीज पुटित मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये ।

अथवा परमेशानि ! प्रणवेन पुटीकृतम् ।
जपेद् दशसहस्त्रं तु ततः सिद्धो भवेन्नरः ॥14॥
सिद्धे मनौ ततः कुर्यात्प्रयोगं परमेश्वरि ! ।

हे परमेश्वरि ! इसके अतिरिक्त भी एक उपाय है । वह यह कि प्रणव को पुटित कर मन्त्र का दस हजार जप किया जाय । इससे मन्त्र अवश्य ही सिद्ध हो जाता है । मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर ही विभिन्न उद्देश्यों के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये ।

इति ते कथितं देवि ! गुह्याद् गुह्यतमं प्रिये ! ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणसंशयसम्भवे ॥15॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
दशमः पटलः समाप्तः ।



हे देवि ! मैंने तुम्हें मन्त्रसिद्धि की यह परम गोपनीय विधि बता दी है । लेकिन, तुम प्राणों पर संकट आने पर भी इसे किसी अनधिकारी व्यक्ति को न बताना ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का दशम पटल समाप्त ।



अथैकादशः पटलः

श्रीशिवेन सिद्धिप्राप्तये भावस्यानिवार्यतानिरूपणम्

श्रीमहादेव उवाच

शृणु प्रिये ! प्रवक्ष्यामि योगसाधनमुत्तमम् ।
विना भावेन देवेशि ! न सिध्येत कदाचन ॥1॥

शिव ने कहा—हे माहेश्वरि ! सुनो, मैं योग का एक ऐसा उत्तम साधन बताता हूँ, जिसे अपनाये बिना मन्त्रादि की सिद्धि कभी नहीं होती । वह साधन है भाव ।

भावत्रयानुसारेण सिद्धिप्राप्तिः

त्रिधा भावो महेशानि ! साधकानां सुखप्रदः ।
परं मुक्तिमवाप्नोति भावस्थः साधकाग्रणीः ॥2॥

हे देवि ! शाक्त और शैव साधना में तीन भाव होते हैं—पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव । इन भावों में स्थित होकर साधना करने से साधक इहलोक में सुख तथा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है ।

पशुभावस्थितो मन्त्रो बहुक्लेशेन सिध्यति ।
दिव्यभावयुतो देवि ! साक्षाद् गङ्गाधरः स्वयम् ॥3॥
वीरभावस्थितो मन्त्रः कलावाशु सुसिध्यति ।

लेकिन, पशुभाव से मन्त्र की साधना बहुत कठिन है । पशुभाव से साधना करने से दीर्घकाल में मन्त्र सिद्ध होता है । किन्तु, जो साधक दिव्यभाव में स्थित होकर साधना करता है, वह तो साक्षात् शिव ही है । हे देवि ! कलियुग में वीरभाव से की गयी मन्त्रसाधना शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है ।

वीरभावे साधनानियमः

दिवा हविष्यं भोक्तव्यं पूरणे श्रवणादिकम् ॥4॥
रात्रौ शक्तियुक्तो मन्त्री पञ्चमेन प्रपूजयेत् ।
लताप्रधानं देवेशि ! साधकस्य सुनिश्चितम् ॥5॥

इस साधना में साधक को दिन में हविष्य का भोजन करना चाहिये तथा रात्रि में अपनी शक्ति के साथ पंचमकारों से भगवती की अर्चना करनी चाहिये । हे देवि ! इस भाव की अर्चना में शक्ति अर्थात् लता की प्रधानता होती है ।

मातृभावेन सम्पूज्य जपेदेकाग्रमानसः ।
कालीवदपरां विद्यां कालीवत्पूजयेत्सदा ॥6॥

हे देवि ! दिव्य साधक को चाहिये कि वह शक्ति का पूजन मातृभाव से करे । हे भगवति ! दिव्यभाव से पूजा में चाहिये कि साधक दुर्गा तथा तारा नामक देवियों को काली का ही रूप मानकर उनकी पूजा भी सर्वदा काली की भाँति ही करे ।

कालीदुर्गातारास्वद्वैतप्रतिपादनम्

कालीवत्साधयेद् देवीं कालीवच्चिन्तयेत्सदा ।
सा काली सा महादुर्गा या दुर्गा सैव तारिणी ॥7॥

महामाया भगवती की अर्चना काली की ही भाँति करनी चाहिये । महामाया ही काली हैं, वे ही महादुर्गा हैं । वे ही दुर्गा और तारिणी हैं ।

दुर्गायाः कालिकायाश्च ध्यानं सममिहोच्यते ।
अभेदेन यजेद् देवीं सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥8॥

महामाया की इस साधना में ध्यान दुर्गा और काली के स्वरूप का ही किया जाता है । अणिमादि अष्टसिद्धियों की प्राप्ति के लिये इसी विधि से अर्चना करनी चाहिये ।

अन्तर्योगबहिर्योगरतो मन्त्री प्रपूजयेत् ।
पूर्वोक्तदूषितो मन्त्रः सर्वं सिध्यति निश्चितम् ॥9॥

योगी साधक को चाहिये कि वह देवी की पूर्वोक्त विधि से आन्तरिक तथा बाह्य उपासना करे । ऐसा करने से किसी भी कारण सिद्ध न हो रहा मन्त्र दोषरहित शुद्ध हो जाता है ।

दुर्गामन्त्रजापे अधिकारितानिर्णयः

कुलीनः सर्वमन्त्राणां जापकः परिकीर्तितः ।
कुलीनः सर्वमन्त्राणामधिकारीति गीयते ॥10॥
कुलीनः परदेवीनां सदा प्रियतमः प्रिये ! ।

भगवती दुर्गा के सभी मन्त्रों का जापक केवल कुलीन ही हो सकता है, कुलीन ही सभी मन्त्रों के जप का अधिकारी है । कुलीन साधक दुर्गा तथा तारिणी आदि परा शक्तियों का प्रिय होता है ।

कुलाचारे लतासाधनविधिः

कुलाचारात्परं नास्ति कलौ देवि ! सुसिद्धये ॥11॥
लतायाः साधनं वक्ष्ये शृणुष्व हरवल्लभे! ।
शतं कोशे शतं भाले शतं सिन्दूरमण्डले ॥12॥

स्तनद्वन्द्वे शतद्वन्द्वं शतं नाभौ महेश्वरि! ।
शत योनौ महेशानि ! उत्थाय च शतत्रयम् ॥13॥
एवं दशशते जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

हे शिवप्रिये ! अब मैं लतासाधन की विधि बताता हूँ, ध्यान से सुनो । कलियुग में कुलाचार साधन से बड़ी कोई अन्य साधना नहीं है । पूर्वोक्त विशेषताओं वाली किसी युवा लता को चक्रपूजा के स्थल पर लाकर उसे साक्षात् भगवतीरूप मानते हुए उसके ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श कर सौ बार, ललाट का स्पर्श कर सौ बार, सीमन्त का स्पर्श कर सौ बार, सौ-सौ बार दोनों उरोजों का स्पर्श कर, सौ बार नाभि का स्पर्श कर, सौ बार योनि का स्पर्श करके उसे खड़ी करके उसके समस्त शरीर का स्पर्श करते हुए तीन सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिये । इस प्रकार एक हजार बार जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ।

लतासाधनस्य द्वितीयविधिः

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि साधनं भुवि दुर्लभम् ॥14॥
रजोऽवस्थां समानीय तत्तनौ स्वेष्टदेवताम् ।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिने प्रजपेन्मनुम् ॥15॥

हे माहेश्वरि ! लतासाधन की एक अन्य विधि सुनो, जो पृथ्वी पर दुर्लभ है । पूर्वोक्त गुणों से युक्त किसी रजस्वला लता को लाकर उसे अपनी इष्ट देवता भगवती का साक्षात् स्वरूप मानते हुए तीन दिनों तक उक्त विधि से उसे अर्चित करना चाहिये ।

शतत्रयं च षट्त्रिंशदधिकं प्रत्यहं जपेत् ।
शवसाधनसाहस्त्रं फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥16॥

तदनन्तर उसका स्पर्श करके प्रतिदिन 336 बार मन्त्र का जप करना चाहिये । हे देवि ! इस साधना से साधक को शव-साधना से भी हजार गुना अधिक फल प्राप्त होता है ।

अथान्यत्साधनं वक्ष्ये सावधानाऽवधारय ।
परकीयलताचक्रे सम्पूज्य स्वेष्टदेवताम् ॥17॥
अष्टोत्तरशतं पूर्वं चतुर्वक्त्रे जपेद् बुधः ।
ततस्तां नवभिः पुष्पैर्यजेदष्टोत्तरं शतम् ॥18॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियः कविः ।
षोडशाहेन च भवेत्सत्यं सत्यं न संशयः ॥19॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! अब मैं तुम्हें लता साधन की दूसरी विधि बताता हूँ, सावधानी से सुनो । परकीय लता के चक्र में अर्थात् पराई स्त्री की योनि में अपनी इष्ट भगवती

की पूजा करके उसके मुख का अवलोकन करते हुए चार बार 108-108 मन्त्र का जप पूर्ण करके नौ पुष्पों से 108 बार हवन करे । इसके बाद पूर्णाहुति देकर 108 बार पुनः मन्त्र का जाप करे । ऐसा करने से साधक सोलह दिनों में ही बलवान्, वक्ता, सभी नारियों का प्रिय और महान् कवि बन जाता है, इसमें संशय नहीं ।

लताप्रधानसमयाचारमहिमा

समयाचारनिरतः सदा तद्गतमानसः ।
किं तस्य पापपुण्यानि येन देवी समर्चिता ॥20॥

हे देवि ! भगवती महाकाली का ध्यान करते हुए इस प्रकार की समयाचार साधना में संलग्न जिस साधक ने भगवती की साधना सम्पन्न की, उसका धरती के पाप-पुण्यों से क्या लेना-देना ?

केवलं निशि जापेन मन्त्रः सिध्यति निश्चितम् ।
वृथा न गमयेत्कालं दुरालापादिना सुधीः ॥21॥ .

हे देवि ! रात्रि में जपने से ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है । इसलिये बकवास में समय नष्ट न कर रात्रि में मन्त्र का जप करना चाहिये ।

गमयेत्साधकः श्रेष्ठः कवचादिप्रपाठतः ।
परोपकारनिरतः सदाह्लादमनाः सुधीः ॥22॥

भगवती के श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि वह जप काल के अतिरिक्त अपना समय निरन्तर परोपकार में निरत रहते हुए देवी के कवचादि का पाठ करते हुए ही व्यतीत करे ।

गोपयेत्सततं देवि ! कुलमार्गं विशेषतः ।
इदानीं शृणु देवेशि ! पूजाधारं विशेषतः ॥23॥

हे देवेश्वरि ! साधक को चाहिये कि वह कुलपूजा की इस विधि को गोपनीय बनाये रखे । सुनो, अब मैं भगवती के पूजाधारों का उल्लेख करा हूँ ।

पूजाधारनिरूपणम्

स्नानयन्त्रे शिलायन्त्रे बिल्वमूले घटोपरि ।
लिङ्गे योनौ महापीठे शून्यागारे चतुष्पथे ॥24॥
कुट्टिनीगृहमध्ये च कदलीमण्डपे तथा ।
पुष्पयुक्तभगे देवि ! गणिकागेहमध्यतः ॥25॥
महारण्ये प्रान्तरे च शवे च शक्तिसङ्गमे ।

हे देवि ! भगवती महामाया की अर्चना स्नान करने के यन्त्र पर, शिलायन्त्र पर, बिल्ववृक्ष के नीचे, कलश पर, लिंग पर, महापीठ योनि पर, निर्जन भवन में, चौराहे पर,

कुट्टनी के घर में, कदलीमण्डप में, रजस्वला के भग में, वेश्या के घर में, महा अरण्य में, नितान्त एकान्त में, शव पर अथवा शक्तिसंगम स्थल पर करनी चाहिये ।

पञ्चानन्दपरो भूत्वा साधयेत्सकलेप्सितान् ॥26॥
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
नूनं तद्गृहमागत्यकुबेरो दीयते वसु ॥27॥

भगवती के साधक को चाहिये कि वह पंचतत्त्वों के सेवन से प्राप्त आनन्द में मग्न रहते हुए उनकी साधना करे । इस साधना से उसे वह सब कुछ प्राप्त होगा, जो वह चाहता है । जहाँ तक धन का प्रश्न है, स्वयं कुबेर उसके घर आकर धन प्रदान करेगा ।

कुलाचारसाधनातः प्राप्यसिद्धयः

वातस्तम्भं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः ।
वह्नेः शैत्यं करोत्येव महायाप्रसादतः ॥28॥
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रैलोक्ये हि च शङ्करि ! ।

हे देवि ! महामाया की इस साधना से प्राप्त उनकी कृपा से साधक को वह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह वायु की गति अवरुद्ध कर सकता है, जल का प्रवाह रोक सकता है, सूर्य की गति स्तम्भित कर सकता है, अग्नि को भी शीतल कर सकता है । हे शिवानि ! भगवती के साधक के लिये संसार में कुछ असाध्य नहीं है ।

योनिकुण्डे कृते होमे साक्षाद् गङ्गाधरो भवेत् ॥29॥
पूजास्थाने कामबीजं लिखित्वा शिवयोजनात् ।

हे देवि ! योनिकुण्ड का निर्माण कर उसमें कामबीज 'क्लीं' लिख कर उसमें भगवती का पूजन और उसमें विहित विधि से रेतस् की आहुति देने वाला साधक साक्षात् शिव बन जाता है ।

कवचपाठफलानि

कवचं प्रपठेद्यस्तु शतावृत्तं सुरेश्वरि ! ॥30॥
वाग्मी भवति मासेन सत्यं सत्यं न संशयः ।
अचिराल्लभते देवि ! कवितां सुखसाधिनीम् ॥31॥
मोदते सर्वलोकेषु शिववत् परमेश्वरि ! ।

हे देवि ! जो साधक कवच का 100 बार पाठ करता है, वह एक मास के भीतर ही महान् वक्ता बन जाता है । उसे शीघ्र ही सुखकारी कवित्व-शक्ति प्राप्त हो जाती है और वह संसार में सर्वत्र शिव की भाँति पूज्य और सम्मानित होता है ।

इति ते कथितं देवि ! सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥32॥
प्रकाशितं तव स्नेहान्न प्रकाश्यं कदाचन ।

हे देवि ! मैंने गुप्तसाधना की जो यह विधि तुम्हें बतायी है, वह तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही बतायी है, तुम इसे किसी अन्य को नहीं बताना ।

कुलाचारे स्त्रीमहत्त्वम्

दुर्गामन्त्ररतां पुंसां योषिद् भूतिविवर्धिनी ॥33॥
सा चेद् भवति संक्रुद्धा धनमायुश्च नाशयेत् ।

हे देवि ! दुर्गामन्त्र की साधना में रत साधकों के लिये कामिनियाँ समस्त विभूतियों में वृद्धि करने वाली होती हैं । लेकिन, यदि वे क्रुद्ध हो जायें, तो उसके धन और आयु के नाश का कारण भी बन जाती हैं ।

वृथान्यासो वृथा पूजा वृथा जपो वृथा स्तुतिः ॥34॥
वृथा सदक्षिणो होमो यद्यप्रियकरः स्त्रियः ।

हे शिवे ! स्त्रियों का अप्रिय करने वाले साधक का न्यास, पूजा, जप, स्तुति, दक्षिणासहित किया गया हवनकर्म सब कुछ व्यर्थ है ।

बुद्धिर्बलं यशो रूपमायुर्वित्तं सुतादयः ॥35॥
तस्य नश्यन्ति सर्वाणि योषिन्निन्दापरस्य च ।

जो व्यक्ति शक्तिरूपा स्त्रियों की निन्दा करता है उसकी बुद्धि, बल, यश, रूप, आयु, धन तथा पुत्रादि सब नष्ट हो जाता है ।

मातापित्रोर्वरं त्यागस्त्याज्यौ शम्भुस्तथा हरिः ॥36॥
वरं देवी परित्याज्या नैव त्याज्या स्वकामिनी ।

हे देवि ! भले ही अपने माता-पिता, शंकर-विष्णु यहाँ तक कि भगवती दुर्गा को त्याग देना पड़े, अपनी पत्नी का त्याग कभी भी नहीं करना चाहिये ।

वरं जनमुखान्निन्दा वरं वा गर्हितं यशः ॥37॥
वरं प्राणाः परित्याज्या न कुर्यादप्रियं स्त्रियाः ।

हे देवि ! भले ही लोगों की निन्दा का पात्र बनना पड़े, अथवा अपयश का भागी बनना पड़े, या प्राणों का त्याग करना पड़े, स्त्रियों का बुरा कभी नहीं करना चाहिये ।

न धाता नाच्युतः शम्भुर्न च वामा सनातनी ॥38॥
योषिदप्रियकर्तारं रक्षितुं च क्षमो भवेत् ।

हे देवि ! स्त्रियों का अपकार करने वाले व्यक्ति की रक्षा ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा सनातन नारी भगवती दुर्गा भी नहीं कर सकतीं ।

दुर्गार्चकाणां पातकैरसम्पृक्तिः

दुर्गार्चनपरो देवि ! महापातकसङ्कैः ।
दोषैर्न लिप्यते देवि ! पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥40॥

इति श्रीमायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे
एकादशः पटलः समाप्तः ।



हे देवि ! भगवती दुर्गा की साधना करने वाला साधक महापातकों के सम्पर्क से उत्पन्न दोषों से मुक्त रहता है । महापातकों से वह उसी प्रकार अलिप्त रहता है, जैसे जल में स्थित कमलपत्र जल से असम्पृक्त रहता है ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का एकादश पटल समाप्त ।



अथ द्वादशः पटलः

दुर्गाकवचपाठमहिमा

श्रीमहादेव उवाच

शृणु प्रिये ! प्रवक्ष्यामि कवचं भुवि दुर्लभम् ।
यस्यापि पठनाद् देवि ! सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥1॥

श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि ! सुनो ! मैं भगवती दुर्गा के उस कवच का निरूपण कर रहा हूँ, जिसके पठन-मात्र से साधक सभी योगों का स्वामी बन सकता है ।

इन्द्रोऽपि धारणाद् यस्य प्राप्नुयाद् राज्यमुत्तमम् ।
कृष्णोऽपि पठितं देवि ! भूतापमारणाय च ॥2॥
शुकदेवोऽपि यद्धृत्वा सर्वयोगविशारदः ।

हे देवि ! इस कवच को धारण करके ही देवराज इन्द्र ने स्वर्ग का महान् राज्य प्राप्त किया था और कृष्ण पाञ्चभौतिक संसार पर विजय प्राप्त कर योगेश्वर बने थे । इस कवच को धारण करने से शुकदेव भी सभी प्रकार के योगों में पारंगत हो गये थे ।

कवचपाठविधिः

तस्य श्रीभुवनेश्वरी कवचस्य महेश्वरि ! ॥3॥
सर्वार्थे विनियोगः स्यात् प्राणायामं ततश्चरेत् ।

हे माहेश्वरि ! जिस कवच का मैं उल्लेख कर रहा हूँ, उसका विनियोग समस्त प्रयोजनों के लिये होता है । कवच के पाठ के समय सर्वप्रथम अभिलषित में विनियोग करने के बाद प्राणायाम और तब भावनासहित वक्ष्यमाण कवच का पाठ करना चाहिये ।

मायाकवचम्

मायाबीजं शिरः पातु कामबीजं तु बालकम् ॥4॥
दुर्गाबीजं नेत्रयुग्मं नासिकां मन्त्रदा मनुः ।

हे देवि ! कवच-पाठक प्रार्थना करे कि 'मायाबीज 'ह्रीं' मेरे सिर की रक्षा करे तथा कामबीज 'क्लीं' मेरी अलकों की रक्षा करे । दुर्गाबीज 'दुं' मेरे दोनों नयनों की रक्षा करे और नासिका की रक्षा समस्त मन्त्रों की प्रदात्री वाक्स्वरूपा पराशक्ति का स्वकीय मन्त्र 'ऐं' करे ।

वदने दक्षिणाबीजं ताराबीजं तु गण्डयोः ॥5॥
षोडशी मे गलं पातु कण्ठं मे भैरवीमनुः ।

मेरे मुख की रक्षा दक्षिणाकाली बीज 'क्रीं' और कपोलों की रक्षा ताराबीज 'स्त्रीं' करे। षोडशीबीज 'श्रीं' मेरे गले की रक्षा करे और भैरवीबीज 'ह्रीं' मेरे कण्ठ की ।

हृदयं छिन्नमस्ता च उदरं बगला तथा ॥6॥
धूमावती कटिं पातु मातङ्गी पातु सर्वतः ।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु सर्वविद्यास्वरूपिणी ॥7॥

मेरे हृदय की रक्षा छिन्नमस्ता करे और उदर की रक्षा बगला करे । धूमावती मेरी कटि को बचाये और महाविद्यास्वरूपिणी मातंगी सब ओर से मेरी रक्षा करे ।

कवचपाठफलानि

इत्येतत्कवचं देवि ! पठनाद् धारणादिकम् ।
कृत्वा तु साधकः श्रेष्ठो विद्यावान् धनवान् भवेत् ॥8॥

हे देवि ! यह मायादेवी का कवच मैंने तुम्हें बता दिया । इस कवच को पढ़ने अथवा धारण करने से साधक विद्यावान् और धनवान् बनता है ।

पुत्रपौत्रादिसम्पन्नो ह्यन्ते याति परां गतिम् ।
इदं तु कवचं गुह्यं साधकाय प्रकाशयेत् ॥9॥
न दद्याद् भ्रष्टमर्त्त्याय परदेवरताय च ।

इस कवच को पढ़ने अथवा धारण करने वाला साधक जीवनभर पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न बना रहता है तथा मृत्यु के बाद परमपद मोक्ष को प्राप्त होता है । हे देवि ! यह कवच गोपनीय है, फिर भी इसे साधक को दिया जा सकता है, लेकिन, दुर्गा के अतिरिक्त अन्य देवता की साधना करने वाले और आचरण से भ्रष्ट व्यक्ति को कभी नहीं देना चाहिये ।

मायातन्त्रस्य महिमा

इदं तन्त्रं महेशानि ! त्रिषु लोकेषु गोपितम् ॥10॥
सर्वसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ।
कल्पद्रुमसमं ज्ञेयं पूजयेत् श्रियमाप्नुयात् ॥11॥

हे महेश्वरि ! जिस मायातन्त्र का निर्वचन मैंने तुम्हारे समक्ष किया है, वह अब तक त्रिलोकी में गुप्त रहा है । इसके पठन तथा धारण से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इसके पठन और धारण से महापातकों का भी विनाश हो जाता है । इसे साक्षात् कल्पवृक्ष मानते हुए इसकी अर्चना करके समृद्धि प्राप्त करनी चाहिये ।

पठनाद् धारणात् सर्वं पापं क्षयति निश्चितम् ।
विवादे जयमाप्नोति धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥
यं यं वाञ्छति तत्सर्वं भवत्येव न संशयः ॥12॥

इति मायातन्त्रे श्रीशिवपार्वतीसंवादे द्वादशः पटलः
समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।



श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! इस कवच के पठन और धारण करने से निश्चित रूप से समस्त पातकों का विनाश होता है । पाठक की किसी भी विवाद में जय होती है, धन में वह कुबेर के समान हो जाता है । और साधक जो भी चाहता है, वह उसे प्राप्त होता है । इसमें संशय नहीं ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमायातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का द्वादश पटल समाप्त ।

समाप्तमिदं मायातन्त्रम् ।



(3)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

गुप्तसाधनतन्त्रम्

•

विवृतिकार: सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

गुप्तसाधनतन्त्र का सार

रत्नों से सुशोभित कैलास पर्वत पर भगवती पार्वती और भगवान् श्रीशिव के परिसंवाद के रूप में प्रस्तुत द्वादश पटलात्मक गुह्यसाधनतन्त्र के **प्रथम पटल** में पार्वती ने महादेव से प्रश्न किया कि वे अतीत में कई बार उनसे कुलाचार का उल्लेख कर चुके हैं, लेकिन कभी खुलकर चर्चा न करके इसे कुछ गोपनीय ही क्यों बनाये रखा ? शिव ने कहा कि—'तुमसे छिपाऊँगा क्यों ? कुलाचार सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है । इसे अज्ञानियों से गोपनीय बनाये रखना चाहिये । वेदों, शास्त्रों और पुराणों में जो कुछ कहा गया है, कुलाचार उन सबका सारभूत दुर्लभ तत्त्व है । कुलाचार के महत्त्व का वर्णन सम्भव नहीं, फिर भी इसका संक्षिप्त निरूपण करता हूँ ।'

इस पटल में शिव ने गिरिजा से कहा है कि यह सारा विश्व शक्ति से उत्पन्न हुआ है, शक्ति में स्थित है और अन्ततः शक्ति में ही विलीन हो जाता है । साधक को चाहिये कि वह जिस स्थिति में रहे, शक्ति का आश्रय लेकर रहे, क्योंकि यह शक्ति साधक का इस लोक में सर्वदा कल्याण ही करती है। शक्ति की उपासना करने वाला इस लोक में महान् भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त करता है तथा मृत्यु होने पर समस्त पापसमूहों का हरण करने वाली 'हरि' नामक शक्ति में ही लीन हो जाता है ।

श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि प्रत्यक्ष भौतिक साधना में कुलशक्ति अर्थात् कुलांगना की अर्चना करनी चाहिये । शक्तिपूजन के लिये नटी, कापालिनी, वेश्या, रजकी, नापिता, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपकन्या तथा मालाकार की कन्या ये नौ कन्याएँ, यदि ये विदुषी हों और तन्त्रशास्त्र में वर्णित कुछ विशिष्ट लक्षणों से युक्त हों, यौवन से सम्पन्न हों, शीलवती हों और सौभाग्य के लक्षणों वाली हों तो वे कुलांगना के रूप में ग्राह्य हैं ।

द्वितीय पटल में शक्तिपूजा में श्रीगुरु के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए पूजा में गुरु की अनिवार्यता का कथन किया गया है । श्रीगुरु के ध्यान के लिये उनके स्वरूप का निर्वचन करते हुए शिव ने बताया है कि श्रीगुरु के स्वरूप का निर्वचन केवल कुलीन के समक्ष ही करना चाहिये, पाशबद्ध पशु के सामने कभी भी नहीं ।

इस पटल में 'कुल', 'अकुल' और 'कुलीन' शब्दों का अर्थ समझाते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि 'कुल' का अर्थ है 'शक्ति' और 'अकुल' का 'शिव' । जो व्यक्ति सर्वदा कुल अर्थात् शक्ति में लीन रहता है, उसे 'कुलीन' कहा जाता है ।

शक्तिपूजन की विधि की चर्चा करते हुए शिव ने बताया है कि प्रथम कुलगुरुओं को नमन करके शरद् के चन्द्रमा के समान निर्मल और शान्त, शरद् के प्रफुल्लित कमल के सदृश आयत नयन, मन्द-मन्द मुस्कान से सुशोभित ओष्ठ, शरद् के चन्दमा के समान

मुखमण्डल, दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण किये, दिव्य सुगन्धित लेपों से लिप्तांग, वामभाग में सुन्दर और रक्तवर्ण की प्रेमाभिसिक्त शक्ति से युक्त, वर और अभय मुद्राओं से सुशोभित करकमलों वाले तथा अन्य सभी शुभ लक्षणों से युक्त श्रीगुरु का ध्यान अपने सहस्रार पद्म में करना चाहिये। उन्होंने पार्वती को चेताया कि श्रीगुरु का यह स्वरूप गोपनीय है। इसका प्रकाशन किसी के सामने नहीं करना चाहिये।

तन्त्रों में संकेतित एवं गोपनीय श्रीगुरु के स्वरूप के ध्यान के बारे में जान लेने के बाद पार्वती ने 'स्त्रीगुरु के बारे में अधिक जानने के लिये शिव से कहा कि उन्होंने सुन रखा है कि 'स्त्रीगुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा अत्यन्त शुभ और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है, और स्त्रीगुरु की प्राप्ति अनेक जन्मों के पुण्यकर्मों के उदय होने पर ही होती है। इसलिये ऐसे महिमाशाली स्त्रीगुरु का ध्यान किस रूप में किया जाये, यह भी आप मुझे बताइये।'

पार्वती की इस जिज्ञासा पर शिव ने उन्हें बताया कि 'स्त्रीगुरु' का ध्यान किंजल्क से सुशोभित सहस्रार नामक महापद्म में करना चाहिये। ध्यान के समय साधक को चिन्तन करना चाहिये कि स्त्रीगुरु के नेत्र खिले हुए कमलपुष्प की पंखुड़ियों के समान विशाल हैं। उनके उरोज सटे हुए तथा सम्पुष्ट हैं। वह सर्वतोमुखी और सर्वकालीन हैं। वे कल्याणमयी तथा सभी प्राणियों की गुरु हैं। उनका वर्ण पद्मराग मणि की भाँति सुन्दर है। वे लाल रंग के वस्त्रों से सुशोभित हैं। उनकी कलाइयों में पद्मराग मणि के कंकण और पैरों में रत्नजड़ित नूपुर हैं। शरद् के चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण उनका मुखमण्डल कुण्डलों से उद्भासित है। वे अपने पति श्रीशिव के वाम भाग में स्थित हैं। वर और अभय मुद्राओं वाले उनके हाथों में कमल सुशोभित हो रहे हैं। शिव ने कहा कि स्त्रीगुरु का यह सर्वोत्तम स्वरूप गोपनीय है।

तृतीय पटल में पार्वती का प्रश्न शक्ति की पंचांगोपासना और इससे सम्बन्धित रहस्यात्मक पुरश्चरण के सम्बन्ध में है। शिव ने पार्वती को बताया कि रात और दिन के भेदानुसार विहित शक्तिमन्त्र का निर्धारित संख्या में जप करना चाहिये। लेकिन, न्यून या अधिक संख्या में जप करने में भी कोई दोष नहीं है। शक्ति की साधना पंचाचार विधि के अनुसार करना चाहिये।

शिव ने कहा कि पंचाचार में साधक को अधिकार है कि वह अपनी रुचि और श्रद्धा के अनुसार शक्ति की साधना करे, लेकिन कुछ सामान्य नियमों और विधियों का अनुपालन भी उसे अवश्य करना चाहिये। विधि की चर्चा करते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि प्रातः शक्ति की षोडशोपचार अर्चना के पश्चात् जप की क्रिया आरम्भ करनी चाहिये। इसके पश्चात् सायंकालीन सन्ध्या सम्पादित करने के बाद स्वेच्छा से भोजनादि करना चाहिये। सायंकालीन भोजन में यथारुचि मत्स्यादि पंचद्रव्यों, हविष्यान्न, शाक और खिचड़ी-दलिया आदि भोजन करना चाहिये तथा भोजन के बाद पान का भी सेवन करना चाहिये।

रात्रि का भोजन कर रात्रि का प्रथम प्रहर बीत जाने पर तृतीय प्रहर की समाप्ति पर्यन्त रात्रिकालीन जप करना चाहिये। जप शक्ति को अपनी बाईं ओर बैठा कर ही करना चाहिये।

क्योंकि शक्तियुक्त जप से ही मन्त्र सिद्ध होता है, यदि शक्ति साथ न हो तो मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता । कुलशक्ति को अपनी बाईं ओर स्थापित किये बिना मन्त्र का जप करना पामरता है, ऐसे जप से मन्त्र सिद्ध नहीं होता । जप पूर्ण हो जाने पर भगवती का पूजन कर यथा विभव उदारमन से कुमारीपूजन और 108 ब्राह्मणों को भोजन कराके स्वयं भोजन कर प्रिय और मूल्यवान् वस्तुएँ गुरु को दक्षिणा के रूप में देनी चाहिये । गुरु के सन्तुष्ट होने से संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो साधक को अलभ्य हो । इस विधि से साधना करने से सिद्धि अवश्य मिलती है । सिद्धिप्राप्त साधक भैरव की भाँति निर्द्वन्द्व और निर्भीक होकर अपना सांसारिक कार्य सम्पन्न करता है ।

चतुर्थ पटल में देवाधिदेव शिव ने साधना का फल शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने का उपाय बताते हुए पार्वती से कहा कि यह साधन गुप्त है, लेकिन वे पार्वती के प्रति असीम प्रेम के कारण उसका उद्‌घाटन कर रहे हैं ।

उन्होंने बताया कि इस गुप्त साधना के लिये दीक्षित नवयौवना शक्ति की आवश्यकता होती है, चाहे वह शक्ति स्वकीया हो या परकीया, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । साधक को चाहिये कि वह ऐसी शक्ति को प्राप्त करे जो घृणा तथा लज्जा आदि पाशों से मुक्त और पूर्ण स्वस्थ हो । ऐसी शक्ति उपलब्ध होने पर वह उसे साधना-स्थल पर लाकर अर्घ्यपाद्यादिकों से सत्कृत कर विधिपूर्वक पंचाचार से उसकी अर्चना करे ।

पंचाचार साधना में सर्वाधिक गोपनीय पंचम-साधना 'मैथुन' की विधि को उद्‌घाटित करते हुए शिव ने कहा कि चयनित शक्ति को आसन पर आसीन कर उसके सिर का स्पर्श करते हुए सौ बार, मस्तक का स्पर्श कर सौ बार, सीमन्त का स्पर्श कर सौ बार, मुख का स्पर्श कर सौ बार, कण्ठ का स्पर्श कर सौ बार, हृदयस्थल का स्पर्श करते हुए सौ बार, स्तनयुगलों में से प्रत्येक का स्पर्श कर सौ-सौ बार, नाभि का स्पर्श कर सौ बार तथा योनिपीठ का स्पर्श करते हुए सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिये ।

इस प्रकार एक हजार बार मन्त्र के जप से पूज्य शक्ति को अभिमन्त्रित कर उसे भगवती का तथा स्वयं को शिव का साक्षात्स्वरूप मानते हुए 'ओं नमः शिवाय' का जप करते हुए स्वकीय लिंग का षोडशोपचार पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् शक्ति के मुख में स्वयं सुवासित ताम्बूल देकर उसकी अनुमति से उसकी जननेन्द्रिय में अपनी जननेन्द्रिय प्रविष्ट करके पुनः मन्त्र का एक हजार अथवा सौ बार जप करना चाहिये, इससे कम नहीं ।

जप पूर्ण होने पर संयुक्तावस्था में ही 'धर्माधर्महविर्दीते आत्माग्नौ मनसा स्त्रुचा सुषुम्नावर्त्मना नित्यम् अक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा' मन्त्र से जप का दशांश हवन तथा 'प्रकाशाकान्रतु हस्ताभ्याम् अवलम्ब्योन्मनीस्त्रुचा धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा' मन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिये । शुक्र के उत्सर्जन के समय (विहित मुद्राओं के माध्यम से उसे ऊर्ध्वारोही कर सहस्रार में ले जाकर वहाँ स्थित) भगवती कुलदेवी को समर्पित कर देना चाहिये । ऐसा करने पर निश्चितरूप से मन्त्र की सिद्धि होती है ।

इस विधि से भगवती की उपासना करने वाला साधक बल में इन्द्र के समान दुर्जय और शत्रुओं का विनाश करने वाला, रमणियों में कामदेव के समान तथा शत्रुओं के लिये काल के समान हो जाता है । शिव ने कहा इस प्रकार की साधना से साधक अणिमादि आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त करके सदाशिव का ही साक्षात् रूप हो जाता है ।

पंचम पटल में मासादि-पुरश्चरण के लिये प्रत्येक मास में मन्त्र के जप की संख्या में पार्वती की जिज्ञासा तथा शिव के द्वारा समाधान का निरूपण है । यहाँ शिव ने बताया कि प्रथम मास में मन्त्र का जप छह लाख, द्वितीय मास में सूर्यसंख्या के बराबर अर्थात् बारह लाख, तीसरे महीने में छिद्रयुग्म अर्थात् 18 लाख, चौथे महीने में 24 लाख तथा पाँचवें महीने में 30 लाख, छठे महीने में 36 लाख, सातवें महीने में 42 लाख, आठवें मास में 48 लाख, नौवें महीने में 54 लाख, दसवें महीने में साठ लाख, ग्यारहवें मास में 66 लाख तथा बारहवें मास में 100 लाख जप करना चाहिये । इस विधि से जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । यहाँ शिव ने यह भी कहा कि इस पुरस्क्रिया में जप, शक्तिपूजा, कुमारीपूजा, ब्राह्मण-भोजन आदि पंचाचार विधि से ही सम्पादित करना चाहिये ।

इसी पटल में शिव ने पंचाचार साधना में शक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। उन्होंने पार्वती से कहा कि वे शक्ति के बिना शव की भाँति हैं । अपनी शक्ति सावित्री से संयुक्त होकर ही ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की और गोकुल में गोपकन्या राधा और द्वारका में सत्यभामा के सहयोग से ही कृष्ण ने सिद्धि प्राप्त की । उन्होंने कहा—हे माहेश्वरि ! मैं कल्याणकारी शिव केवल शक्ति के सहयोग के कारण ही हूँ, अन्यथा अमंगलरूप शव हूँ। शक्ति से संयुक्त होकर जप करने वाले साधक को मन्त्र की सिद्धि अवश्य होती है । शिव ने कहा कि गंगा, काशी, प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, बदरी, रेवा, उत्कल, गण्डकी, सिन्धु, सरस्वती आदि नद-नदियों और उनके तीर पर बसे हुए पुनीत तीर्थों की यात्रा छोड़ केवल शक्ति का संग करने से ही मानव की समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं । अत: इन सबको भूल प्रयत्न करके स्त्रीसंग करना चाहिये । स्त्रीसंगम से ही सिद्धि प्राप्त होती है, यह मेरा वचन है, जो कभी असत्य नहीं हो सकता ।

शक्ति की महत्ता का वर्णन करते हुए शिव ने कहा कि शक्ति को अर्पित एक गिलास पानी मीठे जल के सागर और एक मुट्ठी अन्न विशाल पर्वत के समान हो जाता है । स्त्री को प्रेमपूर्वक समर्पित प्रत्येक वस्तु असंख्य गुणित हो जाती है । पूजाकाल में इष्टदेवता की प्रतिमादि उपलब्ध न होने पर इष्ट देवता के रूप में स्त्री की पूजा कर उसे सम्मानित करना चाहिये । क्रोध, अज्ञान अथवा छल के वशीभूत होकर यदि कोई स्वशक्ति की अर्चना नहीं करता, तो उसे करोड़ों जन्मों तक भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती । शिव ने कहा कि संसार में अलौकिक सिद्धियों को प्राप्त करने के लिये स्त्रीपूजा ही सबसे अच्छा उपाय है ।

षष्ठ पटल में भगवती पार्वती-शंकर संवाद में उस दक्षिणाकाली की साधना का निरूपण है, जो साधकों को सिद्धि प्रदान करने के लिये सर्वदा उत्सुक रहती हैं और जिनकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि-रचना में, विष्णु सृष्टि के पालन में और रुद्र विश्वविलयन में समर्थ होते

हैं । इस पटल में उस दक्षिणाकल्प का वर्णन किया गया है, जिसकी चर्चामात्र से व्यक्ति जनन-मरणरूपी भवसागर में निमज्जित होने से बच जाता है ।

इसी सन्दर्भ में शिव ने सर्वप्रथम दक्षिणाकाली के मन्त्र 'क्लीँ' के ऋषि भैरव, छन्दस् उष्णिक् तथा देवता सर्वसिद्धिप्रदायिनी भगवती दक्षिणा काली बीज 'ह्रीँ', शक्ति कूर्चबीज 'हूँ' तथा विनियोग पुरुषार्थ चतुष्टय का उल्लेख किया है ।

भगवान् शिव द्वारा यह पूछे जाने पर कि पार्वती और क्या जानना चाहती हैं, पार्वती ने उनसे छह प्रश्न किये । **पहला** यह कि दक्षिणाकाली की अर्चना की विधि क्या है ? भगवती के पूजन का अधिकारी कौन हो सकता है ? वामाचार या दक्षिणाचारों में से किस आचार से शक्ति की पूजा की जाये ? **दूसरे** प्रश्न में पार्वती ने पूछा कि भूतशुद्धि के दौरान यदि साधक का भौतिक शरीर विनष्ट हो जाये, अथवा साधक स्वयं अपने भौतिक शरीर का विलयन करे, तो उसके शुद्ध शरीर के निर्माण के लिये अमृत का स्रवण कहाँ से और किस विधि से होता है ? **तृतीय** प्रश्न है कि आलीढ क्या है ? और प्रत्यालीढ किसे कहते हैं ? भगवती पार्वती का **चतुर्थ** प्रश्न था कि कालिका श्मशानवासिनी क्यों हैं ? **पाँचवाँ** प्रश्न था कि निशा किसे कहते हैं और महानिशा किसे कहते हैं ? **छठे** प्रश्न में भगवती ने जानना चाहा है कि पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभाव की पूजा के स्वरूप में क्या भेद है ?

इन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् शिव ने अर्चना की विधि के बारे में बताया कि पूजा आरम्भ करने से एक दिन पहले क्षौरादि के बाद निरामिष भोजन करना चाहिये । उसके अगले दिन प्रात:काल स्नान करके पवित्र और निर्मल हृदय से नित्य पूजन करना चाहिये । शक्तिपूजन में गुरु, गुरुपुत्र या गुरुपत्नी का ही अधिकार है । गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी और स्वयं साधक के अतिरिक्त यदि अन्य कोई दीक्षागुरु या तन्त्रविद् साधक के लिये पूजा करता है, तो उस पूजा का फल साधक को नहीं, यक्ष और राक्षसों को प्राप्त होता है ।

गुरु की महिमा का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया कि गुरु साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है । गुरु के अभाव में साधक को स्वयं शक्तिपूजा सम्पन्न करनी चाहिये । यदि साधक स्वयं पूजा करता है तो पूजन की समस्त सामग्री गुरु को समर्पित करनी चाहिये । इससे पूजा का फल करोड़ गुना बढ़ जाता है ।

यहाँ शिव ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही कि यदि पूजन का कार्य गुरु-पत्नी कराती हैं, तो वे बलि आदि तो सम्पन्न करा सकती हैं, किन्तु उन्हें हवन नहीं करना चाहिये । गुरु-पत्नी द्वारा कराये गये पूजन में समस्त हवन-सामग्री भगवती शक्ति के सामने रखकर देवी के मन्त्र से देवी को ही समर्पित कर देनी चाहिये । इससे साधक को हवन का फल प्राप्त हो जाता है ।

तन्त्रशास्त्र में गुरु के अतिरिक्त हवन करने का अधिकार देवताओं को भी नहीं दिया गया है । शिव ने कहा कि यद्यपि स्मृतियों में गुरुपुत्र, गुरुपत्नी तथा अन्य व्यक्तियों के

ऋत्विक् बनाने की बातें कही गयी हैं, लेकिन तन्त्रोक्त विधान में गुरु के अरितरिक्त अन्य किसी की अपेक्षा नहीं की जाती है । तन्त्रोक्त विधानानुसार पूजन में गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता ।

शिव ने यहाँ यह भी कहा कि पूजा भले ही न की जाये, लेकिन, लोगों के सामने तो पूजा कभी भी नहीं करनी चाहिये । लेकिन वैष्णव तन्त्रों में विहित पूजा में मुद्राओं या संकेतों के माध्यम से ही काम लिया जा सकता है ।

पार्वती के द्वितीय प्रश्न 'भूतिशुद्धि के समय साधक का भौतिक शरीर नष्ट क्यों नहीं होता ?' के उत्तर में शिव ने उन्हें बताया कि व्यक्ति की वामकुक्षि में पापपुरुष का निवास होता है । पापपुरुष की देह लिंग या सूक्ष्म होती है । उसी के विनाश के लिये भूतशुद्धि की जाती है । भूतशुद्धि की क्रिया से पापपुरुष की यह लिंगदेह ही नष्ट होती है, साधक का भौतिक शरीर नहीं ।

तृतीय प्रश्न का उत्तर देते हुए शंकर ने कहा कि दक्षिणाकाली की वह मुद्रा आलीढ कही जाती है, जिसमें उनका बायाँ चरण आगे होता है तथा उस मुद्रा को प्रत्यालीढ कहते हैं, जिसमें उनका दायाँ चरण आगे होता है ।

कालिका देवी श्मशानवासिनी क्यों हैं ? इस चतुर्थ प्रश्न का उत्तर देते हुए शिव ने यह रहस्य उद्घाटित किया कि दक्षिणाकाली संहाररूपिणी और समस्त विश्व को सम्मोहित करने वाली शक्ति हैं । वे अग्निस्वरूपा महामाया हैं । जीव भी अग्निरूप है । श्मशान में शरीर नष्ट हो जाने पर भी जीव का चिदग्नि स्वरूप सदैव जाग्रत् रहता है । श्मशान जीव के भौतिक शरीर का संहारस्थल है । अभिमानियों में भौतिक शरीर के नाश से जीवात्मा के विनाश का भ्रम बनाये रखने के लिये माया स्वरूपिणी भगवती दक्षिणाकाली श्मशानवासिनी हैं । शिव ने कहा कि यद्यपि काली अनन्तरूपिणी हैं, लेकिन, गुरु ने साधक को उनके जिस रूप का उपदेश दिया है, उसके लिये वही ब्रह्मवाक्य है, अर्थात् उस साधक के लिये श्यामा उसी रूप में उपास्या हैं ।

भगवती पार्वती के पाँचवें प्रश्न के उत्तर में शिव ने उन्हें बताया कि सूर्य के अस्त होने के पश्चात् दो प्रहर बीत जाने पर निशाकाल, तत्पश्चात् दो घटिकाएँ समाप्त होने के बाद महानिशा काल और तत्पश्चात् अतिनिशा काल आरम्भ हो जाता है ।

भावभेद से पूजाभेद के छठे प्रश्न के उत्तर में शिव ने कहा कि आधीरात बीत जाने के बाद भगवती का पूजन पशुभाव से करना चाहिये । पशुभाव से की गयी दस दण्ड तक की पूजा अक्षय होती है । छठे प्रहर में की गयी पूजा में पूजाद्रव्य अमृत के समान होते हैं, और सातवें प्रहर की पूजा में दुग्ध के समान । आठवें प्रहर की पूजा में पूजन के लिये प्रयुक्त द्रव्य सामान्य पूजाद्रव्य ही रह जाते हैं । पूजाद्रव्य के बारे में यह बात केवल पशुभाव की पूजा में ही लागू होती है ।

दिव्य और वीरभाव से अर्चना करने वाले साधकों के मत में भगवती दक्षिणाकाली की अर्चना मद्यादि पंचतत्त्वों से करनी चाहिये । कुलाचार से की जाने वाली भगवती दक्षिणा काली की पूजा आधी रात के बाद विहित मन्त्रों के साथ करनी चाहिये । शिव ने अन्त में पार्वती से कहा कि दक्षिणाकाली का यह पूजाविधान गोपनीय है । इसका उल्लेख घृणा तथा लज्जा आदि आठ पाशों में बद्ध पशु के सामने कभी नहीं करना चाहिये ।

सप्तम पटल में निर्वाणप्राप्ति के हेतुभूत पंचतत्त्वों के बारे में पार्वती की जिज्ञासा पर शिव ने उन्हें बहकाते हुए कहा कि परमतत्त्व तो केवल वही (पार्वती) ही हैं और कुछ नहीं । पार्वती के कोपपूर्ण अनुरोध पर उन्होंने कहा कि प्रायः सभी तन्त्रों में उन्होंने पहले ही तत्त्वों के संकेत कर दिये हैं । अब इस गोपनीय तत्त्व के विषय में स्पष्टरूप से चर्चा करने का आग्रह पार्वती बार-बार क्यों कर रही हैं ।

पार्वती ने पुनः प्राणत्याग की धमकी दी तो शिव ने मन्त्रों के उद्धार की रीति का अनुसरण करते हुए दुर्लभ तत्त्वों के नामों के उल्लेख क्रम में बताया कि—

पहले भान्तवर्ण बीज (म्) को अकार से संयुक्त करके थान्तवर्ण (द्) को वायुवर्ण (य्) से मिलाकर इसे बिन्दु अर्थात् अनुस्वार (ं) से युक्त करने से जो नाम उभर कर आता है, वही प्रथम तत्त्व (मत्स्य) है ।

द्वितीय तत्त्व की ओर संकेत करते हुए शंकर ने कहा कि भान्तवर्ण (म्) को 'आ' से युक्त कर इस पर बिन्दु स्थापित करें और तब इसके आगे चन्द्रबीज (स) रख उस पर पन्द्रहवाँ स्वर (अं) रखने से जो नाम उभरता है, वह द्वितीय तत्त्व (मांस) है ।

तृतीय तत्त्व का संकेत करते हुए शिव ने कहा कि भान्तवर्ण (म), त्कारयुक्त चन्द्रवर्ण (स्) को वायुवर्ण (य) को मिला देने से तृतीय तत्त्व (मत्स्य) स्पष्ट हो जाता है ।

चतुर्थ तत्त्व की ओर इंगित करते हुए शिव ने बताया कि भान्तवर्ण (म) को पंचम स्वरवर्ण (उ) से मिला दें तथा थान्तवर्ण (द्) को वह्निवर्ण (र्) पर रख इसे 'आ'कार से युक्त कर दें तो 'चतुर्थ तत्त्व (मुद्रा) का नाम उद्घाटित हो जाता है ।

अति महत्त्वपूर्ण पंचम तत्त्व की ओर संकेत करते हुए शिव ने भगवती पार्वती से कहा कि भान्तवर्ण (म्) को सूर्य स्वर (बारहवें स्वर ऐ) से संयुक्त कर इसके आगे 'उ'कार से युक्त तान्तवर्ण (थु) रख इसके आगे 'अ' से युक्त धान्तवर्ण (न) रखने से पंचम तत्त्व (मैथुन) का नाम उद्घाटित होता है ।

अष्टम पटल में मन्त्रसिद्धि के लिये आवश्यक सिद्धारिचक्र का निरूपण किया गया है । इसके निर्माण के लिये एक चतुरस्र बनाकर उसके भीतर सोलह कोष्ठ निर्मित करके उसमें इतने ही अंक और वर्ण लेखन की विधि और इसके फल का निरूपण किया गया है ।

इसके पश्चात् पूजा के लिये आवश्यक आधार का निरूपण किया गया है । यहाँ श्रीशिव ने बताया है कि देवी की पूजा शालिग्राम-शिला पर निर्मित यन्त्र पर, मणिनिर्मित

यन्त्र पर, प्रतिमा में, पुस्तक पर, गंगा में, सामान्य जल में, पुष्प में अथवा शिवलिंग में की जा सकती है । यहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है कि पूजा के लिये गृहीत आधार-भेद से पूजा के फल में भी भिन्नता आ जाती है । तदनुसार सामान्य आधार पर की गयी पूजा के फल से सौ गुना अधिक फल शालिग्राम-शिला या मणि पर की गयी पूजा का मिलता है । शिव ने यह भी बताया कि सामान्य जल पर देवी की पूजा से दोषों की शान्ति होती है । पुष्पयन्त्र पर की गयी पूजा सभी सिद्धियाँ प्रदान करती है तथा शिवलिंग पर देवी की पूजा करने से अनन्त फल प्राप्त होता है । श्रीशिव के अनुसार पार्थिव शिवलिंग पर देवी के पूजन से सिद्धि में हानि होती है और पूजन के दौरान मृत्तिका से निर्मित शिवलिंग जितनी बार भग्न होता है, साधक को उतने ही हजार वर्षों तक कुम्भीपाक नामक नरक में अपने पितरों के साथ पकना पड़ता है । लेकिन, स्फटिक आदि से निर्मित शिवलिंग पर देवी की अर्चना करने से साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

नवम पटल में उस भगवती धनदा का अर्चना-विधान निरूपित किया गया है जिनकी उपासना करके कुबेर धन के और इन्द्र त्रिलोकी के अधीश्वर बने हैं । धनदा के मन्त्र का उद्घाटन करते हुए शिव ने बताया कि 'पहले बिन्दु अर्थात् अनुस्वार सहित दान्तवर्ण ध (अर्थात् धँ), तदनन्तर क्रम से महामाया बीज (ह्री ँ), हरिप्रिया बीज (स्त्री ँ), फिर 'रतिप्रिये' पद, तदनन्तर वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' (धँ ह्री ँ स्त्री ँ रतिप्रिये स्वाहा) यह नौ अक्षरों का मन्त्र भगवती धनदा का है । भगवान् शिव ने बतया कि धनदा के इस मन्त्र के ऋषि कुबेर, छन्दस् पंक्ति तथा देवता सर्वसिद्धिप्रदात्री भगवती धनदा देवी स्वयं हैं । इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास मायाबीज 'ह्रीं' के छह दीर्घरूपों ह्रां ह्रीं आदि से किया जाता है ।

धनदा के स्वरूप के बारे में पार्वती को बताते हुए शिव ने कहा कि धनदा देवी विशुद्ध स्वर्ण की कान्ति की भाँति निखरी हुई, कान्तिमयी, रक्तवर्ण के वस्त्रों से सुशोभित, अभय और अंकुश मुद्राओं वाले दोनों हाथों में स्वर्णकमल धारण की हुई, कर्णों में किंचित्-किंचित् आन्दोल्यमान रत्ननिर्मित कुण्डलधारिणी, भक्तों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, त्रिनयना, नागराज की माला धारण की हुई, समस्त प्रकार के भयों का नाश करने वाली, त्रिलोकीस्वरूपा, पापहारिणी, चित्स्वरूपिणी पराशक्ति रूप हैं ।

इसी पटल में धनदा के उपर्युक्त स्वरूप के ध्यान के अनन्तर उनकी मानस पूजा, अर्घ्यपात्रस्थापन, धेनुमुद्रा का प्रदर्शन, पीठमन्त्र के जप, आधारशक्ति का पूजन, देवी के मूल मन्त्र से उनके आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् द्रव्य समर्पण तथा धनदा के पूजन हेतु नवयोन्यात्मक यन्त्र के निर्माण तथा यन्त्र में धनदा के साथ लक्ष्मी, पद्मा, पद्मालया, श्री, हरिप्रिया, केशवा, कमला, अब्जा, चंचला तथा लोला लक्ष्मी के दस रूपों की अर्चना करने का उल्लेख किया गया है ।

श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि धनदा के मन्त्र की सिद्धि के लिये मन्त्र का एक लाख जप, दस हजार हवन, एक हजार तर्पण तथा सौ बार अभिषेक करना चाहिये । इस विधि से देवी की अर्चना करने से निःसन्देह समस्त सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं ।

इसी पटल में भगवती धनदा का शंकरोक्त सुन्दर स्तोत्र तथा धनदा कवच दिया गया

है। शिव ने यह भी कहा कि यदि गुरु की पूजा किये बिना कवच का पाठ किया जाता है, तो कवच के पाठ से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं। शिव ने पार्वती से कहा कि भोजपत्र पर धनदा-कवच लिखकर यदि पुरुष दाहिनी भुजा पर और नारी वामभुजा पर धारण करे तो उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और वह पुत्रवान् तथा धनवान् हो जाता है। कवच का पाठ किये बिना धनदा का पूजन करने से पाठकर्ता की किसी शस्त्र के प्रहार से मृत्यु हो जाती है।

धनदा की साधना में शीघ्र सिद्धि का उपाय पूछने पर शंकर ने पार्वती को बताया कि सात दिनों तक प्रतिदिन श्मशान भूमि में दस हजार जप करने से निःसन्देह धनदाविद्या शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है।

श्रीशिव ने कहा कि शीघ्र सिद्धि-प्राप्ति का दूसरा उपाय यह है कि किसी प्रकार एक शव प्राप्त कर उसे घर में बित्ता भर गहरे गड्ढे में डाल कर वह गड्ढा बन्द कर दिया जाये। फिर अमावस्या तिथि से शुक्ल पक्ष की अष्टमी पर्यन्त उस शव पर बैठकर प्रतिदिन धनदा मन्त्र का 44 हजार जप किया जाये। ऐसा करने से धनदाविद्या शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है।

यहीं शिव ने धनदा की सिद्धि के लिये पंचतत्त्वों की अनिवार्यता का उल्लेख करते हुए एक अन्य उपाय 'शक्तिपूजा' भी बताया। इसके अनुसार किसी भी एक शक्ति को लाकर मत्स्य, मद्य, मांस और मुद्रा की व्यवस्था कर इनका उपयोग साधक स्वयं करे और शक्ति को भी कराके यदि निर्धारित संख्या में जप करे, तो सिद्धि अवश्य मिलती है।

जप की संख्या के विषय में शिव ने कहा कि जहाँ भी जप की संख्या का निश्चित उल्लेख नहीं है, वहाँ जप की संख्या 44 हजार मानी जानी चाहिये।

दशम पटल में श्रीपार्वती के आग्रह पर शिव द्वारा मातंगी देवी की साधना-विधि का वर्णन किया गया है। यहाँ मातंगी के रहस्यात्मक मन्त्र का उद्घाटन करते हुए शिव ने पार्वती को बताया कि प्रणव (ओँ) उद्धृत कर महामाया (ह्रीँ) का उल्लेख करें। फिर कामबीज (क्लीँ), तब कूर्चबीज (हुं) अंकित कर इसके आगे चतुर्थ्यन्त मातंगी (मातंग्यै) लिखकर इसके आगे अस्त्रमन्त्र (फट्) अंकित करके वह्निजाया मन्त्र (स्वाहा) लिखने से साढ़े दस अक्षरों वाला 'ओं ह्रीं क्लीँ हुं मातंग्यै फट् स्वाहा' रूप मातंगी मन्त्र उद्घाटित होता है।

सार्धदशाक्षरी मातंगीविद्या की प्रशंसा करते हुए शिव ने कहा कि इसे जान लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता। इस विद्या का उपासक रमणियों के बीच कामदेव, शत्रुओं के बीच मृत्युतुल्य, धनियों के बीच कुबेर, क्षमाशीलों में पृथ्वी, बलवानों में वायु-नैऋृति के समान दुर्धर्ष्य, गानविज्ञों में तुम्बरु और बाणधारियों में इन्द्र के समान हो जाता है।

शिव ने पार्वती को बताया कि मातंगीमन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्दस् विराट् तथा देवता स्वयं मातंगी हैं। मन्त्र का विनियोग चतुर्वर्ग फलप्राप्ति में किया जाता है। इसके बाद शिव ने मातंगी के स्तोत्र के बहाने उनके अनुपमेय रूप का निर्वचन किया है और कहा है

कि इस स्तोत्र का प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन तीनों सन्ध्याओं में पाठ करने वाले साधक के लिये सिद्धि दूर नहीं होती । किन्तु, यह परम गोपनीय है । इसके प्रकाशन से सिद्धि की हानि होती है । इसी पटल में श्रीपार्वती के कहने पर शिव ने मातंगी कवच और इसके ऋष्यादिकों और कवच की पाठविधि, कवच धारण के फल तथा किसी अन्य गुरु के शिष्य को मातंगी कवच की अदेयता का कथन किया है ।

शिव ने मातंगी कवच की महिमा बताते हुए कहा कि जो साधक गुरु की पूजा के बाद प्रातःकाल इस कवच का पाठ करता है, उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और वह शिव के तुल्य हो जाता है, इसमें संशय नहीं । जो साधक मध्याह्न में गुरुपूजा के अनन्तर कवच का पाठ करता है, वह कुबेर के समान धनवान् और कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है और जो साधक सायंकाल मातंगी कवच का पाठ करता है, वह सिद्धियों का स्वामी होकर भैरव की भाँति निर्भीक होकर धरती पर विचरण करता है और यदि गुरु की पूजा के साथ ही कोई साधक मातंगी-कवच का पाठ करता है, तो लक्ष्मी उसके घर में और सरस्वती उसके मुख में निवास करती हैं ।

लेकिन, यदि कोई मातंगी कवच का पाठ किये बिना मातंगी का जप-पूजनादि करता है, तो इस संसार में वह सदा दरिद्र बना रहता है और मरने के बाद वह शूकर के रूप में जन्म लेता है अथवा उसका आचरण सूअर के समान होता है ।

मातंगी-मन्त्र के जप-हवनादि के विषय में शिव ने कहा कि मातंगी-कवच का छह हजार जप और पलाश की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में दशांश अर्थात् छह सौ हवन करने से समृद्धि प्राप्त होती है। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश अभिषेक करना चाहिये। अभिषेक के दशांश ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये । ऐसा करने से ही साधक सिद्ध बन सकता है, अन्यथा नहीं । शिव ने कहा कि यदि इस विधि से साधना से सिद्धि नहीं मिलती, तो दुबारा भी इसी विधि को अपनाना चाहिये । इससे सिद्धि अवश्य मिलेगी ।

एकादश पटल में वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य नामक पंच-देवोपासकों में प्रचलित अक्षमाला की संरचना की विधि और माला के महत्त्व का निरूपण किया है । शिव ने पार्वती को बताया कि शक्ति के रूप में स्वीकृत और प्रयुक्त नारी तथा ब्राह्मणादि की अस्थियों की माला बनाना निषिद्ध है । इनके शवों, श्मशानों, मुण्डों और अस्थिमालाओं का उपयोग भी साधना में नहीं करना चाहिये । इसका कारण 'ओं'कार के जपने के अधिकार में निहित है । उन्होंने बताया कि प्रणव निष्कल है, यह साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप है । जो व्यक्ति प्रणव का जप करता है वह साक्षात् विष्णुरूप है ।

जिस प्रणव से सभी प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उस प्रणव के जप का अधिकार 'स्त्रियों और शूद्रों' को नहीं है । वे मन्त्रहीन हैं । किन्तु, उनकी अस्थियों में अकारादि-क्षकारान्त सभी वर्ण सर्वदा अव्यक्तरूप से सन्निहित होते हैं । स्त्रियों और शूद्रों की अस्थियों के तिल-तिल में अव्यक्त ब्रह्मरूपिणी वर्णमाला स्थित होने के कारण उनकी वे अस्थियाँ परम पवित्र होती हैं । इसीलिये मैं परम मंगलमय शिव होकर भी अपने कण्ठ, ग्रीवा, बाँहों और कलाइयों आदि

शरीर के सभी अगों में महाशंखमाला नामक अस्थिमाला धारण करता हूँ। जो साधकश्रेष्ठ महाशंख नामक उक्त माला से जप करता है, वह नि:सन्देह अणिमा-महिमादि विभूतियों का स्वामी बन जाता है।

प्रसंगवश माला के ग्रथन के बारे में शंभु ने कहा कि माला का स्वरूप क्रमश: गोपुच्छ के समान अथवा सर्पाकार होना चाहिये और ग्रथन के समय साध्यदेवता के मूलमन्त्र अथवा प्रणव का उच्चारण करते रहना चाहिये। मनकाओं को पिरोने के बाद ब्रह्मग्रन्थि का संयोजन भी सावधानी से करना चाहिये। जप की विधि के बारे में शिव ने पार्वती को बताया कि माला को अपने माथे का स्पर्श करा गुरु का स्मरण कर माला के स्थूलभाग से जप का आरम्भ और सूक्ष्मभाग में समापन किया जाना चाहिये। सूक्ष्म भाग से जप आरम्भ करने से सिद्धि में हानि होती है। शिव ने पार्वती से कहा कि माला मेरे शरीर पर अलंकृत सर्पराज का ही रूप है। इस प्रकार मेरे अंगों पर स्थित मालिका से जप करने पर साधक देवी के विश्वव्यापी विराट् अंग में विलीन हो जाता है।

द्वादश पटल में वेदमाता गायत्री के स्वरूप के निर्वचन का आग्रह किये जाने पर शिव ने कहा कि हालाहल संज्ञक वर्ण (ओ) का उद्धार करके नतिवर्ण (म्) उद्धृत करें। फिर, वामकर्णसंज्ञक वर्ण (ऊ) सहित नाभिवर्ण (भ्) लिखें। इस प्रकार 'ओं भू' हुआ। इसके बाद पुन: नाभिवर्ण (भ्) कार को ही दक्षिणकर्ण वर्ण (उ) और शीर्ष पर रेफवर्ण (र्) के साथ 'र्भु' के रूप में लिखें। तत्पश्चात् वारुण अर्थात् जल संज्ञकवर्ण (व्) कार रसनावाचक वर्ण (:) सहित 'व:' के रूप में लिखकर चन्द्रराजवर्ण (स्) को लान्तवर्ण (व) में मिलाकर उसे सर्ग (:) युक्त कर 'स्व:' के रूप में लिखें। इस प्रकार 'ओं भू र्भुव: स्व:' रूप तीन व्याहृतियों का उद्धार होता है।

इसके बाद 'तत्' पद, तत्पश्चात् 'सवितु:', तदन्तर 'वरेण्यम्' पद का उच्चारण करके 'भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्' और तदनन्तर 'ओम्' पदों के समूहरूप गायत्री के रहस्यात्मक स्वरूप का उद्घाटन होता है।

गायत्रीमन्त्र के शुद्ध उच्चारण को लक्ष्य में रख शिव ने कहा कि मन्त्रान्तर्गत 'धियो' (य्ओ) के यकार और 'यो' के (य्ओ) यकार में ही 'अनन्त' अर्थात् 'ओ'कार की श्रुति है। इस प्रकार इन दोनों यकारों के साथ ही 'ओ'कार ध्वनि का उच्चारण किया जाना चाहिये, अकेले पृथक् नहीं। इस प्रकार 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्' के रूप में गायत्री का जप करने वाला संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। किन्तु, इन दोनों अन्त्य यकारों के स्थान पर जो जपकर्ता 'ओ'कार का उच्चारण 'धिओ ओ न:' अर्थात् 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धिओ ओ न: प्रचोदयात्' के रूप में करता है, उसे चाण्डाल मानकर मान्त्रिक समुदाय से बहिष्कृत कर देना चाहिये। शिव ने बताया कि गायत्री हजारों जन्मों के पापों को नष्ट कर देती है। गायत्री का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है।

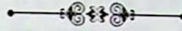
इस बारहवें पटल के अन्त में भगवान् शिव ने पराशक्ति पार्वती से गुप्तसाधन नामक महातन्त्रराज की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा कि जिस घर में यह महातन्त्रराज विद्यमान होता है, वह घर कैलास के समान है और जो व्यक्ति इसकी नित्य अर्चना करता है वह वास्तव में सिद्ध पुरुष है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त जो साधक इस तन्त्र अथवा इसके अनुसार निर्मित यन्त्र का प्रतिदिन दर्शन करता है, तन्त्र को लिखित रूप में देखता अथवा इसकी प्रतिलिपि करता है, वह गंगास्नान का पुण्य प्राप्त करता है और मृत्यु के अनन्तर शिव को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति जहाँ भी इस तन्त्रराज का पठन करता है, उसके सभी दुष्कर्म वहीं तत्काल नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् वह भगवती के स्वरूप में लीन होकर देवीमय हो जाता है।



॥श्रीः॥

गुप्तसाधनतन्त्रम्

श्रीश्रीगुरवे नमः



अथ प्रथमः पटलः

श्रीपार्वत्याः कुलाचारमाहात्म्यजिज्ञासा

ओं नमो दुर्गायै

कैलासशिखरे रम्ये नाना रत्नोपशोभिते ।
तं कदाचित्सुखासीनं भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥
पप्रच्छ परया भक्त्या देवी लोकहिते रता ॥1॥

सूर्यकान्तनीलमणि आदि विभिन्न रत्नों से सुशोभित कैलास पर्वत के रमणीय शिखर पर सुप्रसन्न मुद्रा में बैठे भगवान् त्रिनयन शिव से लोककल्याण के लिये निरन्तर सक्रिय भगवती पर्वतात्मजा ने भक्ति और श्रद्धापूर्वक जानना चाहा—

श्रीदेव्युवाच

देवदेव ! महादेव ! लोकानुग्रहकारक !
कुलाचारस्य माहात्म्यं पुरैव सूचितं त्वया ॥2॥
तत्कथं गोपितं देव ! मम प्राणेश्वर ! प्रभो !
कथयस्व महाभाग ! यद्यहं तव वल्लभा ॥3॥

भगवती गिरिजा ने कहा— हे देवदेव ! हे महादेव ! हे लोककृपाकर ! अतीत में आप कई बार कुलाचार के माहात्म्य का उल्लेख कर चुके हैं, लेकिन कभी भी इस पर खुलकर न बता कर इस विषय को सर्वदा और सर्वथा गोपनीय ही बनाये रखा, ऐसा क्यों ? हे प्रभो ! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ, तो आज आप कुलाचार के बारे में सब कुछ स्पष्टरूप से बतायें ।

श्रीशिवेन कुलाचारप्रशंसा

श्रीशिव उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् ।
तव स्नेहान्महादेवि ! दासोऽस्मि तव सुन्दरि ॥4॥

तत्कथां कथयिष्यामि सावधानाऽवधारय ।

भगवान् शिव ने कहा—हे देवि ! मैं आपके प्रेम के कारण सदा आपका दास हूँ । इसलिये आपसे कुछ छिपाऊँगा क्यों ? आपसे कुलाचार के बारे में चर्चा क्यों नहीं करूँगा ? हे देवि ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये और ग्रहण कीजिये ।

कुलाचारं महाज्ञानं गोप्तव्यं पशुसङ्कटे ॥5॥
प्रगोप्तव्यं महादेवि ! स्वयोनिरिव पार्वति ।

हे पर्वतात्मजे ! कुलाचार सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है । इसे अज्ञानियों से, कुलाचार से अपरिचित मानव समुदाय से स्वकीय योनि की भाँति सर्वदा गोपनीय बनाये रखियेगा ।

वेदागमपुराणानि वेदशास्त्राणि पार्वति ! ॥6॥
एतन्मध्ये सारभूतं कुलाचारं सुदुर्लभम् ।

हे पार्वति ! चार वेदों, छः शास्त्रों और अठारह पुराणों में जो कुछ कहा गया है, कुलाचार उन सबका सारभूत दुर्लभ तत्त्व है । वेदादिकों में भी कुलाचार को गोपनीय ही रखा गया है ।

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥7॥
कुलाचारस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ।
किञ्चिदहं तु चापल्यात्कथयामि शृणुष्व मे ॥8॥

हे देवि ! यद्यपि हजारों-हजार करोड़ मुखों और सैकड़ों करोड़ों जिह्वाओं से भी कुलाचार के महत्त्व का वर्णन नहीं किया जा सकता, फिर भी जिह्वा की चंचलता के कारण मैं कुलाचार की महिमा का बहुत थोड़ा-सा उल्लेख करता हूँ ।

शक्तेर्जगन्मूलत्वप्रतिपादनम्

शक्तिमूलं जगत्सर्वं शक्तिमूलं परन्तपे !
शक्तिमाश्रित्य निवसेद् यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥9॥
साधकस्याऽर्चिता शक्तिः साधकज्ञानकारिणी ।

हे परंतपस्विनि ! सारा विश्व शक्ति से उत्पन्न हुआ है, शक्ति में स्थित है और अन्ततः शक्ति में ही विलीन हो जाता है । भगवती शक्ति ही मूल तत्त्व है*। इसलिये साधक को चाहिये कि वह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास जिस किसी भी आश्रम में और जिस भी स्थिति में रहे, शक्ति का आश्रय लेकर, शक्ति के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखता हुआ जीवन निर्वहन करे । साधक द्वारा पूजित शक्ति साधक का इहलोक-परलोक में सर्वदा कल्याण करती है ।

---

* यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत्समवलीयन्ते तद् विजिज्ञास्व तद् ब्रह्म । (छान्दोग्योपनिषद्)
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा ।
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृषे । (शंकर, सौन्दर्यलहरी)

इह लोके सुखं भुक्त्वा देवीदेहे प्रलीयते ॥10॥
साधकेन्द्रो महासिद्धिं लब्ध्वा याति हरेः पदम् ।

और, मृत्यु के उपरान्त साधक की जीवात्मा स्वयं अपनी मूल कारणशक्ति के सर्वव्यापक विराट् देह में विलीन हो जाती है* । विधिपूर्वक शक्ति की उपासना करने वाला महान् साधक इस संसार में महान् भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त करता है तथा शरीर के त्याग के पश्चात् अपनी श्रद्धा और कामना के अनुरूप जनन-मरणरूपी सर्वपाप समूहों से मुक्त होकर विशुद्धात्मस्वरूप हो समस्त अघसमूहों का हरण करने वाली हरि नामक शक्ति का स्वरूप ही हो जाता है** ।

शक्तिपूजने ग्राह्याः नवकन्याः

पञ्चाचारेण देवेशि ! कुलशक्तिं प्रपूजयेत् ॥11॥
नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ॥12॥
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिताः ।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥13॥

हे पार्वति ! कुलशक्ति की अर्चना पंचाचार विधि से करनी चाहिये । नटी, कापालनी, वेश्या, रजकी, नापिता, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या तथा मालाकार की कन्या ये नौ कन्यायें, यदि ये विदुषी हों और तन्त्रशास्त्र में वर्णित कुछ विशिष्ट लक्षणों से युक्त हों तो, कुलांगना बनने का अधिकार रखती हैं ।

रूपयौवनसम्पन्ना शीलसौभाग्यशालिनी ।
पूजनीया प्रयत्नेन ततः सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥14॥
सत्यं सत्यं महादेवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
प्रथमः पटलः समाप्तः ।



वास्तव में उल्लिखित नौ विशेष जाति की कन्यायें यदि सुन्दर हों, यौवन से सम्पन्न हों, शीलवती हो और सौभाग्य के लक्षणों वाली हों, तो विशेष प्रयत्न करके भी उन्हें उपलब्ध कर उनकी अर्चना करनी चाहिये । इस अर्चना से निश्चितरूप से साधक को सिद्धि मिलती है । हे देवि ! मेरा यह कथन निःसन्देह सत्य है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का प्रथम पटल समाप्त ।



---

* नं तस्य प्राणा उत्क्रामन्ते इहैव समवलीयन्ते' ।

**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति

अथ द्वितीयः पटलः

श्रीपार्वत्याः जिज्ञासा

श्रीपार्वती उवाच

बाधते मां कृपानाथ मुहुः प्रष्टुं यदुत्सहे ।
स्त्रियः स्वभावचपला न शङ्केऽहं पुनः पुनः ॥1॥

श्रीपार्वती ने कहा—हे दयासागर स्वामिन् ! मैं बार-बार आपसे कुछ न कुछ पूछती रहती हूँ । आपके उत्तरों पर शंकाएँ भी करती रहती हूँ । इसे आप नारियों की स्वाभाविक चंचलता न समझें । मैं वास्तव में तत्त्व को जानना चाहती हूँ ।

यदुक्तं कृपया नाथ ! रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो गुरुर्मतिः ॥2॥

हे नाथ ! आपने मुझसे एक अपूर्व और रहस्यमय बात कहीं थी कि 'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं और गुरु ही इन सबके प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने वाली सद्बुद्धि हैं ।

गुरुस्तीर्थं गुरुर्यज्ञो गुरुर्दानं गुरुस्तपः ।
गुरुरग्निर्गुरुः सूर्यः सर्वं गुरुमयं जगत् ॥3॥

हे प्रभो ! आपने कहा था कि 'गुरु ही तीर्थ हैं, गुरु ही यज्ञ हैं, गुरु ही दान हैं, गुरु ही दान है, गुरु ही तप है, गुरु ही अग्नि हैं, गुरु ही सूर्य हैं और वास्तव में समस्त संसार ही गुरुमय है, श्रीगुरु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

किं दानेन किं तपसा किमन्यतीर्थसेवया ।
श्रीगुरोरर्चितौ येन पादो तेनार्चितं जगत् ॥4॥

हे शिव ! आपने कहा था कि दान से क्या ? तप से क्या ? अन्य तीर्थों के भ्रमण अथवा तीर्थस्वरूप पूज्यों की परिचर्या से क्या लाभ ? जिसने श्रीगुरु के पवित्र चरणों की अर्चना कर ली, उसने तो समस्त संसारमय परमतत्त्व की ही अर्चना कर ली ।

ब्रह्माण्डभाण्डमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै ।
गुरोः पादोदके तानि निवसन्ति हि सन्ततम् ॥5॥

पार्वती ने कहा कि हे स्वामिन् ! आपने बताया था कि इस ब्रह्माण्ड में जितने भी पवित्र जल वाले तीर्थ हैं, वे सभी श्रीगुरु के चरणों के परम पवित्र जल में सर्वदा निवास करते हैं ।

गुरोः पादोदकं यस्तु शिरसा धारयेत् यदि ।
सर्वतीर्थजलं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥6॥

हे भगवन् ! आपने कहा था कि यदि जो भी कोई व्यक्ति श्रीगुरु के पादोदक को अपने सिर पर धारण करता है, उसे नि:सन्देह समस्त तीर्थों के पवित्र जलों में स्नान-पानादि का फल प्राप्त होता है ।

इति तस्य गुरोर्ध्यानं तत्त्वतः श्रोतुमुत्सहे ॥7॥

हे स्वामिन् ! मैं ध्यान के लिये इन महिमावान् श्रीगुरु के तात्त्विक स्वरूप को जानने के लिये बहुत उत्सुक हूँ ।

लब्धत्वदर्धदेहां मां कथं वञ्चयसि प्रभो !
मयि स्नेहानुबन्धोऽस्ति यदि तन्मे प्रकाशय ॥8॥

श्रीपार्वती ने कहा—हे प्रभो ! इधर-उधर की नाना प्रकार की बातें करके आप अपनी अर्धांगिनी को बहकाते क्यों हैं ? यदि मेरे प्रति आपका अनन्य प्रेम है, तो आप श्रीगुरु के स्वरूप का मेरे समक्ष निर्वचन कीजिये ।

श्रीशिवस्योत्तरम्

श्रीशिव उवाच

न वञ्चयामि देवि ! त्वां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
स्त्रीणां स्वभावचापल्याद् गोपितं न प्रकाशितम् ॥9॥

श्रीशिव ने कहा—मैं आपको प्रवंचित नहीं कर रहा । आप मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय हो । स्त्रियाँ स्वभावत: चंचल होती हैं, वे किसी भी बात को गोपनीय नहीं रख पातीं । आप भी स्त्री हो । आप भी किसी रहस्य को छिपा नहीं सकतीं । इसी भय से मैंने आपके सामने उक्त रहस्य को प्रकट नहीं किया, गुप्त ही बनाये रखा ।

कथयामि तव स्नेहाच्छ्रीगुरोर्ध्यानमुत्तमम् ।
प्रकाश्यञ्च कुलीनेषु न प्रकाश्यं पशौ क्वचित् ॥10॥

शिव ने कहा—हे पार्वति ! अब मै तुम्हें श्रीगुरु के ध्यान के लिये उनके स्वरूप का निर्वचन करता हूँ । श्रीगुरु के स्वरूप का निर्वचन केवल कुलीन के समक्ष ही करना चाहिये, पाशबद्ध पशु के सामने कभी भी नहीं ।

कुलीनस्य लक्षणम्

कुलं शक्तिः समाख्याता अकुलः शिव उच्यते ।
तस्यां लीनो भवेद् यस्तु स कुलीनः प्रकीर्तितः ॥11॥

हे देवि ! पहले कुल क्या है और अकुल क्या है ? यह जान लो, इसके पश्चात् 'कुलीन' शब्द का अर्थ जानना सरल रहेगा । 'कुल' का अर्थ है 'शक्ति' और 'अकुल' का

'शिव' । जो व्यक्ति सर्वदा कुल अर्थात् शक्ति में लीन रहता है, शक्ति के साथ एकाकार हो जाता है, उनसे अभिन्न हो जाता है, उसे 'कुलीन' कहा जाता है ।

श्रीगुरोर्स्वरूपं ध्यानविधिश्च

कुलवृक्षा*न्नमस्कृत्य गुरुं ध्यायेत्पराम्बुजे ।
शरच्चन्द्रसमाभासं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥12॥
ईषद्धास्यं शारदीयपूर्णेन्दुसदृशाननम् ।
दिव्यस्त्रगम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥13॥
सुरक्तशक्तिसंयुक्तवामभागमनोहरम् ।
वराभयकराम्भोजं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥14॥
सहस्त्रारे महापद्मे गुरुं शिरसि चिन्तयेत् ।

हे देवि ! सर्वप्रथम कुलगुरुओं को नमन करके शरद के चन्द्रमा के समान निर्मल और शान्त, शरद् के प्रफुल्लित कमल के सदृश आयत नयन, मन्द-मन्द मुस्कान से सुशोभित ओष्ठ, शरद् के चन्द्रमा के समान मुखमण्डल, दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण किये, दिव्य सुगन्धित लेपों से लिप्तांग, वामभाग में सुन्दर और रक्तवर्ण की प्रेमाभिसिक्त शक्ति से युक्त, वर और अभय मुद्राओं से सुशोभित करकमलों वाले तथा अन्य सभी शुभ लक्षणों से युक्त श्रीगुरु का ध्यान अपने सहस्त्रार पद्म में करना चाहिये ।

श्रीगुरोर्ध्यानस्य गुह्यत्वकथनम्

एतत्ते कथितं देवि ! श्रीगुरोर्ध्यानमुत्तमम् ॥15॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ।
इति ते कथितं सर्वं तव स्नेहेन सुन्दरि
किमन्यत्संप्रवक्ष्यामि कथयस्व शुचिस्मिते ॥16॥

हे पार्वति ! आपके प्रति असीम प्रेम के वशीभूत होकर मैंने श्री सद्गुरु के स्वरूप का यह वर्णन कर दिया है । श्रीगुरु का यह स्वरूप गोपनीय है । इसका प्रकाशन किसी के सामने नहीं करना चाहिये । अब बताइये कि आप और क्या सुनना चाहती हैं ?

कुलीनस्त्रीगुरोर्दीक्षामहिमा

श्रीपार्वती उवाच

गुरोर्ध्यानं श्रुतं नाथ सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥17॥
स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।
बहुजन्मार्जितात्पुण्याद् बहुभाग्यवशाद् यदि ॥18॥

* कुलवृक्षान्नित्यां कुलगुरुनित्यामभिप्रायः ।

स्त्रीर्गुरुर्लभ्यते नाथ तस्य ध्यानं तु कीदृशम् ।
कुलीनस्त्रीगुरोर्ध्यानं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।।19।।

पार्वती बोलीं—हे स्वामिन् ! मैंने सभी तन्त्रों में संकेतित एवं गोपनीय श्रीगुरु के स्वरूप के ध्यान के बारे में जान लिया है । मैंने यह भी सुन रखा है कि स्त्रीगुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा अत्यन्त शुभ और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है । हे भगवन् ! मुझे यह भी ज्ञात है कि अनेक जन्मों में किये गये पुण्यकर्मों के उदय होने पर ही स्त्रीगुरु की प्राप्ति होती है । हे स्वामिन् ! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसी महान् महिमासम्पन्न स्त्रीगुरु का ध्यान किस रूप में किया जाय ?

स्त्रीगुरोः ध्यानस्वरूपजिज्ञासा

कथयस्व महाभाग ! यद्यहं तव वल्लभा ।

यदि मैं वास्तव में ही आपको प्राणों से भी प्रिय हूँ, तो आप मेरे लिये स्त्रीगुरु के ध्यान-स्वरूप का निरूपण कीजिये ।

श्रीगुरोः ध्यानस्वरूपादिवर्णनम्

श्रीशंकर उवाच

शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि तव स्नेहपरिप्लुतः ।।20।।
रहस्यं श्रीगुरोर्ध्यानं यत्र ध्येया च सा गुरुः।

शिव ने कहा—हे पार्वति ! आपके प्रेम से अभिभूत मैं आपके समक्ष स्त्रीगुरु के स्वरूप का कथन करता हूँ और साथ ही यह भी बताता हूँ कि स्त्रीगुरु के स्वरूप का ध्यान कहाँ किया जाय ।

सहस्त्रारे महापद्मे किञ्जल्कगणशोभिते ।।21।।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षीं घनपीनपयोधराम् ।
सहस्त्रवदनां नित्यां क्षीणमध्यां शिवां गुरुम् ।
पद्मरागसमाभासां रक्तवस्त्रसुशोभनाम् ।।22।।

हे पार्वति ! किंजल्क से सुशोभित सहस्रार नामक महापद्म में स्त्रीगुरु का ध्यान करना चाहिये । ध्यान के समय साधक को चिन्तन करना चाहिये कि स्त्रीगुरु के नेत्र खिले हुए कमलपुष्प की पंखुडियों के समान विशाल हैं । उनके उरोज सटे हुए तथा सम्पुष्ट हैं । वह सर्वतोमुखी और सर्वकालीन हैं । वे कल्याणमयी तथा सभी प्राणियों की गुरु हैं । उनका वर्ण पद्मराग मणि की भाँति सुन्दर है । वे लाल रंग के वस्त्रों से सुशोभित हैं ।

रक्तकङ्कणपाणिं च रत्ननूपुरशोभिताम् ।
शरदिन्दुप्रतीकाशवक्त्रोद्भासितकुण्डलाम् ।।23।।

स्वनाथवामभागस्थां वराभयकराम्बुजाम् ।
इति ते कथितं देवि ! स्त्रीगुरोर्ध्यानमुत्तमम् ॥24॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ॥25॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
द्वितीयः पटलः समाप्तः ।



उनकी कलाइयों में पद्मराग मणि के कंकण हैं । पैरों में रत्नजडित नूपुर हैं । शरद् के चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण उनका मुखमण्डल कुण्डलों से उद्भासित है । वे अपने पति श्रीशिव के वाम भाग में स्थित हैं । वर और अभय मुद्राओं वाले उनके हाथों में कमल सुशोभित हो रहे हैं । हे पार्वति ! स्त्रीगुरु का यह सर्वोत्तम स्वरूप गोपनीय है । इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय ही बनाये रखना चाहिये ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का द्वितीय पटल समाप्त ।



अथ तृतीयः पटलः

पञ्चागोपासनं प्रति देव्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

देवदेव ! महादेव ! भक्तानां मुक्तिदायक !
तव प्रसादात् प्राणेश ! श्रुतं साधनमुत्तमम् ॥1॥
पञ्चाङ्गोपासनं देव ! रहस्यादिपुरस्क्रियाम् ।
तत्सर्वं ब्रूहि मे देव ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥2॥

भगवती पार्वती ने कहा—हे देवताओं के देवता ! हे महादेव ! हे भक्तों के मुक्तिप्रदाता ! हे प्राणों के स्वामी ! आपकी कृपा से मैंने शक्ति की उपासना के ध्यानादि साधनों के बारे में सुना । हे देव ! अब मैं पंचांगोपासना और इससे सम्बन्धित रहस्यात्मक पुरस्क्रिया के विषय में जानना चाहती हूँ । हे स्वामिन् ! यदि आपका मेरे पर स्नेह है, तो कृपया इस बारे में सब कुछ बताइये ।

पञ्चाङ्गोपासनाविधिनिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

दिवारात्रिप्रभेदेन जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
न्यूनाधिकं जपेनाऽपि दूषणं नास्ति पार्वति ! ॥3॥

शिव ने कहा—हे पार्वति ! साधक को चाहिये कि वह रात और दिन के भेदानुसार विहित शक्तिमन्त्र का निर्धारित संख्या में जप करे । यद्यपि अवसर के अनुसार न्यून या अधिक संख्या में जप करने में भी कोई दोष नहीं है ।

पञ्चाचारेण देवेशि ! सर्वं कार्यं जपादिकम् ।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितो महामन्त्रस्य साधने ॥4॥

हे परमेश्वरि ! साधक को चाहिये कि वह पंचाचार पद्धति में प्रतिपादित विधि के अनुसार जपादि समस्त विधि सम्पादित करे । यहाँ पंचाचार में साधक को अधिकार है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार मुक्तभाव से शक्ति की उपासना करे ।

प्रत्यहं परमेशानि ! एकैकं विप्रभोजनम् ।
प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥5॥

यद्यपि पंचाचार में साधक को अधिकार है कि वह अपनी रुचि के अनुसार शक्ति की साधना करे, लेकिन कुछ सामान्य नियमों और विधियों का अनुपालन भी उसे अवश्य करना चाहिये ।

रात्रिकालीनजपविधिः

पूजां कृत्वा साधकेन्द्रः पुनर्जपनमाचरेत् ।
सायं सन्ध्यां ततः कृत्वा भोजनं स्वेच्छया नयेत् ॥6॥

शक्ति की पंचाचार साधना में श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि वह रात्रि का आरम्भ होने पर शक्ति की पंचोपचार अर्चना के पश्चात् निर्धारित संख्या में जप करे । इसके पश्चात् सायंकालीन सन्ध्या सम्पादित करने के बाद स्वेच्छा से भोजनादि करे ।

भोज्यान्नादिकथनम्

भक्षन् ताम्बूलमत्स्यांश्च वीक्ष्य द्रव्यान् यथारुचि ।
भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा ॥7॥

सायंकालीन भोजन में मत्स्यादि द्रव्यों का यथारुचि निरीक्षण, परीक्षण के पश्चात् सेवन करना चाहिये । भोजन में हविष्यान्न, शाक तथा दलिया आदि सुपाचक अन्नों का उपयोग करना चाहिये ।

एवं कृत्वा साधकेन्द्रो रात्रौ जपनमाचरेत् ।
गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ॥8॥

इस प्रकार रात का भोजन समाप्त कर रात्रि का प्रथम प्रहर बीत जाने पर तृतीय प्रहर की समाप्ति पर्यन्त रात्रिकालीन जप करना चाहिये ।

शक्त्या सहैव जपात्सिद्धिः

स्ववामे शक्तिं संस्थाप्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
शक्तियुक्तो भवेन्मर्त्यः सिद्धो भवति नान्यथा ॥9॥

जप अनन्यभाव से एकाग्रमन से करना चाहिये । जप करते समय साधक को चाहिये कि वह कुलशक्ति को अपनी बायीं ओर अवश्य बिठाये । क्योंकि शक्ति के साथ बैठकर किये गये जप से ही मन्त्र सिद्ध होता है और यदि शक्ति साथ न हो तो मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता ।

कुलशक्तिं विना देवि ! यो जपेत् स तु पामरः ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥10॥

हे देवि ! जो व्यक्ति कुलशक्ति को अपनी बायीं ओर आसीन किये बिना मन्त्र का जप करता है, वह नीच है । ऐसे व्यक्ति को करोड़ों जन्मों तक मन्त्र जपने पर भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता ।

कुमार्यादिपूजनं भोजनादिकं च

पुनश्च विषुवे चैव पूजयेद् विभवावधि ।
कुमारीं पूजयित्वा तु भोजयेद् विधिपूर्वकम् ॥11॥

विहित संख्या में मन्त्र का जप पूर्ण हो जाने के पश्चात् विषुव अर्थात् संक्रान्ति-काल (आन्तरिक साधना में अपनी सुषुम्ना) में भगवती का पूजन कर यथाविभव उदार मन से कुमारी पूजन सम्पन्न करना चाहिये। कुमारी-पूजन के अनन्तर विधिवत् ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिये।

ब्राह्मणभोजनशक्तिपूजागुरुदक्षिणाश्च

शतमष्टोत्तरं चैव ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।
शक्तिपूजां ततः कृत्वा भोजयेच्च यथाविधि ॥12॥

साधना की विधि जप, हवन, कुमारी-पूजन तथा ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न कर लेने के बाद पुन: 108 ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ब्राह्मण-भोजन के उपरान्त पुन: शक्तिपूजा करके यथाविधि स्वयं भोजन करना चाहिये।

गुरवे दक्षिणां दद्यात् स्वर्णं वस्त्रसमन्वितम्।
यद् यदिष्टतमं लोके गुरवे तन्निवेदयेत् ॥13॥

कुमारी-पूजन तथा ब्राह्मणों को भोजन कराके स्वयं भोजन करने के उपरान्त गुरु को स्वर्ण-वस्त्रादि दक्षिणा के रूप में प्रदान करना चाहिये। वास्तव में, साधक को जो-जो वस्तुयें बहुत प्रिय और मूल्यवान् हैं, गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरु को वह सब कुछ समर्पित कर देना चाहिये।

गुरुसन्तोषमात्रेण किं न सिध्यति भूतले।
गुरुरेव परं ब्रह्म नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥14॥

हे पार्वति ! गुरु के सन्तुष्ट होने पर संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो साधक को अलभ्य हो। क्योंकि गुरु ही परब्रह्म हैं। वास्तव में श्रीगुरु से परे कोई तत्त्व है ही नहीं।

एवं कृते मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विचरेद् भैरवो यथा।
स धन्यः स च विज्ञानी शिवतुल्यो न संशयः॥15॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
तृतीय: पटल: समाप्त।



हे पार्वति ! उक्त विधि से जो व्यक्ति शक्ति की आराधना करता है, उसे सिद्धि अवश्य मिलती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसा साधक सर्वसिद्धियों का स्वामी होकर भैरव की भाँति निर्द्वन्द्व और निर्भीक होकर संसार में विचरण करता है। ऐसा साधक धन्य है। नि:सन्देह वह विशेष ज्ञानी और शिव के समान है।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का तृतीय पटल समाप्त।



अथ चतुर्थः पटलः

अतिशीघ्रफलप्राप्त्योपायपृच्छा

श्रीपार्वती उवाच

देवदेव ! महादेव ! संसारार्णवतारक !
अतिशीघ्र फलं देव ! केनोपायेन लभ्यते ॥1॥

पर्वतनन्दिनी ने पूछा—हे देवाधिदेव ! हे महादेव ! वह कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा शक्ति की साधना का फल शीघ्रातिशीघ्र मिल सकता है ?

शीघ्रफलप्राप्त्योपायकथनम्

श्रीशिव उवाच

शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि अतिगुप्ततरं महत् ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥2॥

भगवान् शिव ने कहा—हे पार्वति ! सुनो, मैं तुम्हें गुप्त से भी गुप्त अति महान् साधन बताता हूँ, जिसका सहारा लेकर साधक शीघ्रातिशीघ्र सिद्धि प्राप्त कर सकता है । लेकिन, यह साधन अति गोपनीय है । इसे प्रकाशित करने पर साधक को अब तक उसकी साधना से प्राप्त यत्किंचित् सिद्धि भी समाप्त हो जाती है । इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखने का प्रयास करना चहिये ।

पूजार्हशक्तिः

स्वशक्तिं परशक्तिं वा दीक्षितां यौवनान्विताम् ।
विदग्धां शोभनां पीनां घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥3॥

हे देवि ! जिस गुप्त साधना का निरूपण मैं कर रहा हूँ, उसके लिये दीक्षित नवयौवना शक्ति की आवश्यकता होती है चाहे वह शक्ति स्वकीया हो या परकीया, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । हाँ, आवश्यक यह है कि वह समझदार हो, विदुषी हो और घृणा तथा लज्जा आदि पाशों से मुक्त तथा पूर्ण स्वस्थ हो ।

शक्तिपूजायां जपविधिः

तामानीय साधकेन्द्रो दद्यात्पाद्यादिकं शुभम् ।
पञ्चाचारेण तां शक्तिं पूजयित्वा यथाविधि ॥4॥

विद्वान् साधक को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक ऐसी शक्ति को प्राप्त कर उसे साधना के स्थल पर ले आये और अर्घ्यपाद्यादिकों से उसका सत्कार कर पंचाचार विधि से उसकी अर्चना करे ।

शतं शीर्षे शतं भाले शतं सिन्दूरमण्डले ।
शतं मुखे शतं कण्ठे शतं हृदयमण्डले ॥5॥

चयनित शक्ति को आसन पर आसीन कर साध्यमन्त्र का जप आरम्भ करना चाहिये । बुद्धिमान् साधक को चाहिये कि वह स्थिर मन से मन्त्र का जप आरम्भ करे । जप की विधि यह है कि जिस शक्ति की पूजा की जा रही है, उसके सिर का स्पर्श किये हुए सौ बार, मस्तक का स्पर्श किये सौ बार, सीमन्त का स्पर्श किये सौ बार, मुख का स्पर्श किये सौ बार, कण्ठ का स्पर्श किये हुए सौ बार तथा उसके हृदयस्थल का स्पर्श करते हुए सौ बार जप किया जाय ।

शतयुग्मं स्तनद्वन्द्वे शतं नाभौ जपेत्सुधीः ।
योनिपीठे शतं जप्त्वा साधकः स्थिरमानसः ॥6॥

इसी प्रकार उसके दोनों उरोजों में से प्रत्येक का स्पर्श कर सौ-सौ बार, नाभि का स्पर्श कर सौ बार तथा योनिपीठ का स्पर्श किये हुए सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिये ।

एवं सहस्रं संजप्य देवीं तत्र विचिन्तयेत् ।
स्वयं शिवस्वरूपञ्च चिन्तयेत्साधकोत्तमः ॥7॥

इस प्रकार शक्ति के शीर्षादि अंगों का स्पर्श करते हुए कुल एक हजार बार मन्त्र के जप से पूज्य शक्ति को अभिमन्त्रित कर उसे भगवती का साक्षात्स्वरूप मानना चाहिये ।

शिवमन्त्रेण देवेशि ! स्वलिङ्गं पूजयेदथ ।
ताम्बूलं तन्मुखे दत्वा साधको हृष्टमानसः ॥8॥
तदनुज्ञां समादाय योनौ लिङ्गं विनिक्षिपेत् ।

हे भगवति ! तदनन्तर शिवमन्त्र 'ओं नमः शिवाय' का जप करते हुए स्वकीय लिंग का षोडशोपचार पूजन कर शक्ति को सुवासित पान खिलाकर पंचम आचार सम्पादित करने के लिये प्रसन्न मन से अर्चना की भावना से, न कि भोग की भावना से शक्ति की इच्छा जानकर उसकी अनुमति लेकर ही यज्ञ करने के भाव से उसकी जननेन्द्रिय में अपनी जननेन्द्रिय प्रविष्ट करके जप जारी रखना चाहिये ।

इस प्रकार शक्ति के शीर्षादि अंगों का स्पर्श करते हुए कुल एक हजार बार मन्त्र के जप से पूज्य शक्ति को अभिमन्त्रित कर उसे भगवती का साक्षात्स्वरूप मानना चाहिये ।

अक्षवृत्तिहवनमन्त्रः

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ॥9॥

सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।
स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण हुनेत् सर्वसमृद्धये ॥10॥

जप पूर्ण होने पर समस्त प्रकार की समृद्धि के लिये 'धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा सुषुम्नावर्त्मना नित्यम् अक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा' अर्थात् यह भावना करे कि इस पंचमाचार यज्ञ में 'मैं अपनी तेजसाग्नि से प्रज्ज्वलित और प्रबुद्ध आत्मन्रूपी अग्नि में मनरूपी स्रुक् अर्थात् चमस् द्वारा सुषम्ना के मार्ग से अपनी इन्द्रियों, समस्त वृत्तियों और अ से लेकर क्ष तक की वर्णमाला से अभिधेय समस्त पदार्थों का हवन कर रहा हूँ ।

ततो जपेत्सहस्रं वै शक्तियुक्तो भवेन्नरः ।
शतं वापि प्रजप्तव्यं ततो न्यूनं न कारयेत् ॥11॥

तदनन्तर शक्ति के साथ संयुक्तावस्था में ही आत्मनियन्त्रण और संयम के साथ मन्त्र का एक हजार बार अथवा कम से कम सौ बार जप करना चाहिये, सौ से कम नहीं ।

शुक्रोत्सारणकाले हवनमन्त्रः

पूर्णाहुतिं ततो दद्यान्मन्त्रेणाऽनेन साधकः।
प्रकाशान्न तु हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा ॥12॥
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् ।
स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण पूर्णाहुतिं समाचरेत् ॥13॥
शुक्रोत्सारणकाले च देव्यै शुक्रं समर्पयेत् ।
एवं कृते मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥14॥

शक्ति के साथ संयुक्तावस्था में ही जप पूर्ण होने पर 'प्रकाशाकान्नतु हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा' मन्त्र से शुक्र का उत्सर्जन कर पूर्णाहुति देनी चाहिये । शुक्र के उत्सर्जन के समय उसे (स्खलित न करके योगमुद्राओं से ऊर्ध्वारोही कर सुषुम्नामार्ग सहस्रार में ले जाकर वहाँ स्थित कुल) शक्ति को समर्पित कर देना चाहिये । ऐसा करने पर निश्चित रूप से मन्त्र की सिद्धि होती है, इसमें सोच-विचार या सन्देह की आवश्यकता ही नहीं ।

शक्तिपूजायाः फलानि

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
रोगी रोगात्प्रमुच्येत धनेन च धनाधिपः ॥15॥

उक्त विधि से भगवती की उपासना करने वाले साधक की समस्त इच्छायें पूर्ण होती हैं और वह जो कुछ भी चाहता है, उसे प्राप्त होता है । इस साधना से रोगी व्यक्ति रोग से छुटकारा पा जाता है और निर्धन व्यक्ति प्रभूत धन की उपलब्धि से धनाधिप बन जाता है ।

वसुतुल्यो बलो लोके दुर्जयः शत्रुमर्दनः ।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः ॥16॥

इस साधना के प्रभाव से साधक बल में इन्द्र के समान दुर्जय और शत्रुओं का विनाश करने वाला, रमणियों के लिये कामदेव के समान तथा शत्रुओं के लिये काल के समान हो जाता है ।

एतत्कल्पेन देवेशि ! किं न सिध्यति भूतले ।
अष्टैश्वर्यमवाप्नोति स एव श्रीसदाशिवः ॥17॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



हे पार्वति ! उपरि वर्णित साधना से संसार में क्या नहीं हो सकता ? ऐसा साधक अणिमादि आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है । वास्तव में, वह सदाशिव का ही साक्षात् रूप हो जाता है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का चतुर्थ पटल समाप्त ।



अथ पञ्चमः पटलः

मासादिकपुरस्क्रियां प्रति देव्याः जिज्ञासा

श्रीपार्वती उवाच

हे ईश्वर ! जगत्तात ! मम प्राणेश्वर ! प्रभो !
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मासादिकपुरस्क्रियाम् ।।1।।

पार्वती ने कहा—हे ईश्वर ! हे जगत्पिता ! मेरे प्राणों के स्वामी ! हे प्रभो ! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि 12 मास में समाप्त होने वाले मन्त्र के पुरश्चरण के लिये प्रत्येक मास कितनी संख्या में जप किया जाना चाहिये ।

उत्तरोत्तरमासे जपसंख्यानिर्धारणम्

शिव उवाच

एकमासे तु षाड्लक्षं द्विमासे रविलक्षकम् ।
मासत्रये तु देवेशि ! रन्ध्रयुग्मकलक्षकम् ।।2।।
चतुर्मासे महेशानि ! चतुर्विंशतिलक्षकम् ।
पञ्चमासे महेशाानि त्रिंशल्लक्षं सदा जपेत् ।।3।।

शंकर ने कहा—हे पार्वति ! मन्त्र के पुरश्चरण में नियम यह है कि प्रथम मास में मन्त्र का जप छह लाख किया जाय । द्वितीय मास में सूर्यसंख्या के बराबर अर्थात् बारह लाख, तीसरे महीने में छिद्रयुग्म अर्थात् मानव-शरीर में वर्तमान 9 छिद्रों से दुगुना अर्थात् 18 लाख, चौथे महीने में 24 लाख तथा पाँचवें महीने में 30 लाख जप करना चाहिये ।

षण्मासे प्रजपेन्मन्त्रं षट्त्रिंशल्लक्षकं सदा ।
सप्तमासे महेशानि द्विचतुर्लक्षकं सुधीः ।।4।।
अष्टमासे सुरेशानि ! गजवेदश्च लक्षकम् ।
मासे तु नवमे देवि वेदबाणश्च लक्षकम् ।।5।।

पुरस्क्रिया करने वाले साधक को चाहिये कि वह छठे महीने 36 लाख जप करे तथा सातवें महीने 42 लाख जप करना चाहिये । हे सुरेश्वरि ! आठवें मास गज (8) तथा वेद (4) अर्थात् 48 लाख तथा नौवें महीने वेद (4) तथा बाण (5) अर्थात् (अंकानां वामतो गतिः) 54 लाख जप करना चाहिये ।

दशमासे तु सम्प्राप्ते षष्टिलक्षं च सञ्जपेत् ।
मासे चैकादशे प्राप्ते लक्षं नवति सञ्जपेत् ।।6।।

वर्षे पूर्णे महेशानि ! शतलक्षं जपेत्सुधीः !
अनेनैव विधानेन यो जपेद् भुवि मानवः ॥7॥
केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धाः भवन्ति हि ।

हे माहेश्वरि ! दसवें महीने में साठ लाख जप करना चाहिये तथा ग्यारहवें मास में 90 लाख तथा बारहवें मास में सौ लाख जप करना चाहिये । इस विधि से जो व्यक्ति मन्त्र का जप करता है, उसे केवल जपमात्र से ही मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ।

जपपूजादौ पंचाचारस्याऽनिर्वायत्वम्

पञ्चाचारेण देवेशि ! सर्वं कार्यं जपादिकम् ॥8॥
पूर्ववच्छक्तिपूजां च कुमारीं चैव पूजयेत् ।
यथाशक्ति ब्राह्मणं च भोजयेद् विधिपूर्वकम् ॥9॥
तथा तेन प्रकारेण शक्तिभोजनमाचरेत् ।

हे देवेश्वरि ! इस पुरस्क्रिया में जप आदि समस्त कार्य पंचाचार विधि से ही सम्पादित करना चाहिये । इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त शक्तिपूजा, कुमारीपूजा, यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन तथा पूर्वोक्त विधि से ही शक्ति-भोजन का कार्य सम्पादित करना चाहिये ।

शक्तिं विना जपादिनिषेधः

शक्तिं विना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपकः ॥10॥
शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामदः ।

हे पार्वति ! शक्ति के बिना मैं सर्वदा शव की भाँति हूँ । लेकिन शक्ति से युक्त होकर मैं साधक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला मंगलस्वरूप कल्याणकारी शिव हो जाता हूँ ।

शक्तियुक्तं जपेन्मन्त्रं न मन्त्रं केवलं जपेत् ॥11॥
सावित्रीसहितो ब्रह्मा सिद्धोऽभून्नगनन्दिनि ! ।
द्वारावत्यां कृष्णदेवः सिद्धोऽभूत्सत्यया सह ॥12॥
यथा गोपबधूसङ्गान् मम सिद्धिर्वरानने ।
स शिवोऽहं महादेवि ! केवलं शक्तियोगतः ॥13॥

इसलिये, हे महादेवि ! सर्वदा शक्तियुक्त होकर ही मन्त्र का जप करना चाहिये । हे पर्वतनन्दिनि ! अपनी शक्ति सावित्री से संयुक्त होकर ही ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की सिद्धि प्राप्त की और गोकुल में गोपकन्या राधा और द्वारका में सत्यभामा के सहयोग से ही कृष्ण ने सिद्धि प्राप्त की । इसी प्रकार आपके साथ संयुक्त होकर ही मैंने भी सिद्धि प्राप्त की । हे माहेश्वरि ! मैं कल्याणकारी शिव केवल शक्तिरूप आपके सहयोग के कारण ही हूँ, अन्यथा अमंगलरूप शव ही हूँ ।

शक्तियोगेन देवेशि यदि सिद्धिर्न जायते ।
तदैव परमेशानि ! मम वाक्यं वृथा भवेत् ॥14॥

हे पार्वति ! मेरा यह कथन बिल्कुल सत्य है । यदि साधक शक्ति से संयुक्त होकर मन्त्र का जप करे और उसे सिद्धि प्राप्त न हो, तभी मेरा कथन असत्य हो सकता है । लेकिन, ऐसा है नहीं । शक्ति से संयुक्त होकर जप करने वाले साधक को मन्त्र की सिद्धि अवश्य होती है ।

स्त्रीसंगादेवसिद्धिप्राप्तिप्रतिपादनम्

गङ्गाकाशीप्रयागादौ पुष्करं नैमिषं तथा ।
बदरी च तथा रेवा उत्कलं गण्डकी तथा ॥15॥
सिन्धुः सरस्वती चैव पीठानि विविधानि च ।
सर्वं त्यक्त्वा महेशानि ! स्त्रीसङ्गं यत्नतश्चरेत् ॥16॥
स्त्रीसङ्गे सिद्धिमाप्नोति मम वाक्यं न चाऽन्यथा ।

हे कुलेश्वरि ! गंगा, काशी, प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, बदरी, रेवा, उत्कल, गण्डकी, सिन्धु, सरस्वती आदि नद-नदियों और उनके तीर पर बसे हुए पुनीत तीर्थों की यात्रा छोड़ केवल शक्ति का संग करने से ही मानव की समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं । अत: इन सब को भूल प्रयत्न करके स्त्रीसंग करना चाहिये । स्त्रीसंगम से ही सिद्धि प्राप्त होती है, यह मेरा वचन है, जो कभी असत्य नहीं हो सकता ।

शक्तिमहिमावर्णनम्

यद् दत्तं जलगण्डूषं शक्तिवक्त्रे सुरेश्वरि ! ॥17॥
सिन्धुरूपं परेशानि तज्जलं नाऽत्र संशयः ।
अन्नं तु शैलतनये स्थलाचलसमं भवेत् ॥18॥

शक्ति को जल का एक गिलास पानी पिलाने से वह मीठे जल के सागर के समान हो जाता है और एक मुट्ठी अन्न विशाल पर्वत के समान हो जाता है ।

एवं संख्या तु सर्वत्र ज्ञातव्या कुलसाधकैः ।
स्वेष्टदेवताऽभावे भोजयेत् तां च यत्नतः ॥19॥

हे कुलेश्वरि ! कुलसाधकों को यह विश्वास करना चाहिये कि स्त्री को प्रेमपूर्वक समर्पित प्रत्येक वस्तु इसी प्रकार असंख्य गुणित हो जाती है । अपने इष्ट के रूप में ही सदा स्त्री की पूजा करनी चाहिये और, यदि पूजाकाल में इष्टदेवता की प्रतिमादि उपलब्ध न हो, तो इष्ट देवता के रूप में अपनी स्त्री की ही पूजा कर उसे भोजनादि से सम्मानित करना चाहिये ।

शक्तिपूजाऽभावे सिद्धेरभावः

क्रोधान्मोहाच्छलाद्वापि यदि पूजां न कारयेत् ।
कल्पकोटिशतेनाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥20॥

क्रोध, अज्ञान अथवा छल के वशीभूत होकर यदि कोई स्वशक्ति की अर्चना नहीं करता, तो वह चाहे कुछ भी कर ले, उसे करोड़ों जन्मों तक भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती ।

एतत्सिद्धतमं देवि ! तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।
न वक्तव्यं पशोरग्रे शपथो मे त्वयि प्रिये ॥21॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
पंचमः पटलः समाप्तः ।



हे देवि ! तुम्हारे प्रति असीम प्रेम के कारण अनुभूत और संसार में अलौकिक सिद्धियों को प्राप्त कराने वाला यह गोपनीय और महान् उपाय मैंने तुम्हारे समक्ष प्रकट किया है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का पंचम पटल समाप्त ।



अथ षष्ठः पटलः

दक्षिणाकालिकास्वरूपं प्रति पार्वत्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

शिव ! शङ्कर ! ईशान ! ब्रूहि मे परमेश्वर !
दक्षिणायाः प्रकारं तु सूचितं न प्रकाशितम् ॥1॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।

भगवती पार्वती ने कहा—हे शिव ! हे शंकर ! हे ईशान ! हे परमेश्वर ! आपने दक्षिणा काली के सम्बन्ध में कुछ संकेत तो किया था, किन्तु स्पष्ट रूप से कुछ बताया नहीं था। अब मैं दक्षिणा देवी के बारे में जानना चाहती हूँ। यदि आपकी मुझपर असीम कृपा है तो बताइये।

दक्षिणाकालिकामहिमा

दक्षिणा सिद्धिदा सिद्धा त्रैलोक्येषु सुदुर्लभा ॥2॥
यामाराध्य महादेव ! सृष्टिकर्ता प्रजापतिः ।
यामाराध्य महाविष्णुः पालयत्यखिलं जगत् ॥3॥
संहारकाले च हरो रुद्रमूर्तिधरः परः ।
तां विद्यां वद ईशान ! यद्यहं तव वल्लभा ॥4॥

हे प्रभो ! आपने बताया था कि देवी दक्षिणा काली साधकों को सिद्धि प्रदान करने के लिये सर्वदा उत्सुक रहती हैं और उन्हीं की कृपा से ब्रह्मा काली सृष्टि-रचना में, विष्णु सृष्टि के पालन में और विश्वलयकर्ता भगवान् हर रुद्ररूप धारण कर विश्व के संलयन में समर्थ होते हैं। हे ईशान ! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ, तो अब आप मुझसे उसी दक्षिणा विद्या का कथन कीजिये।

शिवस्य दक्षिणास्वरूपनिर्वचने प्रतिषेधः

श्रीशिव उवाच

दक्षिणायाः प्रकारं तु कालीतन्त्रादियामले ।
अतः परं महेशानि ! विरता भव सुन्दरि ! ॥5॥

शिव ने कहा—हे पार्वति ! दक्षिणा देवी के मन्त्र तथा साधनादि के विषय में कालीतन्त्र तथा यामलादि ग्रन्थों में बहुत कुछ कह दिया गया है। हे सुन्दरि ! अब इससे अधिक जानने की इच्छा मत करो।

पार्वत्या स्वप्राणत्यागप्रतिज्ञा

श्रीपार्वती उवाच

एतत्प्रकारं देवेश यदि मे न प्रकाशितम् ।
प्राणत्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः ॥6॥

पार्वती ने कहा—हे देवेश्वर ! यदि आप मुझे दक्षिणाकाली के मन्त्र तथा साधनादि के विषय में नहीं बतायेंगे, तो निश्चित रूप से मैं आपके ही सामने अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी ।

श्रीशिवद्वारा दक्षिणाकल्पनिरूपणम्

शिव उवाच

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि दक्षिणाकल्पमुत्तमम् ।
यस्याः प्रसङ्गमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ॥7॥

शिव ने कहा—हे भगवति ! सुनो, अब मै आपके समक्ष उस उत्तमोत्तम दक्षिणाकल्प का वर्णन करता हूँ, जिसकी चर्चामात्र से मानव जनन-मरणरूपी भवसागर में निमज्जित नहीं होता, अपितु अमर हो जाता है ।

दक्षिणाकालिकामन्त्रोद्‌घाटनम्

स्वरान्तं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रविभूषितम् ।
बिन्दुनादकलायुक्तं मन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥8॥

हे पार्वति ! अग्निवर्ण (र्) और वाम नयन संज्ञक वर्ण (ई) से युक्त अकारादि सोलह स्वरों के पश्चात् आने वाला वर्ण (क्) ही बिन्दु (ं) और नादकला (ँ) से मिलकर 'क्ली ँ' स्वरूप त्रैलाक्यमोहन दक्षिणाकाली मन्त्र कहा जाता है ।

दक्षिणाकालीमन्त्रस्य ऋष्यादिकम्

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ।
दक्षिणा कालिका प्रोक्ता देवता सर्वसिद्धिदा ॥9॥

क्लीँ स्वरूप दक्षिणाकाली मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्दस् उष्णिक् तथा देवता सर्वसिद्धिप्रदायिनी भगवती दक्षिणा काली स्वयं हैं ।

मायाबीजं बीजमस्याः कूर्चबीजं तु शक्तिकम् ।
निजबीजं महेशानि ! कीलकं सर्वमोहनम् ॥10॥

दक्षिणाकाली मन्त्र 'क्लीँ' का बीज मायाबीज 'ह्रीं' तथा शक्ति कूर्चबीज 'हूँ' है । हे माहेश्वरि ! इस मन्त्र का कीलक भगवती दक्षिणा काली का स्वकीय बीज 'क्लीँ' ही है ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
कालीतन्त्रादितन्त्रेषु पूजायागादि पार्वति ! ॥11॥
कथितं च मया पूर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥12॥

हे देवि ! इस मन्त्र का विनियोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्टय में किया जाता है । हे पार्वति ! दक्षिणाकाली के जपपूजादि के विषय में कालीतन्त्र आदि तान्त्रिक ग्रन्थों में मैंने पहले ही विस्तार से बता दिया है । अब तुम और क्या जानना चाहती हो ?

शिवं प्रति पार्वत्याः प्रश्नाः
प्रथमः प्रश्नः

(1. दक्षिणाकालिकाध्यानमूर्तिः कीदृशी ?
2. पूजाचारः कीदृशः ?
3. पूजाधिकारी च कः?)

श्रीदेव्युवाच

ध्यानानुरूपिणीं मूर्तिं यदि पूजादिकं चरेत् ।
आचारं कीदृशं तत्र को वा तत्र प्रपूजयेत् ॥13॥

पार्वती ने पूछा—हे देव ! यदि भगवती दक्षिणाकाली की अर्चना करनी हो तो—(4. उनकी मूर्ति का ध्यान किस रूप में किया जाय ? 5. उनके पूजन की विधि क्या है ? अर्थात्—वामाचार या दक्षिणाचारों में से किस आचार से उन्हें अर्चित किया जाय? और, 6. भगवती के पूजन का अधिकारी कौन है ? 7. भूतशुद्धौ साधकस्य देहः कथं न नश्यति ? 8. नवदेहसृष्टये का विधिः ? 9. नवदेहसृजनार्थममृतवर्षा कुतो भवति ?)

भूतशुद्धौ महादेव ! यदि देहं तु नाशयेत् ।
कुत्र स्थले भवेद् वृष्टिरमृतं कुत्र सञ्चरेत् ॥14॥

हे भगवन् ! भूतशुद्धि के दौरान यदि साधक का भौतिक शरीर विनष्ट हो जाय, अथवा साधक स्वयं अपने भौतिक शरीर का विलयन कर दे, तो उसके शुद्ध शरीर के निर्माण के लिये अमृत का स्रवण कहाँ से होता है ? मैं यह सब जानना चाहती हूँ ।

(10. आलीढं कीदृशम् ?
11. प्रत्यालीढं च कीदृशम् ?
12. कालिका किमर्थं श्मशानवासिनी ?)

आलीढं कीदृशं नाथ ! प्रत्यालीढं तु कीदृशम् ।
कथं वा कालिका देवी श्मशानालयवासिनी ॥15॥

हे स्वामिन् ! आलीढ मुद्रा क्या है ? और प्रत्यालीढ किसे कहते हैं ? भगवती कालिका श्मशानवासिनी क्यों हैं ?)

(13. निशा महानिशा च कीदृशी ?
14. भावभेदे पूजायाः किं किं स्वरूपम् ?)

निशा वा कीदृशी नाथ ! कीदृशी वा महानिशा ।
भावभेदे महादेव ! तद् वदस्व दयानिधे ! ॥16॥

हे महादेव ! निशा किसे कहते हैं और महानिशा किसे कहते हैं ? और, हे महादेव ! पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्यभावादि भावों में भेद के कारण पूजा के स्वरूप में क्या भेद होता है ? यह सब आप मुझे समझाइये ।

श्रीशिवेन दत्तानि उत्तराणि
पूजाचारकथनोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तत्तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ॥17॥

शिव ने कहा—हे पार्वति ! जो कुछ भी आप मुझसे जानना चाहती हैं, वह सब मैं बताता हूँ, ध्यान देकर सुनिये ।

पूजाचारप्रकथनम्

पूजायाः पूर्वदिवसे आदौ क्षौरादिकं चरेत् ।
हविष्यान्नं भोजनं च अथवाऽपि निरामिषम् ॥18॥
ततः परस्मिन् दिवसे प्रातः स्नात्वा तु साधकः ।
नित्यपूजां समाप्यादौ देववच्छुद्धमानसः ॥19॥

हे देवि ! साधक को चाहिये कि वह पूजा आरम्भ करने से एक दिन पहले क्षौरादि करके हवि के लिये निश्चित अन्नों से बना निरामिष भोजन करे । उसके अगले दिन प्रातःकाल स्नान करके पवित्र और निर्मल हृदय से नित्य पूजन सम्पादित करे ।

कालिकार्चनाधिकारिनिरूपणम्

गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा गुरुपत्नी च सुव्रते !
आगमोक्तविधानेन अधिकारी गुरुः स्वयम् ॥20॥

हे देवि ! आपका प्रश्न था कि पूजा करने कराने का अधिकारी कौन है ? शक्तिपूजन में गुरु, गुरुपुत्र या गुरुपत्नी का ही अधिकार है । वास्तव में, आगमों में विहित नियमानुसार शक्तिपूजन करने या कराने का अधिकार केवल गुरु को ही है ।

गुरोरभावे देवेशि ! स्वयं पूजादिकं चरेत् ।
एभिर्विना महेशानि ! तान्त्रिकैर्देशिकैर्यदि ॥21॥
तस्य पूजाफलं सर्वं भुज्यते यक्षराक्षसैः ।
अत एव महेशानि ! गुरुः कर्ता विधीयते ॥22॥

हे देवेश्वरि ! किसी कारणवश गुरु यदि उपलब्ध न हों तो साधक को चाहिये कि वह स्वयं पूजाकार्य सम्पादित करे । गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी और स्वयं साधक के अतिरिक्त यदि अन्य किसी दीक्षागुरु या तन्त्रविद् साधक के लिये पूजा करता है, या उससे साधक कराता है, तो उस पूजा का फल साधक को नहीं, यक्ष और राक्षसों को प्राप्त होता है । हे माहेश्वरि ! इसी कारण केवल गुरु को ही पूजा का अधिकार है ।

ब्रह्मरूपो गुरुः साक्षाद् यदि पूजादिकं चरेत् ।
तत्तत्सर्वं महेशानि ! शतकोटिगुणं भवेत् ॥23॥

हे माहेश्वरि ! गुरु साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है । यदि वह स्वयं पूजादिक करता-कराता है, तो उसका फल कोटिगुणित हो जाता है ।

स्वयं पूजाकरणे नियमाः

अथवा परमेशानि ! स्वयं पूजादिकं चरेत् ।
स्वयं पूजादिकं कृत्वा पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥24॥
तत्सर्वं परमेशानि ! गुरोरग्रे निवेदयेत् ।
गुरौ दत्ते महेशानि ! सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥25॥

हे माहेश्वरि ! जैसा कि मैंने अभी कहा है कि गुरु के अभाव में साधक को स्वयं शक्तिपूजा सम्पन्न करनी चाहिये । यदि साधक स्वयं पूजा करता है तो पूजन के निमित्त जो भी सामग्री प्रयुक्त की गयी है, अथवा लायी गयी है, पूजन के बाद वह सब कुछ गुरु को समर्पित कर देनी चाहिये । इस प्रकार सब कुछ गुरु को समर्पित कर देने से पूजा का फल करोड़ गुना बढ़ जाता है ।

गुरुपत्न्या पूजाकरणे नियमाः

गुरुपत्नी महेशानि ! यदि पूजादिकं चरेत् ।
बलिदानादिकं सर्वं तत्र होमं विवर्जयेत् ॥26॥

हे शिवानि ! यदि पूजन का कार्य गुरु पत्नी कराती है तो, बलिदान आदि तो सम्पन्न करा सकती हैं, किन्तु ऐसी पूजा में उन्हें हवन नहीं करना चाहिये ।

होमीयद्रव्यमानीय देव्यग्रे स्थापयेद् बुधः ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य महादेव्यै निवेदयेत् ॥27॥
तेन होमफलं जातं न चाग्नौ होमयेद् बुधः ।

गुरुपत्नी द्वारा कराये गये पूजन में अप्रयुक्त समस्त हवन-सामग्री भगवती शक्ति के सामने रखकर देवी के मन्त्र से देवी को ही समर्पित कर देनी चाहिये। हे देवि ! हवन-सामग्री देवी को समर्पित कर देने से साधक को हवन का फल प्राप्त हो जाता है।

तन्त्रोक्तपूजायां गुरुरेवाधिकारी

गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरैरपि ॥28॥
गुरुणा यत्कृतं देवि ! तत्सर्वमक्षयं भवेत्।

तन्त्रशास्त्र में गुरु का उल्लंघन कर हवन करने का अधिकार देवताओं को भी नहीं दिया गया है। गुरु द्वारा जो भी किया या कराया जाता है, उसका फल अविनाशी होता है।

ऋत्विक् पुत्रादयो देवि ! स्मृत्युक्ता बहवः प्रिये ! ॥29॥
तन्त्रोक्तं परमेशानि ! नाऽन्यद् वक्त्रं विलोकयेत्।

हे भगवति ! यद्यपि स्मृतियों में गुरुपुत्र, गुरुपत्नी तथा अन्य व्यक्तियों के ऋत्विक् बनाने की बातें कही गयी हैं, लेकिन, तन्त्रोक्त विधान में गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी की अपेक्षा नहीं की जाती है। तन्त्रोक्त विधानानुसार पूजन में गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता। इसके अलावा तान्त्रिक पूजाविधान सम्पादित कराते समय गुरु और साधक के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति भी निषिद्ध है।

जनसन्निधौ शक्तिपूजा निषिद्धा

इष्टपूजादिकं सर्वं यः कुर्याज्जनसन्निधौ ॥30॥
तस्य सर्वार्थहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका।
वरं पूजा न कर्तव्या न कुर्याज्जनसन्निधौ ॥31॥

हे भगवति ! जो साधक भगवती दक्षिणाकाली की पूजा जनसमुदाय के समक्ष करता है, उसके समस्त उद्देश्य नष्ट हो जाते हैं और इससे भगवती चण्डिका भी रुष्ट हो जाती हैं। हे देवि ! पूजा भले ही न की जाय, लेकिन लोगों के सामने तो पूजा कभी भी नहीं करनी चाहिये।

अन्यसंन्निहिते देवि ! यदि पूजापरो भवेत्।
विष्णुतन्त्रोक्तपूजादि तत्तन्मुद्रां प्रदर्शयेत् ॥32॥
तेन पूजादिकं जातं न च व्यक्तं कदाचन।

हे देवि। वैष्णव तन्त्रों में विहित पूजाविधान कुछ सीमा तक लोगों के सामने सम्पादित किया जा सकता है, लेकिन वैष्णव तन्त्रों में विहित पूजाविधि में भी बहुत से स्थलों पर मुद्राओं या संकेतों के माध्यम से ही काम लिया जाना चाहिये, प्रत्यक्ष अथवा स्पष्टरूप से उसके प्रदर्शन से बचना चाहिये।

भूतशुद्धौ पापदेह एव नश्यति

वामकुक्षौ स्थितं पापं पुरुषं कज्जलप्रभम् ॥33॥
तस्य संहारणार्थाय महती प्रकटीकृता ।
लिङ्गदेहो महेशानि ! तस्य देहो न संशयः ॥34॥
पापदेहो भवेद् दग्धं स्वदेहो नैव नाशयेत् ।

हे देवि ! आपने पूछा था कि 'भूतिशुद्धि के समय साधक का भौतिक शरीर नष्ट क्यों नहीं होता ? वास्तव में, व्यक्ति की वामकुक्षि में पाप पुरुष का निवास होता है । उस पाप पुरुष के विनाश के लिये भूतशुद्धि की महती क्रिया सम्पादित की जाती है । हे माहेश्वरि ! पाप पुरुष की देह लिंग या सूक्ष्म सांकेतिक देह होती है । भूतशुद्धि की क्रिया से पाप पुरुष की यह लिंगदेह ही नष्ट होती है, साधक का भौतिक शरीर नहीं ।

आलीढप्रत्यालीढयोः स्वरूपम्

आलीढं वामपादं तु प्रत्यालीढं तु दक्षिणम्॥35॥

हे देवि ! आपने जानना चाहा था कि 'आलीढ' और 'प्रत्यालीढ' क्या हैं ? हे भगवति ! भगवती दक्षिणाकाली की वह मुद्रा आलीढ कही जाती है, जिसमें उनका बायाँ चरण आगे होता है तथा उस मुद्रा को प्रत्यालीढ कहते हैं, जिसमें उनका दायाँ चरण आगे होता है ।

कालिकायाः श्मशानवासकारणम्

संहाररूपिणी काली जगन्मोहनकारिणी ।
वह्निरूपा महामाया सत्यं सत्यं न संशयः ॥36॥
अत एव महेशानि ! श्मशानालयवासिनी ।
आलीढपादा सा देवी प्रत्यालीढा क्षणे क्षणे ॥37॥

हे देवि ! आपने जानना चाहा था कि कालिका देवी श्मशानवासिनी क्यों हैं ? इसमें रहस्य यह है कि भगवती दक्षिणाकाली संहाररूपिणी और समस्त विश्व को सम्मोहित करने वाली हैं । वास्तव में, वे अग्निस्वरूपा महामाया हैं । जीव अग्निरूप है । श्मशान में शरीर नष्ट हो जाने पर भी जीव का चिदग्नि स्वरूप सदैव जाग्रत् रहता है । श्मशान जीव के भौतिक शरीर का संहारस्थल है । अग्नि में भौतिक शरीर के नाश से जीवात्मा के विनाश का भ्रम बनाये रखने के लिये माया स्वरूपिणी भगवती दक्षिणाकाली श्मशानवासिनी हैं । भगवती दक्षिणाकाली स्वभावतः आलीढपादा हैं, लेकिन, साधकों के कल्याण के लिये वे प्रतिक्षण प्रत्यालीढपदा होकर सन्नद्ध रहती हैं ।

श्यामायाः स्वरूपकथनम्

अनन्तरूपिणीं श्यामा को वक्तुं शक्यते प्रिये ।
अनन्तरूपिणी श्यामा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥38॥
गुरुणा यस्य यत्प्रोक्तं तत् तस्य ब्रह्मसंहितम् ।

हे प्रिये ! भगवती काली अनन्तरूपिणी हैं । लेकिन, गुरु ने साधक को श्यामा के जिस रूप का उपदेश दिया है, उसके लिये वही ब्रह्मवाक्य है, अर्थात् उस साधक के लिये श्यामा उसी रूप में उपास्या हैं ।

निशामहानिशादिस्वरूपकथनम्

निशा तु परमेशानि ! सूर्ये चास्तमुपागते ॥39॥
प्रहरे च गते रात्रे घटिके द्वे च परे च ये ।
महानिशा समाख्याता ततश्चातिमहानिशा ॥40॥

भगवति ! आपका प्रश्न था कि निशा किसे कहते हैं, और महानिशा किसे ? हे देवि ! सूर्य के अस्त होने के पश्चात् दो प्रहर बीत जाने पर निशाकाल और तत्पश्चात् दो घटिकाएँ समाप्त होने के बाद महानिशाकाल आरम्भ होता है । तदनन्तर अतिनिशाकाल आरम्भ हो जाता है ।

पशुभावेन पूजायाः समयः

अर्धरात्रे गते देवि ! पशुभावेन पूजयेत् ।
दशदण्डे तु या पूजा तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥41॥

हे महादेवि ! आधीरात बीत जाने के बाद भगवती का पूजन पशुभाव से करना चाहिये । पशुभाव से की गयी दस दण्ड तक की पूजा अक्षय होती है ।

षष्ठक्रोशे महेशानि ! तत्सर्वममृतोपमम् ।
सप्तमक्रोशके देवि ! सर्वं क्षीरोपमं भवेत् ॥42॥
अष्टमक्रोशके देवि ! द्रव्यतुल्यं न संशयः ।
अतः परं महेशानि विषतुल्यं न संशयः ॥43॥
एतत्सर्वं महेशानि ! पशुभावे मयोदितम् ।

हे देवि ! छठे क्रोश या प्रहर में की गयी पूजा में प्रयुक्त द्रव्य अमृत के समान होते हैं, और सातवें प्रहर की पूजा में दुग्ध के समान, आठवें प्रहर की पूजा में पूजन के लिये प्रयुक्त द्रव्य सामान्य पूजाद्रव्य ही रह जाते हैं, इससे भिन्न पूजा-द्रव्य विषतुल्य होते हैं । हे देवि ! यह तथ्य केवल पशुभाव से की जाने वाली पूजा के लिये है ।

दिव्यवीरमते पूजायाः समयः

दिव्यवीरमते देवि ! तत्त्वज्ञानेन पूजयेत् ॥44॥

पञ्चतत्त्वं समानीय यदि पूजापरो भवेत् ।
कालाऽकालं महेशानि ! विचारं तत्र वर्जयेत् ॥45॥

हे परमेश्वरि ! दिव्यवीर भाव से अर्चना करने वाले साधकों के मत में भगवती दक्षिणाकाली की अर्चना तत्त्वज्ञान से अर्थात् पंचतत्त्वों के प्रयोग के साथ करनी चाहिये । इस भाव से की जाने वाली अर्चना में समय-असमय का विचार नहीं करना चाहिये ।

कुलाचारपूजायाः कालः

अर्धरात्रे गते देवि कुलपूजा प्रकीर्तिता ।
तत्तन्मन्त्रादिरूपेण सर्वं पूजादिकं चरेत् ॥46॥

हे भगवति ! कुलाचार से की जाने वाली भगवती दक्षिणाकाली की पूजा आधीरात बीत जाने पर विहित मन्त्रों के उच्चारण के साथ ही की जानी चाहिये ।

शक्तिपूजायाः गुह्यत्वम्

अतिस्नेहेन देवेशि ! तव स्थाने प्रकाशितम् ।
पशोरग्रे प्रकाशं वै कदाचिन्नैव कारयेत् ॥47॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
षष्ठः पटलः समाप्तः ।



हे देवि ! आपके प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण ही मैंने भगवती दक्षिणाकाली के गोपनीय पूजाविधान का निर्वचन किया है । इसे घृणा तथा लज्जा आदि आठ पाशों में बद्ध पशु के सामने कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का षष्ठ पटल समाप्त ।



अथ सप्तमः पटलः

श्रीपार्वत्यास्तत्त्वं प्रति जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

भूतनाथ ! जगद्वन्द्य ! जगन्निस्तारकारक !
त्वां विना संशयच्छेत्ता न हि त्राता च कुत्रचित् ॥1॥

देवी पार्वती ने शिव से कहा—हे प्राणियों के स्वामी । हे विश्ववन्द्य ! हे संसार के निस्तारक ! आपके अतिरिक्त संशयों को दूर करने वाला तथा रक्षक अन्य कोई नहीं ।

ब्रूहि मे जगतां नाथ ! तत्त्वं परमदुर्लभम् ।
येन ज्ञानप्रसादेन निर्वाणपदमीयते ॥2॥

हे स्वामिन् ! अब आप उस परम दुर्लभ तत्त्व के सम्बन्ध में हमें बताइये, जिसे जानकर प्राणी मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ।

कथ्यतां परमेशान ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।
तव स्नेहान्महादेव ! पण्डिताऽहं न चाऽन्यथा ॥3॥

हे स्वामिन् ! यदि आपका मेरे प्रति अनन्य प्रेम है, तो कृपया तत्त्व के बारे में बताइये । क्योंकि आपके मेरे प्रति स्नेह के कारण दिये गये ज्ञान से ही मैं विदुषी हूँ, अन्यथा नहीं ।

श्रीशिवस्य तत्त्वनिर्वचनेऽरुचिप्रदर्शनम्

श्रीशिव उवाच

त्रैलोक्ये वातुलः ख्यातो वातुलोऽहं सुरेश्वरि !
वातुलस्य वचः श्रुत्वा प्रतीता त्वं कथं प्रिये !॥4॥
त्वमेव परमं तत्त्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥
अतः परं महेशानि ! विरता भव सुन्दरि ! ॥5॥

शिव ने कहा—हे देवेशि ! मैं एक वाचाल जादूगर के रूप में विख्यात हूँ । यदि मैंने भी किसी तत्त्व के बारे में कभी आपसे चर्चा की है, तो वह केवल वाचालता के कारण ही । आपने मेरी बातों पर विश्वास कैसे कर लिया ? वास्तव में, आपके अतिरिक्त संसार में अन्य कोई परम तत्त्व जैसी वस्तु नहीं है । परमतत्त्व तो केवल आप ही हैं । इसलिये हे परमेश्वरि ! इस बारे में अब आप कोई प्रश्न या संशय न करें ।

पार्वत्याः स्वप्राणत्यागोक्तिः

श्रीदेव्युवाच

यदि तत्त्वं महादेव ! न मे कथयसि प्रभो !
प्राणत्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः।।।6।।

पार्वती ने कहा—हे महादेव ! हे प्रभो ! यदि आपने तत्त्व के विषय में मुझे नहीं बताया, तो मैं निश्चित रूप से आपके सामने ही अपने प्राणों को त्याग दूँगी ।

श्रीशिवस्य गुह्यविषयप्रकाशने वर्जना

श्रीशिव उवाच

सर्वं तन्त्रेषु देवेशि ! कथितं च मया पुरा ।
व्यक्तरूपेण देवेशि ! कथं पृच्छा पुनः पुनः ।।7।।
तव स्नेहान्महादेवि ! किं मया न प्रकाशितम् ।
इमां कथां महादेवि ! व्यक्तरूपे च मा वद ।।8।।

शिव ने कहा—हे पार्वति ! प्राय: सभी तन्त्रों में मैंने परमतत्त्व विषयक संकेत किये हैं । अब इस गोपनीय तत्त्व के विषय में स्पष्टरूप से चर्चा करने का आग्रह बार-बार क्यों कर रहीं हैं आप ? आप ऐसा न करें ।

पार्वत्याः पुनः स्वप्राणत्यागप्रतिज्ञा

श्रीदेव्युवाच

तवैव पुरतः स्थित्वा यदुक्तं च मया पुरा ।
तद्वाक्यं परमेशान ! कथं मिथ्या भविष्यति ।।9।।

भगवती पार्वती ने कहा—हे शिव ! अभी-अभी आपके सामने ही मैंने अपने प्राण त्याग देने की जो बात कही है, उसे असत्य कैसे होने दूँ ? हे परमेश्वर ! आपको अब इस विषय में सब कुछ बताना ही होगा ।

श्रीशिवस्य तत्त्वप्रकथनोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तत्त्वं परमदुर्लभम् ।
मन्त्रोद्धारक्रमेणैव तत्सर्वं कथयामि ते ।।10।।

शिव ने कहा—हे देवि ! सुनिये । अब मैं आपके सामने परमतत्त्व के बारे में मन्त्रों के उद्धार के क्रम में ही मन्त्रबीजों के माध्यम से परम दुर्लभ तत्त्वों के नाम का उल्लेख करता हूँ ।

श्रीशिवद्वारातत्त्वनामप्रकाशनम्

प्रथमतत्त्वनामोद्धार:

भान्तमकारसंयुक्तं थान्तं वायुयुतं कुरु ।
बिन्दुयुक्तं—

हे देवि ! पहले भान्त वर्णबीज (म्) को अकार से संयुक्त करके, थान्तवर्ण (द्) को वायुवर्ण (य्) से मिलाकर इसे बिन्दु अर्थात् अनुस्वार (ं) से युक्त कर दीजिये । इस प्रकार म् अ द् य् ं (म्) अर्थात् मद्यम् नामक प्रथम तत्त्व उद्‌घाटित हुआ ।

द्वितीयतत्त्वनामोद्धार:

—पुनर्भान्तमाकारं बिन्दुसंयुतम् ॥11॥
चन्द्रबीजं समुच्चार्य अङ्कारं तदनन्तरम् ।

हे देवि ! तदनन्तर पुन: भान्तवर्ण म् को 'आ' वर्ण से युक्त कर इस पर बिन्दु स्थापित करें और तब इसके आगे चन्द्रबीज (स) रख उस पर पन्द्रहवाँ स्वर 'अ' रखें । इस प्रकार म् आ स् अं मिलाकर द्वितीय तत्त्व 'मांसम्' का उद्‌घाटन होता है ।

तृतीयतत्त्वनामोद्धार:

पुनर्भान्तं तकारं च चन्द्रवायुयुतं कुरु ॥12॥

हे पार्वति ! इसके पश्चात् फिर से भान्तवर्ण म, तकारयुक्त चन्द्रवर्ण (स) को वायुवर्ण (य) को मिला दें । इस प्रकार तृतीय तत्त्व 'मत्स्य' स्पष्ट हो जाता है ।

चतुर्थतत्त्वनामोद्धार:

पुनर्भान्तं महेशानि ! पञ्चमस्वरसंयुतम् ।
खान्तं वह्निसमारूढमाकारसंयुतं कुरु ॥13॥

हे शिवानि ! तत्पश्चात् पुन: भान्तवर्ण 'म' का पंचम स्वरवर्ण (उ) से मिला दें तथा थान्तवर्ण (द्) को वह्निवर्ण (र्) पर रख इसे 'आ'कार से युक्त करें । इस प्रकार 'मुद्रा' नामक चतुर्थ तत्त्व उद्‌घाटित हो जाता है ।

पंचमतत्त्वनामोद्धार:

पुनर्भान्तं महेशानि ! सूर्यस्वरविभूषितम् ।
तान्तमुकारसंयुक्तं धान्तमकारसंयुतम् ॥14॥
पञ्चतत्त्वमिदं देवि ! सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।

हे माहेश्वरि ! तदनन्तर पुन: भान्तवर्ण 'म्' को सूर्य स्वर (बारहवें स्वर ऐ) से संयुक्त कर इसके आगे 'उ'कार सयुक्त तान्तवर्ण (थु) रख इसके आगे 'अ' से युक्त धान्तवर्ण (न)

रखें। इस प्रकार परम रहस्यमय पंचमतत्त्व 'मैथुन' है, यह स्पष्ट हो जाता है। हे देवि ! मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा तथा मैथुन नामक इन्हीं पंचतत्त्वों को समस्त शास्त्रों में गोपनीय रखा गया है।

पञ्चतत्त्वसेवनात्सर्ववर्णानां मुक्तिः

यदि विप्रो भवेद् देवि पञ्चतत्त्वपरायणः ।।15।।
सत्यं सत्यं महेशानि ! परतत्त्वे प्रलीयते ।
यथा जलं तोयमध्ये लीयते परमेश्वरि ।।16।।
तथैव तत्त्वसेवायां लीयते परमात्मनि ।

हे देवि ! ब्राह्मण यदि पंचतत्त्वों का सेवन करता है, तो वह परमतत्त्व में उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे जल में जल मिल जाता है, इसमें संशय नहीं।

क्षत्रियः परमेशानि सहयोगे वसेद् ध्रुवम् ।।17।।
वैश्यस्तु लभते देवीस्वरूपं नात्र संशयः ।
शूद्रस्तु परमेशानि ! सहलोकं सदा वसेत् ।।18।।

हे ईशानि ! यदि कोई क्षत्रिय पंचतत्त्व पारायण है, तो वह देवी का सान्निध्य प्राप्त करता है और यदि वैश्य पंचतत्त्वों का सेवन करता है, तो वह भगवती दक्षिणाकाली का स्वरूप ही हो जाता है। हे परमेश्वरि ! पंचतत्त्वों का सेवन करने वाला शूद्र भगवती के लोक में उनके साथ ही निवास करता है।

एतदन्यो महादेवि ! यदि तत्त्वपरायणः ।
सत्यं सत्यं महादेवि ! मुक्तिफलमखण्डितम् ।।19।।
सा च नारी परमेशानि ! देवीदेहे प्रलीयते ।

हे महादेवि ! उक्त चार वर्णों के अतिरिक्त यदि कोई चाण्डालादि वर्णहीन भी पंचतत्त्वों का सेवन करता है तो वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। और, यदि कोई नारी पंचतत्त्व परायणा है, तो वह भगवती दक्षिणाकाली के शरीर में ही समाकर कालीस्वरूप ही हो जाती है।

पञ्चतत्त्वाख्यप्रकाशनादिष्टहानिः

शोधनं च मया प्रोक्तं नीलतन्त्रादियामले ।।20।।
न कस्मैचित्प्रवक्तव्यं प्रकाशाच्छिवहा भवेत् ।।21।।

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
सप्तमः पटलः समाप्तः ।



हे परमेश्वरि ! उपर्युक्त पंचतत्त्वों का सेवन उन्हें शोधित किये बिना कदापि नही करना चाहिये । इनके शोधन की विधि मैंने कालीतन्त्र आदि में प्रकाशित कर दी हैं । हे देवि ! इन पंचतत्त्वों के नाम और इनके शोधन की विधि का उल्लेख किसी भी पशु के सामने नहीं करना चाहिये । यदि कोई साधक इनका प्रकाशन करता है, तो वह अपने ही कल्याण का घातक बनता है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का सप्तम पटल समाप्त ।



अथाष्टमः पटलः

सिद्धारिचक्रनिरूपणम्

श्रीशिव उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि सिद्धारिचक्रमुत्तमम् ।
अस्य विज्ञानमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥1॥
यद्विना परमेशानि ! मन्त्रसिद्धिर्भवेन्न हि ।

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! अब मैं आपके समक्ष उस 'सिद्धारिचक्र' का निरूपण कर रहा हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से निश्चय ही मन्त्र सिद्ध होते हैं । किन्तु, जिसे जाने बिना मन्त्र की सिद्धि नहीं हो सकती ।

सिद्धारिचक्रनिर्माणविधिर्वर्णलेखनक्रमश्च

चतुरस्त्रं लिखेत्कोष्ठं यावत्षोडशकोष्ठकम् ॥2॥
तावदङ्कान् प्रयत्नेन रचयेत्साधकोत्तमः ।
तत्र वर्णान् लिखेन्मन्त्री प्रकारं शृणु सादरम् ॥3॥

हे महादेवि ! सिद्धारिचक्र के निर्माण के लिये साधक को चाहिये कि वह पहले एक चतुरस्त्र अर्थात् चार कोणों वाला यन्त्र बनाये और फिर उसके भीतर सोलह कोष्ठ निर्मित करके उसमें इतने ही अंक और इतने ही वर्ण लिखे । वर्णों और अंकों की लेखन-विधि भी जान लीजिये ।

कोष्ठेषु स्वरवर्णलेखनविधिः

इन्द्वग्निरुद्रनवनेत्रयुगार्कदिक्षु
ऋत्वष्टषोडशचतुर्दशभौतिकेषु ।
पातालपञ्चदशवह्निहिमांशुकोष्ठे
वर्णान् लिखेल्लिपिभवान् क्रमशस्तु धीमान् ॥4॥

हे पार्वति ! उक्त सोलह कोष्ठों वाले चार चतुष्कों में क्रमशः प्रथम चतुष्क में इन्दु (1अ), अग्नि (3 आ), रुद्र (11 इ), नव (9 ई); द्वितीय चतुष्क में नेत्र (2 उ), युग (4ऊ), अर्क (12 ऋ), दिक् (10 ॠ); तृतीय चतुष्क में ऋतु (6 ऌ), अष्ट (8 ॡ), षोडश (16 ए), चतुर्दश (14 ऐ); तथा चतुर्थ चतुष्क में भौतिक (5 ओ), पाताल (7 औ), पंचदश (15 अं), वह्नि-हिमांशु (13 वें अंकानां वामतो गतिः) कोष्ठ में विसर्ग (अः) संख्यक स्वरवर्ण लिखने चाहिये ।

कोष्ठों में स्वरों का आलेखन

अ 1	उ 2	आ 3	ऊ 4
ओ 5	ऌ 6	औ 7	ॡ 8
ई 9	ॠ 10	इ 11	ऋ 12
अः 13	ऐ 14	अं 15	ए 16

कोष्ठेषु व्यंजनवर्णलेखनविधिः

कादिडान्तं खादिढान्तं गादिणान्तं घतान्तिके ।
ङादिथान्तं चादिदान्तं छादिधान्तं जनान्तिके ॥5॥
झादिपान्तं ञादिफान्तं टादिबान्तं ठभान्तिके ।
डादिमान्तं ढादियान्तं णादिरान्तं तलान्तिके ॥6॥
वर्णत्रयं महेशानि ! कोष्ठे पञ्चदशे प्रिये ।
आदिकोष्ठे चतुर्वर्णान् विलिखेत्साधकोत्तमः ॥7॥
वर्णाष्टकं गृहीत्वा तु कथितं तव सुव्रते ।

हे प्रिये ! उपर्युक्त सोलह कोष्ठकों में से क्रमशः प्रत्येक कोष्ठ-चतुष्क में वाम से दक्षिण क्रम में 'क-ड, ख-ढ, ग-ण, घ-त; द्वितीय चतुष्क में ङ-थ, च-द, छ-ध, ज-न; तृतीय चतुष्क में झ-प, ञ-फ, ट-ब, ठ-भ तथा चतुर्थ चतुष्क में ड-म, ढ-य, ण-र तथा त-ल लिखकर लकार के बाद के तीन वर्णों व-श-ष को पन्द्रहवें कोष्ठ में तथा शेष चार वर्णों स-ह-ळ तथा क्ष को प्रथम कोष्ठ में लिखना चाहिये ।

सोलह कोष्ठों में व्यंजन वर्णों के लेखन की विधि

क थ * स ह ळ क्ष	ङ प	ख द	च फ
ड	झ म	ढ	ञ य
घ न	ज भ	ग ध	छ ब
त	ठ ल	ण व श ष	ट र

*लेखन की यह विधि अपरम्परित है ।

इस प्रकार के लेखन से प्रथम चतुष्क के प्रथम कोष्ठ में—अ क थ स ह ळ तथा क्ष सात अक्षर, द्वितीय कोष्ठ में उ ङ प तीन अक्षर, तृतीय कोष्ठ में ऌ झ म तीन अक्षर तथा चतुर्थ कोष्ठ में ओ ड ब तीन अक्षर आयेंगे । द्वितीय चतुष्क के प्रथम कोष्ठ में उ ङ

प, द्वितीय कोष्ठ में ऊ च फ, तृतीय कोष्ठ में ऌ ञ य, चतुर्थ कोष्ठ में औ, ढ, तृतीय चतुष्क के प्रथम कोष्ठ में इ ग ध द्वितीय कोष्ठ में ऋ छ ब, तृतीय कोष्ठ में ए ट र तथा चतुर्थ कोष्ठ में अं ण व श ष एवं चतुर्थ चतुष्क के प्रथम कोष्ठ में ई ध न द्वितीय कोष्ठ मे ॠ ज भ, तृतीय कोष्ठ में ऐ ह ल तथा चतुर्थ कोष्ठ में अः और त अक्षर होंगे ।

गणनाक्रमकथनम्

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गणनाक्रममुत्तमम् ॥8॥
नामाद्याक्षरतो देवि ! यावन्मन्त्रान्तिमाक्षरम् ।
कोष्ठस्थितान् समादाय गणनामारभेत्सुधीः ॥9॥
नामाद्याक्षरसंयुक्तं सिद्धकोष्ठं प्रकीर्तितम्* ।
नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं लभेत् ॥10॥

हे देवि । अब मैं गणना क्रम का उल्लेख कर रहा हूँ, ध्यान से सुनो । उपर्युक्त 16 कोष्ठों में से जिस कोष्ठ में मन्त्रसाधक के नाम का प्रथम अक्षर पड़े वहाँ से उस कोष्ठ तक गिनना चाहिये, जिस कोष्ठ में साध्य मन्त्र का अन्तिम अक्षर पड़े । जिस कोष्ठ में साधक के नाम का आदि अक्षर हो, उसे सिद्ध कोष्ठ कहा जाता है । साधक का नाम जिस कोष्ठ में हो गणना का आगम वहाँ से करके शुभाशुभ फलों का कथन करना चाहिये ।

सिद्धसाध्यादिफलनिर्वचनम्

सिद्धः सिद्धयति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः ।
सुसिद्धो ग्रहणाद् देवि ! रिपुर्मूलं निकृन्तति ॥11॥
इत्यादिकं फलं देवि ! पूर्वाम्नाये मयोदितम् ।

हे देवि । पूर्वोक्त सिद्धसंज्ञक मन्त्र समय आने पर सिद्ध होता है और साध्यसंज्ञर्क मन्त्र यथोक्त जप और हवन करने पर सिद्ध होता है । सुसिद्ध मन्त्र तो मन्त्र की दीक्षा के तुरन्त बाद सिद्ध हो जाता है और रिपुसंज्ञक मन्त्र साधक को समूल नष्ट कर देता है । अन्य मन्त्रों के फलों का निर्वचन मैंने (शिव ने) पूर्वाम्नाय में वर्णित कर दिया है ।

पूजाधारनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पूजाधारं तु सिद्धिदम् ॥12॥
यं विना परमेशानि ! न हि सिद्धिः प्रजायते ।

हे देवि ! अब मैं आपके समक्ष पूजन के आधार का निरूपण करता हूँ, जिसके बिना पूजन में सिद्धि प्राप्त नहीं होती ।

शालिग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां सुरेश्वरि ॥13॥

* अस्पष्ट मिदम् ।

पुस्तिकायां च गङ्गायां सामान्ये च जले तथा ।
अथवा पुष्पयन्त्रेण पूजयेच्छिवलिङ्गके ॥14॥
यन्त्रभेदेन देवेशि ! फलं सम्यक् प्रजायते ।

हे देवि ! दक्षिणाकाली की पूजा शालिग्राम-शिला पर निर्मित यन्त्र पर, मणियों से निर्मित यन्त्र पर, प्रतिमा में, पुस्तक पर, गंगा में, सामान्य जल में, पुष्प में अथवा शिवलिंग में की जा सकती हैं । हे देवि ! पूजा के लिये गृहीत आधार-भेद से पूजा के फल में भी भिन्नता होती है ।

आधारभेदे फलभेदनिरूपणम्

शालिग्रामे शतगुणं मणौ तद्वत् फलं लभेत् ॥15॥
यन्त्रे लक्षगुणं प्रोक्तं प्रतिमायां तथैव च ।
पुस्तिकायां च गङ्गायां समानफलमीरितम् ॥16॥

हे देवि ! सामान्य आधार पर की गयी पूजा के फल से सौ गुना अधिक फल शालिग्राम-शिला या मणि पर की गयी पूजा का फल मिलता है ।

सामान्ये च जले देवि ! पूजादिदोषशान्तये ।
पुष्पयन्त्रे महेशानि ! पूजनात्सर्वसिद्धिभाक् ॥17॥
शिवलिङ्गे महेशानि ! अनन्तफलमीरितम् ।

हे भगवति ! सामान्य जल पर देवी की पूजा विभिन्न दोषों की शान्ति के लिये करनी चाहिये । पुष्पयन्त्र पर की गयी पूजा सभी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं तथा शिवलिंग पर देवी की पूजा करने से अनन्त फल प्राप्त होता है ।

पार्थिवलिंगे देवीपूजानिषिद्धा

न कुर्यात्पार्थिवे लिङ्गं देवीपूजादिकाः क्रियाः ॥18॥
पार्थिवे पूजनाद् देवि ! सिद्धिहानिः प्रजायते ।

पार्थिव शिवलिंग पर देवी का पूजन कदापि नहीं करना चाहिये । क्योंकि, इससे सिद्धि में हानि होती है ।

यदि दैवान्महेशानि ! मृत्तिकास्खलनं भवेत् ॥19॥
तावद् वर्षसहस्राणि नरके पूर्णशोणिते ।
कुम्भीपाके महाघोरे पच्यते पितृभिः सह ।
अत एव महेशानि ! पार्थिवे न हि पूजयेत् ॥20॥

हे परमेश्वरि ! पार्थिव लिंग पर देवी की अर्चना करने से मृत्तिका से निर्मित शिवलिंग जितनी बार भग्न होता है, साधक को उतने ही हजार वर्षों तक कुम्भीपाक नामक नरक में

अपने पितरों के साथ पकना पड़ता है । इसलिये हे माहेश्वरि ! पार्थिव लिंग पर कभी भी देवी की पूजा नहीं करनी चाहिये ।

स्फाटिकादिलिंगे
शक्तिपूजनात्सर्वसिद्धिः

स्फाटिकादीन् समानीय लिङ्गं निर्माय यत्नतः ।
तल्लिङ्गे पूजनाद् देवि ! सर्वसिद्धियुतो भवेत् ॥21॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
अष्टमः पटलः समाप्तः ।



स्फटिक आदि से कुशलतापूर्वक शिवलिंग का निर्माण कर उनमें देवी की अर्चना करने से साधक सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का अष्टम पटल समाप्त ।



अथ नवमः पटलः

श्रीशिवेन पार्वत्यै धनदाविद्याकथनम्

श्रीशिव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धनदां सर्वसिद्धिदाम् ।
यामाराध्य महादेवि ! कुबेरो धननायकः ॥1॥
यत्प्रसादान्महेशानि ! वासवस्त्रिदशेश्वरः ।
तां विद्यां परमेशानि ! शृणुष्व वरवर्णिनि ! ॥2॥

श्रीशिव ने कहा—हे महादेवि ! सुनिये । अब मैं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली उन भगवती धनदा के विषय में आपको बता रहा हूँ, जिनकी उपासना करके कुबेर धन के स्वामी बने हैं और जिनकी कृपा से ही इन्द्र त्रिलोकी के अधीश्वर बने हैं । हे सुभगे ! अब आप उसी धनदा विद्या के विषय में सुनें ।

दान्तं बिन्दुसमारूढं महामायां हरिप्रियाम् ।
रतिप्रिये ततः पश्चाद् वह्निजायां ततः प्रिये ॥3॥
नवाक्षरो महामन्त्रो द्रुतं सिद्धिप्रदायकः ।

हे प्रिये ! पहले बिन्दु अर्थात् अनुस्वार सहित दान्तवर्ण ध अर्थात् (धं), तदनन्तर क्रम से महामाया बीज (ह्रीँ), हरिप्रिया बीज (श्रीँ), फिर 'रतिप्रिये', तदनन्तर वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' (धं ह्रीं श्रीं रतिप्रिये स्वाहा) यह सिद्धिप्रद नौ अक्षरों का मन्त्र भगवती धनदा का है ।

धनदाविद्याप्रशंसनम्

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ॥4॥
अनया सदृशी सिद्धिर्मम ज्ञाने न वर्तते ।
शतवक्त्रो यदि भवेत् तावद् वक्तुं न शक्यते ॥5॥
पञ्चवक्त्रेण देवेशि ! किं मया कथ्यतेऽधुना ।

हे देवि ! धनदा जैसी विद्या, धनदा के समान जप तथा धनदा के समान सिद्धिप्रदायक अन्य कोई है, इस बारे में मेरी जानकारी नहीं । हे पार्वति ! यदि किसी के सौ मुख भी हों तो भी इस विद्या का निर्वचन नहीं कर सकता, तो भला पाँच मुखों वाला मैं कैसे कर सकता हूँ ?

धनदामन्त्रय ऋष्यादिकथनम्

कुबेरोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्दःउदाहृतम् ॥6॥
देवता धनदा देवि सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च चतुर्वर्गफलप्रदाः ॥7॥
षड्दीर्घमायया चैव षडङ्गकन्यासमाचरेत् ।

हे भगवति ! धनदा मन्त्र के ऋषि कुबेर, छन्दस् पंक्ति तथा देवता सर्वसिद्धिप्रदात्री भगवती धनदा देवी ही हैं । इस मन्त्र का विनियोग धर्मादिचतुर्वर्ग फलप्राप्ति में किया जाता है । धनदा के उक्त मन्त्र की साधना में षडंगन्यास मायाबीज ह्रीँ के छह दीर्घरूपों ह्रां ह्रीं आदि से किया जाना चाहिये ।

धनदायाः ध्यानस्वरूपम्

ध्यानमस्या प्रवक्ष्यामि येन सिद्धो भवेन्नरः॥8॥

अब मैं आपको धनदा के उस स्वरूप का वर्णन करता हूँ, जिसका ध्यान करके साधक सिद्ध हो जाता है ।

देवीं काञ्चनकान्तकान्तिविमलां रक्तांशुकाच्छादिताम् ।
हेमाम्भोजयुगाभयाङ्कुशकरीं रत्नोल्लसत्कुण्डलाम् ।
सर्वाभीष्टफलप्रदां त्रिनयनां नागेन्द्रहारोज्ज्वलाम् ।
वन्दे सर्वभयापहां त्रिजगतां पापापहारीं पराम् ॥9॥

हे देवि ! धनदा के साधक को चाहिये कि वह विशुद्ध स्वर्ण की कान्ति की भांति निखरी हुई, निर्मल कान्तिमयी, रक्तवर्ण के वस्त्रों से सुशोभित, अभय और अंकुश मुद्राओं वाले दोनों हाथों में स्वर्णकमल धारण की हुईं, कर्णों में किंचित्-किंचित् आन्दोल्यमान रत्ननिर्मित कुण्डलधारिणी, भक्तों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, त्रिनयना, नागराज की माला धारण की हुईं, विश्वरूपा, समस्त भयसमूह तथा पापों को नाश करने वाली भगवती के स्वरूप का चिन्तन करें ।

धनदायाः पूजाविधिप्रकथनम्

स्वकीयात्मस्वरूपां तां भावयेत् चित्स्वरूपिणीम् ।
एवं ध्यात्वा महेशानि मानसैः पूजनं चरेत् ॥10॥

साधक को चाहिये कि वह चित्स्वरूपिणी पराशक्ति धनदा का आत्मरूप से भावन धनदा के उपर्युक्त स्वरूप के ध्यान के अनन्तर उनकी मानस पूजा सम्पन्न करे ।

अर्घ्यपात्रं स्थापयित्वा धेनुयोनिं प्रदर्शयेत् ।
पीठपूजां ततः कृत्वा ततः पीठमनुं जपेत् ॥11॥

भगवती के सामने अर्घ्यपात्र स्थापित कर धेनुमुद्रा का प्रदर्शन और पीठमन्त्र का जप करे ।

आधारशक्तिमारभ्य यजेत्पद्मासनं प्रिये ।
प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्साधकाग्रणी ॥12॥

तदनन्तर आधारशक्ति से आरम्भ कर पद्मासन पर्यन्त विहित विधि के अनुसार अर्चित करे । आधारशक्ति आदि की अर्चना के मन्त्रों का आरम्भ 'ओम्' से तथा समाप्ति 'नम:' से होनी चाहिये ।

आवाहनद्रव्यसमर्पणादिविधि:

पुनर्ध्यात्वा महेशानि ! मूलेनावाहनं चरेत् ।
षडङ्गेन च सम्पूज्य जीवन्यासं समाचरेत् ॥13॥

हे माहेश्वरि ! आधारशक्ति आदि का पूजन समाप्त कर पुन: धनदा देवी का ध्यान करके उनके मूल मन्त्र से उनका आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये ।

द्रव्यसमर्पणमन्त्र:

मूलमन्त्रं समुच्चार्य ततो द्रव्यं समुच्चरेत् ।
देवतायै तत: पश्चात् योगात्मकमनुं स्मरेत् ॥14॥
पाद्याद्यै: पूजयेद् देवीं यथाविभवविस्तरै: ।

हे देवि ! भगवती की प्राणप्रतिष्ठा करके पहले मूलमन्त्र 'धं ह्रीं श्रीं रतिप्रिये स्वाहा' का उच्चारण करके, समर्पित किये जा रहे द्रव्य का नाम उच्चारित करे, फिर देव्यै समर्पयामि कहकर भगवती को द्रव्य समर्पित करे । हे देवि ! साधक को चाहिये कि वह धनदा की अर्चना में अपने विभव के अनुरूप विस्तार से अर्घ्यादि प्रदान करे ।

धनदायन्त्रस्वरूपनिर्वचनम्

यन्त्रमस्या: प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥15॥
नवयोन्यात्मकं चक्रं विलिखेत् कर्णिकोपरि ।
द्विदलं पद्ममालिख्य चतुरस्त्रं ततो बहि: ॥16॥
कोणेषु वज्रं संलिख्य मध्ये बीजं समुल्लिखेत् ।
इदं यन्त्रं महेशानि ! साक्षाद् देवीस्वरूपकम् ॥17॥

हे माहेश्वरि ! अब मैं धनदा देवी के उस यन्त्र का निरूपण करता हूँ, जिसके ज्ञान से साधक अमृतत्व प्राप्त कर लेता है । धनदा की अर्चना के लिये पहले नवयोनि यन्त्र बनाकर उसकी कर्णिका में दो दलों वाला कमल बनाना चाहिये । फिर, यन्त्र के बाहर चतुरस्र (भूपुर) बनाकर उसके कोणों को वज्रांकित करके यन्त्र के मध्य में धनदा बीज 'धं' लिखना चाहिये । हे देवि ! यह यन्त्र साक्षात् धनदा का स्वरूप है ।

यन्त्रे लक्ष्म्यादिपूजाविधिः

लक्ष्मीं पद्मां पद्मालयां श्रियं चैव हरिप्रियाम् ।
केशवां कमलां चैव अब्जां च चञ्चलां तथा ।।18।।
लोलां च प्रणवाद्येन नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ।
पुनर्मध्ये ततो देवीं पूजयेत्साधकोत्तमः ।।19।।

हे देवि ! यन्त्र के मध्य स्थित बीज धं के प्रथम आवरण की दसों दशाओं में लक्ष्मी, पद्मा, पद्मालया, श्री, हरिप्रिया, केशवा, कमला, अब्जा, चंचला तथा लोला नामक लक्ष्मी के दस रूपों की अर्चना उक्त नामों के आदि में 'ओं' तथा अन्त में 'नमः' जोड़कर, जैसे 'ओं लक्ष्म्यै नमः' करके यन्त्र के मध्य में भगवती धनदा की पूजा करनी चाहिये ।

प्राणायामः ततः कृत्वा यथाशक्ति जपं चरेत् ।
गुह्यादिकं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् ।।20।।
प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणामाष्टाङ्गमाचरेत् ।

उक्त यन्त्र में देवी धनदा की अर्चना सम्पन्न कर प्राणायाम कर यथाशक्ति धनदामन्त्र का जप करके जप का फल देवी को समर्पित कर देना चाहिये । तदनन्तर पुनः प्राणायाम करके अष्टांग प्रणाम करना चाहिये ।

अथोत्थाय महेशानि विशेषार्घ्यं निवेदयेत् ।।21।।
आत्मसमर्पणं कृत्वा विहरेच्च यथेच्छया ।
किञ्चिन्नैवेद्यं स्वीकृत्य निर्माल्यं धारयेत्ततः ।।22।।

हे माहेश्वरि ! इसके बाद साधक को चाहिये कि वह भगवती धनदा को विशेष अर्घ्य समर्पित करे और स्वयं को भगवती के चरणों में समर्पित कर यत्किंचित् नैवद्य स्वीकार कर भगवती का निर्माल्य ले अर्थात् भगवती को समर्पित भोजनादि पदार्थों का सेवन कर यथेच्छ आहार-व्यवहारादि करे ।

जपतर्पणादिसङ्ख्यानिर्धारणम्

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं होममाचरेत् ।
तद्दशांशं तर्पणं च अभिषेकं दशांशकम् ।।23।।
विप्रभोजनं दशांशं ततः कुर्यात् सुरेश्वरि ! ।

हे देवि ! तदनन्तर साधक को चाहिये कि वह मन्त्र का एक लाख जप करे और मन्त्र से दस हजार हवन, एक हजार तर्पण तथा सौ बार अभिषेक के पश्चात् दस ब्राह्मणों को भोजन कराये ।

धनदोपासनायाः फलानि

एवं कृत्वा महेशानि ! साक्षात्सुरगुरुः प्रभुः ॥24॥
तस्य हस्ते महेशानि ! सर्वसिद्धिर्न संशयः ।
नित्यं नित्यं महेशानि ! ईश्वरो यच्छते धनम् ॥25॥
लक्ष्मीः सरस्वती चैव निवसेन्मदिरे सखे ।
इह लोके महेशानि ! महेन्द्रो जायते क्षितौ ॥26॥

हे माहेश्वरि ! भगवती धनदा की इस प्रकार अर्चना करने से साधक साक्षात् बृहस्पति के समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है । जो साधक भगवती धनदा की पूजा उक्त विधि से करता है, निःसन्देह समस्त सिद्धियाँ उसे हस्तगत हो जाती हैं । ईश्वर उसे प्रतिदिन धन देता है और वह भी उस धन को निर्धनों को प्रदान करता रहता है । हे देवि ! ऐसे साधक के घर में लक्ष्मी और सरस्वती का निवास होता है और वह धरती पर इन्द्र के समान होता है ।

मोक्षाकाङ्क्षी महेशानि ! महामोक्षमवाप्नुयात् ।
भोगार्थी लभते भोगं यथेच्छं वर्तते चिरात् ॥27॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा मृतो गच्छेद्धरेः पदम् ।
मृते राजकुले भूयो जन्ममाप्नोति साधकः ॥28॥

श्रीशंकर ने कहा—हे देवि ! धनदा का साधक यदि मोक्ष चाहता है तो उसे मोक्ष मिलता है और यदि वह सांसारिक अथवा अलौकिक भोगों का आकांक्षी है, तो उसे यथेच्छकाल तक ऐसे भोग प्राप्त होते रहते हैं । धनदा का साधक इस लोक में सुखी जीवन व्यतीत कर मृत्यु के बाद भगवान् विष्णु के लोक में जाता है और वहाँ स्वर्गिक भोगों को भोग पुनः किसी ऐश्वर्यवान् कुल में जन्म लेता है ।

धनदास्तोत्रकथनोपक्रमः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धनदास्तोत्रमुत्तमम् ।
यथोक्तं सर्वतन्त्रेषु इदानीं तत्प्रकाशितम् ॥29॥

हे देवि ! विभिन्न शास्त्रों में धनदा देवी के जिस स्तोत्र का उल्लेख किया गया है, उसे अब मैं आपसे कहता हूँ ।

धनदास्तोत्रम्

नमः सर्वस्वरूपेण नमः कल्याणदायिके ।
महासम्पत्प्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥30॥

अपने समस्त रूपों से साधक का कल्याण करनेवाली धनदा देवी को नमन । महान् सम्पत्प्रदायिनि ! धनप्रदान करने वाली हे धनदा देवि ! आपको मेरा नमस्कार है ।

महाभोगप्रदे देवि ! महाकामप्रपूरिते ।
सुखमोक्षप्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तुते ॥31॥

महान् भोगों को देने वाली हे देवि ! महान् कामनाओं को पूर्ण करने वाली, भौतिक सुख तथा मोक्षप्रदात्री हे देवि ! आपको मेरा नमस्कार है ।

ब्रह्मस्वरूपे सदानन्दे सदानन्दस्वरूपिणि ।
द्रुतसिद्धिप्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥32॥

ब्रह्मस्वरूपिणि ! सर्वदानन्दप्रदायिनि ! सदानन्दरूपिणि ! शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करने वाली हे धनदा देवि ! आपको मैं नमन करता हूँ ।

उद्यत्सूर्यप्रकाशाभे ! उद्यदादित्यमण्डले !
शिवतत्त्वप्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥33॥

उदयकालीन सूर्य के आभामण्डल और सूर्य की आभा जैसी कान्तिमयि ! शिवतत्त्व का उपदेश करने वाली धनदा देवि ! आपके लिये मेरा नमस्कार ।

विष्णुरूपे विश्वमते विश्वपालनकारिणि ।
महासत्त्वगुणाक्रान्ते ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥34॥

हे विष्णुरूपिणि ! हे विश्वमान्ये ! हे संसार का कल्याण करने वाली ! हे महासत्त्वमयि ! आपको मेरा नमस्कार ।

शिवरूपे शिवानन्दे कारणानन्दविग्रहे ।
विश्वसंहाररूपे च ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥35॥

हे विश्वरूपिणि ! हे शिवानन्दमयि ! हे कारणानन्दशरीरिणि ! हे विश्वसंहाररूपे ! आपके लिये मेरा नमन है ।

पञ्चतत्त्वस्वरूपे च पञ्चाचारसदारते ।
साधकाभीष्टदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ॥36॥

पृथिव्यादि एवं मद्यादि पंचतत्त्वरूपा, सर्वदा पंचाचार को पसन्द करने वाली, साधकों को उनका अभीष्ट प्रदान करने वाली धनदा देवी को मेरा नमन ।

धनदास्तोत्रपाठफलम्

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तं साधकाभीष्टदायकम् ।
यः पठेत्पाठयेद्वाऽपि स लभेत्संकलं फलम् ॥37॥

हे पार्वति ! मैंने साधकों को उनका अभीष्ट प्रदान करने वाले जिस स्तोत्र का यहाँ उद्घाटन किया है, उसे पढ़ने या पढ़वाने वाला साधक धर्मादि समस्त फलों को प्राप्त करता है ।

त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स्तोत्रमेमत्समाहितः ।
स सिद्धिं लभते शीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥38॥

हे देवि ! समाहित मन से इस स्तोत्र का प्रातः, अपराह्न तथा सन्ध्या के समय पाठ करने वाला साधक शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें अधिक सोचने की जरूरत ही नहीं ।

इदं रहस्यं परमं स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! ॥39॥

हे पार्वति ! यह धनदास्तोत्र परमदुर्लभ और रहस्यात्मक है । इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय बनाये रखना ।

अप्रकाश्यमिदं देवि ! गोपनीयं परात्परम् ।
प्रपठन्नात्र सन्देहो धनवान् जायतेऽचिरात् ॥40॥

शिव ने कहा—हे देवि ! अत्यन्त महनीय यह स्तोत्र अप्रकाश्य और अतिगोपनीय है । इसके विधिपूर्वक पठन से पाठक अतिशीघ्र ही धनवान् हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।

इति धनदास्तोत्रम्

श्रीदेव्युवाच

धनदा या महाविद्या कथिता च प्रकाशिता ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ॥41॥

पार्वती ने कहा—हे शिव ! महाविद्या धनदा के विषय में आपने बहुत कुछ बताया, लेकिन, अभी बहुत कुछ अब भी शेष है । अब कृपया उस धनदा-कवच का निरूपण कीजिये जिसके विषय में आपने संकेत तो किया था, किन्तु स्पष्ट रूप से कुछ बताया नहीं था ।

धनदाकवचनिरूपणोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
सारात्सारतरं देवि ! कवचं मन्मुखोदितम् ॥42॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! सुनिये ! कवच तो मन्त्र का शरीर होता है । जिस प्रकार शरीर के बिना जीव कार्यक्षम नहीं होता, उसी प्रकार कवच के बिना मन्त्र भी प्रभावी नहीं हो सकता । हे देवि ! मैं आपके सामने जिस धनदा-कवच का निरूपण कर रहा हूँ, वह समस्त साधना का साररूप है ।

धनदाकवचस्य ऋष्यादिप्रकथनम्

धनदाकवचस्याऽस्य कुबेर ऋषिरीरितः ।
पङ्क्तिश्छन्दो देवता च धनदा सिद्धिदा सदा ॥43॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।

हे देवि ! निरूप्यमाण धनदाकवच के ऋषि कुबेर हैं, छन्दस् पंक्ति है और देवता साधकों को सदा सिद्धि प्रदान करने वाली धनदा देवी हैं । कवच का विनियोग चतुर्वर्गफल-प्राप्ति में किया जाता है ।

धनदाकवचम्

धं बीजं मे शिरः पातु ह्रीं बीजं मे ललाटकम् ॥44॥
स्त्रीं बीजं मे मुखं पातु रकारं हृदि मेऽवतु ।
तिकारं पातु जठरं प्रिकारं पृष्ठतोऽवतु ॥45॥
येकारं जङ्घयोयुग्मे स्वाकारं पादयोर्युगे ।
शीर्षादिपादपर्यन्तं हाकारं सर्वतोऽवतु ॥46॥

हे देवि ! भगवती धनदा के पूर्वोल्लिखित मन्त्र 'धं ह्रीं स्त्रीं रतिप्रिये स्वाहा' का प्रत्येक वर्ण कवचरूप है । धनदा की अर्चना के समय उनके मन्त्र के प्रत्येक वर्णरूपी महास्त्र से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमारी सब ओर से रक्षा करे । प्रार्थना करनी चाहिये कि मन्त्र का प्रथम बीज 'धं' हमारे सिर की रक्षा करे । द्वितीय बीज 'ह्रीं' हमारे ललाट की रक्षा करे, तृतीय बीज 'स्त्रीं' हमारे मुख की रक्षा करे, मन्त्र का 'र'कार हमारे हृदय की रक्षा करे, 'ति'कार हमारे जठर की रक्षा करे, 'प्रि'कार हमारी पीठ की रक्षा करे, 'ये'कार हमारी दोनों जंघाओं की रक्षा करे, 'स्वा'कार हमारे दोनों चरणों की रक्षा करे और 'हा'कार सिर से लेकर पादपर्यन्त हमारी रक्षा करे ।

धनदाकवचपाठफलम्

इत्येतत्कथितं कान्ते कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं प्रपठेद् यदि ॥47॥
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
गुरुपूजां विना देवि! न हि सिद्धिः प्रजायते ॥48॥
गुरुपूजापरो भूत्वा कवचं प्रपठेत् ततः ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा विचरेद् भैरवो यथा ॥49॥

हे प्रियतमे ! मैंने आपके सामने यह सर्वसिद्धिद धनदा कवच प्रकाशित कर दिया । गुरु की पूजा करके साधक यदि इस कवच का पाठ करता है, तो उसे करोड़ों वर्ष की पूजा का फल प्राप्त होता है । लेकिन, गुरु की पूजा किये बिना कवच का पाठ किया जाता है, तो कवच के पाठ से प्राप्त होने वाली उल्लिखित सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं ।

प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरःसरम् ।
सोऽभीष्टफलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥50॥

यदि कोई साधक प्रातःकाल धनदामन्त्र के जप के अनन्तर कवच का पाठ करता है, तो उसे अभिलषित फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ।

पूजाकाले पठेद्यस्तु देवीं ध्यात्वा हृदाम्बुजे ।
षण्मासाभ्यन्तरे सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥51॥
सायंकाले पठेद्यस्तु स शिवो नात्र संशयः ।

धनदा देवी की अर्चना के समय अपने हृदय में देवी का ध्यान करते हुए कवच-पाठ करने से छह मास के भीतर ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं । सायंकालीन सन्ध्या करते समय धनदा कवच का पाठ करने वाला शिवरूप ही है, इसमें संशय नहीं ।

भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥52॥
पुरुषो दक्षिणे बाहौ योषिद् वामभुजे तथा ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा धनवान् पुत्रवान् भवेत् ॥53॥

हे देवि ! भोजपत्र पर धनदा-कवच लिखकर यदि पुरुष दाहिनी भुजा पर और नारी वामभुजा पर धारण करे तो उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और वह पुत्रवान् तथा धनवान् हो जाता है ।

कवचं विना धनदासाधनानिषिद्धा

इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेद् धनदां शुभे ।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥54॥

हे शुभदे ! धनदा के इस कवच की इस महिमा को जाने और इसका पाठ किये बिना जो धनदा का पूजन करता है, वह किसी शस्त्र के प्रहार से आहत होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

***कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ।**
अत एव महादेवि स पूज्यो नात्र संशयः ।
समाप्तं कवचं देवि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥55॥

हे महादेवि ! धनदा-कवच से आवृत व्यक्ति जहाँ भी जाता है, वहाँ सम्मान और विजय प्राप्त करता है । हे देवि ! मैंने धनदा-कवच का निरूपण कर दिया, अब कहो, और क्या सुनना चाहती हो ?

* अनस्थाने पंक्तिरियम् ।

पार्वत्याः शीघ्रसिद्ध्युपायपृच्छा

श्रीदेव्युवाच

अहो पूज्य महादेव ! संसारार्णवतारक !
सर्वयोगमयस्त्वं हि शरणागतवत्सल ! ॥56॥
केनोपायेन देवेश ! शीघ्रं सिद्धा भवन्ति हि ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां परमेश्वर !॥57॥

भगवती पार्वती ने कहा—अहो ! पूज्य महादेव ! प्राणियों को संसार-सागर से पार करने वाले हे करुणामय शिव ! आप स्वयं समस्त योगमय हो, शरणागत-रक्षक हो, आप मुझे बताइये कि आप द्वारा निरूपित धनदा के मन्त्र, कवच तथा पूजन-हवनादि किस उपाय से शीघ्र ही सिद्ध हो सकते हैं ? हे परमेश्वर ! शीघ्र सिद्धि के साधन के विषय में मैं सब कुछ जानना चाहती हूँ । कृपया आप बताइये ।

श्रीशिवेनोपायकथनम्

श्रीशिव उवाच

प्रेतभूमौ तु सप्ताहं प्रत्यहं परमेश्वरि !
दिक्सहस्रं जपेद् विद्यां तदा सिद्धिर्न संशयः ॥58॥

शिव ने कहा—हे परमेश्वरि ! सात दिनों तक श्मशान-भूमि में दस हजार जप करने से निःसन्देह धनदाविद्या सिद्ध हो जाती है ।

अथवा परमेशानि ! शवमानीय यत्नतः ।
वितस्तिमात्रखाते तु पातयेद् इह मन्दिरे ॥59॥
अमावस्यां समारभ्य यावत् शुक्लाष्टमी भवेत् ।
प्रत्यहं प्रजपेद् विद्यां *गजान्तकसहस्रकम् ॥60॥
तदा सिद्धो भवेद् देवि ! नाऽन्यथा मम भाषितम् ।

हे परमेश्वरि ! सिद्धि का एक अन्य उपाय भी है । वह यह कि साधक किसी प्रकार एक शव प्राप्त कर उसे घर में बीताभर गहरे गड्ढे में डाल कर वह गड्ढा बन्द कर दे । फिर अमावस्या तिथि से लेकर शुक्ल पक्ष की अष्टमीपर्यन्त उस शव पर बैठकर प्रतिदिन धनदा मन्त्र का 18 हजार (अथवा 11 हजार) जप करे । हे देवि ! ऐसा करने से मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाता है । मेरा यह कथन असत्य नहीं हो सकता ।

तत्त्वज्ञानं विना सिद्धिर्न भवति

यदेतत् कथितं सर्वं तत्त्वज्ञानं सुरेश्वरि ! ॥61॥

---

* गज-8 । अन्तक (मृत्यु) 1 । अङ्कानां वामतो गतिः । गजाः चतुरो दिग्गजाः अन्तकः मृत्युः एकः गजाश्चान्तकश्च गजान्तकम् ।

तत्त्वज्ञानं विना देवि ! न हि सिद्धिः प्रजायते ।

हे देवेश्वरि ! मैंने तत्त्वज्ञान के बारे में सब कुछ बता दिया है । किन्तु, तत्त्वज्ञान और उनके प्रयोग के बिना साधना में सिद्धि प्राप्त हो ही नहीं सकती ।

तत्त्वोपयोगविधिनिरूपणम्

अथवाऽपरयत्नेन केवलं शक्तियोगतः ॥62॥
पूर्वं चतुष्टयं देवि ! समानीय प्रयत्नतः ।
तस्यै दत्त्वा स्वयं पीत्वा प्रजपेद्यदि साधकः ॥63॥
तदा सिद्धिं लभेद् देवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।

हे देवि ! एक अन्य उपाय और भी है, जिसे अपना कर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है । वह यह है शक्ति की साधना या शक्तिपूजा की विधि । प्रयत्न करके किसी भी एक शक्ति को लाकर मत्स्य, मद्य, मांस और मुद्रा की व्यवस्था कर इनका उपयोग साधक स्वयं करे और शक्ति को भी कराके यदि निर्धारित संख्या में जप करे, तो सिद्धि अवश्य मिलती है ।

जपसंख्यानिर्धारणम्

यत्र यत्र विनिर्दिष्टं जपकार्यं सुरेश्वरि !
तत्र तत्र महेशानि ! गजान्तकसहस्रकम् ॥64॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
नवमः पटलः समाप्तः ।



हे देवेश्वरि ! मैंने जप के विषय में जहाँ भी निर्देश दिया है, वहाँ जप की संख्या 18 हजार (या 11 हजार) मानी जानी चाहिये ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का नवम पटल समाप्त !



अथ दशमः पटलः

श्रीपार्वत्याः मातंगीमन्त्रजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

मातङ्गी परमेशानी त्रैलोक्येषु च दुर्लभा ।
मन्त्ररूपेण देवेश ! कथयस्व महाप्रभो ! ॥1॥

श्रीपार्वती ने कहा—हे देवेश ! परमेश्वरी मातंगी का साक्षात् दर्शन त्रिलोकी में परम दुर्लभ है । हे प्रभो ! कृपया आप भगवती के मन्त्रस्वरूप का ही निरूपण कीजिये ।

श्रीशिवेन मातंगीमन्त्रोद्घाटनम्

श्रीशिव उवाच

शृणु चार्वङ्गि ! सुभगे ! मातङ्गीमन्त्रमुत्तमम् ।
प्रणवं च समुद्धृत्य महामायां समुद्धरेत् ॥2॥
कामबीजं समुद्धृत्य कूर्चबीजं समुद्धरेत् ।
मातङ्गी ङेयुतां पश्चादस्त्रमन्त्रं समुद्धरेत् ॥3॥
वह्निजायान्वितो मन्त्रः सर्वतन्त्रेषु पूजितः ।
सार्द्धदशाक्षरी विद्या ब्रह्मादिपरिपूजिता ॥4॥

श्रीशिव ने कहा—हे सुन्दरि ! सुनिये ! अब मैं आपके सामने परम रहस्यात्मक मातंगीमन्त्र का कथन करता हूँ । सर्वप्रथम प्रणव (ओँ) को उद्धृत कर महामाया (ह्रीँ) का उल्लेख करें । फिर कामबीज (क्लीँ) तब कूर्चबीज (हूँ) अंकित कर इसके आगे चतुर्थ्यन्त मातंगी (मातंग्यै) लिखकर इसके आगे अस्त्रमन्त्र (फट्) अंकित कर इसके बाद वह्निजाया मन्त्र (स्वाहा) लिखें । इस प्रकार 'ओं ह्रीँ क्लीँ हूँ मातंग्यै फट् स्वाहा' रूप मातंगी मन्त्र सभी तन्त्रशास्त्रों में पूजित है । साढ़े दस अक्षरों वाली यह मातंगीविद्या ब्रह्माविदों द्वारा भी सम्मानपूर्वक अर्चित की गयी है ।

सार्धदशाक्षरीमातंगीमन्त्रस्य
महत्त्वम्

अस्या विज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः ॥5॥
कुबेर इव वित्ताढ्यो धरणीसदृशः क्षमः ।
वायुतुल्यबलो लोके नैर्ऋतिरिव दुर्धरः ॥6॥
गानेन तुम्बुरुः साक्षाद् बाणेन वासवोपमः ।

हे देवि ! सार्ध दशाक्षरी (साढ़े दस अक्षर वाली) इस मातंगी विद्या को जान लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता । इस विद्या का उपासक रमणियों के बीच कामदेव, शत्रुओं के बीच यमराज, धनियों के बीच कुबेर, क्षमाशीलों में पृथ्वी, बलवानों में वायु नैऋति के समान दुर्धर्ष्य, गानविज्ञों में तुम्बुरू और बाणधारियों में इन्द्र के समान हो जाता है ।

मातंगीमन्त्रस्य ऋष्यादिकथनम्

ऋषिरत्र महेशानि ! दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।।7।।
विराट् छन्दो महेशानि । मातङ्गी देवता स्मृता ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।।8।।

शिव ने कहा—हे माहेश्वरि ! मातंगी मन्त्र के ऋषि अविनाशी दक्षिणामूर्ति, छन्दस् विराट् तथा देवता स्वयं मातंगी हैं । मन्त्र का विनियोग चतुर्वर्ग फलप्राप्ति में किया जाता है ।

ध्यानपूजादिकं सर्वं यामले च पुरोदितम् ।
तस्याः स्तोत्रं महापुण्यं सावधानाऽवधारय ।।9।।

हे देवि ! भगवती मातंगी के ध्यान-पूजादि की विधियों के सम्बन्ध में यामल ग्रन्थ में मैंने पहले ही सब कुछ बता दिया है । यहाँ मैं भगवती मातंगी के स्तोत्र का निर्वचन कर रहा हूँ, ध्यान से सुनिये ।

मातंगीस्तोत्रम्

उद्यदादित्यसङ्काशां नयनत्रयशोभिताम् ।
भक्तानां वरदां देवीं मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ।।10।।

उदय हो रहे सूर्य की भाँति कान्तिमयी, त्रिनयना, भक्तों को अभीष्ट देने वाली भगवती मातंगी को मैं नमन करता हूँ ।

श्यामवर्णां महादेवीं सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
द्रुतसिद्धिप्रदां दिव्यां मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ।।11।।

समस्त अलंकारों से विभूषित, साधकों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाली, श्यामवर्णा दिव्य भगवती मातंगी को मैं नमन करता हूँ ।

मुक्ताहारलताढ्यां तां नानामणिविराजिताम् ।
कोटिविद्युत्प्रतीकाशां मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ।।12।।

मोतियों से जटित वन-लताओं के मनोहर हार से सुशोभित, विभिन्न प्रकार की मणियों से अलंकृत, करोड़ों विद्युत् लताओं के समान प्रकाशवती भगवती मातंगी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

वरदां वरदानाढ्यां वरमालां च धारिणीम् ।
दैत्यदानवसंहत्रीं मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ।।13।।

साधकों को वर प्रदान करने वाली, भक्तों को देने के लिये असंख्य श्रेष्ठ वस्तुओं-सिद्धियों से परिपूर्ण, बहुमूल्य मालायें धारण करने वाली, दैत्यों तथा दानवों की संहारिका भगवती मातंगी शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।

किङ्किणीनरहस्ताढ्यां कटिदेशसुशोभनाम्।
पट्टवस्त्रपरीधानां मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ॥14॥

मानवों के हाथों से निर्मित करधनी से सुशोभित कटिप्रदेश वाली तथा कौशेय वस्त्रों से अलंकृता भगवती मातंगी को मैं नमन करता हूँ।

सौदामिनीसमाभासां नानालङ्कारसंयुताम्।
इन्द्रादिदेवतासेव्यां मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ॥15॥

विद्युत् की भाँति कान्तिवाली, नाना अलकारों से सुशोभित तथा इन्द्र आदि देवताओं से सेवित मातंगी शक्ति को मैं नमन करता हूँ।

शुद्धकाञ्चनसंयुक्तां चरणाङ्गुलिराजिताम्।
माणिक्यरत्नसंयुक्तां मातङ्गीं तां नमाम्यहम्॥16॥

अपने चरण-कमलों की अँगुलियों में माणिक्यजटित शुद्ध स्वर्णनिर्मित बिछुए धारण करने वाली भगवती मातंगी को मैं नमन करता हूँ।

दिङ्मुखोद्यच्चन्द्राढ्यां सुधावर्षणकारिणीम्।
देववृन्दसमायुक्तां मातङ्गीं तां नमाम्यहम् ॥17॥

दिशारूपी मुखमण्डल पर उदित हो रहे द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाली, अपने मुखचन्द्र से अमृत-किरणें बरसाने वाली तथा देवसमूहों से घिरी हुई भगवती मातंगी को मैं नमस्कार करता हूँ।

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तं साधकाभीष्टदायकम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं तस्य सिद्धिरदूरतः ॥18॥

हे देवि ! मेरे द्वारा वर्णित और साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले इस स्तोत्र का प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन तीनों सन्ध्याओं में पाठ करने वाले साधक के लिये सिद्धि दूर नहीं होती।

स्तोत्रपाठफलम्

पूजाकाले सकृद् वापि यः पठेत्स्तोत्रमुत्तमम्।
तं सवित्तं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः ॥19॥

हे देवि ! जो साधक भगवती मातंगी की पूजा के समय एक बार भी इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी सम्पत्ति देख कुबेर भी स्वयं को अपमानित-सा महसूस करने लगता है।

स्तोत्रप्रकानात्सिद्धिहानिः

यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥20॥
स्तोत्रं समाप्तं देवेशि ! कवचं शृणु वल्लभे !

हे देवि ! मैने आपके समक्ष जिस मातंगी स्तोत्र का उल्लेख किया है, वह परम गोपनीय है । इसका ज्ञान जिस किसी भी सामान्य व्यक्ति को नहीं देना चाहिये । क्योंकि, इसे हर किसी के सामने कहने से सिद्धिक्रिया की हानि होती है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये । हे देवि ! मातंगीकवच तो समाप्त हुआ, अब और क्या सुनना चाहती हो ?

श्रीदेव्याः मातङ्गीकवचजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

देवदेव! जगन्नाथ ! जगन्निस्तारकारक! ॥21।
मातङ्गीकवचं नाथ ! श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

श्रीपार्वती ने कहा—हे महादेव ! हे संसार के उद्धारक ! हे स्वामिन् ! हाँ, अब आप मुझे मातंगी कवच सुनाइये । इस कवच को मैं अवश्य सुनना चाहती हूँ ।

यां समाराध्य देवेश ! धनेशोऽभूद् धनाधिपः ॥22॥
यामाराध्य महादेव ! वासवस्त्रिदशेश्वरः ।

हे महादेव ! जिस मातंगी कवच के पाठ से देवी को प्रसन्न करके कुबेर धन के स्वामी और इन्द्र देवलोक के स्वामी बने हैं, उस कवच को मैं अवश्य सुनना चाहती हूँ ।

ब्रह्माविष्णुमहारुद्राः समाराध्य सुरेश्वरीम् ॥23॥
सृष्टिस्थितिलयादीनां कर्तारो जगदीश्वराः ।
तस्यास्तु कवचं दिव्यं कथयस्वाऽनुकम्पया ॥24॥

हे स्वामिन् ! जिस सुरेश्वरी की आराधना करके ब्रह्मा, विष्णु तथा महारुद्र क्रमशः जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय में समर्थ हुए, उस देवी के कवच को मैं अवश्य सुनना चाहती हूँ ।

मातङ्गीकवचनिरूपणोपक्रमः

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मातङ्गी कवचं शुभम् ।
तव स्नेहान्महादेवि ! कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥25॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! आपके प्रति असीम प्रेम के वशीभूत होकर मैं ब्रह्मस्वरूप पवित्र मातंगी कवच का कथन करता हूँ ।

कवचस्य ऋष्यादिकथनम्

त्रैलोक्यरक्षणस्याऽस्य दक्षिणामूर्तिसंज्ञकः।
ऋषिश्छन्दो विराट् देवि ! मातङ्गी देवता स्मृता ॥26॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।

हे देवि ! त्रिलोकी की रक्षा करने वाले इस मातंगी कवच के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्दस् विराट् तथा देवता स्वयं मातंगी देवी हैं । इस कवच के पाठ का विनियोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्ट्य में किया जाता है ।

मातंगीकवचम्

ओं बीजं मे शिरः पातु ह्रीं बीजं मे ललाटकम् ॥27॥
क्लीँ बीजं चक्षुषी पातु हुँ नासां परिरक्षतु ।
मकारं वदनं पातु तकारं कण्ठमेव च ॥28॥
ङ्यैकारं स्कन्धदेशं च फकारं बाहुयुग्मकम् ।
टकारं हृदयं पातु स्वाकारं स्तनयुग्मकम् ॥29॥
पृष्ठदेशं तथा नाभिं जठरं लिङ्गदेशकम् ।
पादद्वन्दं च सर्वाङ्गं हाकारं परिरक्षतु ॥30॥
सार्द्धदशाक्षरी विद्या सर्वाङ्गं परिरक्षतु ।

हे देवि ! इस कवच में साधक भगवती से प्रार्थना करता है कि देवी मातंगी के 'ओं ह्रीँ क्लीँ हुं मातंग्यै फट् स्वाहा' मन्त्र का ब्रह्मस्वरूप प्रथम वर्ण 'ओं' हमारे सिर की रक्षा करे, शक्तिस्वरूप द्वितीयवर्ण 'ह्रीं' हमारे ललाट् की रक्षा करे, तृतीय वर्ण 'क्लीं' हमारे नयनों और नासिका की रक्षा करे, चतुर्थ वर्ण 'म'कार हमारे मुख की रक्षा करे, पंचम वर्ण 'त'कार हमारे कण्ठ की रक्षा करे, छठा वर्ण 'ङ्यै'कार हमारे कन्धों की रक्षा करे, सातवाँ वर्ण 'फ'कार हमारी बाहों की रक्षा करे, इसके पश्चात् आने वाला आधा वर्ण 'ट्'कार हमारे हृदय की रक्षा करे, इसके पश्चात् स्थित मन्त्र का 'स्वा'कार दोनों स्तनों, पीठ, नाभि, उदर तथा लिंग की एवं 'हा'कार दोनों चरणों तथा समस्त अंगों की रक्षा करे ।

इन्द्रो मां पातु पूर्वे च वह्निकोणेऽनलोऽवतु ॥31॥
यमो मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिश्च माम् ।
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां पवनोऽवतु ॥32॥
कुबेरश्चोत्तरे पातु मामैशान्यां शिवोऽवतु ।
ऊर्ध्वं ब्रह्मा सदा पातु अधश्चानन्त एव च ॥33॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! मातङ्गि ! सर्वसिद्धिदे ॥34॥

पूर्व से इन्द्र हमारी रक्षा करें, आग्नेय कोण से अग्नि हमारी रक्षा करें, दक्षिण से यम हमारी रक्षा करें, नैऋत्य से निऋति हमारी रक्षा करें, पश्चिम से वरुण हमारी रक्षा करें, वायव्य से वायु हमारी रक्षा करें, उत्तर से कुबेर हमारी रक्षा करें, ईशान से शिव हमारी रक्षा करें, ऊर्ध्व दिशा से ब्रह्मा हमारी रक्षा करें तथा पाताल से अनन्त हमारी रक्षा करें । हे देवि ! हे मातंगि ! इन दसों दिशाओं के अतिरिक्त अन्य जो अरक्षित स्थान या दिशायें हैं, वहाँ से आप स्वयं हमारी रक्षा करें ।

कवचपाठप्रशंसा

इति ते कथितं देवि ! कवचं परमाद्भुतम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स साक्षाच्छङ्करः स्वयम् ॥35॥

हे देवि ! इस अति अद्भुत मातंगी कवच का निरूपण मैंने आपके समक्ष कर दिया । इस कवच का तीनों सन्ध्याओं में पाठ करने वाला साधक साक्षात् शंकर के समान ही है ।

कवचपाठविधिः

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत् सकृत् ।
शतवर्षसहस्राणं पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥36॥

हे देवि ! भगवती मातंगी के मूलमन्त्र से उन्हें आठ पुष्पांजलियाँ समर्पित करके जो साधक एक बार इस कवच का पाठ करता है, वह हजार वर्षों की पूजा का फल प्राप्त कर लेता है ।

कवचधारणविधिः तत्फलं च

भूर्जे विलिख्व्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद् यदि ।
सर्वसिद्धियुतः सोऽपि सर्वसिद्धितपोयुतः ॥37॥
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रं प्राप्य पार्वति ! ।
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्त्येव न संशयः ॥38॥

जो इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर इसे स्वर्ण-निर्मित ताबीज आदि में रख कर शिखा, दायीं भुजा अथवा कण्ठ में धारण करता है, वह समस्त सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता है । ऐसे सिद्ध व्यक्ति के शरीर का स्पर्श कर ब्रह्मास्त्र आदि आयुध भी पुष्प की मालाओं के समान सुकोमल हो जाते हैं ।

कवचज्ञाने पात्राऽपात्रकथनम्

न देयं परशिष्येभ्यः अभक्तेभ्यो विशेषतः ।
देयं शिष्याय शान्ताय चाऽन्यथा पतनं भवेत् ॥39॥

हे देवि ! इस कवच की जानकारी किसी अन्य गुरु के शिष्यों को नहीं देनी चाहिये और यदि अपना शिष्य भी भगवती मातंगी और गुरु के प्रति भक्ति न रखता हो, तो उसे भी यह ज्ञान नहीं देना चाहिये । कवच का ज्ञान केवल अपने भक्त और शान्त स्वभाव शिष्य को ही देना चाहिये । अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों का पतन होता है ।

सन्ध्यात्रये कवचपाठफलानि

प्रातःकाले पठेद्यस्तु गुरुपूजापुरःसरम् ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् स शिवो नात्र संशयः ॥40॥

हे देवि ! जो व्यक्ति गुरु की पूजा के बाद प्रात:काल इस कवच का पाठ करता है, उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और वह शिव के तुल्य ही है, इसमें संशय नहीं ।

मध्याह्ने प्रपठेद्यस्तु गुरुचिन्ता पुरःसरम् ।
कुबेर इव वित्ताढ्यो जायते मदनोपमः ॥41॥

हे देवि ! जो साधक मध्याह्न में गुरुपूजा के अनन्तर मातंगी कवच का पाठ करता है, वह कुबेर के समान धनवान् और कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है ।

सायंकाले पठेद्यस्तु ध्यात्वा देवीं हृदम्बुजे ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा विचरेद् भैरवो यथा ॥42॥

अपने हृदय-कमल में भगवती का ध्यान कर जो साधक सायंकाल मातंगी कवच का पाठ करता है, वह समस्त सिद्धियों का स्वामी होकर भैरव की भाँति निर्भीक धरती पर विचरण करता है ।

गुरुपूजया सार्द्धं कवचपाठफलम्

गुरुपूजायुतो भूत्वा कवचं प्रपठेद्यदि ।
लक्ष्मीः सरस्वती तस्य निवसेन्मदिरे मुखे ॥43॥

शिव ने कहा—हे भगवति ! यदि गुरु की पूजा के साथ ही कोई साधक मातंगी-कवच का पाठ करता है, तो लक्ष्मी उसके घर में और सरस्वती उसके मुख में निवास करती हैं ।

कवचरहस्यमज्ञात्वा मन्त्रजपस्य दुष्फलम्

इदं कवचमज्ञात्वा मातङ्गीं यदि वा जपेत् ।
इह लोके दरिद्रः स्याद् मृतः शूकरतां व्रजेत् ॥44॥

हे देवि ! यदि कोई मातंगी कवच को न जानकर या इसकी उपेक्षा करके मातंगी का जप-पूजनादि करता है, तो इस संसार में वह सदा दरिद्र बना रहता है, और मरने के बाद वह शूकर के रूप में जन्म लेता है अथवा उसका आचरण सुअर के समान होता है ।

जपहवनसंख्यादिनिर्वचनम्

समाप्तं कवचं देवि ! शृणु मत्प्राणवल्लभे !
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं दशांशं होमयेत्सुधीः ॥45॥

हे प्राणप्रिये ! कवच की बात तो समाप्त हुई, अब जप और हवन की बात सुनो। हे देवि ! मातंगी कवच का छह हजार जप तथा इसका दशांश अर्थात् छह सौ हवन करना चाहिये।

ब्रह्मवृक्षोद्भवैः काष्ठैर्होमात्सर्वसमृद्धिदः।
तर्पणं चाभिषेकं च दशांशमाचरेत्सुधीः ॥46॥

हवन पलाश की समिधाओं से करने से समृद्धि प्राप्त होती है। हे देवि ! हवन का दशांश (साठ बार) तर्पण और अभिषेक करना चाहिये।

तद्दशांशं महेशानि ! कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्री नाऽन्यथा मम भाषितम् ॥47॥

तर्पण और अभिषेक के दशांश (छह) ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने से ही साधक सिद्ध बन सकता है, अन्यथा नहीं।

सकृत्कृते परेशानि ! यदि सिद्धिर्न जायते।
पुनस्तेनैव कर्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥48॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
दशमः पटलः समाप्तः।



हे पार्वति ! भगवती मातंगी की आराधना की जो विधि मैंने बतायी है, वैसा करने पर यदि सिद्धि नहीं मिलती, तो दुबारा भी इसी विधि को अपनाना चाहिये। द्वितीय बार इसी विधि से अर्चना करने करने पर सिद्धि निश्चित रूप से मिलेगी।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का दशम पटल समाप्त।



अथैकादशः पटलः

पार्वत्याः जपमालास्वरूपजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

विश्वकर्ता विश्वहर्ता विश्वसंसारपालक !।
त्वां विना संशयच्छेत्ता न हि त्राता च कुत्रचित्॥1॥
वैष्णवेषु च शैवेषु शाक्ते सौरे च गाणपे ।
सर्वत्र विहितां मालां वद मे परमेश्वर ! ॥2॥

भगवती पार्वती ने कहा—विश्व की रचना, पालन और विलयन करने वाले हे शिव ! आपके अतिरिक्त सन्देहों को नष्ट करके उनसे साधकों की रक्षा करने वाला अन्य कोई नहीं है । आप हमें बताइये कि वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य नामक पंचदेवोपासकों में प्रचलित माला की संरचना की विधि और महत्त्व क्या है ?

श्रीशिवेन अक्षमालास्वरूपनिर्वचनम्

ईश्वरवाच

अक्षमाला महेशानि ! पञ्चाशद्वर्णरूपिणी ।
अकारादिर्महेशानि ! क्षकारान्ता यतः प्रिये ॥3॥
अक्षमाला समाख्याता सर्वतन्त्रप्रपूजिता ।
अस्या जपनमात्रेण महामोक्षमवाप्नुयात् ॥4॥

शिव ने कहा—हे माहेश्वरि ! पचास वर्णमयी माला को 'अक्षमाला' कहा जाता है । ऐसी माला 'अ'कार से 'क्ष'कार पर्यन्त 50 वर्णों वाली होती है, अत: इसे अक्षमाला कहा जाता है । अक्षमाला सभी तन्त्रों में मान्य और पूज्य मानी जाती है । इस माला से जपमात्र से मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ।

श्रीदेव्याः अस्थिमाला विषये प्रश्नः

श्रीदेव्युवाच

योगमालाजपादेव सर्वयोगेश्वरः प्रभो ! ।
देहमध्यस्थितां मालां पाञ्चाशद्वर्णरूपिणीम् ॥5॥
तं विहाय महादेव ! अस्थिमालां जपेत्कथम् ।

पार्वती ने कहा कि—हे देव ! आपने पचास वर्णों वाली जिस अक्षमाला का उल्लेख किया है, उससे जप करने मात्र से साधक सभी प्रकार के योगों पर स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। वर्णरूपिणी यह अक्षमाला परा-पश्यन्ती के रूप में मूलाधारादि में ही विद्यमान है, जिससे जपादि कार्य किये जा सकते हैं। फिर, क्यों स्वामिन् ! आप शरीरान्तरवर्ती वर्णमालिका को छोड़ अस्थिमाला से जप करते हैं ?

दीक्षितस्य च यच्चास्थि तद्वर्ज्यं वा कथं विभो ! ॥6॥
यस्य छायादिसंस्पर्शादशुचिर्जायते पुमान् ।
तस्याऽस्थि च समानीय सर्वाङ्गे भूषणं कथम् ॥7॥

हे प्रभो ! मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि दीक्षित व्यक्ति की अस्थियों से माला का निर्माण निषिद्ध क्यों है ? और क्यों आप जिसकी छाया छू जाने मात्र से व्यक्ति अपवित्र हो जाता है, ऐसे चण्डालादि की अस्थियाँ लाकर उन्हें अपने शरीर पर आभूषणों के रूप में धारण करते हैं।

शिवेन कारणकथनम्

श्रीशिव उवाच

शक्तिं च मन्त्रपूतां च ब्राह्मणादीन् सुरेश्वरि !
वर्जयित्वा प्रयत्नेन शृणु मत्प्राणवल्लभे ॥8॥
कुर्याच्छवं तथा मालां मुण्डं श्मशानमेव च ।

शिव ने कहा—हे देवि ! यह सच है कि शक्ति के रूप में स्वीकृत और प्रयुक्त नारी तथा ब्राह्मणादि उच्च वर्णों की अस्थियों की माला बनाना निषिद्ध है। इनके अतिरिक्त शवों, श्मशानों, मुण्डों और अस्थिमालाओं का उपयोग ही साधना में करना चाहिये।

प्रणवं निष्कलं साक्षाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥9॥
प्रणवं प्रजपेद्यस्तु स साक्षाद् विष्णुरूपधृक् ।

किन्तु, हे देवि ! इसका कारण प्रणव है। प्रणव निष्कल है, यह साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप है। जो व्यक्ति प्रणव का जप करता है, वह साक्षात् विष्णुरूप है।

ओंकारात् सर्ववर्णानि जायन्ते नात्र संशयः ॥10॥
ओंकारं त्रिगुणं देवि ! गुणातीतं तु निष्कलम् ।
गुरुवक्त्रान्महामन्त्रं प्राप्नोति चैव मानवः ॥11॥

हे देवि ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मणादि समस्त वर्ण ओंकार से ही उत्पन्न होते हैं। ओंकार त्रिगुणात्मक है, निष्कल और सत्त्वादि गुणों से परे है। हे देवि ! मनुष्य गुरुमुख से ही तो ओंकार रूपी महामन्त्र प्राप्त करता है।

प्रणवस्य विश्वरूपता

सर्वे वर्णा महेशानि ! लीयन्ते प्रणवे प्रिये ।
अत एव महेशानि ! प्रणवो विश्वरूपकः ॥12॥

हे माहेश्वरि ! जिस प्रकार सभी अकारादि वर्ण ओंकार से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सभी ब्राह्मणादि वर्ण ओंकार में लीन भी होते हैं । इसीलिये तो ओंकार विश्वरूप अर्थात् सर्वरूप है ।

स्त्रीशूद्रयोः प्रणवेऽधिकारनिषेधकथनम्

स्त्रीशूद्रयोः परेशानि प्रणवे नाधिकारिता ।
तज्जातश्चैव चाण्डालः सर्वमन्त्रविवर्जितः ॥13॥

हे महादेवि ! जिस प्रणव से सभी प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उस प्रणव के जप का अधिकार स्त्रियों और शूद्रों को नहीं है । वे मन्त्रहीन हैं ।

मन्त्रहीनानामस्थ्रेः पवित्रताप्रतिपादनम्

मन्त्रहीने तु अस्थ्यादि सर्ववर्णविभूषितम् ।
अकारादिक्षकारान्ता अस्थिमध्ये स्थिता सदा ॥14॥

हे देवि ! जिन स्त्रियों और शूद्रों को प्रणव मन्त्र जपने का अधिकार नहीं है, उनकी अस्थियों में अकारादि-क्षकारान्त सभी वर्ण सर्वदा अव्यक्तरूप से सन्निहित होते हैं ।

अस्थिमालैव महाशङ्खमाला

तिलार्द्धे चाऽस्थिमध्ये च पञ्चाशद्वर्णरूपिणी ।
अत एव च बहिः कण्ठे ग्रीवायां च तथा करे ॥15॥
सर्वत्राऽहं परेशानि ! महाशंखविभूषितः ।

हे माहेश्वरि ! स्त्रियों और शूद्रों की अस्थियों के तिल-तिल में अव्यक्त ब्रह्मरूपिणी वर्णमाला स्थित होने के कारण वे अस्थियाँ परम पवित्र होती हैं । इसीलिये मैं अपने कण्ठ, ग्रीवा, बाहों और कलाइयों आदि शरीर के सभी अंगों में महाशंखमाला नामक अस्थिमाला धारण करता हूँ ।

महाशंखमालायां जपस्य फलम्

महाशंखमालायां यो जपेत्साधकोत्तमः ॥16॥
अणिमादिविभूतीनामीश्वरो नाऽत्र संशयः ।

हे देवि ! जो साधकश्रेष्ठ महाशंख नामक उक्त माला से जप करता है, वह निःसन्देह अणिमा-महिमादि विभूतियों का स्वामी बन जाता है ।

वर्णहीनामस्थौ सर्ववर्णमयी महाशंखमालास्थितिप्रकथनम्

सर्ववर्णमयीमाला सर्व देवेषु योजिता ।।17।।
वर्णहीनं नास्ति मन्त्रं कदाचिदपि पार्वति !

हे पार्वति ! मैं पुनः तुम्हें याद दिला रहा हूँ कि वर्णमयी माला से ही सभी मन्त्रों का जप किया जाता है और मन्त्रों में स्त्रियों और शूद्रों का अधिकार नहीं है ।

महाशङ्खं महेशानि ! सर्ववर्णविभूषितम् ।।18।।
अत एव महाशङ्खं सर्वतन्त्रेषु योजितम् ।

हे परमेश्वरि ! सर्ववर्णों से अलंकृत महाशंख अर्थात् स्त्री-शूद्रों की अस्थियों से मालिका निर्मिति की बात सभी तन्त्रों में की गयी है ।

महाशंखमालोपलब्ध्या सर्वसिद्धिः

यदि भाग्यवशाद् देवि ! महाशङ्खं च लभ्यते ।।19।।
स सिद्धः स गणः सोऽपि स च विष्णुर्न संशयः ।
तदैव सहसा सिद्धिर्नात्रकार्या विचारणा ।।20।।

हे देवि ! यदि सौभाग्यवश किसी को कहीं से महाशंखमाला मिल जाय, तो वास्तव में, वही सिद्ध है, वही गणपति है और वही विष्णु है, इसमें सन्देह नहीं । महाशंखमाला से जप करने से अचानक ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।

मालाग्रथनविधिनिरूपणम्

गोपुच्छसदृशीं कुर्यादथवा सर्परूपिणीम् ।
स्थूलादिसूक्ष्मपर्यन्तं क्रमेण ग्रथनं चरेत् ।।21।।

हे प्रिये ! अब प्रसंगवश तुम्हें माला के निर्माण की विधि बताता हूँ । माला का स्वरूप क्रमशः गोपुच्छ के समान अथवा सर्पाकार होना चाहिये ।

मूलेन ग्रथनं कार्यं प्रणवेनाऽथवा प्रिये ।
ब्रह्मग्रन्थिं प्रयत्नेन दद्यात् साधकसत्तमः ।।22।।

हे प्रिये ! मालिका का निर्माण मूलमन्त्र अथवा प्रणव से करना चाहिये और वांछित मणियों को पिरोने के बाद ब्रह्मग्रन्थि का संयोजन बड़ी ही सावधानीपूर्वक करना चाहिये ।

सूत्रद्वयं परेशानि ! मिलितं कारयेत् ततः ।
मेरुं च ग्रहणं कार्यं तदूर्ध्वे ग्रन्थिसंयुतम् ।।23।।
समीपे गुरुदेवस्य संस्कारमाचरेत्सुधीः ।

हे परमेश्वरि ! ब्रह्मग्रन्थि लगाते समय दोनों ओर के सूत्रों को मिलाकर मेरु (51वीं)

मणि में उस मिलित सूत्र को डालकर उसके ऊपर गाँठ लगा देनी चाहिये । हे पार्वति ! बुद्धिमान् साधक को चाहिये कि वह मालिका के ग्रथन के पश्चात् अपने गुरु के समीप यथाविधि माला का संस्कार करे ।

मालातो जपविधिः कथनम्

स्थूलावधि जपेन्मन्त्रं सूक्ष्मभागे समापयेत् ॥24॥
पुच्छावधिजपाद् देवि ! सिद्धिहानिः प्रजायते ।
शिरे धृत्वा जपेन्मालां गुरोर्ध्यानपुरःसरम् ॥25॥

हे देवि ! जप का नियम यह है कि माला के स्थूलभाग से जप का आरम्भ और सूक्ष्मभाग से जप का समापन किया जाय । माला के सूक्ष्म भाग से जप आरम्भ करने से सिद्धि में हानि होती है । इसके अतिरिक्त माला को अपने माथे का स्पर्श करा गुरु का स्मरण कर जप आरम्भ करना चाहिये ।

सम्भाव्य मालां भुजगेन तुल्यां
कथाप्रसङ्गेन इव (सुख ?) प्रदा स्यात् ।
जपेन्मदाङ्गं लभते तवाङ्गं
प्रदीप्य कात्यायिनि ! कामनादम् ॥26॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
एकादशः पटलः समाप्तः ।



हे पार्वति ! साधक को चाहिये कि वह माला को भुजंगी आकृति अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म क्रम में निर्मित का उसे मेरे शरीर पर अलंकृत सर्पराज का ही रूप माने । इस प्रकार मेरे अंगों पर स्थित भुजगाकृति मालिका से जप करने पर साधक आपके (भगवती) विश्वव्यापी विराट् अंग में विलीन हो जाता है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का एकादश पटल समाप्त ।



अथ द्वादशः पटलः

देव्याः गायत्रीस्वरूपजिज्ञासा

श्रीपार्वतीवाच

देवदेव ! महादेव ! संसारार्णवतारक !
वेदमातेति विख्याता गायत्री च कथं भवेत् ॥1॥

भगवती पार्वती ने कहा—हे देवों के देव महादेव ! हे संसारसागरतारक ! वेदों की माता के रूप में विख्यात गायत्री का स्वरूप क्या है ?

श्रीशिवेन गायत्रीस्वरूपनिर्वचनम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गायत्रीं परमाक्षरीम् ।
वेदमातेति विख्याता सर्वतन्त्रप्रपूजिता ॥2॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! सुनो, मैं अब वेदमाता के रूप मे विख्यात और समस्त तन्त्रों में सुपूजित परमाक्षरी गायत्री का निरूपण करता हूँ ।

हालाहलं समुद्धृत्य नत्यक्षरं समुद्धरेत् ।
वामकर्णयुतं कृत्वा पुनर्नाभिं समुद्धरेत् ॥3॥

हे पार्वति ! प्रथम हालाहल संज्ञक वर्ण (ओ) का उद्धार करके नतिवर्ण (म्) उद्धृत करें । फिर, वामकर्णसंज्ञक वर्ण (ऊ) सहित नाभिवर्ण (भ्) लिखें । इस प्रकार 'ओं भू' हुआ ।

व्याहृतित्रयोद्धारः

कर्णयुक्तं मूर्ध्नि रेफं ततश्च सुरवन्दिते ।
वारुण्यां रसनायुक्तं चन्द्रराजं ततः परम् ॥4॥
लान्तं सकारसंयुक्तं सर्गयुक्तं तथैव च ।

हे देववन्द्ये पार्वति ! इसके बाद पुनः नाभिवर्ण (भ्) कार को ही दक्षिण कर्णवर्ण (उ) और शीर्ष पर रेफवर्ण (ॅ) कार के साथ 'र्भु' के रूप में लिखें । तत्पश्चात् वारुण अर्थात् जल संज्ञकवर्ण (व्)कार रसनावाचक वर्ण (:)सहित 'वः' के रूप में लिखकर चन्द्रराजवर्ण

(स्) को लान्तवर्ण (व) में मिलाकर उसे सर्ग (:) युक्त कर 'स्व:' के रूप में लिखें। इस प्रकार 'ओं भू र्भुव: स्व:' रूप तीन व्याहृतियों का उद्धार करे।

गायत्रीमन्त्रोद्धारः

तत्पदं च समुद्धृत्य सवितुस्तदनन्तरम् ॥5॥
वरेण्यमिति चोचार्य भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् प्रणवं तदनन्तरम् ॥6॥
इति ज्ञात्वा महेशानि! साक्षान्नारायणो भवेत्।

हे देवि! सर्वप्रथम 'तत्' पद, तत्पश्चात् 'सवितुः', तदनन्तर 'वरेण्यम्' पद का उच्चारण करके भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्' और तदनन्तर 'ओम्' पदों के समूहरूप अर्थात् 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्' गायत्री के रहस्य को जानकर साधक साक्षात् नारायण स्वरूप हो जाता है।

धियो योर्मध्यभागे 'ओ'कारश्रुतिकथनम्

धियो योर्मध्यभागे च यकारद्वयमेव च ॥7॥
अत एव महादेवि! अनन्तश्रुतिरेव च।
इति जप्त्वा महेशानि! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥8॥

हे माहेश्वरि! 'धियो' के ओकार और 'यो' के ओकार के बीच दो य्कार और 'अनन्त' अर्थात्' 'ओ'कार की श्रुति (धिय् ओ य् ओ) है। इस प्रकार 'धियो यो न: प्रचोदयात्' के रूप में गायत्री का जप करने वाला मुक्त हो जाता है।

अन्त्ययकारयोः स्थाने ओकारपाठनिषिद्धः

अन्त्ययकारयोः स्थाने ओकार इति यः पठेत्।
स चाण्डाल इति ख्यातो ब्रह्महत्या दिने दिने ॥9॥
अत एव महेशानि! तव स्नेहात् प्रकाशितम्।

लेकिन, हे माहेश्वरि! उक्त दोनों अन्त्य यकारों के स्थान पर जो जपकर्ता दोनों य्कारों (य् य्) श्रुतियों के स्थान पर 'ओ ओ'कार ध्वनियों का उच्चारण 'धिओ ओ' अर्थात् 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धिओ ओ न: प्रचोदयात्' करता है, गायत्रीमन्त्र का अशुद्ध उच्चारण करने के कारण, उसे चाण्डाल मानकर मान्त्रिक समुदाय से बहिष्कृत कर देना चाहिये।

गायत्रीजपात्सर्वपापहानिः

दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुरा कृतम् ॥10॥
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति पातकम्।

हे पार्वति ! सैकड़ों हजार जन्मों में किये गये और हजार त्रियुगों में किये गये पातकों को भी गायत्री नष्ट कर देती हैं। गायत्री के इस महामहिम प्रभाव को ध्यान में रखते हुए ही मैंने आपके सामने गायत्री के उक्त स्वरूप का निर्वचन किया है।

जपसंख्याजपफलादिप्रकथनम्

लक्षं जप्त्वा तु तां देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥11॥
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा देववद् विहरेत्क्षितौ ।

हे देवि ! गायत्री का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बनकर भूलोक में देवता की भाँति स्वच्छन्द विचरण करने में सक्षम हो जाता है।

यद्गृहे विद्यते देवि ! एतत् तन्त्रं सुधामयम् ॥12॥
तद्गृहं परमेशानि कैलाससदृशं सदा ।
नित्यं च पूजयेत् तन्त्रं स सिद्धो नात्र संशयः ॥13॥

हे देवि ! गुप्तसाधन नामक यह महातन्त्रराज जिस घर में विद्यमान होता है, वह घर सदा कैलास के समान पवित्र और सुखमय होता है। और जो व्यक्ति इसकी नित्य अर्चना करता है, वह वास्तव में सिद्ध पुरुष है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

नित्यं नित्यं महेशानि ! यः पश्येद् य(त)न्त्रमुत्तमम् ।
स पूतः सर्वपापेभ्यः अन्ते शिवमयो भवेत् ॥14॥

हे माहेश्वरि ! जो साधक इस तन्त्र अथवा इसके अनुसार निर्मित यन्त्र का प्रतिदिन दर्शन करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवरूप हो जाता है।

यो लिखितं त्विदं तन्त्रं शिववाक्यं सुधामयम् ।
गङ्गास्नानसमं पुण्यमन्ते शिवमवाप्नुयात् ॥15॥

हे देवि ! जो व्यक्ति इस तन्त्र को लिखित रूप में देखता है अथवा इसकी प्रतिलिपि करता है, वह गंगास्नान का पुण्य प्राप्त करता है और मृत्यु के अनन्तर शिव को प्राप्त होता है।

यो यत्र पठते नित्यं तन्त्रराजमिदं शुभम् ।
स सर्वदुष्कृतिं तीर्त्वा अन्ते देवीपदं व्रजेत् ॥16॥

इति गुप्तसाधननाम्नि महातन्त्रराजे पार्वतीशिवसंवादे
द्वादशः पटलः समाप्तः ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥



हे परमेश्वरि ! जो व्यक्ति जहाँ भी इस तन्त्रराज का पठन करता है, उसके सभी दुष्कर्म वहीं तत्काल नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् वह भगवती के स्वरूप में लीन होकर देवीमय हो जाता है ।

डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत गुप्तसाधनमहातन्त्रराज की 'मीराश्री'
हिन्दीविवृति का द्वादश पटल समाप्त ।



(4)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

पुरश्चर्यार्णवस्य नवमतरङ्गे संगृहीतं
तारासपर्यात्मकम्

तारातन्त्रम्

•

विवृतिकार: सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

तारातन्त्र का सार

तन्त्रशास्त्र के विभिन्न आकरग्रन्थों में उपलब्ध विभिन्न मन्त्रों का सम्यक् संकलन नेपाल के पूर्व महाराजाधिराज प्रतापसिंहसाहदेव विरचित 'पुरश्चर्यार्णव' नामक ग्रन्थ में अज्ञाननाशिनी महाविद्या भगवती तारा के विभिन्न मन्त्रों का संकलन मिलता है। इसके अनुसार फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि सबसे पहले रकार समन्वित इन्दु-बिन्दु अर्थात् चन्द्र और बिन्दु से युक्त, चतुर्थ स्वर 'ई' से सुशोभित 'ह्र' से अगला वर्ण 'ह्र' (ह् र् ई और ँ) अर्थात् (ह्रीँ) रखना चाहिए। तदनन्तर चतुर्थ स्वर से ही युक्त 'त्र' वर्ण रखकर दीर्घ ऊकार से युक्त 'हं'कार की योजना (हूँ के रूप में) करनी चाहिये और अन्त में 'फट्' रखने से 'ह्रीं त्रीं हूँ फट्' रूप महाविद्या (तारा महामन्त्र) का निर्माण होता है।

मत्स्यसूक्त के अनुसार पहले मायाबीज 'ह्रीं' फिर रतिबीज 'स' से युक्त तवर्ग का प्रथम अक्षर 'त्' (स्त) तदनन्तर बिन्दु 'अनुस्वार', 'वह्नि' रकार से युक्त दूसरा बीज 'स्त्रीँ' तत्पश्चात् कूर्चबीज 'हूँ' और अन्त में फट् और रश्मि अर्थात् ओंकार से युक्त पाँच बीजों वाला (ओं ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्) रूप तारा महाविद्या मन्त्र का स्वरूप प्रकट होता है। तारार्णव में कहा गया है कि अनुत्तर संज्ञकवर्ग (अ), फिर माया (ईकार) से आगे का वर्ण (उकार), तदनन्तर पवर्ण से पाँचवाँ वर्ण (मकार) अर्थात् अ उ तथा म् के संयुक्त रूप 'ओम्' को 'पञ्चरश्मि:' कहते हैं। तत्त्वबोध में बताया गया है कि तार (ओ) लज्जा (ह्रीं), त्र कामेशा (ई), हूँ तथा फट् अर्थात् 'ओं ह्रीं त्रीँ हुं फट्' यह उग्रतारा का मन्त्र है। एकजटा देवी का मन्त्र माया (ह्रीँ) त्रीँ, हूँ तथा अस्त्र (फट्) अर्थात् 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' मन्त्र से एकजटा की अर्चना करनी चाहिये। तथा एकजटा के इस मन्त्र में यदि अस्त्र (फट्) न हो तो यह 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' रूप होकर भगवती नीलसरस्वती का मन्त्र हो जाता है।

तीन अक्षरों वाले 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' रूप इस नीलसरस्वतीमन्त्र के आरम्भ में 'ओं' तथा अन्त में दो बार 'फट्' का योग करके 'ओं ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट् फट्' के रूप में हृदय में इसका चिन्तन किया जाय तो यह साधक के अज्ञानरूपी ईंधन को जला डालता है।

मत्स्यसूक्त के अनुसार (ओंकारसहित ?) लज्जाबीज 'ह्रीँ', बधूबीज 'स्त्रीँ', कूर्चबीज 'हूँ' तथा फट् से निर्मित '(ओं) ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' रूप पञ्चाक्षरी तारामहामन्त्र आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी रूप पञ्चतत्त्वों का प्रकाशक अर्थात् संसार की वास्तविकता का बोध कराने वाला है तथा तार (ओम्) तथा अस्त्र से रहित अर्थात् 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' रूप तीन अक्षरों वाला महामन्त्र महानीलसरस्वती का मन्त्र है। इसी महामन्त्र को 'कुल्लुका' कहा जाता है।

महर्षि वसिष्ठ के शाप से ग्रस्त इस विद्या को महर्षि वशिष्ठ ने स्वयं ही इसके आरम्भ में शक्तिबीज स्कार का योग करके जब शापमुक्त कर दिया तो यह विद्या वधू की भाँति यश प्रदान करने वाली हो गई। किन्तु अन्य तन्त्र में कहा गया है कि तारामन्त्र 'त्रीं' वसिष्ठ के शाप से ग्रस्त होने की बात केवल कृष्णावतार तक ही प्रभावी है। कृष्णजन्म के बाद विद्या शापमुक्त हो चुकी है।

साधन-समुच्चय के अनुसार इस ग्रन्थ में बताया गया है कि तारा-पञ्चाक्षरी विद्या 'ओं ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्' के बीजों में से प्रथम बीज 'ओं' का तात्पर्य तारा की ब्रह्मरूपता है। यह विद्या

'साऽहम्' प्रतिपादित तत्त्वस्वरूपिणी है। इसके द्वितीय बीज 'ह्रीँ' में ह् र् ई और बिन्दु चार वर्ण हैं। इनमें से हकार का तात्पर्य प्रकाशमानता और रकार का अर्थ ग्राह्यता है। प्राकाशमानता का अर्थ अभिव्यक्ति है और ग्राह्यता का अर्थ आत्मसात्करण है। हकार और रकार इन दोनों बीजों का योग ही पराशक्ति तारा का ईकाररूप विसर्ग है। विसर्ग का अर्थ विशिष्ट सर्ग या रचना है। बिन्दु पुरुष रूप है तथा विसर्ग प्रकृति रूप। बिन्दु और विसर्ग के योग से ही सृष्टि होती है।

तात्पर्य यह कि विसर्गरूपा भगवती श्रीतारा का ईकार बीज ही जगत् की सृष्टि का मूल कारण है। हकार, रकार और ईकार के योग 'ह्री' के साथ जब बिन्दुरूप पुरुष का योग होता है, तब 'ह्रीकार'रूपा यही शक्ति तान्त्रिकी अर्थात् विश्व-विस्ताररूपा अर्थात् पूर्ण विश्वात्मिका बनती है।

तारा पञ्चाक्षरी महाविद्या के तीसरे मूल बीज 'त्रीं' में तकार, रकार तथा बिन्दुमाली महाबीज (नाद और बिन्दु) हैं। इनमें से तकार समस्त पापों का विनाशक, रकार परमतत्त्व-प्रकाशक तथा बिन्दु सर्ववाङ्मयरूप शब्दब्रह्म का प्रकाशक है।

इस महाविद्या का कूर्चसंज्ञक चतुर्थ बीज स्वत: ज्ञानरूप है तथा अस्त्र नामक पंचम बीज 'फट्' जडता का विध्वंसक है। जो पवित्रात्मा साधक पञ्चाक्षरी तारा महाविद्या के इस तात्त्विक स्वरूप को जानता है, वह साक्षात् कल्याणमय शिवस्वरूप है।

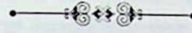
मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि इस तारापंचाक्षरी महाविद्या के आरम्भ में श्रीविद्या के प्रथम बीज 'श्रीं' का योग कर 'श्रीं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' के रूप में यह सर्वतोमुखी 'श्री' हो जाती है और यदि इसके आरम्भ में माया बीज 'ह्रीं' का योग कर दिया जाय तो यह 'ह्रीं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' विद्या-साधक की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली सर्वविद्यास्वरूपा बन जाती है। वाग्भव बीज 'ऐं' का योग कर देने पर 'ऐं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' के रूप में यह विद्या महावाक्य का रूप लेकर निखिल वाङ्मयी बन जाती है।

तारापञ्चाक्षरी महाविद्या की विधिवत् साधना से साधक को गुटिकासिद्धि, वेतालसिद्धि, पातालसिद्धि, वटयक्षिणीसिद्धि, परपुर:प्रवेशसिद्धि तथा आज्ञापालन कराने की सिद्धि प्राप्त होती है। इस विद्या की अधिष्ठात्री भगवती तारा का अपनी जिह्वा में चिन्तन करने से साधक त्रिकालज्ञ बन जाता है। भगवती तारा का अपने साथ अभेदभाव से चिन्तन करने वाला साधक इस जगत् में जीवन्मुक्त तथा अन्त में जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मसंहिता तथा फेत्कारिणीतन्त्र के उद्धरण के साथ पुरश्चर्यार्णव में बताया गया है कि कलियुग में भगवान् श्रीशिव की कृपा से सभी साधकों को 'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' महामन्त्र की अधिष्ठात्री भगवती श्रीनीलसरस्वती अतिशीघ्र प्रसन्न होती हैं। भगवती नीलसरस्वती का मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मन्त्रसिद्ध साधक यदि किसी बालक के भी माथे पर हाथ रख देता है, तो वह तुरन्त कविता करने लगता है। इसके अतिरिक्त महानीलसरस्वती के उक्त मन्त्र के ज्ञानमात्र से दो लक्षण और प्रकट होते हैं—पहला आशुकवित्व और दूसरा अन्यों से कभी पराजित न होना।

इस प्रकार पुरश्चर्यार्णव में भगवती तारिणी के अनेक मन्त्रों, उनकी विधियों तथा भगवती के विधि स्वरूपों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

तारातन्त्रम्



स्त्रीँ नमस्तारिण्यै

कैलाशशिखरासीनं चन्द्रखण्डविराजितम् ।
वक्षःस्थले समासीना पृच्छति स्म नगात्मजा ॥1॥

मीराश्री

पर्वतराज कैलास के शिखर पर आसीन चन्द्रमौलि भगवान् श्री शङ्कर के वक्ष का सहारा लिये बैठी भगवती पार्वती ने उनसे पूछा—

कथमीशान ! सार्वज्ञमलभंस्ते तपोधनाः ।
कां विद्यां प्राप्य कवयो भारतादि प्रचक्रिरे ॥2॥

हे भगवन् ! महान् तपस्वियों ने किस विद्या का आश्रय लेकर सर्वज्ञता प्राप्त की थी और व्यासादि महाकवियों ने किस विद्या को प्राप्त कर भारतादि महान् काव्यग्रन्थों की रचना करने में समर्थ हुए थे ।

श्रुत्वा नगात्मजावाक्यं विहस्य परमेश्वरः ।
प्राह प्रियां परिष्वज्य साधु साध्विति पूजयन् ॥3॥

पर्वतराजपुत्री भगवती पार्वती की बातें सुनकर मुस्कराते हुए परम शिव ने उन्हें आलिङ्गित कर उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—

शृणु साध्वि ! महाविद्यामज्ञानेन्धनदाहिनीम् ।
यामवाप्य महात्मानो धर्मकामार्थमुक्तिषु ॥4॥
नासाध्यं मेनिरे किञ्चित् कवयः शुद्धबुद्धयः ।

हे प्रिये ! महाकाव्यादिकों की रचना अज्ञानी पुरुष कर नहीं सकते । सामान्यतया अज्ञान मनुष्य सहित सभी प्राणियों में होता है । अज्ञान का नाश केवल ज्ञान से हो सकता है । ज्ञान अग्नि और अज्ञान ईंधन के समान है । जिस प्रकार अग्नि इन्धन को जला डालती है, उसी प्रकार ज्ञान अज्ञान को नष्ट कर देता है । व्यक्ति का अनादि अज्ञान किसी विद्या अथवा मन्त्र की साधना से सम्भव होता है । हे देवि ! मैं तुमसे उस विद्या का उल्लेख करता

हूँ, जिसकी उपासना करके व्यासादि विशुद्धज्ञान महात्माओं ने न केवल काव्यादि की रचना कर सके, अपितु धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि में भी समर्थ रहे ।

वादे सदसि या वाचः स्तम्भिनी प्रतिवादिनाम् ॥5॥
विद्याहानिकरी देवि ! विदुषां बलिदानतः ।
हास्याय या सदस्यानामशुद्धमपि जल्पयेत्* ॥6॥
वादिनं चापि राजानं मन्त्रिणं वशमानयेत् ॥7॥
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण जपात्सर्वज्ञतां नयेत् ।

हे पार्वति ! मैं जिस (वक्ष्यमाण महाविद्या) विद्या की चर्चा कर रहा हूँ उसकी उपासना से वाद में उपासक के प्रतिवादियों की वाणी स्तम्भित या मूक हो जाती है । हे भगवति ! बड़े-बड़े विद्वानों की विद्या उसके सामने विनष्ट-सी हो जाती है । साधक के समक्ष प्रतिवादी उपहास का पात्र बन जाता है, वह अशुद्ध और अप्रासंगित बातें बोलने लगता है । विद्या का उपासक अपने प्रतिवादी राजाओं और मन्त्रियों तक को अपने वश में कर सकता है । यदि कोई उपासक इस महाविद्या को प्राप्त कर उसका जपमात्र करता है, तो वह सर्वज्ञ हो सकता है ।

मन्त्रोद्धारणमाह

सपरं† प्रथमं दत्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
रेफारूढं स्फुरद्दीप्तमिन्दुबिन्दुसमन्वितम् ॥8॥
त्रकारं च ततो दद्याच्चतुर्थेनैव भूषितम् ।
दीर्घीकारसमायुक्तं ह(हं)कारं योजयेत्ततः ।
फट्कारं च ततो दद्यात् सम्पूर्णः सिद्धमन्त्रतः ॥9॥

(इति फेत्कारिणीतन्त्रात्)

हे देवि ! अज्ञाननाशिनी प्रतिवादिस्तम्भनकारी महाविद्या तारा उद्घाटन करते हुए फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि सबसे पहले रकार समन्वित इन्दु-बिन्दु अर्थात् चन्द्र और बिन्दु से युक्त, चतुर्थ स्वर 'ई' से सुशोभित 'स' से अगला वर्ण 'ह' (ह् र् ई और ँ) अर्थात् (ह्रीँ) रखना चाहिये । तदनन्तर चतुर्थ स्वर से ही युक्त 'त्र' वर्ण रख दीर्घ ऊकार से युक्त 'हं' कार की योजना (हूँ) के रूप में) करनी चाहिये और अन्त में 'फट्' रखने से 'ह्रीँ त्रीँ हूँ फट्' रूप महाविद्या (तारा महामन्त्र) का निर्माण होता है ।

मत्स्यसूक्ते तारामन्त्रोद्धारः

अथ वक्ष्ये महादेव्या मन्त्रोद्धारमनुत्तमम् ।
यच्च ज्ञात्वा नरो भाति वाचस्पतिरिवापरः ॥10॥

---

* जल्पयेद्वादिनमित्यन्वयः ।

† सपरो हकारः । शेषं पूर्ववत् ।

मायाबीजं समुद्धृत्य तवर्गप्रथमं तथा ।
रतिबिन्दुवह्नियुतं द्वितीयं बीजमुत्तमम् ।।11।।
कूर्चबीजं तृतीयं तु फट्कारस्तदनन्तरम् ।
सम्पूर्णसिद्धमन्त्रस्तु रश्मिपञ्चकसंयुतः* ।।12।।

मत्स्यसूक्त में महाविद्या तारा के इस मन्त्र का उद्घाटन जिस रूप में किया गया है, मैं वह भी बताता हूँ । मन्त्र के इस स्वरूप को जानकर व्यक्ति इस संसार में ऐसे सुशोभित और सम्मानित होता है, जैसे वह दूसरा बृहस्पति हो । मत्स्यसूक्त में वर्णित ताराविद्या में पहले मायाबीज 'ह्रीँ' फिर रति बीज 'स' से युक्त तवर्ग का प्रथम अक्षर 'त्' (स्त) तदनन्तर बिन्दु 'अनुस्वार', 'वह्नि' रकार से युक्त दूसरा बीज 'स्त्रीँ', तत्पश्चात् कूर्चबीज 'हूँ और अन्त में फट् और रश्मि अर्थात् ओंकार से युक्त पांच बीजों वाला (ओं ह्रीँ स्त्रीं हूँ फट्) रूप तारा महाविद्या मन्त्र का स्वरूप प्रकट होता है ।

तदुक्तं तारार्णवे

अनन्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमनुं ततः ।
पपञ्चम समायुक्तं पञ्चरश्मिः प्रकीर्तितः† ।।13।।

तारार्णव में कहा गया है कि अनुत्तर संज्ञकवर्ण (अ), फिर माया (ईकार) से आगे का वर्ण (उकार), तदनन्तर पवर्ण से पांचवाँ वर्ण (मकार) अर्थात् अ उ तथा म् के संयुक्त रूप 'ओम्' को 'पञ्चरश्मिः' कहते हैं ।

तत्त्वबोधे उग्रतारादिमन्त्रोद्धारः

तारं लज्जां त्र कामेशी‡ हुँ फडित्युग्रतारिका ।
मायां त्रीं हूमथास्त्रान्तकमत्येकजटयार्चयेत् ।।
अस्त्रहीनमिदं नीलसरस्वत्या विनिर्दिशेत् ।।14।।

तत्त्वबोध में बताया गया है कि तार (ओ) लज्जा (ह्रीँ), त्र कामेशी (ई), हूँ तथा 'फट्' अर्थात् 'ओं ह्राँ त्रीँ हुँ फट्' यह उग्रतारा का मन्त्र है । एकजटा देवी का मन्त्र माया (ह्रीँ) त्रीँ, हूँ तथा अस्त्र (फट्) अर्थात् 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' मन्त्र से एकजटा की अर्चना करनी चाहिये । तथा एक जटा के इस मन्त्र में यदि अस्त्र (फट्) न हो तो यह 'ह्राँ स्त्रीँ हूँ' रूप होकर भगवती नीलसरस्वती का मन्त्र हो जाता है ।

त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः फट्कारान्तौ हृदि स्थितः ।
पञ्चरश्मिसमायुक्तोऽथाऽज्ञानेन्धनदाहकः ।।15।।

---

* पञ्चरश्मिः प्रणवः

† अनुत्तरमकारः, मायोत्तरमीकारः, पपंचमो मकारः ।

‡ कामेशीमीकारः

तीन अक्षरों वाले 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' रूप इस तीलसरस्वतीमन्त्र के आरम्भ में 'ओं' जथा अन्त में दो बार 'फट्' को योग करके 'ओं 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट् फट्' के रूप मे हृदय में इसका चिन्तन किया जाय तो यह साधक के अज्ञानरूपी ईंधन को जला डालता है ।

मत्स्यसूक्ते

लज्जाबीजं बधूबीजं कुच्रबीजं तथा हि फट् ।
एवं पञ्चाक्षरीविद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ।।16।।

मत्स्यसूक्त के अनुसार (ओंकारसहित ?) लज्जाबीज 'ह्रीँ', बधूबीज 'स्त्रीँ', कूर्चबीज 'हूँ' तथा फट् से निर्मित '(ओं) ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' रूप पञ्चक्षरी तारामहामन्त्र आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी रूप पञ्चतत्त्वों का प्रकाशक अर्थात् संसार की वास्तविकता का बोध कराने वाला है ।

तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती ।
कुल्लुकेति समाख्याता त्रिषु लोकेषु गोपिता ।।17।।

तार (ओंम्) तथा अस्त्र से रहित अर्थात् 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' रूप तीन अक्षरों वाला महामन्त्र महानीलसरस्वती का मन्त्र है । इसी महामन्त्र को 'कुल्लुका' कहा जाता है ।

तारार्णवे महर्षिवशिष्टाराधिता तारामहाविद्या

वशिष्ठाराधिता चोग्रा न शीघ्रफलदा यतः ।
ततस्तेनैव मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।।18।।
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्य चिद् ।

तारार्णव में एक कथानक आया है कि 'जब महर्षि वशिष्ट द्वारा आराधित तारा महाविद्या (त्रीँ) शीघ्रसिद्ध नहीं हुई, इसलिये वशिष्ट ने ही इस विद्या की साधना को निष्फल होने का कठोर शाप दे दिया था । तभी से इस विद्या की साधना का फल किसी को भी नहीं मिला ।

शक्तिबीजं* त्रपान्तस्थबीजोपरि नियोजितम् ।।19।।
ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ।

'ह्रीँ' फिर रति बीज 'स' से युक्त तवर्ग का प्रथम अक्षर 'त्' (स्त) तदनन्तर बिन्दु 'अनुस्वार', 'वह्नि' रकार से युक्त दूसरा बीज 'स्त्रीँ', तत्पश्चात् कूर्चबीज 'हूँ और अन्त में फट् और रश्मि अर्थात् ओंकार से युक्त पाँच बीजों वाला (ओं ह्रीँ स्त्रीं हूँ फट्) रूप तारा महाविद्या मन्त्र का स्वरूप प्रकट होता है । ततः प्रभृति विद्येयं बधूरिव यशस्विनी ।

---

* शक्तिबीजमिति । शक्तिबीजं सकारः । त्रपान्तस्थबीजं त्रीङ्कारः। तेन स्त्रीमिति बधूबीजं भवति ।

फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकांक्षिणाम् ॥20॥
विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी ।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते ॥21॥
मूको भवति वागीशो गीष्पतिर्जायते नरः ।

शापग्रस्त इस विद्या को महर्षि वशिष्ट ने ही इसके आरम्भ में शक्तिबीज स्कार का योग करके जब शापमुक्त कर दिया तो यह विद्या वधू की भाँति यश प्रदान करने वाली हो गई । शक्ति बीज का योग करने के बाद यह विद्या अन्य सभी विद्याओं की भी फलप्रदात्री, विजयेच्छुओं को विजयप्रदात्री, विषनाश करने वाली तथा अमरत्त्वप्रदायिनी बन गई । इस विद्या के ज्ञानमात्र से साधक संसार-विजयी बन जाता है, मूक व्यक्ति का भी वाणी पर पूर्ण अधिकार हो जाता है तथा वह वाचस्पति बृहस्पति के समान हो जाता है ।

शापस्तु कृष्णावतारपर्यन्तमेव

'जाते कृष्णावतारे तु पुनः शापात्प्रमुच्यते' ॥22॥

इति तन्त्रान्तरवचनात् ।

किन्तु अन्य तन्त्र में कहा गया है कि तारामन्त्र 'त्रीँ' के महर्षि वशिष्ट के शाप से ग्रस्त होने की बात केवल कृष्णावतार तक ही प्रभावी है । कृष्णजन्म के बाद यह विद्या शाप मुक्त हो चुकी है ।

मन्त्रार्थमाह (साधनसमुच्चये)

प्रणवाद् ब्रह्मरूपा सा सोऽहं तत्त्वस्वरूपिणी ।
व्योम्ना प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना ॥
तयोर्विसर्ग ईकारो बिन्दुना तान्त्रिकी मता ॥23॥

साधनसमुच्चय में तारा-पञ्चाक्षरी विद्या 'ओं ह्रीँ स्त्रीं हूँ फट्' के बीजों में से प्रथम बीज 'ओं' का तात्पर्य तारा की ब्रह्मरूपता है । यह विद्या 'सोऽहम्' प्रतिपादित तत्त्वस्वरूपिणी है ।

इसके द्वितीय बीज 'ह्रीँ' में ह् र् ई और बिन्दु चार वर्ण हैं । इनमें से हकार का तात्पर्य प्रकाशमानता और रकार का अर्थ ग्राह्यता है । प्रकाशमानता का अर्थ अभिव्यक्ति है और ग्राह्यता का अर्थ आत्मसात्करण है । हकार और रकार इन दोनों बीजों का योग ही पराशक्ति तारा का ईकाररूप विसर्ग है । विसर्ग का अर्थ विशिष्ट सर्ग या रचना है । बिन्दु पुरु रूप है तथा विसर्ग प्रकृति रूप । बिन्दु और विसर्ग के योग से ही सृष्टि होती है ।

तात्पर्य यह कि विसर्गरूपा भगवती श्रीतारा का ईकार बीज ही जगत् की सृष्टि का मूल कारण है । हकार, रकार और ईकार के योग 'ह्री' के साथ जब बिन्दुरूप पुरुष का योग होता है, तब 'ह्रीं' काररूपा यही शक्ति तान्त्रिकी अर्थात् विश्व-विस्ताररूपा अर्थात् पूर्ण विश्वात्मिका बनती है ।

तकारः सर्वपापघ्नो रेफस्तत्त्वप्रकाशकः ॥
बिन्दुमाली महाबीजं शब्दब्रह्मप्रकाशकम् ॥24॥

तारा पञ्चाक्षरी महाविद्या के तीसरे मूल बीज 'त्रीं' में तकार, रकार तथा बिन्दुमाली महाबीज (नाद और बिन्दु) हैं । इनमें से तकार समस्त पापों का विनाशक, रकार परमतत्त्व प्रकाशक तथा बिन्दु सर्ववाङ्मयरूप शब्दब्रह्म का प्रकाशक है ।

कूर्चं प्रबोधरूपं स्यादस्त्रं जाड्यविनाशकम् ।
एवं यो वेत्ति शुद्धात्मा स तु साक्षान्महेश्वरः ॥25॥

इस महाविद्या का कूर्च संज्ञक चतुर्थ बीज स्वतः ज्ञानरूप है तथा अस्त्र नामक पंचम बीज 'फट्' जडता का विध्वेसक है । जो पवित्रात्मा साधक पञ्चाक्षरी तारा महाविद्या के इस तात्त्विक स्वरूप को जानता है, वह साक्षात् कल्याणमय शिवस्वरूप है ।

मत्स्यसूक्ते

श्रीविद्याद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतो मुखी ।
एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा ॥
वाग्भवाद्या महावाक्यस्वरूपा सर्ववाङ्मयी ॥26॥

मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि इस तारापंचाक्षरी महाविद्या के आरम्भ में श्रीविद्या के प्रथम बीज 'श्रीं' का योग कर 'श्रीं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' के रूप में यह विद्या सर्वतोमुखी श्री हो जाती है और यदि इसके आरम्भ में माया बीज 'ह्रीं' का योग कर दिया जाय तो यह 'ह्रीं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' विद्या साधके की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली सर्वविद्यास्वरूपा बन जाती है । वाग्भव बीज 'ऐं का योग कर देने पर 'ऐं ओं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' के रूप में यह विद्या महावाक्य का रूप लेकर निखिल वाङ्मयी बन जाती है ।

गुटिकासिद्धिवेतालपातालवटयक्षिणी ।
परपुरप्रवेशश्च आज्ञासिद्धिः प्रजायते ॥27॥

तारापञ्चाक्षरी महाविद्या की विधिवत् साधना से साधक को गुटिकासिद्धि, वेतालसिद्धि, पातालसिद्धि, वटयक्षिणीसिद्धि, परपुरप्रवेश-सिद्धि तथा आज्ञापालन कराने की सिद्धि प्राप्त होती है ।

जिह्वायां चिन्तनादेव त्रिकालज्ञो भवेद्ध्रुवम् ।
यस्तु विद्यामभेदेन चिन्तयेत् साधकोत्तमः ॥
जीवन्मुक्तो विमुक्तश्च अन्ते सोऽपि भवेद् ध्रुवम् ॥28॥

इस विद्या की अधिष्ठात्री भगवती तारा का आपनी जिह्वा में चिन्तन करने से साधक

त्रिकालज्ञ बन जाता है । भगवती तारा का अपने साथ अभेदभाव से चिन्तन करने वाला साधक इस जगत् में जीवनमुक्त तथा अन्त में जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है ।

ब्रह्मसंहितायां फेत्कारिण्यां च

क्षिप्रप्रसादाज्जगतां सदा नीलसरस्वती ।
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥29॥
सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री बालिशस्यापि मूर्धनि ।
करं दत्वा *दिशत्याशु सोऽपि श्लोकान् पठेत्पुनः ॥30॥
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण अनुभावद्वयं भवेत् ।
तात्कालिकी च कविता परैरनविभाव्यता ॥31॥

ब्रह्मसंहिता तथा फेत्कारिणीतन्त्र में मैंने (शिव ने) कहा है कि विशेषतया कलियुग में मेरी अनुकम्पा से सभी साधकों को 'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्' महामन्त्र की अधिष्ठात्री भगवती श्रीनीलसरस्वती अतिशीघ्र प्रसन्न होती हैं । भगवती नीलसरस्वती का मन्त्रसिद्ध हो जाने पर मन्त्रसिद्ध साधक यदि किसी बालक के भी माथे पर हाथ रख देता है, तो वह तुरन्त कविता करने लगता है । इसके अतिरिक्त महानीलसरस्वती के उक्त मन्त्र के ज्ञानमात्र से दो लक्षण और प्रकट होते हैं—पहला आशुकवित्त्व और दूसरा अन्यों से कभी पराजित न होना ।

अथ ऋष्यादिन्यासः (मेरुतन्त्रे)

मुनिरक्षोभ्यसंज्ञोऽस्या बृहतीछन्द ईरितम् ।
तारादेवी ह्रीं च बीजं हूं शक्तिश्चास्य कीर्तिता ॥32॥

मेरुतन्त्र में बताया गया है कि तीन अक्षरों वाले महा नील-सरस्वती मन्त्र 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' (तथा पंचाक्षरी मन्त्र 'ओं ह्रीँ स्त्रीं हूँ फट्') के ऋषि अक्षोभ्य, छन्दस् बृहती, देवता तारा, बीज ह्रीँ तथा शक्ति हूँ है ।

मन्त्रचूडामणौ

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहतीछन्द ईरितम् ।
नीलसरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ॥
हूं बीजमस्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥33॥

मन्त्रचूडामणि में भी बताया गया है कि इस मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्दस् बृहती, देवता त्रिलोकगोप्या भगवती नीलसरस्वती, बीज हूं, शक्ति फट् और विनियोग चतुर्वर्ग फल प्राप्ति है ।

---

* दिशति श्लोकं कुर्वित्याज्ञापयति ।

दामोदरमिश्रकृतसंग्रहे

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहतीच्छन्द ईरितम् ।
नीलसरस्वती* देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ॥34॥
हूं बीजमन्त्रः शक्तिः स्यान्माया स्त्रीं कीलकं स्मृतम् ।
विनियोगो भवेद् देवि ! चतुर्वर्गफलाप्तये ॥35॥

दामोदरमिश्र के संग्रह में भी तारा के इस मन्त्र का ऋषि अक्षोभ्य, छन्दस् बृहती देवता नीलसरस्वती, बीज हूँ तथा शक्ति माया बीज ह्रीं, कीलक स्त्रीँ तथा विनियोग धर्मादि चतुर्वर्ग बताया गया है । मन्त्रचुडाणि में इस मन्त्र की देवता उग्रतारा कहा गया है ।

अथ कराङ्गन्यासौ

(ताराकल्पे)

षड्दीर्घमायाबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥36॥

ताराकल्प के अनुसार तारामन्त्र 'ओं ह्रीँ स्त्रीं हूँ फट्' की साधना में करन्यास और षडङ्गन्यास मायाबीज के छह दीर्घरूपों ह्राँ ह्रीं हँ ह्रैँ ह्रौँ तथा ह्रः से किया जाता है । जैसे—

ह्राँ हृदयाय नमः, ह्रीँ शिरसे स्वाहा, हूँ शिखायै वषट्, ह्रैँ कवचाय हुँम्, ह्रौँ नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः करतलकरपृष्ठभ्यां नमः अस्त्राय फट् के रूप में करना चाहिये ।

नीलसरस्वत्यास्तु (सिद्धसारस्वते)

अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत् ।
अखण्डवाग्रूपिणीं च शिरसे वह्निवल्लभा ॥37॥
ब्रह्मवाग्रूपिणीमुक्त्वा शिखायै वषडित्यपि ।
विष्णुवाग्रूपिणीमुक्त्वा कवचाय हुमुच्चरेत् ॥38॥
रुद्रवाग्रूपिणीं नेत्रत्रयाय वौषडित्यपि ।
सर्ववाग्रूपिणीमुक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत् ।
षड्दीर्घमायया बीजं बीजान्ते तानि योजयेत् ॥39॥

किन्तु नीलसरस्वती मन्त्र 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ' का कराङ्गन्यास अखिलवाग्रूपिणी हृदयाय नमः, अखण्डवाग्रूपिणी शिरसे स्वाहा, ब्रह्मवाग्रूपिणीशिखायै वषट्, विष्णुवाग्रूपिणी कवचाय हुम् द्रवाग्रूपिणी नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्ववाग्रूपिणी अस्त्राय फट् मन्त्रों से करना चाहिये ।

एकजटायाः (तन्त्रचूडामणौ)

बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्तितम् ।
तारिण्यै शिरसे तद्वद्वज्रोदके शिखां तथा ॥40॥

---

* उग्रतारा देवीति मन्त्रचूडामणौ ।

उग्रजटे च कवचं महापरिसरे तथा ।
पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्तिते ॥41॥

भगवती एकजटा के मन्त्र 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' की साधना में षडङ्गन्यास का स्वरूप निम्न होगा—

ह्राँ एकजटायै हृदयाय नमः, ह्रीँ तारिण्यै शिरसे स्वाहा,
हूँ वज्रोदके शिखायै वषट्, ह्रैँ उग्रजटे कवचाय हुँम् ,
ह्रौँ महापरिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्रायफट्

न्यासोऽयमुग्रतारैकजटयोर्विरुद्ध इति साम्प्रदायिकः ।

अथ ध्यानम् (गन्धर्वतन्त्रे)

श्मशानं तत्र संचिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ।
तन्मूले मणिपीठं च नानामणिविभूषितम् ॥42॥
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु शवा मुण्डाश्चिताश्चिताङ्गारास्थिभूषिताः ॥
तन्मध्ये भावयेद् देवीं यथोक्तध्यानयोगतः ॥43॥

साम्प्रदायिक साधकों के अनुसार उग्रतारा और एकजटा का यह न्यास सम्प्रदाय विरुद्ध है ।

पहले एक विराट् श्मशान की परिकल्पना करके उस पर कल्पवृक्ष का चिन्तन करना चाहिये । उस कल्पवृक्ष के नीचे विविध बहुमूल्य मणियों से सुशोभित मणिपीठ का चिन्तन करके उस पर आसीन मांसों और अस्थियों से परिलिप्त अनेक शिवाओं से परिवेष्ठित ऐसी भगवती तारा का ध्यान करना चाहिये जो चारों ओर से असंख्य शव, मुण्ड, चिताएं, इधर-उधर बिखरे प्रज्ज्वलित चिताङ्गारों और अस्थियों से विभूषिता है ।

नीलतन्त्रे

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मवृतां कटौ ॥44॥

नीलतन्त्र के अनुसार भगवती तारा प्रत्यालीढपदा हैं, अर्थात् उनका बामपद आगे की ओर बढा हुआ शव के वक्षस्थल पर तथा कुछ मुडा हुआ सा दायाँ पैर उस शव की जंघा पर स्थित है । उनकी आकृति भयंकर है और उन्होंने सद्यः परिच्छिन्न 50 नरमुण्डों से विरचित माला से विभूषित हैं । आकार में वे खर्वा अर्थात् नाटी हैं, उनका उदर विशाल हैं, वे भीमाकारवाली हैं तथा उनकी कटि में व्याघ्रचर्म सुशोभित हो रहा है ।

नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ॥45॥

वरप्रदायिनी शक्ति भगवती तारा नवयौवना और पञ्चमुद्राओं से विभूषित हैं, उनकी चार भुजाएं हैं, जिह्वा बाहर की ओर निकली लपलपा रही है तथा आकार भयंकर हैं ।

खड्गकर्त्रीधरां सव्ये वामे मुण्डोत्पलान्विताम् ।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥46॥

भगवती तारा के चार हाथ हैं । उनके दो दाएँ हाथों में क्रमश: खड्ग और कर्तरी है और बाएँ हाथों में नरकपाल तथा कमल है । उनकी जटाएँ किंचित् पिंगल हैं और सिर पर अक्षोभ्य नामक नागराज सुशोभित हो रहे हैं ।

बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।
प्रज्वलत्पितृभूमध्यगतां दंष्ट्राकरालिनीम् ॥47॥

भगवती तारा के तीन नेत्र हैं, जो प्रात:कालीन उदीयमान सूर्यमण्डल की आभा के समान कान्तिमान हैं । पितृभूमि अर्थात् श्मशान के मध्य विराजमान भगवती की दाढें अत्यन्त विकराल हैं ।

सावेशस्मेरवदनामस्थ्यालङ्कारभूषिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरिस्थिताम् ॥48॥

महाशक्ति तारा के मुख पर उत्साह और मुस्कराहट की झलक है । उन्होंने अस्थियों से निर्मित अलङ्कार धारण कर रखे हैं । वे चतुर्दिक् व्याप्त जलराशि में स्थित श्वेत कमल पर विराजमान हैं ।

श्यामारहस्यादौ

खड्गकर्त्रीसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम्॥49॥ (इतिपाठ:)

तन्त्रान्तरे

खड्गकर्त्रीकरां देवीं कपालोत्पलधारिणीम् ॥50॥ (इतिपाठ:)

श्यामारहस्यादि कुछ ग्रन्थों प्राप्त पाठ के अनुसार भगवती तारा की दो भुताओं का उल्लेख है, जिनमें से एक में खड्ग और दूसरी में कर्तरी धारण की बात कही गई है । एक अन्य तन्त्रग्रन्थ में भगवती को खड्ग, कर्त्री, मपाल तथा उत्पल धारिणी चतुर्भुजा तारा की चर्चा की गई है ।

मन्त्रचूडामणौ

तस्योपरिगृहे देवीं खर्वां नीलमणिप्रभाम् ।
लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मसमावृतनितम्बिनीम् ॥51॥

मन्त्रचूडामणि में कहा भगवती तारा के स्वयपध्यान के विषय में कहा गया है कि वे महाश्मशान में प्रज्ज्वलित चिता के ऊपर विराजमान हैं । उनका आकार छोटा है और शरीर की कान्ति नीलमणि के समान है । देवी का उदर लम्बा तथा उनके नितम्ब व्याघ्रचर्म से आवृत है ।

पीनोन्नतपयोधारां रक्तवर्तुललोचनाम् ।
ललज्जिह्वां महाभीमां दंष्टाकोटिसमुज्ज्वलाम् ॥52॥

देवी तारा के उरोज दुग्धामृत से परिपूरित पृथुल और उन्नत हैं । उनके नेत्र वर्तुल ओर रक्तवर्ण के हैं । जिह्वा लपलपाती हुई है और आकार भयंकर है । भगवती की दाढें नोकीली और उज्ज्वल हैं ।

नीलोत्पलललसन्मालां बद्धजूटां भयङ्करीम् ।
श्वेतास्थिपट्टिकायुक्तकपालपञ्चशोभिताम् ॥53॥

महाशक्ति तारा ने नीलकमलों की माला धारण कर रखी है और उनकी जटाएँ बँधी हुई हैं । उसका स्वरूप भयजनक है । उन्होंने अपने माथे पर श्वेत अस्थियों की पट्टिका से गूँथे हुए पाँच नरकपाल सुशोभित हो रहे हैं, बाँध रखी है ।

ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णावतंसकाम् ।
अतिशुभ्रमहानागकृतहारमहोज्ज्वलाम् ॥54॥

भगवती के ललाट पर विराजमान रक्तवर्णी महानाग ही उनके कानों में कुण्डल की भाँति सुशोभित हो रहा है और अत्यन्त श्वेतवर्ण का महानाग देवी के वक्ष पर हार की भाँति लहरा रहा है ।

दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
चतुर्भुजां रक्तमांसखण्डमण्डितमुष्टिना ॥55॥

दूर्वादल के समान श्यामवर्ण का नाग उनका यज्ञोपवीत बन रहा है । उनकी चार भुजाएँ हैं तथा उनकी मुट्ठियाँ सद्यः उत्कृत् रक्तालिप्त मांसखण्डों से सुशोभित हो रही हैं ।

जटाजूटाक्षसूत्रेण शोभितां तीक्ष्णधारया ।
खड्गेन दक्षिणस्योर्ध्वे शोभितां वीरनादिनीम् ॥56॥

भगवती तारा का जटाजूट रुदाक्ष की मालासे बंधा हुआ है तथा ऊपरवाली दाईं भुजा में तीखी धार वाला खड्ग सुशोभित हो रहा है । उनकी ध्वनि धीर और गंभीर है ।

तदधःस्याद्बीजवृन्तकर्त्रिकालङ्कृतां पराम् ।
वामोर्ध्वे रक्तनालेन दिगम्बरमनोहराम् ॥57॥
दधतीं नीलपद्मं च तदधःस्थात् कपालकम् ।
जगतां जाड्यसंयुक्तं दधतीं कुन्दसन्निभम् ॥58॥

मनोहर दिगम्बरा सुन्दरी श्रीतारा के निचले दायें हाथ में सबीजवृन्त-कर्तरी और बायें ओर के ऊपर वाले हाथ में रक्तनालयुक्त नील कमल तथा नीचे वाले हाथ में संसार की जडता का प्रतीक श्वेतवर्ण का खाली कपाल है ।

धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसत्वराम् ।
सुवर्णवर्णनागेन कङ्कणोज्ज्वलपाणिकाम् ॥59॥

भगवती तारा ने धूम्रवर्ण के नागसमूह केयूरों के रूप में धारण कर रखे हैं तथा स्वर्णवर्ण के नागों से निर्मित कङ्कणों से उनकी कलाईयाँ सुशोभित हो रही हैं ।

शुभ्रवर्णमहादेवकृतसद्विमलासनम् ।
निर्यन्त्रणभिया तद्वत् संकुचत्प्रपदात्मिकाम् ॥
शवपादद्वयारूढवामपादां महोन्मुखीम् ॥60॥

भगवती तारा अपना वामपाद कुछ-कुछ अग्रगतरूप में कर्पूरधवल भगवान् शववत् निष्क्रिय शिव के वक्ष पर (और यह ज्ञात होने पर कि उनका वायाँ पद भगवान् भूतभावन के वक्ष पर है) लज्जा से किंचित् संकुचित अपना दायां पाद श्रीशिव की जंघाओं पर रख कर प्रत्यालीढावस्था में स्थित हैं ।

कुन्दाभनागसंशोभिकटिसूत्रां त्रिलोचनाम् ।
असृग्रक्तेन नागेन कृतनूपुरपल्लवाम् ॥61॥

भगवती तारा की कटि में कुन्द की कान्ति वाला नाग कटिसूत्र के रूप में बंधा हुआ है तथा रक्तवर्ण के नाग उनके पैरों में नूपुर की भाँति शोभित हो रहे हैं ।

सद्यश्छिन्नगलद्रक्तमुण्डैः रक्तविभूषणैः ।
अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मविलम्बितैः ।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभितां परमेश्वरीम् ॥62॥

तत्काल काटे गये अतएव चू रहे रक्तवाले, विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित, एक दूसरे के केशों से परप गुथीं हुई 50 नरमुण्डों की माला भगवती तारा की ग्रीवा से पादपद्म तक सुशोभित हो रही है ।

ज्वलच्चितामध्यसंस्थां द्वीपिचर्मोत्तरांशुकाम् ।
अक्षोभ्यनागसम्बद्धजटाजूटां वरप्रदाम् ॥63॥

साधना के समय साधक को चिन्तन करते रहना चाहिये कि भगवती तारा जलती हई चिता के बीच वरदमुद्रा में स्थित हैं । चीते का चर्म उनकी उत्तरीय की भाँति शोभित है और अक्षोभ्य नामक नागराज से उनकी जटाएँ बँधी हुई हैं ।

एवं भूतां महादेवीमात्मानं यागवस्तु च ।
विज्ञापयेन्महादेवीं पण्डितोऽहं महाकविः ॥64॥

भगवती तारा की साधन-निरपेक्ष आन्तर-साधना के समय साधक को उपरि वर्णित स्वरूप वाली भगवती तारा का चिन्तन करते हुए ऐसी भावना करनी चाहिये कि इस साधना में वह स्वयं यजमान, परम विद्वान् याज्ञिक और यजनपदार्थ है, किन्तु वास्तव में वह विशुद्ध परम शिवरूप है ।

तारोपनिषदि

विरुद्धवाक्यार्थशरीरमण्डले
नवाम्बुदाभां गुरुमुन्नतोदरीम् ।
अतीव खर्वां नवयौवनस्था-
मधःस्थशार्दूलकृत्तिमूर्धजाम् ॥65॥

तारोपनिषद् में बताया गया है कि साधना में साधक को चिन्तन करना चाहिये कि श्रीतारा विरुद्धवाक्यार्थशरीरमण्डला हैं । तात्पर्य यह कि श्रीतारा वाक्य और इसके अर्थ से परे है । वह न तो सगुण हैं और न ही निर्गुण और वे सगुण भी हैं और सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं । वे द्वैतरूपिणी भी हैं और अद्यैतरूपिणी भी और द्वैताद्वैत से परे भी । वास्तव में भगवती वागर्थ से अगम्या और दुरधिगमा हैं । उनका स्वरूप अर्थात् वर्ण जलापूरित नवमेधराशि के समान नील है । उनका विश्वम्भरी उदर भारी और विराट् है । आयु में वे नवयौवना और आकार में नाटी हैं । भगवती के अधोभाग तथा शिरोभाग शार्दूल अर्थात् सिंह के चर्म से आवृत या लिपटे हुए हैं ।

अनैक्यमाहत्य शवोपरिस्थितां,
शवार्द्धमालीढपरीमध्यमाम् ।
विशीर्णवर्णां नृशिरःस्त्रजोद्भवां,
त्रयीविवर्तारुणलोचनत्रयाम् ॥66॥

भगवती तारा विश्व के नानात्व को अभिभूत कर अद्वैतरूपा हैं और वे जड संसार में प्रदीप्त चिति के रूप में स्थित हैं । वे निश्चेष्टंसंसाररूपी शव पर सृजन के लिये सन्नद्ध प्रत्यालीढपदा हैं । भगवती मध्यतन्वी अर्थात् तनुकटि हैं । उनका वर्ण घनश्याम तथा नरमुण्डों की माला से समावृत है । ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भगवती तारा नरमुण्डों की माला से प्रकट हो रहीं हैं, वे वाङमयी हैं । अथवा 50 वर्णरूपी परमुण्डों की माला से अभिव्यंजित हो रहा है ।

अभेदपिङ्गैकजटाविराजितां,
विभूषणाच्छिन्नसितास्थिभीषणाम् ।
महाष्टसिद्धिप्रकराहिभूषणा-
मट्टाट्टहासैर्जगतामभीतिदाम् ॥67॥

भगवती तारा अनेक लटों को गूंथ कर एक बनाई गई पिंगल वर्ण की जटा से शोभित हैं तथा अस्थियों से बनाये गये अनेक आभूषणों को धारण किये हुए हैं । अणिमादि महा अष्ट सिद्धियाँ अष्ट नागों के रूप में भगवती तारा के शरीर पर लिपटे हुईं हैं तथा वे अपने अट्टाट्टहासों से संसार को अभय प्रदान कर रही हैं ।

जटास्वनन्तः श्रवसोश्च तक्षको
महाहिपद्मो हृदि हारभूषणाम् ।
तथैव कर्कोटकृतोपवीतिकां
सुमेखलायामथ देववासुकिः ॥68॥

भगवती की जटाओं में अनन्त, कानों में कुण्डल के रूप में तक्षक, वक्ष पर हार के रूप में महानाग पद्म, यज्ञोपवीत के रूप में कर्कोटक और मेखला के रूप में नागराज वासुकि सुशोभित हो रहे हैं ।

सशङ्खपालः किल कङ्कणो मतः
पदेषु पद्मः किल नूपुरश्रियम् ।
भुजेषु नागः कुलिकोऽङ्गदो मतो
भुजोऽर्धमाला महता स्थितिः स्थिता ॥69॥

भगवती की कलाइयों में कङ्कण के रूप शङ्खपालः नाग विराजमान हैं तो चरणों के नूपुर के रूप में पद्म नामक नागराज सुशोभित हो रहे हैं तथा भुजाओं के अङ्गदों के रूप में महानाग कुलिक स्थित हैं ।

सितश्च रक्तो धवलश्च मेचक-
स्तथैव नागोऽसितश्च पाण्डरः ।
भुजङ्गमानामिह वर्णजातयो
भवन्ति सर्वे मुनिभिर्ज्वलच्चिताम् ॥70॥

नील, रक्त, श्वेत, मेचक (चितकबरा) काल तथा पाण्डर आदि सभी वर्णों के नाग भगवती के अंगों में सुशोभित हो रहे हैं तथा वे प्रज्ज्वलितचिता पर मुनियों से घिरी हुई स्थित हैं ।

कपालकर्त्रीग्रथितोग्रमूर्धजां
सनालमिन्दीवरकान्तिमालाम् ।
विकोषखड्गं सततं च दक्षिणे
स्वपौरुषोत्थैर्दधतीं भुजैः सदा ॥71॥

पौरुष अर्थात् सामर्थ्य से प्रदीप्त अपनी चार भुजाओं में से भगवती तारा ने एक भुजा में कपाल, दूसरी में कर्त्री, तीसरी भुजा में सनाल कमल की माला और चौथी दाईं भुजा में खुली हुई तलवार धारण कर रखी हैं ।

पदार्थदंष्टाद्वयपञ्चमुद्रया

पदार्थदंष्ट्राद्वयपञ्चमुद्रया
विराजमानामसितोत्पलस्त्रजम् ।
विचिन्तयेत्तां च कवित्वकारिणीं
मनोगतार्थं प्रजपेच्च तारिणीम् ॥72॥

साधनाकाल में साधक को चिन्तन करना चाहिये कि साधक के समस्त मनोगत अर्थों को कविता के रूप में अभिव्यक्ति प्रदायिनी भगवती तारा की दोनों दन्तपंक्तियाँ पद और अर्थ रूप हैं । तात्पर्य यह कि अभिधायक और अभिधेय रूप समस्त जगत् भगवती की दंष्ट्राएँ है, समस्त सृष्टि इन दंष्ट्राओं में ही समायी हुई है । भगवती के विराट् शरीर में ही आकाशादि तत्त्वरूप पंचमुद्राएँ समाहित हैं । महाकालीरूपा भगवती तारा पंचशून्यरूप नीलवर्ण के कमलों की माला धारण कर रखी हैं ।

फेत्कारिणीतन्त्रेऽपि

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा वरा,
खड्गेन्दीवरकर्त्तृखर्परभुजा हूंकाराबीजोद्भवा ।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटोग्रनागैर्वृता
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥73॥

भगवती उग्रतारा प्रत्यालीढपदा होकर शव के वक्षस् पर विराजमान हैं । वे घोर अट्टहास करने वाली हैं । उनकी भुजाओं में खड्ग, नीलकमल, कर्तरी तथा खर्पर सुशोभित हैं । सर्वव्यापिनी निराकारा भगवती तारा का आकार नाटा और वर्ण नीला है । उनकी जटाएँ विशाल और पिंगवर्णी हैं । वे संक्रुद्ध नागों से घिरी हुई हैं तथा तीनों लोकों की जड़ता को वे अपनी मस्तक की ज्ञानाग्नि में रखकर उसे स्वयं नष्ट कर चैतन्य प्रदान करती हैं ।

प्रत्यालीढलक्षणं तु (सङ्गीतरत्नाकरे)

वामो यत्र निषण्णोरुरन्तरं पूर्वमानतः ।
दक्षिणं चरणं चाग्रे पञ्चताल[1]प्रसारितम् ॥74॥
[2]अस्त्रौ द्वावपि तद्विन्द्यादालीढं जु सदैवतम् ।
आलीढाङ्गविपर्यासात् प्रत्यालीढमुदाहृतम् ॥75॥

अथ पुरश्चरणविधिः
तत्रादौ मन्त्रध्यानमुक्तं (साधनसमुच्चये)

मूलचक्रे च हृल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
स्वाधिष्ठाने पीतवर्णां द्वितीयं च विभावयेत् ॥76॥

---

1. तालं वितस्ति । 2. अस्त्रौ चक्रौ ।

नाभौ जीमूतसंकाशं कूर्चबीजं महाप्रभम् ।
अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम् ॥77॥

साधनसमच्चय में भगवती तारा की पुरश्चरण विधि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि साधना में बैठकर साधक को अपने मूलाधार चक्र में करोडों सूर्यों की कान्तिवानी भगवती हल्लेखा के बीज 'ह्रीँ' स्वाधिष्ठान चक्र में पीतवर्ण वाले बीज 'स्त्रीँ' नाभिस्थ मणिपूर में नव नीरदाभ कान्तिवाले बीज 'हीँ', तथा हृदयस्थित अनाहतचक्र में कालाग्नि के समानतेजस्वान् अस्त्रबीज 'फट्' का ध्यान करना चाहिये ।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वां विद्यां विभावयेत् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिनां दृष्टिगोचराम् ॥78॥

फिर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त कोटिसूर्यकान्तिवाली योगियों के हृदय-कमल में प्रकाशमान 'ह्रीँ स्त्रीँ हूँ फट्' स्वरूपा समस्त विद्या का स्मरण करना चाहिये ।

तदुक्तं (तारातन्त्रे)

स्वेच्छाचारपरो मन्त्री पुरश्चरणसिद्धये ।
रहस्यमालामादाय लक्षमेकं जपेत्सदा ॥79॥

तारातन्त्र में बताया गया है कि तारा के साधक को चाहिये कि वह पुरश्चरण की सिद्धि के लिये समस्त विधि-निषेधों से परे जाकर केवल रहस्यमाला से भगवती तारा के उक्त मन्त्र का जप करे ।

(सुरेन्द्रसंहितायाम्)

लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं दशांशं सितोत्पलैः ।
आज्याक्तैः जुहुयान्मन्त्रैस्तद्दशांशेन तर्पयेत् ॥80॥

जप और तर्पणादि की संख्या के विषय में सुरेन्द्रसंहिता में कहा गया है कि उक्त मन्त्र का 1 लाख जप, जप का दशांश 10 हजार घृताक्त सिता अर्थात् मिसरी खण्डों का हवन तथा हवन का दशांश 1 हजार तर्पण करना चाहिये ।

कालागुरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः ।
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते ॥81॥

भगवती तारा का तर्पण कालागरुमिश्रतसगन्धित जल से निम्नोक्त विधि से करना चाहिये ।

जले चावाह्य विधिवद् पाद्याद्यैरुपचारकैः ।
संतर्प्य विधिवद्देवीं परिवारान् सकृत्सकृत् ॥82॥

पहले जल में भगवती का आवाहन कर अर्घ्यपाद्यादिकों से भगवती तारा की सपरिवार (आवरण) षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये ।

देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः ।
तारणीं सिञ्चयामीति जलं मूर्ध्नि विनिःक्षिपेत् ॥
कुम्भाख्यमुद्रया देवि ! नमोऽन्तेनाभिषेचनम् ॥83॥

सपरिवार भगवती की अर्चना के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह स्वयं को तारा मानता हुआ अपनी पूजा करके 'तारणीं सिञ्चयामि' मन्त्र से भगवती के सिर पर 'कुम्भ' मुद्रा से जलधारा गिराये ।

(वीरचूडामणौ)

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्सुधीः ।
पद्मैस्त्रिमधुरोपेतैर्वाक्पतिर्जायते नरः ॥84॥

वीरचूडामणि नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि भगवती तारा के पुरश्चरएण में मन्त्र का 4 लाख जप तथा त्रिमधुरसिक्त चार हजार कमलों के हवन से साधक वाणी का स्वामी हो जाता है ।

(तारार्णवे)

एवं ध्यात्वा हविष्याशी जपेल्लक्षचतुष्टयम् ।
रहस्यमालामादाय जपेद्वा लक्षमेव च ॥85॥

तारामन्त्र के पुरश्चरण के सन्दर्भ में तारार्णव नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि साधक को चाहिये कि साधनाकाल में वह हविष्यान्न ग्रहण करे और रहस्यताला से मन्त्र का 4 लाख अथवा 1 लाख जप करे ।

(मेरुतन्त्रे)

रतं कुर्वन्नदन् भक्ष्यन्ननेकं दधि मध्वपि ।
मधु मांसं च ताम्बूलं जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥86॥

मेरुतन्त्र के अनुसार स्त्रीप्रसङ्ग करते समय, भोजन करते समय, अन्न, दही, मधु-मांस तथा ताम्बूलादि भक्षण करते समय भगवती तारा के मन्त्र का 4 लाख तप करना चाहिये ।

दशांशं जुहुयाद्रक्तपद्मैः क्षीराज्यलोलितैः ।
शवमुण्डं पूरयित्वा जपस्थाने जपं चरेत् ॥87॥

निर्धारित स्थान पर शव के मुख में भोज्यपदार्थ भर और उस पर बैठकर ऊपर जप करना चाहिये तथा जप पूर्ण होने पर दुग्ध तथा घृत से सिक्त रक्तकमला से 4 हजार हवन करना चाहिये ।

नारीं पश्यन् स्पृशन् गच्छन् महानिशि बलिं हरेत् ।
न कार्यं सुभ्रुवां द्वेषो यत्नतः परिपूजयेत् ॥88॥

लता के रूप में प्रयुक्त नारी की ओर देखते हुए, उसका स्पर्श करते हुए, उसके साथ रतिप्रसङ्ग करते हुए जप करना चाहिये तथा महानिशि में निर्धारित बलि देनी चाहिये । साधक को चाहिये कि वह कभी भी नारियों के प्रति द्वेष की भावना न रखे और प्रयत्नपूर्वक उनका सम्मान करे ।

जपे न कालनियमो न स्थितौ सर्वदा जपेत् ।
श्मशाने शून्यसदने देवागारेऽथ निर्जने ॥89॥

तारा के मन्त्र के जप में समय या समयावधि का कोई नियम नहीं है । हाँ, जप श्मशान शून्य अर्थात् जनहीन भवन, देवस्थान अथवा निर्जन स्थान में करना चाहिये ।

पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मन्त्रविद् ।
समरे शत्रुनिहतं यद्वा षाण्मासिकं शिशुम् ॥90॥

तारामन्त्र का जप पर्वत की चोटी, अरण्य के बीच अथवा युद्ध में मृत शत्रु अथवा छह मास के मृत शिशु के शव पर बैठ कर करना चाहिये ।

विद्यां संसाधयेच्छीघ्रं साधितैवं प्रसिध्यति ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥91॥

इस प्रकार साधना करने पर ताराविद्या शीघ्र ही सिद्ध होती है । इस प्रकार की साधना से मन्त्र सिद्ध कर लेने वाला साधक ही मन्त्र का प्रयोग कर सकता है, अन्य नहीं ।



अथ ताराविद्याप्रभेदाः

अथातः संप्रवक्ष्यामि दैत्यानां वर(ध ?)सिद्धये ।
ब्रह्मणोपासितां तारां बल्यादिभिरुपासिताम् ॥1॥

अब मैं वरदान प्राप्ति के लिये ब्रह्मा तथा बलि आदि दैत्यों और ब्रह्मा आदि देवों की भी उपास्या भगवती तारा की साधना का निरूपण करता हूँ ध्यान से सुनों और समझो ।

मन्त्रस्वरूपनिर्वचनम्

ओं त्रीं ह्रीं हूं समुच्चार्य ह्रीँ हुं फड्नगवर्णकः ॥2॥

उस महाविद्या का स्वरूप 'ओं त्रीँ ह्रीँ हूँ हूं ह्रीँ हूँ फट्' सप्त वर्णात्मक है ।

मन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्वचनम्

मुनिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दस्तारा च देवता ।
न्यासांस्तु पूर्ववत्कुर्याद् ध्यानमस्या निरूप्यते ॥3॥

इस सप्तार्णक महाविद्या के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् गायत्री, देवता तारा हैं तथा न्यासादि ताराविद्या की भाँति ही किये जाते हैं । ध्यान का स्वरूप निम्न है—

तारास्वरूपध्यानम्

श्वेताम्बरां चन्द्रकान्तिं चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
कर्तरीं च कपालं च कराभ्यां दधतीं भजेत् ।
नानालङ्कारशोभाढ्यां त्रीक्षणां पद्मसंस्थिताम् ॥4॥

उपर्युक्त मन्त्र की अधिष्ठात्री द्विभुजी देवता भगवती तारा के वस्त्र श्वेत, कान्ति इन्दुवत्, शीर्ष पर अर्धचन्द्र, एक हाथ में कर्तरी तथा दूसरे हाथ में कपाल सुशोभित हो रहा है । वे नाना वर्ण के विभिन्न आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत, तीन नेत्रों वाली भगवती तारा पद्मासन पर विराजमान हैं । साधक को चाहिये कि वह साधना में भगवती के इसी स्वरूप का ध्यान करें ।

जपहोमादिकं तत्फलञ्च

जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत् ।
मधुयुक्परमान्नेन होमाद्विद्यानिधिर्भवेत् ॥5॥

द्विभुजा भगवती तारों पूर्व मन्त्र का जप, पूजा तथा हवनादि पहले वर्णित विधि के अनुसार ही की जानी चाहिये । विशेषरूप से मधु सहित पायस के हवन से साधक समस्त विद्याओं का भण्डार हो जाता है ।

कामनानुसारताराध्यानम्

रक्तां वश्ये स्वर्णवर्णां स्तम्भने मारणेऽसिताम् ।
उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम् ॥6॥

जहाँ तक प्रयोगों का प्रश्न है वश्य-प्रयोग में श्वेतवर्णा, स्तम्भन में गौरवर्णा, मारण में कृष्णवर्णा, उच्चाटन में धूम्रवर्णा तथा शान्तकर्म में श्वेतवर्णा भगवती का ध्यान करना चाहिये ।

द्वादशार्णा तारामहाविद्या

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तारकस्य वरा(धा)य तु* ।
ब्रह्मणोपासितां तारां द्वादशार्णां सुदुर्लभाम् ॥7॥

ब्रह्माजी ने तारकासुर को अमोध वर देने के लिये जिस द्वादशाक्षरी तारा महाविद्या की उपासना की थी, उसके स्वरूप का निर्वचन करता हूँ ।

ब्रह्मोपासितद्वादशार्णतारामहामन्त्रम्

वाचं लज्जां रमां कामं हसरा ओसमन्विताः ।
विसर्गाढ्या पञ्चमं तु कूटमेतदुदीरितम् ॥8॥
हुँ उग्रतारे हुं फट् मन्त्रः प्रोक्तो जपादिकम् ।
सर्वं पूर्ववदेवास्या कलौ प्रत्ययकारिणी ॥9॥

ब्रह्माजी द्वारा उपासित द्वादशाक्षरी तारा महाविद्या क्रमशः वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (ह्रीँ), रमाबीज (श्रीँ), कामबीज (क्लीँ) तथा इसका पञ्चम कूट सविसर्ग (ओः) से युक्त 'हसरा' अर्थात् 'हसरोः (या हस्रोः) है । जपादि में इन पंचबीजों के पहले 'हुं उग्रतारे हुँ फट्' रूपा सप्ताक्षरी महाविद्या का योग करना चाहिये । इस प्रकार इस विद्या का रूप 'हूँ उग्रतारे हुँ फट् ऐँ ह्रीं श्रीँ क्लीँ, हस्रोः' है । यह विद्या कलिकाल में तुरन्त फलदायिनी है । न्यासादि अन्य समस्त विधि पूर्व की भाँति सम्पन्न करनी चाहिये ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा समुपासिताम् ।
हिरण्यकशिपोर्दातुं वरं सप्तार्णसम्मिताम् ॥10॥
प्रणवं कवचं मायां क्लीँ प्राक्कूटं तु पंचमम् ।
हुँ फडन्तः सर्वमस्या न्यासाद्यं पूर्ववद्भवेत् ॥11॥

---

* वराय त्वित्यपपाठः

हिरण्यकशिपु को वर प्रदान करने के लिये ब्रह्मा ने जिस सप्ताक्षरी ताराविद्या की उपासना की थी वह 'प्रणव (ओं) कवच (फट्), माया (ह्रीँ), क्लीँ, पूर्वोक्त पंचम कूट (हस्रौः) तथा फडन्ता अर्थात् 'ओं फट् ह्रीँ क्लीँ हस्रौः हुँ फट्' रूपा है। इसकी साधना में न्यासादि समस्त कर्म पूर्व की भाँति ही किये जाने चाहिये।

बुद्धोपासितद्वादशाक्षरीतारामहाविद्या

अथातः संप्रवक्ष्यामि हरिणा या ह्युपासिता।
बौद्धमार्गप्रचारार्थं सिद्धिदा द्वादशाक्षरी ॥12॥

अब मैं भगवती तारा की उस द्वादशाक्षरी विद्या का निर्वचन करता हूँ जिसकी उपासना बुद्धरूपी भगवान् विष्णु ने बौद्ध तन्त्र के प्रचार के लिये किया था।

उपासिता ब्रह्मणा या तस्याः कूटे च तु पञ्चमे।
सौरुक्त्वा साधिमा(ता) विद्या द्वादशार्णातिबुद्धिदा ॥13॥

बुद्धोपासित द्वादशाक्षरी भी ब्रह्मोपासित सप्ताक्षरीविद्या ही है। अन्तर केवल यह है कि इसके पाँचवें कूट में 'हसरोः' या हस्रौः के स्थान पर 'सौः' का प्रयोग करने पर यह 'ऐं ह्रीँ श्रीँ क्लीँ, हस्रौः' असीम बुद्धिदायिका हो जाती है।

उच्चाटिनीविद्या

यत्प्रभावाद्दिवोदासः काश्या उच्चाटितः पुरा।
तस्यास्तु पूर्ववज्ज्ञेयं न्यासध्यानजपादिवत् ॥14॥

इस विद्या के प्रभाव से ही काशी से महाराज दिवोदास को काशी से उच्चाटित कर दिया गया था। इस विद्या की साधना में भी न्यासादि पूर्ववत् ही किये जाते हैं।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सप्तार्णां रामसेविताम्।
लक्ष्मीप्रभृति नाशार्थं तेन मत्तः सदा हली ॥15॥

अब मैं उस बलरामोपासित उस सप्तार्णा तारामहाविद्या का उद्घाटन करता हूँ, जिसकी साधना से (शत्रु की) शील-समृद्धि आदि का विनाश किया जा सकता है। इस विद्या के प्रभाव से ही बलराम सदा शौर्य से मत्त रहते हैं।

बलरामोपासितसप्तार्णा तारामहाविद्या

ब्रह्मणोपासितसप्तार्णां मध्ये कूटं तु पञ्चमम्।
तत् त्यक्त्वा सौँस्तत्र चोक्त्वा बलरामेण सेविता ॥16॥

ब्रह्मा द्वारा संसेवित जो सप्तार्णा महाविद्या 'हुँ उग्रतारे हुँ फट्' है उसे छोड़ पंचार्णा महाविद्या 'ऐँ ह्रीं श्रीँ क्लीँ, हस्त्रो:' के पाँचवें कूट 'हस्त्रो:' के स्थान पर 'सौँ:' का प्रयोग करना चाहिये । बलराम ने इसी की साधना की थी ।

शत्रुक्षयकरी चेयं तथा वाक्सिद्धिकारिणी ।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वत् प्रयोगादिकमेव च ।।17।।

यह विद्या साधक के शत्रुओं का नाश करने वाली तथा वाक्सिद्धि प्रदान करने वाली है । इस विद्या की साधना में ध्यान तथा न्यासादि समस्त उपचार पूर्ववत् किये जाने चाहिये ।

नारायणोपासिता पञ्चाक्षरी
तारामहाविद्या

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नारायणसुसेविता ।
पंचार्णा यत्प्रभावेण दैत्यानां कदनं कृतम् ।।18।।
त्रीं हुं फट् क्लीं वाग्भवं च पंचार्णा सर्वसिद्धिदा ।
एषां त्रयाणां तु मुनिर्विष्णुः प्रागवज्जपादिकम् ।।19।।

अब मैं भगवती तारिणी के 'त्रीं हूँ फट् क्लीं ऐं' रूप उस पञ्चाक्षर मन्त्र का निरूपण करता हूँ, जिसकी उपासना के प्रभाव से भगवान् नारायण ने दैत्यों का वध किया था । यह पञ्चाक्षरी विद्या सभी प्रकार की सिद्धियों की प्रदात्री हैं । क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु और नारायण द्वारा उपासित तीनों महाविद्याओं के ऋषि विष्णु हैं तथा न्यासजपादिक पूर्वकथित विधि के अनुसार ही करना चाहिये ।

श्रीशिवोपासिता षडक्षरी
तारामहाविद्या

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मया या समुपासिता ।
दत्ता च रविणाऽदित्यै सा विद्या तु षडक्षरी ।।20।।
ओं ह्रीं हूं ह्रीं हूं फडिति मुनिः सोऽहं च पूर्ववत् ।
ज्ञेयं न्यासादिकं सर्वं प्रयोगादि च पूर्ववत् ।।21।।

श्रीशिव ने कहा कि स्वयं मैंने जिस विद्या की उपासना की और सूर्य ने स्वोपासित जिस विद्या का उपदेश अदिति को दिया था, उस षडक्षरी विद्या का स्वरूप 'ओं ह्रीं हूं ह्रीं हूं फट्' है । इसका ऋषि सोऽहं स्वरूप मैं स्वयम् हूँ ।

पंचाक्षरी तारामहाविद्या

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि चास्याः पंचाक्षरं मनुम् ।

जलंधरवधार्थं तु मया सिद्धं कृतं सुराः ॥
स्त्रीं हुं मायां हूं फडिति मनुः पंचाक्षरो मतः ॥22॥

अब मैं भगवती तारा के उस एक अन्य पंचाक्षर मन्त्र का उद्घाटन करता हूँ जिसकी उपासना जलंधर के वध के लिये मैंने की थी । उस मन्त्र का स्वरूप 'स्त्रीँ हूँ ह्रीँ फट्' है ।

तन्त्रान्तरेऽपि

सार्धपंचाक्षरः तारामहामन्त्रः

वधूबीजं च कवचं मायां कूर्चं तथाऽस्त्रकम् ।
सार्धपंचाक्षरो मन्त्रो द्वितीयः परिकीर्तितः ॥23॥

एक अन्य तन्त्र में भी इसका उल्लेख अन्य प्रकार से करके इसे सार्ध पंचाक्षरी यथा 'बधूबीज (स्त्रीँ), कवच (हुम्), माया (ह्रीँ) कूर्च (हूँ) तथा अस्त्र (फट्) रूप कहा गया है ।

(मेरुतन्त्रे)

दक्षिणाचारप्रशंसा

मया पञ्चमुखैर्जप्तो दक्षिणाग्रेण भो सुराः ।
देवांशेषु च विप्रेषु तथा धर्मपरेषु च ॥24॥

श्रीशिव ने कहा कि हे देवताओं ! मैंने पुराकाल में अपने पञ्चमुखों में से (दक्षिणाम्नाय प्रतिपादक मुख से जपते हुए जिस अग्रगण्य (परिशुद्ध) दक्षिणाचार वाली उपासना का प्रतिपादन किया था, वह देवताओं, देवांशों तथा धार्मिक महापुरुषों के लिये थी ।

यमानां नियमानां च तन्त्रस्था नान्यदेवताः ।
***वाममार्गाराधितास्तु कार्यं साधयितुं क्षमाः ॥25॥**

श्रीशिव ने कहा कि साधना में यमों और नियमों की अपेक्षा करने वाले अर्थात् दक्षिणमार्ग से आराधना में रुचि रखने वाले देवता वाममार्ग से की गई आराधना में अरुचि होने के कारण साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने में रुचि नहीं रखते ।

दक्षिणाराधिता देवा रणसाहाय्यकारकाः ।
तेजोनिधीन् रिपून् हत्वा नयन्ति ब्रह्मशाश्वतम् ॥26॥

श्रीशिव ने कहा कि दक्षिणाचार से आराधित देवता साधक को अपना जीवन-संग्राम जीतने में सहायक होते हैं और दक्षिणाचार विधि से आराधित देवता अपने साधक को उसके तेजस्वी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराके अन्त में उसे शाश्वत् ब्रह्म की प्राप्ति कराते हैं ।

---

* वाममार्गाराधिताः तु अन्यदेवता कार्यं साधयितुं न क्षमाः, इत्यन्वयः ।

शिवेनानुकल्पप्रयोगसमर्थनम्

क्षत्रियाणां क्षयार्थं तु मया रामाय चार्पिता ।
पञ्चामृतं सुरास्थाने मांसस्थाने च सूरणम् ॥27॥
मत्स्यस्थाने खण्डो बोध्यो धर्मपत्न्यां रतं रतम् ।
अन्यत्पूर्ववदेव स्याद् गुह्यमेतत् प्रकाशितम् ॥28॥

हे देवों ! मैंने ही अन्यायरत क्षत्रियों के विनाशार्थ इस विद्या की दीक्षा श्रीपरशुराम को दी थी, और क्योंकि राम ब्राह्मण थे, इसलिये भगवती तारा की पूजा में आवश्यक तत्त्व सुर के स्थान पर पञ्चामृत, मांस के स्थान पर सूरण, मत्स्य के स्थान पर शक्कर, तथा लता के स्थान पर स्वपत्नी के साथ रतिप्रसंग को अनुकल्प के रूप में प्रयुक्त करने तथा अन्य पूजा-पदार्थ तथा विधियों को यथावत् करने का निर्देश देकर इस गोपनीय रहस्य को उजागर किया था ।

लुब्धस्तारां न सेवेत लोकद्वयपरिक्षयात् ।
अस्याः पूजादिकं प्राग्वद्विशेषोऽत्र निरूपितः ॥
तारायाः सद्गुरो सिद्धिः स्त्रीरते भ्रान्तता भवेत् ॥29॥

हे देवताओं ! सुरा तथा मांसादि के सेवन के लोभी ब्राह्मणादि साधकों को चाहिये कि वे भगवती तारा की साधना न करे । क्योंकि ऐसा करने से उसके इहलोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं ।

यदि कोई साधक साधना के दौरान नारी के प्रति आसक्त रहता है, तो वह साधना के मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है । भगवती तारा की पूजादिक अन्य समस्त विधियों का निरूपण मैंने पहले ही कर दिया था, केवल सुरादि सेवन की विशेष बातें थी, जिनका उल्लेख मैंने यहाँ कर दिया है ।

तारामहामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महातारामनुं सुराः ।
सिद्धिर्मार्गद्वयेनापि वर्णावर्णाधिकारतः ॥30॥

भगवती तारा की सिद्धि श्रीसद्गुरु के बताई गई विधि के अनुसार साधना करने से ही मिलती है । अब मैं आपलोगों को तारा का महामन्त्र बताता हूँ । श्रीशिव ने कहा कि हे देवताओं ! भगवती तारा के महामन्त्र की साधना में सिद्धि दक्षिण और वाम दोनों मार्गों की उपासना से मिल सकती है । किन्तु साधनाविधि में वर्ण और अवर्ण दोनों (जाति) का विचार करना चाहिये ।

त्रीं ह्रीं ह्रां हूँ नमस्तारायै महापदमुच्चरेत् ।
तारायै सकलेत्युक्त्वा दुस्तरांस्तारय द्वयम् ॥31॥

तारद्वयं वह्निजाया द्वात्रिंशार्णो मनुर्मतः ।
न्यासपूजाजपाद्यं तु प्राग्वत् सर्वं समाचरेत् ॥32॥

भगवतो तारा के महामन्त्र के उद्घाटन के लिये पहले 'त्रीं ह्रीँ ह्लाँ हूँ नमः स्तारायै', फिर, 'महातारायै, सकलदुस्तरान्' फिर दो बार 'तारय तारय' और अन्त के वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' से निर्मित **'त्रीँ ह्रीँ ह्लाँ हूँ नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरांस्तारय तारय तर तर स्वाहा'** यह बत्तीस अक्षरों का तारामन्त्र है। इस मन्त्र की उपासना में न्यासपूजादि समस्त विधियाँ पूर्व की भाँति की जाती हैं।

(तारिणीतन्त्रे)

तारामहाविद्यास्वरूपम्

ईश्वर उवाच

श्रूयतां शैलतनये! जाड्यनाशकरी परा ।
चतुर्वर्गफला विद्या तन्त्रसिद्धिप्रदायिका ॥33॥

श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! अब मैं तुम्हारे समक्ष साधकों के हृदय में स्थित अज्ञानरूपी अन्धकार का हरण करने वाली, धर्मादि चार पुरुषार्थप्रदायिका तथा तान्त्रिक साधनाओं में सिद्धि प्रदान करने वाली महाविद्या का विवेचन करता हूँ, ध्यान से सुनो।

***(त)वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं वामाक्षिपरिभूषितम् ।**
नादबिन्दुसमायुक्तं वसुसिद्धिप्रदायकम् ॥34॥

हे देवि ! वर्गों के आदि अक्षर 'त्' को वह्निवर्ण 'र्' से युक्त करके इसे वामनेत्र 'ई' से संयुक्त कर नाद (ॅ) और बिन्दु (ं) जोड़ कर अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ प्रदान करने वाली (स्त्रीं) 'क्रीँ' रूपिणी विद्या का उद्घाटन करे।

पुनश्चतुर्मुखं देवि ! सकारेण विभूषितम् ।
स्वरेणैव चतुर्थेन चन्द्रखण्डेन च प्रिये ॥35॥
लाञ्छितं वै महाबीजं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।

इसके बाद सकार से युक्त चतुर्मुख अर्थात् ब्रह्मावाचक वर्ण 'क' में चतुर्थस्वर 'ई' संयुक्त कर इसमें चन्द्रखण्ड (अर्थात् नाद और बिन्दु) जोड़कर 'स्क्रीँ' रूप में उच्चरित करे। पुनः इन्हें (क्रीँ स्क्रीँ को) चतुर्वर्गफलप्रद महाबीज 'ओं' से अलंकृत कर (ओं क्रीँ स्को स्क्रौँ) करना चाहिये।

---

* 'वर्गाद्यं' का तात्पर्य त वर्ग के आदि अक्षर 'त्' से है। ऐसा करने पर ही 'त्रीं' तारामन्त्र का निर्माण होगा।

ततः कृष्णे पदं चोक्त्वा ततो देवीपदं स्मृतम् ॥36॥
ह्रींकारं च ततो दद्यात् स्वपूर्वमुद्धरेत् ततः ।
ईकारेण च रेफेण मकारेण च भूषितम् ॥37॥
ततो वाग्भवमुच्चार्य मन्त्रमेनं समुद्धरेत् ।
नवाक्षरो मनुर्देवि! तारिण्याः समुदीरितः ॥38॥

तदनन्तर इनमें 'कृष्णे' और 'देवि' पद रखकर 'ओं क्रीं स्क्रीं कृष्णे देवि' ! तदनन्तर इनमें पूर्वोल्लिखित ईकार, रेफ् तथा मकार (अनुस्वार) से युक्त ह्रीँ जोड़ कर अन्त में वाग्भवबीज 'ऐँ' का योग कर नौ अक्षरों वाली तारा महाविद्या 'ओं क्रीँ स्क्रीँ कृष्णे देवि ह्रीं ऐं' का उद्घाटन करे ।

इयमेव महाविद्या स्वर्गे मर्त्त्ये सुदुर्लभा ।
अष्टसिद्धिप्रदा देवि! चतुर्वर्गफलप्रदा ॥39॥

श्रीशिव ने बताया कि 'यह नवाक्षरी महाविद्या स्वर्ग और धरती पर भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है । यह विद्या अणिमादि अष्ट सिद्धियों तथा धर्मादि चारों पुरुषार्थों को प्रदान करनेवाली है ।'

अथ ऋष्यादिन्यासः

शक्तिरस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहतीछन्द ईरितम् ।
तारिणी देवता प्रोक्ता ह्रींकारं बीजमुच्यते ॥
वाग्भवं शक्तिरित्युक्तमिति ऋष्यादिकं चरेत् ॥40॥

श्री ईश्वर ने बताया कि इस महामन्त्र के ऋषि शक्ति, छन्दस् बृहती, देवता तारिणी, बीज ह्रीं तथा शक्ति ऐं है । अतः ऋष्यादिन्यास के प्रसंग में उन्हीं का उपयोग किया जाना चाहिये ।

अथ ध्यानम्

कृष्णां लम्बोदरीं भीमां नागकुण्डलशोभिताम् ।
रक्तमुखीं ललज्जिह्वां रक्ताम्बरधरां कटौ ॥41॥

उक्त महामन्त्र की साधना में कृष्णवर्णा, लम्बोदरी, भीमाकृति, नागकुण्डलों से सुशोभित, आरक्तमुखी, लपलपाती हुई जिह्वावाली तथा कटि में रक्तवर्ण के वस्त्रों को धारण की हुई भगवती तारा का ध्यान करना चाहिये ।

पीनोन्नतस्तनीमुग्रां महानागेन वेष्टिताम् ।
शवस्योपरि देवेशि ! तस्योपरि कपालके ॥42॥

भगवती तारा के उक्त महामन्त्र की साधना में पृथु तथा उन्नत उरोजों वाली, महानागों

से परिवेष्टित तथा हाथ में नर-कपाल लिये धारण की हुई शव के ऊपर खडी हुई चिन्तन करना चाहिये ।

नासाग्रध्याननिरतां महाघोरां वरप्रदाम् ।
चतुर्भुजां दीर्घकेशीं दक्षिणस्योर्ध्वबाहुना ॥43॥
बिभ्रतीं नलिनीमेकां वामोर्ध्वे पानपात्रकम् ।
वराभयधरां देवमधस्ताद् दक्षवामयोः ॥44॥

भगवती तारा के उक्त महामन्त्र के जपादि के समय चिन्तन करते रहना चाहिये कि देवी के नेत्र उनकी नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है, उनका आकार भयंकर है, किन्तु उनके मुख पर वरप्रदानकाल की प्रसन्नता झलक रही है । उनकी चार भुजाएं हैं तथा केशराशि ऊपर की ओर उठी हुई है । उन्होंने अपनी ऊपरवाले दायें हाथ में नालयुक्त कमलिनी, ऊपरवाले बायें हाथ में पानपात्र धारण कर रखा है तथा नीचेवाली दाईं भुजा वरमुद्रा में तथा बाईं भुजा अभयमुद्रा में स्थित हैं ।

तारा महाविद्यास्वरूपम्
अथ पुरश्चरणम्

एवं पूजयित्वा च एभिर्द्रव्यैर्महेश्वरि ! ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥45॥

तारिणी के विधिवत् पूजा करने के पश्चात् उक्त मन्त्र का 1 लाख जप करना चाहिये । साधनाकाल में साधक को अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिये तथा हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये ।

स्तुतिः

पिबन्तीं रौधिरीं धारां पानपात्रे सदाशिवे ।
सर्वसिद्धिप्रदां देवीं नित्यां गिरिनिवासिनीम् ॥46॥

श्रीशिव ने गिरिनन्दिनी से कहा कि हे सदाशिवे ! प्रतिदिन निश्चित समय तक भगवती तारा की पूजा-अर्चनादि के पश्चात् साधक को यह प्रार्थना करनी चाहिये कि 'नर-कपालरूप अपने पानपात्र से सद्यःप्रवहित रक्त का पान करने वाली, सभी सिद्धियों की प्रदात्री, शैलनिवासिनी नित्या देवी को मैं नमन करता हूँ ।

लोचनत्रयसंयुक्तां नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
दीर्घनासां दीर्घजंघां दीर्घांगीं दीर्घजिह्विकाम् ॥47॥

तीन नयनों वाली, नागयज्ञोपवीतधारणी, लम्बी और सदृढ़ नासिका तथा लम्बी पृथुल जंघाओं वाली, दीर्घ उदाराकारा तथा लम्बी जिह्वावाली भगवती तारा को हमारा नमस्कार है ।

चन्द्रसूर्याग्निभेदेन त्रिलोचनसमन्विताम् ।
शत्रुनाशकरीं देवीं महाभीमां वरप्रदाम् ॥48॥

चद्र, सूर्य तथा अग्निस्वरूप तीन नेत्रों वाली, साधक के शत्रुओं की विनाशिका, महाभीमाकार वरप्रदायिनी भगवती तारा को हम नमन करते हैं ।

व्याघ्रचर्मशिरोबद्धां जगत्त्रयविभाविताम् ।
साधकानां सुखं कर्त्रीं सर्वलोकभयङ्करीम् ॥
एवम्भूतां महादेवीं तारिणीं प्रणवाम्यहम् ॥50॥

केशराशि को व्याघ्रचर्म से आबद्ध करने वाली, तीनों लोकों में परिव्याप्त तथा उनकी सृष्टि पालन तथा विनाश करने वाली, साधकों को सुख देने वाली और समस्त लोकों का लय करने वाली भयंकरस्वरूपा भगवती तारिणी को हमारा नमन है ।

अथ पुरश्चरणम्

एवं सम्पूजयित्वा च एभिर्द्रव्यैर्महेश्वरि ! ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥50॥

इस प्रकार उपर्युक्त विधि से भगवती तारिणी की विधिवत् अर्चना करने के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह इन्द्रिगों को वश में रखें और भोजन के रूप में हविष्यान्न का ही उपयोग करते हुए उक्त तारामहाविद्या मन्त्र का लाख जप करें । ऐसी साधना से भगाप्तावती तारा की प्रसन्नता प्राप्त होगी ।

*अथाक्षोभ्यमन्त्रः (ब्रह्मसंहितायाम्)

अक्षोभ्यस्य मनुं त्यक्त्वा देवीं तारां जपेद्यदि ।
सिद्धिहानिर्भवेत् तस्य रौरवं नरकं व्रजेत् ॥51॥

भगवती तारा की साधना आरम्भ करने से पूर्व श्री अक्षोभ्य भैरव की अर्चना का विधान है । श्रीअक्षोभ्य के मन्त्र को छोड़कर यदि कोई साधक तारा के मन्त्र का जप करता है तो मन्त्र सिद्ध नहीं होता और ऐसे साधक को रौरव नामक घोर नरक में जाना पड़ता है ।

अक्षोभ्यस्य मनुं विप्र ! कवचं सारमुत्तमम् ।
अतिगुह्यं महाध्यानं सर्वध्यानेषु चोत्तमम् ॥52॥

श्री अक्षोभ्य भैरव का मन्त्र तथा कवच अत्यन्त गोपनीय और सारवान तथा इनका ध्यान सर्वोत्तम है ।

---

* अत्राक्षोभ्यो नागरूपः । अक्षोभ्यो देवीमूर्धन्यस्त्रिमूर्तिर्नागरूपधृगिति (भावचूडामणि) वचनात् मौलावक्षोभ्यभूषितामिति ।

अग्रे मनुं प्रवक्ष्यामि ध्यानं चैव ततः परम् ।
कवचं च ततः पश्चात् कथयामि क्रमेण तु ॥53॥

अब मैं श्री अक्षोभ्य के मन्त्र का उद्घाटन करता हूँ और तत्पश्चात् उनके ध्यान और कवच का भी निरूपण करता हूँ ।

अनुत्तरं समुद्धृत्य पपञ्चमविभूषितम् ।
अक्षोभ्येति च स्वाहेति रमाद्यन्तं महामनुः ॥54॥

सर्वप्रथम अनुत्तर (अ-उ) का उद्धार कर तत्पश्चात् पवर्ग के पंचमवर्ण 'म्' ओं रख कर 'अक्षोभ्य' बोल 'स्वाहा' तथा इसके आदि तथा अन्त में रमाबीज (श्रीं) रखने से 'श्रीं ओं अक्षोभ्य स्वाहा श्रीँ' मन्त्र निर्मित होता है ।

स्वयं ऋषिश्च संप्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ।
अक्षोभ्यो देवता प्रोक्तस्त्रिमूर्तिर्नागरूपधृक् ॥
विनियोगस्तु नियतं पुरुषार्थचतुष्टये ॥55॥

इस अक्षोभ्य मन्त्र के ऋषि स्वयं अक्षोभ्य, छन्दस् विराट्, देवता नागरूपधारी त्रिमूर्तिरूप अक्षोभ्य हैं । इस मन्त्र की साधना का विनियोग पुरुषार्थ चतुष्टय में है ।

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वसौभाग्यदायकम् ।
सहस्रादित्यसंकाशं नागरूपधरं शुभम् ।
विद्युत्कोटिसमं वक्त्रं वह्निभास्वरलोचनम् ॥56॥

अब मैं समस्त सौभाग्यों के प्रदायक श्री अक्षोभ्य के ध्यान का निरूपण करता हूँ । सुन्दर नागरूपधारी श्री अक्षोभ्य का तेजस् हजारों सूर्य के प्रकाश के समान है ।

सार्धत्रिवलयोपेतं जटाकोट्यग्रसंस्थितम् ।
महालावण्यसंयुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ॥57॥
सूर्यविद्युत्समाभासं महामणिशिखोपरि।
एतद्रूपं महाकायं देवैरपि सुपूजितम् ॥58॥

श्री अक्षोभ्य साढे तीन वलयों से भगवती श्रीतारा मे जटाजूट में स्थित हैं । उनका सौन्दर्य अतुलित है । देव-दानवों द्वारा वे नमस्कृत हैं । उनकी आभा सूर्य अथवा विद्युत् के समान है । उनके माथे पर महामणि सुशोभित हो रही है । श्री अक्षोभ्य के इस रूप का ध्यान देवों के लिये भी दुर्लभ है ।

तन्त्रान्तरे

अक्षोभ्यं पूजयित्वादौ तारां संपूजयेत् सुधीः ।

अन्य तन्त्रग्रथों में भी कहा गया है कि पहले अक्षोभ्य की पूजा करके तत्पश्चात् भगवती तारा की पूजा करनी चाहिये ।

पुरश्चर्यादिकं चास्य तारिणीवत्समाचरेत् ॥59॥

इति श्रीपुरश्चर्यार्णवस्य नवमतरङ्गे संकलितं तारातन्त्रम् ।

श्री अक्षोभ्य की पुरश्चर्यादि समस्त उपासना भगवती तारा के समान ही की जानी चाहिये ।

श्रीपुरश्चर्यार्णव में संकलित तारातन्त्र की रामचन्द्रपुरीकृत
मीराश्रीहिन्दीविवृति समाप्त ।



परिशिष्टम्

श्रीताराकर्पूरस्तोत्रम्

श्रीकण्ठामरकेशवर्णघटितं चन्द्रार्द्धबिन्दूज्ज्वलम्,
बीजं यत्परमं गुणत्रयमयं कामप्रदं मुक्तिदम् ।
मातः शङ्करवल्लभे ! प्रतिदिनं ध्यायन्ति ये ये सदा,
ते ते यान्ति चिदात्मकं हरिहरब्रह्मादिसाम्यं मुदा ॥1॥

व्योमार्णं वामनेत्रान्वितमनलयुतं बिन्दुचन्द्रार्धयुक्तम् ,
बीजं ते गुह्यमेतत् त्रिभुवनजननि! त्रीक्षणे ये जपन्ति ।
तेषां वक्त्रारविन्दे विहरति मधुरा गद्यपद्यावली गी-
र्मातश्चन्द्रार्द्धचूडे ! सकलभयहरे ! सिद्धिभाजां नराणाम् ॥2॥

शुक्रार्णं पूतनास्थं कलितशशिकलाविन्दुभूषं सवह्निः,
भ्राजद् वामाक्षियुक्तं जननि! तव बधूबीजमेतज्जपन्ति ।
ते ते लोलेक्षणानां विगलितरसनापीनवक्षोजवासः,
केशानां चित्तमाशु स्मरहरमहिले! मोहयन्ति प्रकामम् ॥3॥

ईशानं वामकर्णोल्लसितशशिकलाबिन्दुभूषं प्रगुह्यम्,
बीजं मातस्त्वदीयं यदि जपति जनो वारमेकं जडात्मा ।
चञ्चत्पञ्चाशदुग्रग्रथितनरशिरोमालिकाक्रान्तकण्ठे !,
मातः शैलेन्द्रपुत्रि! त्रिभुवनमपि संक्षोभयत्येव शीघ्रम् ॥4॥

पश्चादस्त्रं तदन्यत् पुरहरमहिले! बीजमत्यन्तगुह्यम्,
भालोद्यत्पञ्चमुद्रे! प्रकटविकटदंष्ट्रोग्रवक्त्रारविन्दे !
नित्यं ये भावयन्ति प्रतिदिनममले घोररूपाट्टहासे,
ते नूनं भ्रामयन्ति त्रिजगदघहरे ! चक्रवद्विश्वमेतत् ॥5॥

मायास्त्रीकूर्चबीजैर्नवतपनहरित्सार्धचन्द्रांशवर्णे !
मातर्नीलाख्यमेतत्तवमनुमनिशं ये प्रकामं जपन्ति ।
वित्ते वित्तेशतुल्याः सुरगुरुसदृशास्तर्ककाव्यागमादौ,
ते ते नीलाम्बुदालीरुचिरुचिरतनो! कामरूपा भवन्ति ॥6॥

भवान्येभिर्बीजैर्हिमगिरिसुते! चास्त्रसहितैः,
निगूढं ये मातस्तव मनुं जपन्त्येकजटिले !
त्रियामानाथार्धप्रविलसितभाले! त्रिनयने !,
गृहे तेषां नित्यं निवसति मुदा सिन्धुतनया ।।7।।

अमीभिर्बीजैस्ते प्रणवसहितैः शैलतनये !
निजस्वान्ते सास्त्रं परिजपति पंचाक्षरमिति ।
स सिद्धः स त्यागी स तु पुरहरोऽसौ मुरहरः,
स धाताऽसौ मुक्तो भवति हि चिदानन्दरसिके ! ।।8।।

शवासीनां कण्ठे कलितनृकरोटीं करलसत्,
कपालासिश्यामोत्पलरुचिरकर्त्रीं त्रिनयनाम् ।
नवाम्भोदश्यामां विकटरदभीमां पृथुकुचाम् ,
सदैव त्वां ध्यायन् जननि स जडो वाक्पतिसमः ।।9।।

तटे नद्याः सिन्धोर्गिरिशिरसि मालूरगहने,
श्मशाने गोष्ठे वा गिरिशभवने शून्यसदने ।
हविष्याशी लक्षं प्रजपति वशी भावनपरः,
स सर्वज्ञो वाग्मी भवति सुजनो पीनजघने ।।10।।

मुदा मातः! शुद्धोदकरुचिरगन्धाक्तसलिलैः,
स्वयम्भूपुष्पस्त्रक्कुलतनुभगक्षालितजलैः ।
शिवे त्वां संध्यायन् हरमहिषि ! सन्तर्पयति यः,
सदैव स्त्रीवृन्दं वशयति स विद्याधरपतिः ।।11।।

जवापुष्पैर्बिल्वैमरुवकुलमुख्यैश्च कुसुमैः,
सुगन्धैः कर्पूरैरगरुसहितैर्धूपनिकरैः ।
प्रदीपैरुज्ज्वालैर्घृतरचितनैवेद्यनिकरैः,
तवार्चा यः कुर्यात्स भवति हि पूज्यः क्षितिपतेः ।।12।।

स दूर्वाभिः पद्मैस्त्रिमधुललितैः श्रीफलदलैः,
घृतैर्गव्यैरक्तैः सुकुलभगलिङ्गामृतरसैः ।
त्रिकोणे कुण्डे यो हुतवहमुखे होमविधिना,
जुहोति त्वां मातः स भवति कवीन्द्रः क्षितिपतिः ।।13।।

निशीथे कल्याणि! प्रमुदितमना यो पितृवने,
बलिं ते मेषाद्यैः स नरमहिषैर्वा परिचरेत् ।
स राजानं क्षिप्रं वशयति मृगाक्षीसमुदयम्,
त्रिलोकीं वा भूमौ स भवति नरः सत्कविवरः ।।14।।

महापूजां मातस्तव वितनुते यस्तु मधुना,
तथा मांसैर्मत्स्यैर्विविधनवमुद्रादिभिरपि ।
वरस्त्रीभिः सार्द्धं निधुवनविनोदेन मुदितो,
निशीथे संसारात् स भवति विमुक्तः पशुभयात् ।।15।।

त्रिकोणे पीठे त्वां वरनिधुवनासक्तहृदयाम्,
महाकालेनोद्यत् पुलकनिचयां स्मेरवदनाम् ।
स्वयं नक्तं कान्तारतिरससमासक्तहृदयो,
मनुष्यो यो ध्यायेद् भवति शिवतुल्यः स धरणौ ।।16।।

समुत्तुङ्गापीनस्तनजघनराजत्कुलवधू-
व्यवायव्यासक्तो जपति तव भक्तो यदि मनुम् ।
गलद्वासः केशो जननि ! मनुजो मेदिनितले,
स सिद्धीशः शक्त्या जयति सुचिरं सर्वसुजनम् ।।17।।

भवानि ! श्रीमातर्निजगलितवीर्याप्तचिकुर-
मथ प्रेम्णा लब्ध्वा वचनभुवनेशीयुतमनुम् ।
समुच्चार्यक्षोणीतनयदिवसे प्रेतसदने,
स दीर्घायुर्वाग्मी भवति शतहोमात् क्षितितले ।।18।।

अजस्त्रं यो मन्त्रं परिजपति भूमीश्वरसुते,
विचिन्त्याग्रे मातः कुसुमलुलितं मारभवनम् ।
धरण्यां कन्दर्पप्रतिमतनुभृत्सोऽपि सकलान्,
निजेष्टानाप्नोति प्रविशति मुदा तारिणि ! पदम् ।।19।।

तमोग्रस्ते चन्द्रे यदि जपति लोकस्तव मनुम् ,
नवम्यां वा मातर्धरणिधरकन्ये ! वितनुते ।
तथा सूर्ये पृथ्वीवलयतिलकः काव्यतरनी-
पयोधिः सिद्धीनां भवति भवनं सर्वविदितः ।।20।।

सदा पादाम्भोजे भ्रमतु हृदय भृङ्ग इव मे,
सदा पाणिद्वन्द्वं परिचरतु कर्णस्तव कथाम् ।
शृणोतु त्वत्कीर्तिं हरमहिषि ! गीर्गायतु सदा,
सदा दृष्टिभूयाद् भवदनुचरालोचनपरा ।।21।।

कदा काले शैलेश्वरतनुभवे ! पादयुगलम्,
मुदा द्रक्ष्ये ब्रह्मप्रमुखविबुधानां परिणुतम् ।
कृपापारावारे ! भवजननभीतैकशरणे !
शरण्ये ! कारुण्यं मयि वितर दीने भगवति ! ।।22।।

फलश्रुतिः

सदैव स्तोत्रं यः पठति मुदितः साधकवरो,
न दारिद्र्यं तस्य प्रभवति कदाचित् क्षितितले ।
त्रिवर्गो हस्ते स्याज्जगदखिलमेतच्च वशगम्,
चिरं जीवन्नन्ते जननि लभते मोक्षपदवीम् ।।23।।

इदं स्तोत्रं मातः प्रपठति दिवा रात्रिमनिशम्,
स सर्वज्ञो योगीश्वरनिकरचूडामणिसमः ।
जडोऽपि त्वद्रूपं जपति यदि संचित्य मनसा,
त्वदग्रे भूयोच्चैः क्षितिपतिसमानः क्षितितले ।।24।।

महापुण्यं धन्यं सकलपुरुषार्थैक्यनिलयम् ,
यशस्यं चायुष्यं सततभवतापापहमिदम् ।
रहस्यं प्राकाम्यं न हि खलु कदाचित्पशुजने,
पठेत्पूजाकाले जननि ! लभते मोक्षपदवीम् ।।25।।

इति श्रीताराकर्पूरस्तोत्रं समाप्तम् ।



(5)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

चीनाचारक्रमतन्त्रम्

•

विवृतिकारः सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

चीनाचारक्रमतन्त्र का सार

चीनाचारक्रम तन्त्र के **प्रथम पटल** में भगवती पार्वती ने श्रीशिव से कहा है कि उन्होंने भगवती तारिणी की अर्चना के सन्दर्भ में चीनाचारक्रम की ओर संकेत तो किया था, लेकिन, विशेष चर्चा कभी नहीं की । अब वे चीनाचारक्रम के विषय में जानना चाहती हैं । पार्वती की जिज्ञासा देखकर महादेव चिन्तित हो गये । वे सोचने लगे कि चीनाचारक्रम गोपनीय है, इसे पार्वती के सामने प्रकट कैसे करें ?

श्रीशिव ने पार्वती से अनुरोध किया कि वे चीनाचारक्रम के विषय में जानने के अपने बार-बार के प्रयास को छोड़ दें । क्योंकि यह एक परम गोपनीय तत्त्व साक्षात् अनुभवगम्य है । पार्वती के बार-बार के प्रश्न से किंचित् खिन्न शिव ने उनसे कहा—'हे देवि ! तुम स्त्री हो । उत्कण्ठा स्त्रियों का स्वभाव है । इसी कारण लाख बार मना करने पर भी तुम बार-बार इस बारे में जानने का हठ कर रही हो' ।

शिव के इस व्यवहार से रुष्ट पार्वती ने उनसे कहा—'यदि आप चीनाचारक्रम के बारे में मुझे नहीं बतायेंगे तो, मैं अभी आपके सामने ही अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी' । भगवती पार्वती द्वारा प्राणत्याग की धमकी दिये जाने पर रुद्र ने शैलपुत्री से चीनाचारक्रम का वर्णन आरम्भ करते हुए कहा कि जिस चीनाचारक्रम के बारे में वे उन्हें बताने जा रहे हैं, उसे गुप्त रखने से ही साधक की साधना फलवती होती है । उन्हें भरोसा है कि पार्वती इस साधनाक्रम को गोपनीय ही बनाये रखेंगी ।

भगवान् शिव ने पार्वती को एक पुराकथा सुनायी—एक बार ब्रह्मा के मानसपुत्र मुनि वशिष्ठ ने नीलपर्वत पर स्थित कामाख्या योनिमण्डल में स्थित होकर भगवती तारिणी के मन्त्र का जप और देवी का ध्यान करते हुए 10 हजार वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार दस हजार वर्ष तक जप-ध्यान करने पर भी भगवती तारा ने मुनि वशिष्ठ पर कृपा नहीं की ।

भगवती तारा द्वारा उपेक्षा किये जाने से अत्यन्त क्रुद्ध मुनि वशिष्ठ ने अपने पिता ब्रह्मा के पास जाकर स्थिति का उल्लेख किया और उनके सामने ही ताराविद्या का परित्याग कर दिया । तेजस्वी और तपस्या के प्रभाव से प्रज्ज्वलित अपने पुत्र वशिष्ठ को ब्रह्मा ने समझाया कि वे पुन: भगवती तारा की उपासना आरम्भ करें । ताराविद्या की आराधना के प्रभाव से ही वे चौदह भुवनों की रचना करते हैं, विष्णु संसार का पालन करते हैं तथा शिव संसार कर संहार करते हैं । वशिष्ठ ने ब्रह्मा से कहा कि सर्वज्ञ होते हुए भी उन्होंने साधना के लिये दुरूह और अल्पफलवती विद्या प्रदान क्यों की ? वशिष्ठ ने ब्रह्मा को बताया कि उन्होंने 1 हजार वर्ष तक हविष्य खाकर तारा की आराधना की । फिर समय-समय पर केवल एक चुल्लू जल पीकर ही एक हजार वर्ष तक तपस्या की । इसके बाद निरन्तर तारामन्त्र

का जप और देवी का ध्यान करते हुए निराहार रह कर आठ हजार वर्ष और बिता दिये। इस प्रकार कामाख्यायोनि पर तपस्या करते हुए उन्होंने 10 हजार वर्ष व्यतीत कर दिये। फिर भी तारिणी की अनुकम्पा उन पर नहीं हुई। इसलिये निराश होकर ही वे दु:साध्य तारिणी विद्या का परित्याग कर रहे हैं। वशिष्ठ की बातें सुन कर लोकपितामह ब्रह्मा ने तपस्वियों में अग्रगण्य अपने पुत्र को सान्त्वना देते हुए कहा कि वे नीलाचल पर वापस जाकर तारादेवी की आराधना पुन: आरम्भ करें। ब्रह्मा ने वशिष्ठ को बताया कि तारा के समान ऐसी कोई महान् विद्या है ही नहीं जिसकी साधना वे करें।

ब्रह्मा का सुझाव मानकर वशिष्ठ ने कामाख्यायोनि-मण्डल में लौट कर पुन: महामाया भगवती तारा के चरणों में अनन्य भक्ति रखते हुए 1 हजार वर्ष तक तप किया लेकिन, तारिणी उन पर प्रसन्न नहीं हुई। इससे क्रुद्ध वशिष्ठ हाथ में जल लेकर तारा को शाप देने को तैयार हो गये। मुनि वशिष्ठ का क्रोध देखकर पर्वत, कानन और जंगलोंसहित धरती काँप उठी और स्वर्ग में भी देवताओं के बीच हाहाकार मच गया। उसी समय भगवती तारा उनके सामने प्रकट हो गई। तारा को देखकर वशिष्ठ और भी क्रुद्ध हो उठे और उन्हें शाप दे दिया कि 'अब से ताराविद्या किसी को भी सिद्ध नहीं होगी'।

वशिष्ठ के शाप से उद्विग्न तारिणी ने वशिष्ठ से कहा कि उन्होंने तारा-साधना के आचार और विधि को जाने बिना विरुद्ध आचार और विधि का सहारा लेकर इतना समय व्यर्थ कर अकारण ही ताराविद्या को अभिशप्त कर दिया। तारा ने वशिष्ठ को बताया कि ताराविद्या की साधना की विधि विष्णु के अवतार बुद्ध के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। उन्होंने वशिष्ठ को सुझाव दिया कि वे महाचीन देश जाकर बुद्ध से ताराविद्या की साधना की विधि सीखकर ही आगे इस विद्या की साधना करें।

द्वितीय पटल में वर्णित है कि तारिणी की बातें सुन कर मुनि वशिष्ठ ने उन्हें प्रणाम किया और ताराराधन की विधि जानने के लिये महाचीन देश में रह रहे बुद्ध के पास पहुँचे। उन्होंने दूर से ही देख लिया कि बुद्ध के नेत्र मदिरापान के कारण लाल और बोझिल हो रहे हैं। वे महान् साधकों और ध्वनित हो रहीं किंकिणियों से सुशोभित जघनप्रान्त वाली, सौन्दर्य और यौवन से सम्पन्न, मदिरापान से उन्मत्त, विलास और उल्लास से उल्लसित, विविध शृंगार-प्रसाधनों से उद्भासित, अपने रूप और यौवन से संसार के समस्त प्राणियों को मोहित करने वाली, भय और लज्जाविहीन हजारों सुन्दरियों से घिरे हुए बैठे हैं।

बुद्धरूपी भगवान् विष्णु को इस रूप में देख वशिष्ठ ने सोचा—'अरे ! बुद्धरूपी भगवान् यह क्या कर रहे हैं ? इनका आचरण तो नितान्त वेद-विरुद्ध है'। वशिष्ठ आश्चर्य से भर गये। वे संसार को तारने वाली तारिणी का स्मरण कर सोचने लगे कि तारिणी ने उन्हें किसके पास भेज दिया ?

वे ऐसा सोच ही रहे थे कि अकस्मात् उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—'हे पुण्यव्रत ! ऐसा मत सोचो। तारा की आराधना के लिये यहीं सबसे महान् आचार है। इस आचरण

के विपरीत आचरण से यह तारादेवी कभी प्रसन्न नहीं होतीं । और, यदि तुम तारा की शीघ्र प्रसन्नता चाहते हो, तो उसकी उपासना चीनाचारविधि से ही करो ।

आकाशवाणी सुनकर वशिष्ठ रोमांचित हो उठे । उन्होंने अव्यक्तरूपिणी वाणी देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बुद्धरूपी भगवान् विष्णु के पास पहुँच गये ।

मदिरा की सुगन्ध से आह्लादित बुद्ध ने वशिष्ठ की ओर देखा । उन्होंने उनसे वहाँ आने का कारण पूछा । वशिष्ठ ने उन्हें वह सब कुछ कह सुनाया जो तारिणी की आराधना के सन्दर्भ में उन्हें स्वयं तारा ने कहा था । वशिष्ठ की बात सुनकर तत्त्वज्ञानी बुद्ध ने जान लिया कि यह वशिष्ठ चीनाचारक्रम का अधिकारी है और उनसे कहा—

'हे मुने ! तारणी की साधना का आचारक्रम अत्यन्त गोपनीय है । लेकिन, भगवती तारा के प्रति तुम्हारी भक्ति देख मैं तुम्हें तारा की उपासना-विधि की ऐसी विधि बता रहा हूँ, जिसे सुनने मात्र से व्यक्ति संसार-सागर से तर जाता है । यह आचारविधि समस्त शोकों को शान्त करने वाली और साधक को आनन्द के सागर में आप्लावित करने वाली है । यह साक्षात् तत्त्वज्ञानरूप और जीवन्मुक्ति देने वाली है' ।

बुद्ध ने कहा कि—'तारिणी की उपासना की इस विधि में बाह्य स्नान, शौच, जप, पूजन तथा तर्पण आदि की आवश्यकता नहीं होती, इन सबका सम्पादन मानसिक ही होता है । इस विधि में शुभ लग्न, ग्रह-नक्षत्र, दिन-तिथि आदि विचारने की जरूरत नहीं रहती । इसमें सभी काल शुभ ही माने जाते हैं । साधना के लिये दिन और रात दोनों ही विहित हैं, किसी में कोई विशेषता नहीं । सन्ध्या हो या महानिशा, दोनों बराबर हैं' ।

'इस उपासना-विधि में रक्तवर्ण का वस्त्र पहना जाये या पीत वर्ण का, साधना पद्मासन में बैठ कर की जाये या वीरासन में, एकान्त में की जाये या चौराहे पर, अपने घर में की जाये या वेश्या-घर में, शक्ति के इस अंग का स्पर्श कर जप किया जाये अथवा उस अंग का, आदि का कोई नियम या प्रतिबन्ध नहीं । इसमें भूतशुद्धि, दिशा-शुद्धि आदि करने का कोई नियम नहीं है । कोई भी व्यक्ति कहीं भी, कभी भी इस विधि का आश्रय ले सकता है । इस विधि में मत्स्यादि की शुद्धि की अपेक्षा नहीं होती और न ही मद्यादि को दोषपूर्ण माना जाता है' ।

'महाचीनाचारक्रम में भगवती तारा की आराधना बिना स्नान किये और भोजन करने के बाद भी की जा सकती है। बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि किसी महानिशा में किसी अपवित्र स्थान में मन्त्रोच्चारण के साथ बलि दी जा सकती है । बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! तारिणी की साधना के लिये किये जाने वाले जप, अर्चना, बलि और पूजा आदि में किसी प्रकार के देशकालादि विशेष के नियम का बन्धन नहीं है । यह सब कुछ साधक की स्वेच्छा पर निर्भर है । प्रसन्न मन से जैसे चाहो, जब चाहो और जहाँ चाहो, जपादि कर लो बस' ।

तारिणी की साधना में स्त्रियों की महिमा का उल्लेख करते हुए बुद्ध ने कहा—'यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये कि किसी भी स्तर पर स्त्रियों से द्वेष न किया जाये । स्त्रियों

का विशेषरूप से सम्मान किया जाये। स्त्रियों पर प्रहार और उनकी निन्दा न की जाये। स्त्रियों से छल न किया जाये। उनके साथ कोई ऐसा व्यवहार न किया जाये, जो उन्हें प्रतिकूल लगे। तारिणी के उपासकों के लिये स्त्रियाँ उनकी देवता हैं, स्त्रियाँ ही उनके प्राण और उनकी शोभा हैं। साधकों को सर्वदा स्त्रियों के साथ ही रहना चाहिये, विशेषरूप से अपनी पत्नी के साथ तो रहना ही चाहिये। तारासाधकों को चाहिये कि वे स्त्री के करकमलों से चुने हुए पुष्प, स्त्री द्वारा प्रदत्त जल, और स्त्री द्वारा दिया गया द्रव्य ही भगवती को निवेदित करें'।

बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि 'महाचीनाचार एक विशाल वृक्ष की भाँति है। स्त्रियाँ इस वृक्ष से लिपटी मनोहर लताओं के समान हैं। लता समान शक्ति से आलिंगित होकर यदि कोई साधक जप करता है, तो संसार में उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता'।

बुद्ध ने कहा कि 'महाचीनाचाररूपी वृक्ष में लिपटी लता के समान शक्तिरूपिणी अपनी लता के आलिंगन से साधक को जो प्रत्यक्ष फल प्राप्त होता है, उसका षोडशांश भी शव-साधना से प्राप्त नहीं होता! तारिणी साधना के लिये श्मशान में प्रवेश करने से अधिक फल अपने लतागृह में प्रविष्ट होकर साधना करने से मिलता है'। वशिष्ठ को तारा-साधना की विधि समझाते हुए बुद्ध ने कहा—'स्त्री के साथ संचरण करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए, उसे देखते हुए अथवा जिस भी स्थिति में स्त्री साथ हो, उसकी रुचि के अनुसार ताम्बूलादि अथवा अन्य भक्ष्य पदार्थों या जलादि का स्वयं सेवन करने से पूर्व अपनी लता को देकर ही उन्हें स्वयं ग्रहण करना चाहिये'।

प्रसंगवश बुद्ध ने वशिष्ठ को श्मशान-साधन की विधि भी बतायी। इसके अनुसार 'साधक को यदि श्मशान-साधना करनी है तो, उसे चाहिये कि वह केशों को मुकुलित कर, नग्न और लतालिंगित होकर ही साधना के लिये श्मशान में प्रवेश करे'।

बुद्ध ने कहा—'तारा के उपासकों को चाहिये कि वे स्वयं को कभी दीन-हीन और कदर्य न समझें, अपितु कृतार्थता का अनुभव करते हुए सुगन्धित श्वेत और रक्तपुष्पों (शुक्र-रजस्) से भगवती तारा की पूजा करें। तुलसीदल को छोड़ विशेषरूप से बिल्व और मरुबक आदि के पवित्र दलों और श्वेत-रक्त पुष्पों से निरपेक्ष भाव से तारा की अर्चना करनी चाहिये। चीनाचारक्रम से शक्ति की पूजा में जहाँ भी 'नवपुष्पों' का उल्लेख हुआ है, वहाँ पूजा में प्रयुक्त की जा रही युवती का 'आलिंगन, चुम्बन, उरोजों का मर्दन, मुख का अवलोकन, कामांगों का स्पर्शन, योनि का आस्फालन, लिंग का घर्षण तथा योनि में लिंग-प्रवेश' नौ पुष्प विहित हैं'।

बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि 'महाचीनक्रमाचार की पद्धति से ही तारा, दक्षिणाकाली, भैरवी तथा सुन्दरी विद्या की सिद्धि होती ही है'। उन्होंने कहा कि 'यद्यपि सुन्दरी और भैरवी देवी की उपासना के अन्य मार्ग भी हैं, जिन्हें अपनाकर इन्हें सिद्ध किया जा सकता है, लेकिन, तारिणी और दक्षिणाकाली की सिद्धि के लिये महाचीनक्रमाचार को छोड़ अन्य कोई साधना पद्धति है ही नहीं'।

महाचीनाचारक्रम से तारिणी की उपासना के फल का उल्लेख करते हुए बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि 'महाचीनक्रमाचार से भगवती की एकनिष्ठ उपासना करने वाला साधक अपने विद्याकुल (गुरुकुल) की करोड़ों पीढ़ियों को तार देता है । उसके अपने पितृकुल के अतिरिक्त अन्य कुल के पितर भी ऐसे साधक की प्रशंसा करते हुए अभिलाषा करते हैं कि काश ! उनके अपने कुल में भी कोई ऐसी कुलाचारी और ज्ञानी सन्तान जन्म लेती ।

बुद्ध ने चीनक्रमाचार की प्रशंसा करते हुए वशिष्ठ से कहा कि 'वास्तव में सच्चा चिरज्ञानी, कवि, पण्डित, कुलीन, सुकृती, बली, साधक, ब्राह्मण, वेदज्ञ, अग्निहोत्री, दीक्षित, तीर्थसेवी, पीठस्थानवासी, मुक्ति का पात्र, व्रती, सोमपायी, याज्ञिक, वैष्णव, शैव, सौर और गाणपत्य वही है, जो महाचीनक्रमाचार से सर्वदा भगवती तारिणी की अर्चना करता है' ।

तृतीय पटल में वर्णित है कि चीनाचारक्रम के बारे में वशिष्ठ ने महात्मा बुद्ध से प्रश्न किया कि तारिणी की इस उपासना-विधि में प्रयुक्त सुरा और सुन्दरी इन दो तत्त्वों में मुख्य कौन है ? बुद्ध ने उन्हें बताया कि यद्यपि महाचीनाचार में नारी और मदिरा दोनों का महत्त्व समान है, फिर भी देवताओं की अर्चना के सन्दर्भ में नि:सन्देह नारी की प्रधानता है । क्योंकि 'नारियों के शरीर में सर्वदा साक्षात् भगवती शिवा विराजती हैं और उनके प्रत्येक अंग में देवताओं का निवास है' । वशिष्ठ द्वारा यह पूछने पर कि नारियों के शरीर में विद्यमान भगवती शिवा की अर्चना कैसे करनी चाहिये ? बुद्ध ने उन्हें बताया कि 'महामाया भगवती तारिणी की अर्चना योनिपीठ, मन:पीठ और यन्त्रपीठ इन तीन पीठों पर की जाती है । लेकिन, इन तीनों पीठों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योनिपीठ है' ।

बुद्ध ने कहा कि 'योनिपीठ में तारा की पूजा करने से वे तुरन्त प्रसन्न हो जाती हैं । योनिपीठ पर तारा की अर्चना करने से अणिमादि समस्त सिद्धियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं' । बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि तारा की योनिपीठ पर अर्चना के लिये 'नटी, कापालिकी, वेश्या, रजकी, नापिता, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या तथा मालाकार की कन्याओ में से किसी भी जाति की अथवा किसी भी जाति की श्रेष्ठ, विदुषी, तन्त्रोक्त शुभलक्षणों से युक्त और सद्गुरु से दीक्षित कन्याएँ ग्राह्य हैं'।

योनिपूजा-विधि बताते हुए बुद्ध ने कहा कि—'उक्त नौ कन्याओं अथवा किसी भी जाति की सर्वलक्षणान्वित, सर्वालंकारविभूषित, यौवनोन्मत्ता, लज्जारहित और सुहासिनी श्रेष्ठ कन्या को पूजागृह में लाकर पहले उसे नग्न करना चाहिये । फिर, उसकी देह पर पुष्पतैलादि सुगन्धित पदार्थों का अनुलेपन कर उसकी केशराशि को मुकलित कर देना चाहिये । तत्पश्चात् उस कन्या के योनिमण्डल में गुरुशक्ति की भावना कर उसकी षोडशोपचार अर्चना कर उसमें षडंगन्यास पूजा करनी चाहये । इस प्रकार योनिपीठ की पूजा के अनन्तर उस पीठ पर भगवती तारा की पूजा करनी चाहिये' ।

बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि 'योनिपीठ में तारिणी के पूजन में भगवती के आवाहन तथा प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती । क्योंकि वहाँ भगवती सर्वदा विद्यमान रहती

हैं। योनिपीठ पर तारा की धूपदीपादि उपचारों से अर्चना और अर्घ्य देने के बाद साधक को चाहिये कि वह स्वयं को शिवरूप में भावित कर स्वलिंग पर भगवान् महेश्वर भैरव की पूजा सम्पन्न कर गन्ध, आसव, अक्षत तथा पुष्पादि से बाह्य और आन्तरिक हवन—

'धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहं स्वाहा'

मन्त्र से तथा पूर्णाहुति—

'प्रकाशकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा'

इस मन्त्र से करनी चाहिये।

बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि 'शक्तिपूजा काल के अलावा नग्न शक्ति को कभी भी नहीं देखना चाहिये और न ही सुरापान करना चाहिये। क्योंकि, नग्न शक्ति को देखने से आयु क्षीण होती है और पूजातिरिक्त काल में सुरा पीने से व्यक्ति को पाप लगता है, जिससे मुक्ति हेतु उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता हैं। बुद्ध ने उन्हें बताया कि सौत्रामणि यज्ञ तथा कुलाचार में ही ब्राह्मण को मद्यपान करना चाहिये, अन्य अवसरों पर नहीं। क्योंकि सुरा महर्षि भृगु के पुत्र शुक्राचार्य द्वारा शापित कर दी गयी है।

शुक्राचार्य द्वारा शापित भगवती सुरा की शापविमुक्ति का उल्लेख करते हुए बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि सुरा के शापविमोचन के लिये स्वयं ब्रह्मा शुक्र के पास गये और उन्हें समझाया कि जो लौकिकी सुरा है, वह देवताओं के लिये अमृतरूपा है। सुरा साक्षात् ब्रह्मज्ञानमयी है और इसका अभिषवन या निर्माण कुलाचार की गोपनीय विधि से किया जाता है। सौत्रामणि यज्ञ में इस सुरा द्वारा ही इन्द्रादि देवता तृप्त होते हैं। अत: उन्हें सुरा को अपने शाप से मुक्त कर देना चाहिये।

भार्गव शुक्र ने ब्रह्मा को तीन मन्त्र बताये जिनसे सुरा को शापमुक्त किया जा सकता है। इनमें से पहला मन्त्र है—

'एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्'॥

अर्थात् 'हे सुरे! निश्चित ही स्थूल और सूक्ष्म समस्त संसार केवल परब्रह्मरूप है। परंब्रह्म के इस ऐक्यज्ञान के प्रभाव से मैं कचोद्भव ब्रह्महत्या के पाप से तुझ सुरा को मुक्त करता हूँ'।

दूसरा मन्त्र है—

'सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे!।
अमाबीजमये देवि! शुक्रशापाद् विमुच्यताम्'॥

अर्थात् 'सूर्यमण्डल से प्रस्रवित होकर सागर में जन्मग्रहण करने वाली गहनान्धकारमयि ! देवि ! सुरे ! तुम शुक्र के शाप से मुक्त हो जाओ' ।

और तीसरा मन्त्र है—

'वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु' ॥

अर्थात् 'वेदों की बीज ओंकार है और यह ब्रह्मानन्दमय है'—यदि यह कथन सत्य है, तो हे सुरे ! इस सत्य के प्रभाव से तुम्हारी ब्रह्महत्या दूर हो जाये' ।

शुक्र ने ब्रह्मा से कहा कि सौत्रामणि यज्ञ और कुलाचार में इन तीन मन्त्रों से अभिमन्त्रित सुरा का पान करने से ब्राह्मणों को भी सुरापान का पाप नहीं लगता । चीनाचारतन्त्र के इस तृतीय पटल में ही कुलाचार में मद्यपान की महिमा का वर्णन किया गया है । बुद्ध ने कहा कि—'ब्रह्मवेत्ता भी यदि कुलपूजा में इतना मद्यपान करे कि वह भूमि पर गिर जाये, तो उसके शरीर में जितनी संख्या में धूलिकण लगेंगे, वह उतने ही काल तक भगवती तारिणी के लोक में निवास करेगा' ।

'कुलपूजा में किसी मदोन्मत्त युवती का आलिंगन कर यदि कोई साधक मद्यपान करता है, तो उसके करोड़ों जन्मों के संचित पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं' ।

'कुलपूजन के समय यदि कोई साधक बार-बार मदिरापान करता हुआ भगवती के मन्त्र का जप करता रहे, तो वह निश्चितरूप से अपने करोड़ों पूर्वजों सहित सर्वदा ब्रह्मलोक में निवास करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।'

'जो साधक मदिरापान करके देवी की अर्चना करता है, उसे ईशित्व नामक सिद्धि की प्राप्ति होती है । वह देवी के लोक में निवास करता है, उसका इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता' ।

'कुलाचार में मद्यपान करने वाला अग्निहोत्री आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त करके महान् साधक और श्रेष्ठ योगी होकर जीवन में सुखी रहता है' ।

'कुलाचार में मदिरापान और मांसभोजन करने वाला योगी 'सोऽहं हंसः स्वाहा' मन्त्र का भावनापूर्वक जप करके रोगरहित, पापों से मुक्त और अणिमा-महिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर दीर्घकाल तक जीवित रहता है' ।

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! मैंने तुम्हारे समक्ष सुरा की शाप-मुक्ति तथा तारिणी की पूजा की गोपनीय विधि का निरूपण कर दिया है । जिसने एक बार भी इस विधि से तारा की अर्चना सम्पन्न कर ली, उसके लिये त्रिलोकी में कुछ भी असाध्य नहीं है ।

हे मुने ! भले ही भगवान् विष्णु रुष्ट हों, कुलाचार की विधि से दिगम्बरी तारिणी की अर्चना करने वाला कुलयोगी सृष्टि-स्थिति तथा लय करने की सामर्थ्य और ईशित्वशक्ति प्राप्त कर लेता है ।

दिगम्बरी शक्ति तारा की कुलाचार-विधि से अर्चना करने वाला साधक भयानक रोगों से मुक्त हो जाता है, अपुत्र को पुत्र की प्राप्ति होती है तथा निर्धन धनवान् हो जाता है।

दिगम्बरी तारा की पूजा की विधि बताते हुए बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि 'जो साधक शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक 15 दिन भगवती तारिणी की अर्चना करता है, उसे निश्चितरूप से तारणीमन्त्र सिद्ध हो जाता है' । बुद्ध ने कहा—'हे वशिष्ठ ! तारिणी की वीरभाव की उपासना विघ्नों से पूर्ण अत्यन्त कष्टमयी है । लेकिन, तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण मैंने तुम्हें इस सरलतम उपासना-विधि का कथन किया है' । 'हे वशिष्ठ ! यह कुलाचारी उपासना-पद्धति अत्यन्त गोपनीय है । तारिणी की जिस पूजाविधि का उल्लेख मैंने तुम्हारे समक्ष किया है, वह सर्वोत्तम है । कुलाचारी कौल को चाहिये कि वह इस विधि का प्रकटन अपने पुत्रों के सामने भी न करे । दिगम्बरी तारा के पूजन में प्रयुक्त मद्यादि की चर्चा भी किसी से नहीं करनी चाहिये ।

चतुर्थ पटल में कुलाचारपूजा में प्रयक्त होने वाले कुलद्रव्य 'मद्य' की निर्माण-विधि तथा इसके माहात्म्य का उल्लेख है । इस सम्बन्ध में बुद्ध ने कहा कि कुलद्रव्य की निर्माण-विधि जानने वाला व्यक्ति देवताओं के समान हो जाता है । कुलद्रव्य के निर्माण के लिये कुलपूजक को चाहिये कि वह सबसे पहले विधिपूर्वक आधार की रचना करे । कुलाचार साधकों के अनुसार आधार त्रिपाद, चतुष्पाद, षट्पाद अथवा वर्तुलाकार चार प्रकार के होते हैं' ।

दूसरी आवश्यकता कुलद्रव्य के स्थापन के लिये पात्र है । इसका निर्माण स्वर्ण, रजत, प्रस्तर, कूर्मपीठ, कपाल, लौकी, मृत्तिका अथवा किसी पवित्र वृक्ष की लकड़ी से कराना चाहिये । कुलपात्र न तो बहुत छोटा हो और न ही बहुत बड़ा । पात्र टूटा-फूटा भी न हो' ।

वशिष्ठ को मद्य-निर्माण की विधि बताते हुए बुद्ध ने कहा कि चीनाचार से भगवती तारा की अर्चना में प्रयुक्त होने वाले प्रथम द्रव्य 'मद्य' के निर्माण के लिये 1भाग जल में 2 भाग दुग्ध मिलाकर उसमें मद्य के लिये निर्धारित अंकुरित मुट्ठीभर यवादि पदार्थ की पिष्टी डालकर इन तीनों पदार्थों को भलीभाँति मिलाकर इस घोल को दो दिन समशीतोष्ण स्थान में रखने के बाद तीसरे दिन इस घोल को अग्नि पर रख पकाकर गाढ़ा होने पर उसे अग्नि से उतार कर शीतल करना चाहिये । इस घोल के ठण्डा हो जाने पर इसमें पुनः 1 भाग दुग्ध डाल हाथों से अच्छी प्रकार मिलाना चाहिये । फिर, इसमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर खूब घोटना चाहिये । इस विधि से निर्मित पेय को ही 'पैष्टी' कहा जाता है । पैष्टी सुरा सुर-नर सबों में प्रिय और सम्मानित है । अपने गुरु का स्मरण करते हुए पैष्टी का पान और मांस का सेवन करने से कुल-साधक को कोई दोष नहीं लगता । लेकिन, यदि कोई साधक मदिरादि का सेवन अपने आनन्द के लिये करता है, तो वह अवश्य नरक का भागी बनता है । इसलिये साधक को चाहिये कि वह भगवती की प्रसन्नता के लिये ही सुरापान करे ।

बुद्ध ने कहा कि 'कुलाचार जानने वाला चाण्डाल ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है । लेकिन, जिस कौल को कुलाचार की जानकारी नहीं है, और वह कुलज्ञानियों के आचरण को देखकर

कुलज्ञान को जानना भी नहीं चाहता, और न ही उसे अपने जीवन में उतारना चाहता है, संसार में उसके जीवन और पौरुष को धिक्कार है । कुलाचार के ज्ञाताओं की प्रशंसा करते हुए बुद्ध ने कहा कि 'वे ही धन्य हैं, वे ही पूणकर्म हैं, वे ही शान्त हैं, वे ही तपस्वी और योगी हैं, वे ही वन्दनीय हैं, वे ही महात्मा हैं, वे ही कृतार्थ हैं और वे ही नरश्रेष्ठ हैं, जिनके हृदय में कुलज्ञान प्रकाशित हो जाता है' ।

बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि 'उन्होंने ही पूर्वकाल में कुलाचार से अनभिज्ञ और इसमें रुचि न रखने वाले शास्त्राभिमानी पशुमानवों को भ्रम में डालने के लिये विधि-निषेधपरक स्मृति आदि सभी पशुशास्त्रों की रचना की थी' । बुद्ध ने कहा कि 'स्मृतिमार्ग का अनुसरण करने वाले दुरात्मा जितनी निष्ठा से इन पशुशास्त्रों का अनुसरण करते हैं, उनमें उतनी ही भोग-लालसा भी बढ़ती जाती है । ऐसे लोगों की करोड़ों कल्पों तक सद्गति नहीं होती' ।

बुद्ध की बातें सुनकर वाशिष्ठ ने उनसे कहा कि 'यदि मद्यपान करने से मानव को सिद्धि-प्राप्ति होती है, तो मद्यपान करने वाले सभी पशु-मानवों की मुक्ति तो निश्चित ही होगी ? पर क्या ऐसा सम्भव है ? और, यदि मांसभोजन से व्यक्ति को सद्गति मिलती है, तो सभी मांसभोगी मुक्त हो जायेंगे क्या ? और, यदि स्त्री के साथ सम्भोग करने से मुक्ति प्राप्त होती है, तो संसार के सभी प्राणी अपनी स्त्रियों से सम्भोग करते हैं, इस कारण उन्हें मुक्त हो जाना चाहिये न' ।

वशिष्ठ द्वारा व्यक्त प्रश्नों पर बुद्ध ने उनसे कहा कि 'कुलज्ञान से स्मृतियों में वर्णित अनेक धर्मों का उच्छेद होता हुआ देखकर ही परम्परागत धर्मों के नीच अनुयायी लोग कौलिकों के कुलधर्म की निन्दा करते हैं। वास्तव में, कुलधर्म महान् है । इसका अनुसरण करने में कोई पाप नहीं । जहाँ तक सुरापान की बात है, बिना किसी बड़े उद्देश्य से किया जाने वाला सुरापान महापाप है । लेकिन, कुलपूजा के अवसर पर किये जाने वाले सुरापान में कोई पाप नहीं' ।

वशिष्ठ की आशंकाओं को समाप्त करने के लिये बुद्ध ने कहा कि कुलधर्म के बारे में उनके मन में जो यह संशय उत्पन्न हुआ है कि 'क्या कभी कहीं किसी को कुलाचारक्रम से सिद्धि मिल सकती है ? उसका मैं निराकरण करता हूँ । परम्परागत साधना में विश्वास करने वाले साधकों से कुलाचार की चर्चा करनी ही नहीं चाहिये । यह साधना-पद्धति अत्यन्त गोपनीय और अकथ्य है ।

वास्तव में, 'समस्त वाङ्मय में वेद और वेदप्रतिपादित धर्म सर्वोत्तम है । लेकिन, वैदिक धर्म से भी महान् वैष्णव-धर्म है । वैष्णवधर्म से श्रेष्ठ शैवधर्म और शैव से भी महान् दक्षिणाचार या समयाचार शाक्तधर्म है । इस दक्षिणाचारशाक्तधर्म से भी महान् सिद्धाचार या सिद्धमत है । लेकिन, सिद्धाचार से भी महान् वामाचार या कौलधर्म है । वामाचार कुलधर्म से बड़ा अन्य कोई धर्म नहीं है । यह गुह्य से भी गुह्य सार का भी सार और परात्पर है । विवेक की तुला पर एक ओर यज्ञ, ज्ञान तप तथा विभिन्न क्रियाएँ और दूसरी ओर कुलाचारक्रम को रख तुलना की जाये, तो स्पष्ट हो जायेगा कि कुलाचार समस्त यज्ञादिकों

से महान् है। जिस प्रकार समस्त सरिताएँ सागर में ही मिलती हैं, उसी प्रकार कृत्रिम विधि-निषेधों के बन्धनों से मुक्त होने पर सभी धर्म और उनकी क्रियाएँ कुलाचारक्रम में ही विश्रान्ति पाती हैं। कुलाचार और अन्य सामान्य आचारों में बहुत अन्तर है। परम्परागत धर्मों का पालन करने वाले लोग कई जन्मों तक जप-तप करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, लेकिन, कुलाचारी साधक सर्वदा जीवन्मुक्त ह्री होता है। 'कौलधर्म' के समान अन्य कोई धर्म नहीं। यह सर्वथा सत्य है। यदि कोई योगी है, तो, भोगी नहीं हो सकता और भोगी है, तो योगी हो ही नहीं सकता। लेकिन, कुलधर्म का पालन करने वाला साधक एक साथ ही योग और भोग दोनों ही प्राप्त कर सकता है।

पंचम पटल में कौलाचार साधना के—1. घातयेत्, 2. गोपयेत्, 3. न निन्दयेत्, 4. न गोपयेत्, 5. पूजयेत्, 6. भावयेत्, 7. वर्जयेत् और 8. जुगप्सयेत् अर्थात् 'नष्ट करे, छिपाये, निन्दित न करे, छिपाकर न रखे, पूजा करे, भावना करे, रोके और घृणा करे' इस 'समयाष्टक' अर्थात् आठ शर्तों की जानकारी दी गयी है। इन्हें क्रमशः स्पष्ट करते हुए बुद्ध ने बताया कि—

1. 'काम, क्रोध, मात्सर्य, मानसिक विकार, निद्रा, लज्जा, भय तथा दौर्मनस्य को नष्ट करने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिये।

2. कुलसाधकों को चाहिये कि वे गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र, गुरूपदिष्ट मुद्राएँ, गुरुप्रदत्त सूत्रविशेष, योगियों के साथ मिलन, भैरवियों के आगमन तथा कुलाचार के गुप्त रहस्यों को गोपनीय ही रखे।

3. कुल-साधकों को चाहिये कि वे कुल, कुलगुरु, सुधा अर्थात् कुलपूजन में प्रयुक्त होने वाला द्रव्य मदिरा, तारादि कुलदेवियों के मन्त्र, कुलपूजा में भाग लेने वाली साधिकाओं के नामादि तथा साधना में किये जा रहे कथित रूप से शुभ या अशुभ क्रियाओं की निन्दा न करे।

4. तारासाधकों को चाहिये कि वे कन्या की योनि, पशुओं की कामक्रीड़ा, नग्नस्त्री, व्यक्तस्तनी, द्यूतक्रीडा, अन्यों के बीच ह्रो रहे परस्पर कलह और दूसरों के द्वारा किये जा रहे गर्हित कार्यों का अवलोकन न करे।

5. तारा-साधकों को चाहिये कि वे गुरु, देवी, साधुओं, शक्ति, स्वयम्, अव्यक्त परमेश्वर तथा समस्त साधकों का विशेष सम्मान करे।

6. कुलसाधकों को चाहिये कि वे गुरु के कथनों, उनके द्वारा प्रदत्त उपदेशों, सन्तों द्वारा कहे गये वचनों, अपने इष्ट देवता, अपने धर्म, कुलाचार तथा आत्मा का निरन्तर चिन्तन और भावन करते रहें।

7. तारोपासकों को चाहिये कि वे देश-शास्त्रादि से अगम्य घोषित स्त्रियों से यौन-सम्बन्ध स्थापित न करे, धूर्तों के साथ सम्पर्क न रखे, और झूठों, पापियों के साथ मिलना-जुलना न रखे।

8. समयाष्टक का आठवाँ नियम है कि कुलाचारी साधक को चाहिये कि वह विष्ठा, मूत्र, रक्त, क्लेद, अंगहीन नारी, मदिरा पी रही नारी और कपाल का आहरण कर रहे व्यक्ति से घृणा करे, इनसे दूर ही रहे ।'

बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि समयाष्टक का पालन करने वाला साधक देवीस्वरूप और जीवन्मुक्त हो जाता है । संसार में उसके लिये अप्राप्य कुछ भी नहीं है ।

इस पटल में भगवती पार्वती द्वारा यह कहने पर कि 'यह जो मदिरापान है, परदारा के साथ सम्भोग है, पूर्णतया अनैतिक और पाप है' कुलाचार में मद्यमत्स्यादि के सेवन से सिद्धि प्राप्त होने की जो बात कही गयी है, वह कैसे सम्भव है ?' शिव ने उन्हें एक पुराकथा सुनायी जो निम्न है—

'एक बार दारुवन में विचरण कर रहे ब्रह्मा ने वहाँ तपस्या कर रहे मुनियों को सुरापान और परस्त्रीगमन करते हुए देखा । मुनियों द्वारा किये जा रहे इस कार्य को दुराचार मानकर ब्रह्मा ने उनके (शिव के) पास आकर बताया कि दारुवन में निवास कर रहे मुनि सुरापान और परस्त्रीगमन में निमग्न हैं। वे नग्न और मुण्डित रहते हैं। उनकी सद्गति कैसे होगी ?

ब्रह्मा की बातें सुनकर उन्होंने ब्रह्मा से कहा था कि दारुवन के वे मुनिगण चीनाचारक्रम से महाविद्या उग्रतारा देवी के मन्त्र का जप करते हुए उनकी अर्चना-आराधना कर रहे हैं । वे सभी महान् साधक हैं, महात्मा हैं और उनके उद्देश्य भी महान् हैं । भगवती उग्रतारा में अचल भक्तिभाव वाले ये सभी मुनि जीवन्मुक्तावस्था में स्थित हैं । वे मुनि उच्च विचारों वाले, महान् साधक और जीवन्मुक्त हैं । नित्य परस्त्रियों के साथ सम्भोग और मद्यपान करके भी वे महाशय मुनिगण चीनाचार के अनुसार भगवती तारा की उपासना करके तारा की कृपा से निर्वाण प्राप्त करेंगे ।

श्रीशिव ने कहा—'हे पार्वति ! मैंने ब्रह्मा को सुझाव दिया कि वे शीघ्र दारुवन में जायें और उन तपस्वी मुनियों को प्रसन्न करें, अन्यथा उनका ब्रह्मत्व नष्ट हो जायेगा ।' श्री शिव के कहने पर ब्रह्मा ने दारुवन में जाकर उन सभी मुनीश्वरों को अपनी नम्रता, भक्ति और विभिन्न स्तुतियों से सन्तुष्ट कर उनकी कृपा प्राप्त की ।

कथा सुनकर पार्वती ने श्रीशिव से पूछा था कि बुद्ध से महाचीनक्रमाचार का ज्ञान प्राप्त करने के बाद वशिष्ठ मुनि ने क्या किया ?

पार्वती के प्रश्न पर श्रीशिव ने उन्हें बताया कि वशिष्ठ अपने निवासस्थान नीलाचल लौट गये । वहाँ चीनाचारक्रम से तारा की उपासना सम्पन्न करने के लिये उन्होंने अक्षमाला नामक एक चाण्डाल जाति की युवती का वरण किया और उसके साथ तारा की कुलाचार की विधि से साधना की । उनकी साधना से प्रसन्न भगवती तारिणी उनके समक्ष प्रकट हुई और इच्छानुसार वर माँगने को कहा । वशिष्ठ ने कहा कि 'हे शिवानि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो एक वर दीजिये कि जो भी साधक चीनाचारक्रम से आपकी उपासना करे उससे आप सर्वदा प्रसन्न रहेंगी ।' तारिणी ने वशिष्ठ से कहा कि 'जो भी साधक चीनाचारक्रम से

मेरी पूजा करेगा वह मेरे लिये पुत्र के समान होगा, इसमें सन्देह नहीं। चीनाचारक्रम से मेरी अर्चना करने वाला साधक इस संसार में जब तक जीवित रहेगा, श्रेष्ठ भोगों को भोगेगा और मृत्यु के पश्चात् मेरे गणनायक के रूप में मेरे पास ही रहेगा। जब तब चन्द्र और सूर्य विद्यमान हैं, मेरे साथ निवास करता हुआ रूप और यौवन से सम्पन्न दिव्यांगनाओं के साथ विहार करता हुआ सर्वोत्तम योगसिद्धियों को भी प्राप्त करेगा। चीनाचारक्रम से मेरी अर्चना करने वाला साधक इस संसार में जब तक जीवित रहेगा, श्रेष्ठ भोगों को भोगेगा और मृत्यु के पश्चात् मेरा गणनायक बनकर मेरे पास ही निवास करेगा।'

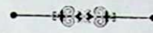
तारिणी ने वशिष्ठ से कहा कि—'हे वशिष्ठ ! तुमने साधकों के कल्याण के लिये वर माँगा है, अपने स्वार्थ के लिये नहीं। इससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह वर देती हूँ कि अणिमादि समस्त सिद्धियाँ सर्वदा तुम्हारी सेवा करती रहें।' श्री शिव ने कहा—हे पार्वति ! भगवती तारा से उक्त वरों को प्राप्त करने वाले मुनि वशिष्ठ आज भी नक्षत्रलोक में चमक रहे हैं।

भगवान् शिव ने पार्वती से कहा—'हे देवि ! तुमने दुष्प्राप्य और गोपनीय चीनाचारक्रम के विषय में जो कुछ जानना चाहा था, मैंने तुम्हें बता दिया। इसके अनुसार भगवती तारिणी की उपासना करने वाला साधक इसी लोक में भुक्ति और मुक्ति दोनों एक साथ ही प्राप्त कर सकता है।

श्रीशिव ने कहा—'हे महादेवि ! मैंने जो कुछ तुम्हें बताया है, उसे गोपनीय ही बनाये रखना। लेकिन, ऐसा करना कि जिससे यह विद्या परम्परया एक से दूसरे को मिलती रहे। विशेष रूप से यह ध्यान रखना कि घृणा-लज्जादि पाशों में आबद्ध किसी पशुमानव के सामने कभी भी यह साधन-विधि प्रकट न हो। लेकिन, जो साधक भगवती का अनन्य भक्त होने के साथ-साथ ज्ञानी भी हो, तारिणी की साधना के महत्त्व को समझता हो, उसे तो इस साधनाविधि की जानकारी देनी ही चाहिये।



चीनाचारक्रमतन्त्रम्



अथ प्रथमः पटलः

पार्वत्या महाचीनाचारजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

महाचीनक्रमाचारः सूचितो न प्रकाशितः।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥1॥
इति पृष्टः पुरा देव्या कैलासशिखरे हरः।

पुराकाल में किसी समय कैलास पर्वत पर विराजमान् भगवान् शंकर से पार्वती ने कहा—हे शिव ! कभी आपने भगवती तारिणी की अर्चना के सन्दर्भ में चीनाचारक्रम की ओर संकेत किया था, लेकिन, विशेष चर्चा नहीं की थी । अब मैं उसी चीनाचारक्रम के विषय में जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझ पर विशेष कृपा है, तो इस बारे में बताइये ।

श्रीशिवस्य चिन्ता

चिन्तयामास मनसा किञ्चिदाकुलितेक्षणः ॥2॥
इयमुत्कण्ठिता भूयो भूयः प्रेरयति प्रिया ।
चीनाचारक्रमं वक्तुं न प्रकाश्यः कथं मया ॥3॥

देवी पार्वती की बात सुनकर महादेव की आँखों में चिन्ता उभर आयी । वे सोचने लगे, 'भगवती पार्वती चीनाचारक्रम के बारे में जानने के लिये अति उत्कण्ठित हो बार-बार इसे बताने का दबाव मुझ पर बना रही हैं । लेकिन, चीनाचारक्रम गोपनीय है । इसे प्रकट कैसे करूँ ?'

अतिगुह्यतरः सोऽपि ह्याचारः सिद्धिदायकः ।
स्त्रीणां चञ्चलया बुद्ध्या कथं गोप्तुं हि शक्यते ॥4॥

भगवान् शंकर सोच रहे थे कि चीनाचारक्रमशास्त्र एक अति गोपनीय है और दूसरे अतिशीघ्र फल प्रदान करने वाला भी है । इसे जानकर कोई अपात्र साधक भी इस क्रम से साधना में प्रवृत्त हो सकता है । अपात्र साधक द्वारा की जा रही तारिणी की साधना से विपरीत फल भी हो सकता है । पार्वती के सामने चीनाचारक्रम को प्रकट करने से इसकी गोपनीयता सुरक्षित नहीं भी रह सकती । पार्वती स्त्री हैं और स्त्रियों का स्वभाव सुकोमल अतएव तरल

होता है । यदि पार्वती ने भावुकता के वश किसी से इस साधना का रहस्य प्रकट कर दिया, तो इसकी गोपनीयता नष्ट हो सकती है ।

पार्वत्याः पुनरनुरोधः

इति सञ्चित्यमानं पुनराह महेश्वरी ।
महाचीनक्रमाचारं ब्रूहि मे परमेश्वर ॥5॥

भगवान् शिव ऐसा सोच ही रहे थे कि भगवती गिरिजा ने उनसे पुनः कहा—परेश ! आप चीनाचारक्रम के बारे में बताइये न ।

शिवस्य वारणम्

श्रीशिव उवाच

अलं यत्नैरलं यत्नैरलं यत्नैर्महेश्वरि ! ।
चीनाचारक्रमः श्रोतुं विरता भव पार्वति ! ॥6॥
स एव परमाचारो न प्रकाश्यः कदाचन ।
गुह्याद् गुह्यतरः साक्षात्तत्त्वध्यानमयः शिवे ! ॥7॥
स्त्रीस्वभावेन देवेशि ! शश्वन्मां परिपृच्छसि ।
लक्षवारं वारिताऽपि श्रोतुमिच्छसि शङ्करि ! ॥8॥

श्रीशिव ने कहा—हे महेश्वरि ! चीनाचारक्रम के विषय में जानने के अपने बार-बार के प्रयास को छोड़ो भी । यह एक परम गोपनीय और अप्रकाश्य आचारक्रम है । यह गोपनीय से भी गोपनीय है । यह तत्त्व साक्षात् अनुभवगम्य है । यह आचार सबसे महत्त्वपूर्ण आचारक्रम है । हे देवि ! तुम स्त्री हो । उत्कण्ठा स्त्रियों का स्वभाव है । इसी कारण लाख बार मना करने पर भी तुम बार-बार इस बारे में जानने का हठ कर रही हो ।

देव्याः शपथः

श्रीदेव्युवाच

यदि चीनक्रमाचारं न मे कथयसि प्रभो ! ।
प्राणत्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः ॥9॥

शिव की बात सुनकर रुष्ट पार्वती ने उनसे कहा—यदि आप चीनाचारक्रम के बारे में मुझे नहीं बतायेंगे, तो मैं अभी आपके सामने अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी ।

श्रीशिवेन चीनाचारनिर्वचनोपक्रमः

इत्युक्तः शैलतनयां रुद्रः कारुणिको महान् ।
महाचीनक्रमाचारं गदितुं च प्रचक्रमे ॥10॥

भगवती गिरिजा द्वारा इस प्रकार प्राणत्याग की धमकी दिये जाने पर परम करुणामय रुद्र ने शैत्रपुत्री से चीनाचारक्रम का वर्णन आरम्भ करते हुए कहा कि—

सर्वदा गोप्य एवायमाचारः सिद्धिदायकः ।
तवानुरोधादेवाहं कथयामि महेश्वरि ! ॥11॥

हे प्रिये ! जिस चीनाचारक्रम के बारे में मैं तुम्हें बता रहा हूँ, उसे गुप्त रखने से ही उसकी साधना फलवती होती है । मुझे विश्वास है कि तुम इसे गुप्त ही रखोगी । इसीलिये मैं इसे तुम्हारे समक्ष प्रकट कर रहा हूँ ।

वशिष्ठस्य ताराराधनवृत्तान्तः

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वशिष्ठोऽतीव संयमी ।
तारामाराधयामास पुरा नीलाचले मुनिः ॥12॥
जपन्सन्तारिणीं विद्यां कामाख्यायोनिमण्डले ।
गमयामास वर्षाणामयुतं ध्यानतत्परः ॥13॥
वर्षायुतेन तस्यैवं चिरमाराधिता सती ।
नानुग्रहं चकाराऽसौ तारा संसारतारिणी ॥14॥

हे देवि ! अत्यन्त संयमशील मुनि वशिष्ठ भगवान् ब्रह्मा के मानस पुत्र थे । उन्होंने नील पर्वत पर स्थित कामाख्या योनिमण्डल में स्थित होकर भगवती तारिणी के मन्त्र का जप और देवी का ध्यान करते हुए 10 हजार वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार दस हजार वर्ष तक जप-ध्यान करने पर भी भगवती तारा ने मुनि वशिष्ठ पर कृपा नहीं की ।

वशिष्ठस्य तारासाधनपरित्यागः

अथाऽसौ पितरं गत्वा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
कोपेन ज्वलितो विद्यां तत्याज पितुरन्तिके ॥15॥

भगवती तारा द्वारा उपेक्षा किये जाने से अत्यन्त क्रुद्ध मुनि वशिष्ठ ने अपने पिता ब्रह्मा के पास जाकर स्थिति का उल्लेख किया और उनके सामने ही ताराविद्या का परित्याग कर दिया ।

ब्रह्मणा वशिष्ठायाश्वासनम्

द्वादशादित्य सङ्काशं तपोभिर्ज्वलितं मुनिम् ।
ब्रह्मा स च मुनिं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥16॥
तत्त्वज्ञानमयीं विद्यां तारां भुवनतारिणीम् ।
आराधय त्वं श्रीचरणमनुद्विग्नेन चेतसा ॥17॥

द्वादश सूर्यों के सम्मिलित तेजस् के समान तेजस्वी और तपस्या के प्रभाव से प्रज्ज्वलित अपने पुत्र वशिष्ठ से ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र ! तुम मेरी बात सुनो । ताराविद्या

तत्त्वज्ञानमयी हैं । ये साधकों को जन्म-मरणरूपी संसारसागर से पार करती हैं । इसलिये हे पुत्र ! तुम शान्तचित्त होकर पुनः भगवती तारा की उपासना आरम्भ करो ।

ब्रह्मणा वशिष्ठाय तारामाहात्म्यवर्णनम्

अस्याः प्रसादादेवाहं भुवनानि चतुर्दश ।
सृजामि चतुरो वेदान् कल्पयामि च लीलया ।।18।।
एनामेव समाराध्य विद्यां भुवनतारिणीम् ।
तत्त्वज्ञानमयो विष्णुर्भुवनं पालयत्यसौ ।।19।।
संहारकाले च हरो रुद्रमूर्तिधरः परः ।
तामेव तारामाराध्य संहरत्यखिलं जगत् ।।20।।

हे पुत्र ! इसी ताराविद्या की आराधना के प्रभाव से ही मैं भूः भुवः स्वः आदि चौदह भुवनों की रचना करता हूँ तथा ऋग्वादि चारों वेदों का पूर्ववद् भावन करता हूँ । इसी भुवनतारिणी ताराविद्या का समाराधन करके भगवान् विष्णु संसार का पालन करते हैं तथा प्रलय का समय आने पर रुद्ररूप धारण करके भगवान् शिव जगत् का संहार करते हैं ।

वशिष्ठेन स्वपित्रे कृतसाधनाक्रमसूचनम्

इत्युक्तो ब्रह्मणा योगी वशिष्ठः साधकोत्तमः ।
स्वपित्रे कथयामास सर्वमाराधनक्रमम् ।।21।।

अपने पिता ब्रह्मा द्वारा उक्त बातें कहे जाने पर वशिष्ठ ने भगवती तारा का वह सारा साधनाक्रम उन्हें बताया जैसा वह किया करते थे ।

वशिष्ठ उवाच

देवानामादिभूतस्त्वं सर्वविद्यामय प्रभो ! ।
कथं दत्ता दुराराध्या विद्यामल्पमियं त्वया ।।22।।
सहस्रवत्सरं पूर्वमियमाराधिता प्रभो !
नीलाचले निवसता हविष्यं भुञ्जता मया ।।23।।
तथाऽपि तात ! तारिण्याः करुणा मयि नाऽभवत् ।

वशिष्ठ ने ब्रह्मा से कहा—हे पिता ! आप देवताओं के आदिपुरुष और समस्त विद्याओं के मूर्तिमान् स्वरूप हो । सर्वज्ञ होते हुए भी आपने साधना के लिये ऐसी कठिन, दुरूह और अल्पफलवती विद्या मुझे प्रदान क्यों की, जो नीलाचल पर हजार वर्ष तक हविष्य खाकर कठिन तपस्या करने पर भी सिद्ध नहीं हुई ?

ततो गण्डूषमात्रं तु काले काले पिबन् जलम् ।।24।।
आराधयामि तां देवीं वत्सराणां सहस्रकम् ।

ततोऽपि यदि नैवाभूत् तारिण्याः करुणा मयि ॥25॥

हे पिता ! इसके बाद मैंने हविष्य का भोजन भी बन्द कर दिया और कभी-कभी केवल चुल्लूभर जल पीकर ही एक हजार वर्ष तक तपस्या करता रहा । फिर भी भगवती तारिणी मुझ पर प्रसन्न नहीं हुईं ।

तदाहमेकपादेन तिष्ठन्नीलाचलोपरि ।
परं समाधिमास्थाय निराहारो दृढव्रतः ॥26॥
तामेव केवलं ध्यायन् जपन्तामेव सर्वदा ।
अतिवाहितवान् वर्षं सहस्राष्टकमुत्तमम् ॥27॥

श्री वशिष्ठजी ने कहा कि इसके बाद तो मैंने चुल्लूभर जल पीना भी बन्द कर दिया और निरन्तर मन्त्र का जप और देवी का ध्यान करते हुए निराहार रह कर आठ हजार वर्ष बिता दिये ।

एवं दश सहस्रं तु वर्षाणामहमीश्वरीम् ।
कामाख्यायोनिमाश्रित्य समाराधितवान् प्रभो ! ॥28॥
अद्याप्यनुग्रहस्तस्यास्तथापि नैव दृश्यते ।
अतस्त्यज़ामि दुःसाध्यां विद्यामेनां सुदुःखितः ॥29॥

हे पिता ! इस प्रकार कामाख्यायोनि में तपस्या करते हुए मैंने 10 हजार वर्ष बिता दिये । तब भी आज तक तारिणी की अनुकम्पा मुझ पर हुई दिखती नहीं । इन्हीं सब कारणों से दुःखी होकर ही आज मैं इस दुःसाध्य तारिणी विद्या का परित्याग कर रहा हूँ ।

ब्रह्मणा वशिष्ठाय सान्त्वनम्

इति तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच सान्त्वयन् पुत्रं वशिष्ठं यतिनां वरम् ॥30॥

वशिष्ठ की बातें सुन कर लोकपितामह ब्रह्मा ने तपस्वियों में अग्रगण्य अपने पुत्र को सान्त्वना देते हुए कहा ।

ब्रह्मोवाच

वशिष्ठ ! गच्छ पुत्र ! त्वं पुनर्नीलाचलं प्रति ।
तत्र स्थितां महादेवीमाराधय दृढव्रतः ॥31॥

श्री ब्रह्मजी बाले—हे पुत्र वशिष्ठ ! तुम नीलाचल पर वापस जाओ और वहाँ स्थित तारादेवी की आराधना पुनः आरम्भ करो ।

कामाख्यांलोनिमाश्रित्य जपतः परमेश्वरीम् ।
अचिराद् देवतासिद्धिर्भविष्यति न संशयः ॥32॥

हे पुत्र ! कामाख्यायोनि पर ही देवी के मन्त्र का जप करते हुए उनकी आराधना करो । विश्वास रखो, तुम्हें भगवती की सिद्धि अतिशीघ्र ही होगी ।

एतस्याः सदृशी काचिद् विद्या नास्ति जगत्त्रये ।
इमां त्यक्त्वा पुनर्विद्यामन्यां कां संग्रहीष्यति ॥33॥

ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र ! तारा के समान अन्य कोई विद्या त्रिलोक में है ही नहीं । तो फिर, तुम इस विद्या का परित्याग करके किस दूसरी विद्या की साधना करोगे ?

कामाख्यायोनिमण्डले वशिष्ठेन पुनस्ताराराधनम्

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रणम्य पितरं मुनिः ।
पुनर्जगाम कामाख्यायोनिमण्डलसंन्निधिम् ॥34॥

पितामह ब्रह्मा की बातें सुनकर वशिष्ठ ने उन्हें प्रणाम किया और तारा की आराधना के लिये कामाख्यायोनिमण्डल को पुनः वापस लौट गये ।

तत्र गत्वा मुनिवरः पूजासम्भारतत्परः ।
आराधयत् महामायां वशिष्ठोऽतिजितेन्द्रियः ॥35॥

कामाख्यायोनि में वापस लौट कर जितेन्द्रिय मुनि वशिष्ठ ने पुनः पूजा का समस्त सम्भार या सामग्री संकलित की और महामाया भगवती तारा की उपासना में लग गये ।

अथाराधयतस्तस्य सहस्त्रं परिवत्सरान् ।
जग्मुस्तारामहादेवीपादाम्भोजानुवर्तिनः ॥36॥
तथापि तं प्रति प्रीता यदा नाभून्महेश्वरी ।

भगवती तारा के चरणों में अनन्य भक्ति रखते हुए मुनि वशिष्ठ को आराधना करते हुए हजार वर्ष और बीत गये । लेकिन, भगवती उन पर प्रसन्न नहीं हुईं ।

वशिष्ठेन तारामभिशपनम्

तदा रोषेण महता जज्वाल स मुनीश्वरः ॥37॥
ततो जलं समादाय तां शप्तुमुपचक्रमे ।

ऐसे में परम तेजस्वी वशिष्ठ क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठे और हाथ में जल लेकर तारा को शाप देने के लिये उद्यत हुए ।

वशिष्ठकोपात्सर्वत्र हाहाकारः

एतस्मिन्नन्तरे रुष्टमालोक्य तं मुनीश्वरम् ॥38॥
चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना ।

हाहाकारो महानासीद् दिवि देवेषु सर्वतः ॥39॥

हे देवि ! उस समय महातेजस्वी मुनि वशिष्ठ का क्रोध देखकर पर्वत, कानन और जंगलोंसहित धरती काँप उठी और स्वर्ग में भी देवताओं के बीच हाहाकार मच गया ।

वशिष्ठेन ताराभिशपनम्

ततो बभूव पुरतस्तारा संसारतारिणी ।
वशिष्ठस्तां समालोक्य शशापातीव दारुणम् ॥40॥

मुनि वशिष्ठ को शाप देने के लिये उद्यत देखकर भगवती तारा उनके सामने प्रकट हो गयीं । उन्हें सामने देखकर वशिष्ठ और भी क्रुद्ध हो उठे और उन्हें शाप दे दिया कि अब से ताराविद्या किसी को भी सिद्ध नहीं होगी ।

तारिण्या वशिष्ठाय अधिक्षेपणम्

ततो देवी महामाया तारिणी सर्वसिद्धिदा ।
उवाच साधकश्रेष्ठं वशिष्ठं मुनिनां वरम् ॥41॥
रोषेण दारुणमनाः कथं मामशपद् भवान् ।

वशिष्ठ द्वारा शाप दिये जाने से खिन्न भगवती तारा ने मुनिवर वशिष्ठ से कहा—आप क्रोध के वश में होकर अत्यन्त कठोर और विजडितहृदय हो गये हैं । आपने बिना किसी कारण मुझे शाप क्यों दिया? मुनिवर ! प्रत्येक कार्य के सम्पादन की एक विधि होती है । बिना विधि के किया गया कार्य सिद्ध नहीं होता । मेरी साधना की भी एक विधि है । आपने विधिपूर्वक मेरी साधना नहीं की । इसीलिये आपको सिद्धि प्राप्त नहीं हुई । इसमें मेरा क्या दोष ?

मदीयाराधनाचारं बुद्धरूपी जनार्दनः ॥42॥
एक एव विजानाति नान्यः कश्चन तत्त्वतः ।
वृथैव यामबाहुल्यं कालोऽयं गमितस्त्वया ॥43॥
विरुद्धाचारशीलेन मम तत्त्वमजानता ।

तारिणी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने मेरे मन्त्र की साधना-विधि जानने का प्रयास भी नहीं किया । आपको ज्ञात ही नहीं कि ताराविद्या की साधना विष्णु के अवतार एकमात्र भगवान् बुद्ध ही जानते हैं । आपने तारा-साधना के आचार और विधि को जाने बिना विरुद्ध आचार और विधि का सहारा लेकर व्यर्थ की साधना में ही समय व्यतीत किया ।

तारिण्या वशिष्ठं बुद्धसन्निधौ गन्तुं परामर्शः

तद्बुद्धरूपिणो विष्णोः सन्निधिं याहि सम्प्रति ॥44॥
तेनोपदिष्टाचारेण मामाराधय सुव्रत ! ।

तदैव (सदैव) सुप्रसन्नास्मि त्वयि वत्स न संशयः ।।45।।

इति महाचीनाचारसारतन्त्रे सर्वाचारसारोत्तमोत्तमे
महाचीनाचारक्रमे प्रथमः पटलः समाप्तः ।



भगवती तारा ने आगे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप मेरा सुझाव मानिये । आप चीन देश में रह रहे भगवान् बुद्ध के पास जाकर मेरी उपासना का आचारक्रम और विधि जानिये और तदनुसार उपासना कीजिये । हे मुने ! आपने मुझे शाप दिया । लेकिन, मैं आपसे रुष्ट नहीं हूँ । आपसे सर्वदा प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह मत कीजिये ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमहाचीनाचारक्रम की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का प्रथम पटल समाप्त ।



अथ द्वितीयः पटलः

वशिष्ठस्य चीनदशे गमनम्

ततः प्रणम्य तां देवीं वशिष्ठोऽयं महामुनिः ।
जगामाचारविज्ञानवञ्छया बुद्धरूपिणम् ॥1॥

भगवान् शिव ने कहा—हे पार्वति ! मुनि वशिष्ठ ने भगवती तारिणी की बात ध्यान से सुनी, उन्हें प्रणाम किया और ताराराधन की विधि और आचार जानने की इच्छा लेकर भगवान् बुद्ध के पास चल पड़े ।

वेदविरुद्धाचारवतः बुद्धस्य दर्शनं जुगुप्सनं च

ततो गत्वा महाचीने देशे स मुनिपुङ्गवः ।
ददर्श हिमवत्पार्श्वे साधकेश्वरसेवितम् ॥2॥

हे पार्वति ! वशिष्ठ महाचीन देश पहुँचे और उन्होंने जो कुछ देखा, आश्चर्यचकित रह गये । उन्होंने देखा कि भगवान् बुद्ध हिमालय पर स्थित रमणीय स्थान पर महान् साधकों से घिरे हुए आसीन हैं ।

रणज्जघनरावेण रूपयौवनशालिना ।
मदिरामत्तचित्तेन विलासोल्लासितेन च ॥3॥
शृङ्गारपरिवेशेन जगन्मोहनकारिणा ।
भयलज्जाविहीनेन देवीध्यानपरेण च ॥4॥
कामिनीनां सहस्रेण परिवारितमीश्वरम् ।

वशिष्ठ ने देखा कि बुद्ध ध्वनित हो रहीं किंकिणियों से सुशोभित जघनप्रान्तवाली, सौन्दर्य और यौवन से सम्पन्न, मदिरापान से उन्मत्त, विलास और उल्लास से उल्लसित, विविध शृंगार-प्रसाधनों से उद्भासित, अपने रूप और यौवन से संसार के समस्त प्राणियों को मोहित करने वाली, भय और लज्जाविहीन, भगवती तारिणी के ध्यान में मग्न हजारों ललनाओं से घिरे हुए बैठे हैं ।

मदिरापानसञ्जातं रक्तमन्थरलोचनम् ॥5॥
दूरादेव विलोक्यैवं वशिष्ठो बुद्धरूपिणम् ।
विस्मयेन समाविष्टः स्मरन् संसारतारिणीम् ॥6॥
किमिदं क्रियते कर्म विष्णुना बुद्धरूपिणा ।
वेदवादविरुद्धोऽयमाचारः सम्मतो मम ॥7॥

वशिष्ठ ने दूर से ही देख लिया कि बुद्ध के नेत्र मदिरापान के कारण लाल और भारी हो रहे हैं । बुद्धरूपी भगवान् विष्णु को इस रूप में देख वशिष्ठ सोचने लग—'अरे ! बुद्धरूपी भगवान् यह क्या कर रहे हैं ? ये जैसा आचरण कर रहे हैं, मेरे मत में तो वह नितान्त वेदविरुद्ध है ।' वे आश्चर्य से भर गये । वे संसार को तारने वाली तारिणी का स्मरण कर सोचने लगे कि तारिणी ने उन्हें किसके पास भेज दिया ?

आकाशवाचा वशिष्ठस्य प्रतिबोधनम्

इति चिन्तयतः तस्य वशिष्ठस्य महात्मनः ।
आकाशवाणी प्राहाशु मैवं चिन्तय सुव्रत ।।8।।

मुनि वशिष्ठ ऐसा सोच ही रहे थे कि अकस्मात् उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—'हे पुण्यव्रत ! ऐसा मत सोचो' ।

आचारः परमार्थोऽयं तारिणीसाधने मुने ! ।
एतद्विरुद्धाचारस्य मते नाऽसौ प्रसीदति ।।9।।
यदि तस्याः प्रसादस्त्वचिरेणाभिवाञ्छसि ।
एतेन चीनाचारेण तदा तां भज सुव्रत ! ।।10।।

हे देवि ! अव्यक्तशरीरिणी वाणी थी कि—हे मुने ! तारा की आराधना के लिये यही सबसे महान् आचार है । इस आचरण के विपरीत आचरण से यह तारादेवी कभी प्रसन्न नहीं होती । और, यदि तुम तारा की शीघ्र प्रसन्नता चाहते हो तो, उसकी शरण में आकर इसी प्रकार के आचार का पालन करो ।

आकाशवाणीमाकर्ण्य रोमाञ्चितकलेवरः ।
वशिष्ठो दण्डवद्भूमौ पपातातीव हर्षितः ।।11।।

हे देवि ! आकाशवाणी सुनकर वशिष्ठ रोमांचित हो उठे । उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । वे दण्डवत् मुद्रा में भूमि पर लेट गये ।

वशिष्ठस्य बुद्धसान्निध्ये उपगमनम्

तथोत्थाय प्रणम्यासौ कृताञ्जलिपुटो मुनिः ।
जगाम विष्णोः सान्निध्यं बुद्धरूपस्य पार्वति ! ।।12।।

हे पार्वति ! इसके बाद वे उठे । अव्यक्तरूपिणी वाणी देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बुद्धरूपी भगवान् विष्णु के पास पहुँच गये ।

अथाऽसौ तु समालोक्य मदिरामोदविह्वलः ।
प्राह बुद्धः प्रसन्नात्मा किमर्थं त्वमिहागतः ।।13।।

मदिरा की सुगन्ध से आह्लादित बुद्ध ने वशिष्ठ की ओर देखा । वे प्रसन्न हो गये । उन्होंने वशिष्ठ से पूछा कि वे उनके पास किस उद्देश्य से आये हैं ?

अथ बुद्धं प्रणम्याह भक्तिनम्रो महामुनिः ।
यदुक्तं तारिणीदेव्या निजाराधनहेतवे ।।14।।

बुद्ध की बात सुनकर भक्तिनम्र महामुनि वशिष्ठ ने उन्हें वह सब कुछ कह सुनाया, जो तारिणी की आराधना के सन्दर्भ में उन्हें स्वयं तारा ने कहा था ।

तच्छ्रुत्वा भगवान् बुद्धस्तत्त्वज्ञानमयो हरिः ।
वशिष्ठं प्राह संज्ञानं चीनाचारोऽधिकारवान् ।।15।।

हे देवि ! वशिष्ठ की बात सुनकर सम्यग् तत्त्वज्ञानी भगवान् बुद्ध ने जान लिया कि यह वशिष्ठ चीनाचारक्रम का अधिकारी है और उनसे कहा—

चीनाचारक्रमोपदेशोपक्रमः

बुद्ध उवाच

अप्रकाश्योऽयमाचारस्तारिण्याः सर्वदा मुने ।
तव भक्तिवशादस्मि प्रकाशयामीह तत्परः ।।16।।

बुद्ध ने कहा—'हे मुने ! तारणी की साधना का वक्ष्यमाण आचारक्रम अत्यन्त गोपनीय है । लेकिन, भगवती तारा के प्रति तुम्हारी भक्ति देख मैं तुम्हारे वश में हो गया हूँ । इसीलिये मैं तारा की उपासना-विधि को प्रकट करने में उत्सुक हुआ हूँ ।

अथाचारविधिं वक्ष्ये तारादेव्यः समृद्धिदम् ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।।17।।
समस्तशोकशमनमानन्दाब्धिनिपातनम् ।
तत्त्वज्ञानमयं साक्षाद् विमुक्तिफलदायकम् ।।18।।

तो, मैं अब तारादेवी की उस आचारविधि का निरूपण कर रहा हूँ, जिसे सुनने मात्र से व्यक्ति संसार-सागर में डूबता नहीं, तर जाता है । यह आचारविधि समस्त शोकों को शान्त करने वाली और आनन्द के सागर में आप्लावित करने वाली है । यह साक्षात् तत्त्वज्ञानरूप और जीवन्मुक्ति देने वाली है ।

चीनाचारे मानसपूजोपचाराणामेव महत्त्वम्

स्नानादि मानसं शौचं मानसश्च जपः स्मृतः ।
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ।।19।।

तारिणी की उपासना की इस विधि में बाह्य स्नान, शौच, जप, पूजन तथा तर्पण आदि की आवश्यकता नहीं होती, इन सबका सम्पादन मानसिक ही होता है ।

सर्व एव शुभः लग्नो नाऽशुभो विद्यते क्वचित् ।
न विशेषो दिवरात्रौ न सन्ध्यायां महानिशिः ॥20॥

हे मुने ! इस विधि में शुभ लग्न, ग्रह-नक्षत्र, दिन-तिथि आदि विचारने की जरूरत नहीं । इसमें सभी काल शुभ ही माने जाते हैं । साधना के लिये दिन और रात दोनों ही ठीक हैं, किसी में कोई विशेषता नहीं । सन्ध्या हो या महानिशा, दोनों बराबर हैं ।

वस्त्रासनस्थानगृहदेहस्पर्शादिवारिणः ।
शुद्धिं न कारयेदेव निर्विकल्पमनाश्च यः ॥21॥

इस उपासना-विधि में रक्तवर्ण का वस्त्र पहना जाये या पीत वर्ण का, साधना पद्मासन में बैठ कर की जाये या वीरासन में, एकान्त में की जाये या चौराहे पर, अपने घर में की जाये या वेश्या के घर में, शक्ति के इस अंग का स्पर्श कर जप किया जाये अथवा उस अंग का, आदि का कोई नियम या प्रतिबन्ध नहीं । इसमें भूतादिशुद्धि का कोई नियम नहीं । कोई भी निर्विकल्प अर्थात् 'ऐसे करें या वैसे करें' आदि संकल्प-विकल्प से रहित व्यक्ति इस विधि का आश्रय ले सकता है ।

चीनाचारे शुद्ध्याद्यनपेक्षता

नाऽत्रशुद्ध्याद्यपेक्षास्ति न च मद्यादिदूषणम् ।
सर्वथा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः ॥22॥
महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।

हे मुने ! इस विधि में मत्स्यादि की शुद्धि की अपेक्षा नहीं होती और न ही मद्यादि को दोषपूर्ण माना जाता है । इसमें तो, भगवती की आराधना बिना स्नान किये और भोजन करने के बाद भी की जा सकती है । बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि किसी महानिशा में किसी अपवित्र स्थान में मन्त्रोच्चारण के साथ बलि दी जानी चाहिये ।

चीनाचारे स्त्रीणामनन्यमहत्त्वम्

स्त्रीद्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात्पूजनं स्त्रियः ॥23॥
तासां प्रहारनिन्दां च कौटिल्यमप्रियन्तथा ।
सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥24॥

भगवान् बुद्ध ने कहा कि हे मुने ! तारणी की साधना में यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि किसी भी स्तर पर स्त्रियों से द्वेष न किया जाये । स्त्रियों का विशेषरूप से सम्मान किया जाये । स्त्रियों पर प्रहार और उनकी निन्दा न की जाये । स्त्रियों से छल न किया जाये । उनके साथ कोई ऐसा व्यवहार न किया जाय, जो उन्हें बुरा लगे । इन बातों से प्रत्येक स्थिति में बचना चाहिये । ऐसा न करने से सिद्धि में बाधा आती है ।

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रिया सह ॥25॥

तारिणी के उपासकों को चाहिये कि वे यह मानें कि स्त्रियाँ उनके लिये देवता हैं, स्त्रियाँ ही उनके प्राण और उनकी शोभा हैं । साधकों को सर्वदा स्त्रियों के साथ ही रहना चाहिये, विशेषरूप से अपनी पत्नी के साथ तो रहना ही चाहिये ।

तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं द्रव्यं देवताभ्यो निवेदयत् ॥26॥

तारासाधकों को चाहिये कि वे स्त्रियों के करकमलों से चुने गये पुष्प, स्त्रियों द्वारा प्रदत्त जल, और स्त्रियों द्वारा दिया गया मद्यादि द्रव्य ही भगवती को निवेदित करें ।

लतावेष्टितजपकरणे महासिद्धिः

महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः ।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं दुर्लभं तस्य किं भवेत् ॥27॥

हे वशिष्ठ ! यदि कोई साधक महाचीनाचाररूपी वृक्ष से लिपटी लता के सदृश लता अर्थात् शक्ति से आलिंगित होकर जप करता है, तो, संसार में उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ।

महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत्फलम् ।
तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः ॥28॥
शवासनाधिकफलं लतागेहप्रवेशनम् ।

हे वशिष्ठ ! महाचीनाचाररूपी वृक्ष में लिपटी लता के समान अपनी लता के आलिंगन से साधक को जो प्रत्यक्ष फल प्राप्त होता है, उसका षोडशांश भी शव-साधना से प्राप्त नहीं होता । हे वशिष्ठ ! तारिणी-साधना के लिये श्मशान में प्रवेश करने से अधिक फल अपनी लता के घर में प्रविष्ट होकर साधना करने से मिलता है ।

श्मशानसाधनाविधिनिरूपणम्

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥29॥
महाचीनद्रुमलतावेष्टितो मुक्तिमाप्नुयात् ।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत् ॥30॥

साधक को यदि श्मशान-साधना ही करनी है, तो उसे चाहिये कि वह मुकुलितकेश, नग्न और लतालिंगित होकर जपस्थल पर महाशङ्ख को ऊर्ध्वमुखी करके जप करके मुक्ति प्राप्त करे ।

ताम्बूलादिना स्वलतां सम्भाव्यैव जपादिकर्तव्यता

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र तत्रापि साधकः ।
भक्षंस्ताम्बूलमन्यांश्च भक्ष्यद्रव्यान् यथारुचीन् ॥31॥
भक्ष्याम्बुशेषद्रव्याणि दत्त्वा भुक्त्वा जपं चरेत् ।

हे मुने ! स्त्री के साथ संचरण करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए, उसे देखते हुए अथवा जिस भी स्थिति में स्त्री साथ हो, रुचि के अनुसार ताम्बूलादि अथवा अन्य भक्ष्य पदार्थों या जलादि का स्वयं सेवन करने से पूर्व पहले अपनी स्त्री या लता को देकर तत्पश्चात् ही उन्हें स्वयं ग्रहण कर जप आरम्भ करे ।

चीनाचारे स्वेच्छैव परो नियमः

दिक्कालनियमो नास्ति स्थित्यादिनियमो न च ॥32॥
जपे न कालनियमो नाऽर्चादिषु बलिष्वपि ।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद्धृष्टमानसः ॥33॥

हे वशिष्ठ ! तारणी की साधना के लिये किये जाने वाले जप, अर्चना, बलि और पूजा आदि में किसी प्रकार के देशकालादि विशेष के नियम का बन्धन नहीं है । यह सब कुछ साधक की स्वेच्छा पर निर्भर है । प्रसन्न मन से जैसे चाहो, जब चाहो और जहाँ चाहो, जपादि कर लो बस ।

तारिणीपूजने विहितपुष्पादि

कृतार्थं मन्यमानास्तु सन्तुष्टनिजमानसः ।
सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेत्कुलम् ॥34॥
बिल्वैर्मरुबकैः पुष्पैः तुलसीवर्जितैः शुभैः ।

तारा के उपासक को चाहिये कि वह स्वयं को कभी दीन-हीन कदर्य न माने, अपितु कृतार्थता की सन्तुष्टि का अनुभव करता हुआ तुलसीदल को छोड़ विशेषरूप से बिल्व और मरुबक आदि के पवित्र दलों, सुगन्धित श्वेत और रक्त (शुक्र और रजस्) पुष्पों से तारिणी की अर्चना करे ।

***आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं तथा ॥35॥**
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकासो लिङ्गघर्षणम् ।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नवपुष्पाणि पूजने ॥36॥

चीनाचारक्रम से शक्ति की पूजा में जहाँ भी 'नवपुष्पों' का उल्लेख हुआ है, वहाँ, पूजा

---

* चिह्नांकित: श्लोक: पञ्चमपटलाद् (5:48-49) उद्धृत्यात्र स्थापितो मया । प्रतीयते अयं श्लोक: तत्र अस्थाने लिखित: ।

में प्रयुक्त की जा रही युवती का 'आलिंगन, चुम्बन, उरोजों का मर्दन, मुख का अवलोकन, कामांगों का स्पर्शन, योनि का आस्फालन, लिंग से घर्षण तथा योनि में लिंग-प्रवेश' नौ पुष्प विहित किये गये हैं ।

तारणीपूजास्थानानि

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ॥37॥
तटस्थः साधयेद्योगी तारां भुवनतारिणीम् ।

तारिणी की उपासना निरपेक्षभाव से किसी एकलिंगस्थान, श्मशान, निर्जन गृह या शान्त चौराहे पर करनी चाहिये ।

महाचीनाचारेण तारिण्यादिसिद्धिः

तारिणी दक्षिणाकाली भैरवी सुन्दरी तथा ।
महाचीनक्रमेणैताः सिद्ध्यन्त्येव न संशयः ॥38॥

बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि महाचीनक्रमाचार की उपासना-पद्धति से तारा, दक्षिणाकाली, भैरवी तथा सुन्दरी की सिद्धि निःसन्देह होती ही है ।

चीनाचारेण विना तारादक्षिणाकाल्योः सिद्धिर्न

सुन्दरी भैरवीदेव्यः प्रकारोऽन्योऽपि विद्यते ।
तारिणीदक्षिणासिद्धिर्नैव चीनक्रमं विना ॥39॥

हे मुने ! यद्यपि सुन्दरी और भैरवी देवी की उपासना की अन्य कई विधियाँ हैं, जिन्हें अपनाकर इन्हें सिद्ध किया जा सकता है, लेकिन, तारिणी और दक्षिणाकाली की सिद्धि के लिये महाचीनक्रमाचार को छोड़ अन्य कोई साधना-पद्धति है ही नहीं ।

महाचीनाचारोपासकानां प्रशंसा

महाचीनक्रमाचारतत्परः साधकोत्तमः ।
तारिणीपूजनं विद्याकुलकोटिं समुद्धरेत् ॥40॥
नृत्यन्ति पितरः तस्य गाथां गायन्ति ते मुदा ।
अपि नः स्वकुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति ॥41॥

हे वशिष्ठ ! महाचीनक्रमाचार से भगवती की एकनिष्ठ उपासना करने वाला साधक अपने विद्याकुल की करोड़ों पीढियों को तार देता है । यह देखकर उसके अपने पितृकुल के पितर भी प्रसन्न होकर नाच उठते हैं और ऐसे साधक की प्रशंसा करते हुए उसका गुणगान करने लगते हैं । अपने कुल के अतिरिक्त अन्य कुल के पितर भी सोचने लगते हैं कि 'काश हमारे कुल में भी कोई कुलाचार का ऐसा ज्ञानी उत्पन्न होता ।

स धन्यः स चिरज्ञानी स कविः स च पण्डितः ।
स कुलीनः स सुकृती स बली स च साधकः ॥42॥
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ।
स तीर्थसेवी पीठेषु निवासी स च मुक्तिभाक् ॥43॥
स व्रती सोमपायी स स यज्वा सर्वमन्त्रिषु ।
स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः ।
महाचीनक्रमाचारैस्तारिणीं यः सदा भजेत् ॥44॥

इति महाचीनाचारसारतन्त्रे सर्वाचारसारोत्तमोत्तमे
महाचीनाचारक्रमे द्वितीयः पटलः समाप्तः ।



भगवान् बुद्ध ने महाचीनक्रमाचार की प्रशंसा करते हुए कहा—हे वशिष्ठ ! वास्तव में वही चिरज्ञानी है, वही कवि है, वही पण्डित है, वही कुलीन है, वही सुकृती है, वही बली है, वही साधक है, वही ब्राह्मण है, वही वेदज्ञ है, वही अग्निहोत्री है, वही दीक्षित है, वही तीर्थसेवी है, वही पीठस्थानवासी है, वही मुक्ति का पात्र है, वही व्रती है, वही सोमपायी है, सभी मन्त्रज्ञों के बीच वही याज्ञिक है, वही वैष्णव है, वही शैव है, वही सौर है और वही गाणपत्य है, जो महाचीनक्रमाचार से सर्वदा भगवती तारिणी की अर्चना करता है ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमहाचीनाचारक्रम की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का द्वितीय पटल समाप्त ।



अथ तृतीयः पटलः

श्रीशिव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा हरेर्बुद्धशरीरिणः ।
वशिष्ठस्तं पुनः प्राह कृताञ्जलिपुटो मुनिः ॥1॥

श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि बुद्धरूपी विष्णु की बातें सुनकर वशिष्ठ ने हाथ जोड़कर उनसे पुनः प्रश्न किया ।

मद्यसंविदयोर्मध्ये किं प्रधानम् ?

वशिष्ठ उवाच

भगवन् देवदेवेश ! तत्त्वज्ञानमय ! प्रभो ! ।
महाचीनक्रमाचारः कथितो भवता मम ॥2॥
प्रधानं द्वयमेवास्मिन् मदिरा योषिदेव तु ।
एतयोः किं प्रधानं तद् ब्रूहि मे परमेश्वर ! ॥3॥

मुनि वशिष्ठ बोले—हे भगवन् ! हे देवों के भी देव ! हे तत्त्वज्ञानस्वरूप ! हे प्रभो ! आपने महाचीनाचारक्रम के बारे में मुझे जो कुछ भी बताया, उससे मैं यही समझ सका हूँ कि इस आचार में दो वस्तुओं की प्रधानता है—पहली मद्य की और दूसरी स्त्री की । कृपा कर अब आप मुझे बताइये कि इन दोनों तत्त्वों में से मुख्य तत्त्व क्या है ?

उभयोर्मध्ये योषितां प्राधान्यकथनम्

श्रीभगवानुवाच

एतस्मिन् परमाचारे तुल्यमेव द्वयं मुने ।
प्राधान्यं योषितां किन्तु देवानां च न संशयः ॥4॥
यतो हि योषितां देहे सदैवाधिष्ठिता शिवा ।
अतः पूजासु सर्वासु तासां प्राधान्यमुच्यते ॥5॥

बुद्ध बोले—हे वशिष्ठ ! यद्यपि महाचीनाचार में मदिरा और नारी दोनों का महत्त्व समान है, फिर भी देवताओं की अर्चना के सन्दर्भ में निःसन्देह नारी की प्रधानता है, क्योंकि नारियों के शरीर में सर्वदा साक्षात् भगवती शिवा विराजती हैं और उनके प्रत्येक अंग में देवताओं का निवास है ।

वशिष्ठस्य प्रश्नः
'योषितां देहे शिवा कथं पूज्या ?

वशिष्ठ उवाच

ब्रूहि देव ! विधानं च सर्वज्ञानमय ! प्रभो ! ।
यथा योषित्सु तत्पूजाकर्तव्या नरपुङ्गवैः ॥6॥

मुनि वशिष्ठ ने पूछा—हे भगवन् ! श्रेष्ठ साधकों को नारियों के शरीर में विद्यमान भगवती शिवा की अर्चना किस प्रकार करनी चाहिये ?

श्रीशिवस्योत्तरं
योनिपीठे एव तारिणी पूज्या

श्रीभगवानुवाच

योनिपीठे मनःपीठे यन्त्रपीठे च पार्वति ! ।
त्रिधा भित्वा महामाया पूज्यते साधकोत्तमैः ॥7॥

बुद्ध ने बताया कि तारासाधकों द्वारा महामाया भगवती तारिणी की अर्चना योनिपीठ, मनःपीठ और यन्त्रपीठ इन तीन पीठों पर की जाती है ।

सर्वेषामेव पीठानां प्रधानं योनिपीठकम् ।
तत्र सम्पूजिता देवी झटित्येव प्रसीदति ॥8॥

हे मुने ! इन तीनों पीठों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पीठ योनिपीठ है । योनिपीठ पर भगवती तारा की पूजा करने से वे तुरन्त प्रसन्न हो जाती हैं ।

बुद्धेन सर्वार्थसाधनयोनि-
पूजाविधिनिर्वचनम्

अणिमाद्यष्टसिद्धीनां कारणं परमं मुने ! ।
योनिपूजाविधिं वक्ष्ये मम सर्वार्थसाधनम् ॥9॥

हे मुने ! मेरी समस्त सिद्धियों की परम साधिका योनिपीठ पर की गयी तारिणी की पूजा ही है । योनिपीठ पर तारा की अर्चना करने से अणिमादि सिद्धियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं । हे वशिष्ठ ! सुनो ! अब मैं तुम्हें योनिपीठ पर तारिणी के पूजन की विधि बताता हूँ ।

योनिपूजाकृते ग्राह्याः युवतयः

नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका: ॥10॥
मालाकारस्य कन्या च नवकन्याः प्रकीर्तिताः ।

बुद्ध ने बताया कि तन्त्रशास्त्र में 'नटी, कापालिकी, वेश्या, रजकी, नापिता, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या तथा मालाकार की कन्या'—ये नौ कन्याएँ मानी गयी हैं ।

प्रशस्ता सर्वजातीनां विदग्धा लक्षणान्विताः ॥11॥
गुरुपादगता ग्राह्या नान्यथा वरवर्णिनि !
अन्यथा तु वरारोहे नरके पतति ध्रुवम् ॥12॥

शिव ने कहा—हे भगवति ! बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि उक्त नौ कन्याओं के अलावा श्रेष्ठ, विदुषी, तन्त्रोक्त शुभलक्षणों से युक्त और सद्‌गुरु से दीक्षित अन्य किसी भी जाति की कन्याएँ तारिणी की पूजा के लिये ग्राह्य हैं । इनके विपरीत अन्य कन्याओं में तारा की पूजा करने से पूजक नरकगामी होता है ।

पूजाक्रमनिर्वचनम्

आनीयान्यतमां भद्रां सर्वाभरणसुन्दरीम् ।
सुन्दरीं यौवनोन्मत्तां निर्लज्जां चारुहासिनीम् ॥13॥
कृत्वा दिगम्बरां तां तु गन्धकुसुमचन्दनैः ।
अनुलिप्तां मुक्तकेशीं ततस्तद्योनिमण्डले ॥14॥
गुरुशक्तिं समाराध्य पूजयित्वा षडङ्गकम् ।
पीठपूजां विधायाथ तन्मध्ये पूजयेच्छिवाम् ॥15॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! उक्त नौ कन्याओं अथवा किसी भी जाति की सर्वलक्षणान्वित, सर्वालंकारविभूषित, यौवनोन्मत्ता, लज्जारहित और सुहासिनी श्रेष्ठ कन्या को पूजागृह में लाकर पहले उसे नग्न करना चाहिये । फिर, उसकी देह पर पुष्पतैलादि सुगन्धित पदार्थों का अनुलेपन कर उसकी केशराशि को मुकुलित कर देना चाहिये ।

तत्पश्चात् उस कन्या के योनिमण्डल में गुरुशक्ति की भावना कर उसकी षोडशोपचार अर्चना कर उसमें षडंगन्यास पूजा करनी चाहये । इस प्रकार योनिपीठ की पूजा के अनन्तर उस पीठ पर भगवती तारा की पूजा करनी चाहिये ।

योनौ देव्या आवाहनजीवन्यासौ न

तत्र चावाहनं नास्ति जीवन्यासो न वा मुनि ! ।
उपचारैः पूजयित्वा चार्घ्यं दत्त्वा ततः पुनः ॥16॥
जप्त्वा लिङ्गे भैरवं च पूजयित्वा महेश्वरम् ।
गन्धासवाक्षतैः पुष्पैर्होमं कुर्यादतः परम् ॥17॥

हे वशिष्ठ ! योनिपीठ में तारिणी के पूजन में भगवती के आवाहन तथा प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती । क्योंकि वहाँ भगवती सर्वदा विद्यमान रहती है । तो, योनिपीठ पर तारा की धूपदीपादि उपचारों से अर्चना और अर्घ्य देने के बाद साधक को चाहिये कि

वह स्वयं को शिवरूप में भावित कर स्वलिंग पर भगवान् महेश्वर भैरव की गन्ध, आसव, अक्षत तथा पुष्पादि से बाह्य पूजा सम्पन्न कर हवन करे ।

सुन्दरीपूजने हवनमन्त्रः

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्त्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ॥18॥
स्वाहान्तो होममन्त्रोऽयं प्रतिघाताहुतिर्मुने ! ।
पूर्णाहुतिं जपान्ते च जुहुयान्मनुनाऽमुना ॥19॥

हे वशिष्ठ ! बाह्य तथा आन्तरिक हवन में आहुति तथा पूर्णाहुति भी—

'धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्त्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहं स्वाहा' ॥

--मन्त्र से दी जानी चाहिये ।

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्त्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यहम् ॥20॥
स्वाहान्तोऽयं भवेन्मन्त्रो घोरपातकमुक्तिदः ।

इस मन्त्र के अतिरिक्त—

'प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनस्त्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यहम् स्वाहा' ॥

—मन्त्र से हवन करने से साधक महापातकों से मुक्त होता है ।

पूजाकालं विहाय दिगम्बरीकन्यादर्शने सुरापाने च दोषः

पूजाकालं विना नैव पश्येच्छक्तिं दिगम्बरीम् ॥21॥
पूजाकालं विना नैव सुरा पेया च साधकैः ।
आयुष्यं हीयते दृष्ट्वा पीता तु पशुतां व्रजेत् ॥22॥

बुद्ध ने वशिष्ठ को समझाते हुए पुनः कहा कि हे मुने ! तारिणी उपासक को चाहिये कि वह शक्तिपूजा-समय के अलावा नग्न शक्ति को कभी भी न देखे और पूजन-काल के अतिरिक्त कभी सुरापान भी न करे । क्योंकि, नग्न शक्ति को देखने से आयु क्षीण होती है और पूजातिरिक्त काल में सुरा पीने से व्यक्ति को पाप लगता है, जिससे मुक्तिहेतु उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है ।

सौत्रामण्यां कुलाचारे ब्राह्मणः प्रपिबेत्सुराम् ।
अन्यत्र कामतः पीत्वा प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥23॥

ब्राह्मण को मद्य पीना चाहिये अथवा नहीं ? वशिष्ठ द्वारा अपेक्षित इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बुद्ध ने कहा कि सौत्रामणि यज्ञ तथा कुलाचार में ब्राह्मण को भी मद्यपान करना

चाहिये, अन्य अवसरों पर नहीं। क्योंकि सुरा महर्षि भृगु के पुत्र शुक्राचार्य द्वारा शापित कर दी गयी है, अत: ब्राह्मणों के लिये सुरापान निषिद्ध है। अविधिपूर्वक स्वेच्छा से मदिरा पीने वाला व्यक्ति प्रायश्चित्त का भागी होता है।

सुराशापविमोचनाय ब्रह्मणा शुक्रायाऽनुरोधः

भार्गवेण पुरा शप्तां श्रुत्वा देवीं च वारुणीम्।
ब्रह्मा लोकगुरुः साक्षात् प्रययौ भार्गवान्तिकम् ॥24॥

शुक्राचार्य द्वारा भगवती सुरा को शापित किये जाने की बात सुनकर चिन्तित लोकगुरु ब्रह्मा स्वयं शुक्र के पास गये।

प्रसाद्योवाच तं ब्रह्मा वाचाऽमृतसमानया।
देवानाममृतं ब्रह्म तदियं लौकिकी सुरा ॥25॥
ब्रह्मज्ञानमयी देवी कुलाचारेण कृष्यते।
सौत्रामण्यां च देवास्तु तृप्यन्ते सुरयैव हि ॥26॥
सेयं शप्ता त्वया ब्रह्मन्! तस्याः शापं प्रमोचय।

आशीर्वादादि अमृतमयी मधुरवाणी से शुक्र को प्रसन्न करने के अनन्तर ब्रह्मा ने उनसे कहा कि हे पुत्र! यह जो लौकिकी सुरा है, वह देवताओं के लिये अमृतरूपा है। सुरा साक्षात् ब्रह्मज्ञानमयी है और इसका अभिषवण या निर्माण कुलाचार की गोपनीय विधि से किया जाता है। सौत्रामणि यज्ञ में इस सुरा द्वारा ही इन्द्रादि देवता तृप्त होते हैं। लेकिन, तुमने इस सुरा को अभिशप्त कर दिया है। अब, तुमसे अनुरोध है कि इस सुरा को अपने शाप से मुक्त कर दो।

सुराशापोद्धरणाय शुक्रस्याश्वस्तिः

ब्रह्माणं प्रणिपत्याह ततोऽसौ भृगुनन्दनः ॥27॥
मद्वाक्यं निष्फलं न स्यात् त्वद्वाक्यं च पितामह।

लोकपितामह ब्रह्मा की बात सुनकर शुक्र ने उनके चरणों में प्रणाम किया और कहा—हे पितामह! आप जानते हैं कि मेरे वचन आपके वचनों की भाँति ही कभी मिथ्या नहीं हो सकते। इसलिये अपने शाप को वापस लेना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

आवश्यकं करिष्यामि तदर्थं नियमः कृतः ॥28॥
सौत्रामण्यां कुलाचारे सुराशापविमुक्तये।
मन्त्रत्रयं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रभो ॥29॥

भार्गव शुक्र ने ब्रह्मा से कहा—फिर भी, मैं आपके आदेश का पालन करने के लिये ऐसा आवश्यक उपाय अवश्य करूँगा, जिससे सौत्रामणि यज्ञ और कुलाचारपूजा में सुरापान करने से पाप नहीं होगा। अच्छा, पितामह! सुरा की शापविमुक्ति हेतु मैं तीन मन्त्र बताता

हूँ, जिनसे न केवल मेरे द्वारा प्रदत्त शाप अपितु सुरापान पर विहित कचोद्भव हत्या और ब्रह्महत्या का पाप भी नहीं लगेगा । आप ध्यान से सुनिये ।

सुराशापविमुक्तये मन्त्रत्रयः

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥30॥

शुक्र ने कहा कि हे पितामह पहला मन्त्र है—

'एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्'॥

अर्थात् 'निश्चित ही स्थूल और सूक्ष्म समस्त संसार केवल परब्रह्मरूप है ।' परब्रह्म के इस ऐक्यज्ञान के प्रभाव से मैं कचोद्भव ब्रह्महत्या के पाप से तुझ सुरा को मुक्त करता हूँ' ।

सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ! ।
अमाबीजमये देवि ! शुक्रशापाद् विमुच्यताम् ॥31॥

भृगुपुत्र ने कहा—हे पितामह ! अब दूसरा मन्त्र सुनिये—

'सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे !
अमाबीजमये देवि ! शुक्रशापाद् विमुच्यताम्' ॥

अर्थात् सूर्यमण्डल से प्रस्त्रवित होकर सागर में जन्मग्रहण करने वाली गहनान्धकारमयि ! देवि ! सुरे ! तुम शुक्र के शाप से मुक्त हो जाओ ।

वेदानां प्रण्वो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥32॥

शुक्र ने तीसरा मन्त्र बताया कि—

'वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु'

अर्थात् 'वेदों का बीज ओंकार है और यह ब्रह्मानन्दमय है' यदि यह कथन सत्य है, तो हे सुरे ! इस सत्य के प्रभाव से तुम्हारी ब्रह्महत्या दूर हो जाये ।

इत्युक्त्वा ब्रह्मणो मन्त्रान् भार्गवः प्रणिपत्य तम् ।
जगाम भवनं देवि ! ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥33॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! उक्त शापों से अभिशप्त सुरा की शापविमुक्ति के इन तीन मन्त्रों का उद्घाटन और ब्रह्मा को नमन करके शुक्र अपने भवन और ब्रह्मा भी अपने भवन को चले गये ।

कुलाचारे सुरापानमहिमा

ब्रह्मज्ञानी कुलाचारे सुरां पीत्वा स्खलन्मुहुः ।
पतितस्य तु तस्याङ्गे गणन्ति यदि रेणवः ॥34॥
तावत्कालं रेणुसङ्ख्यं देवीलोके महीयते ।

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! ब्रह्मवेत्ता भी यदि कुलपूजा में इतना मद्यपान करे कि वह भूमि पर गिर जाये, तो उसके शरीर में जितनी संख्या में धूलिकण लगेंगे, वह उतने ही काल तक भगवती तारिणी के लोक में निवास करेगा ।

सुरापानेन पापनाशः

पीत्वालिङ्गेत्कुलाचारे मदिरां यौवनान्विताम् ॥35॥
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ।

कुलपूजा में किसी मदोन्मत्त युवती का आलिंगन कर यदि कोई साधक मद्यपान करता है, तो उसके करोड़ों जन्मों के संचित पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ।

सुरापानेन मुक्तिः

पीत्वा पीत्वा जपित्वा च मुक्तः कोटिकुलैः सह ॥36॥
ब्रह्मलोके वसेद् देवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।
तत्रैव व्याप्तिमाप्नोति न पुनर्जायते भुवि ॥37॥

श्रीशिव ने पार्वती को बताया कि कुलपूजन के समय यदि कोई साधक बार-बार मदिरापान करता हुआ भगवती के मन्त्र का जप करता रहे तो वह निश्चितरूप से अपने करोड़ों पूर्वजोंसहित सर्वदा ब्रह्मलोक में निवास करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।

सुरापानेन ईशत्वसिद्धिः

पीत्वा च पूजयेद् देवीमीशत्वं लभते ध्रुवम् ।
तत्रैव लयमाप्नोति पुनर्नैव निवर्तते ॥38॥

जो साधक मदिरापान करके देवी की अर्चना करता है, उसे ईशत्व नामक सिद्धि की प्राप्ति होती है । वह देवी के लोक में निवास करता है, उसका इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता ।

सुरासेवनेन योगसिद्धिः

पीत्वाऽग्निहोत्री भूत्वा च त्रैलोक्यैश्वर्यभाजनम् ।
जायते साधकः श्रेष्ठो महायोगी महासुखी ॥39॥

कुलाचार में मद्यपान करने वाला अग्निहोत्री आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त करके महान् साधक और श्रेष्ठ योगी होकर जीवन में सुखी रहता है ।

'सोऽहं हंसः स्वाहा' जपेन सह सुरापानेन
सर्वरोगमुक्तिर्मुक्तिश्च

पीत्वा योगी भोजयित्वा सोऽहं हंसस्ततः परम् ।
स्वाहेति जायते जीवो मुक्तो वीरो जगत्त्रये ॥40॥
चिरजीवी जरामुक्तो विमुक्तः सर्वपातकैः ।
अणिमादियुतोऽपि स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥41॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! कुलाचार में मदिरापान और मांसभोजन करने वाला योगी 'सोऽहं हंसः स्वाहा' मन्त्र का भावनापूर्वक जप करके रोगरहित, पापों से मुक्त और अणिमा-महिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर दीर्घकाल तक जीवित रहता है ।

इति ते कथितं गुह्यं सुराशापविमोचनम् ।
इत्येवं कथिता तुभ्यं यथा पूजा दिगम्बरि ! ॥42॥
पूजयित्वा सकृद् देवीमुच्यते सर्वपातकैः ।
एवं देवीमर्चयित्वा किमसाध्यं जगत्त्रये ॥43॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! मैंने तुम्हारे समक्ष सुरा की शाप-मुक्ति तथा तारिणी की पूजा की गोपनीय विधि का निरूपण कर दिया है । जिसने एक बार भी इस विधि से तारा की अर्चना सम्पन्न कर ली, उसके लिये त्रिलोकी में कुछ भी असाध्य नहीं है ।

दिगम्बरीपूजायाः फलानि

हरौ प्रकुपिते वाऽपि पूजयित्वा दिगम्बरीम् ।
सृष्टिस्थितिलयादीनां कर्त्ताऽसौ जगदीश्वरः ॥44॥

हे मुने ! भले ही भगवान् विष्णु रुष्ट हों, कुलाचार की विधि से दिगम्बरी तारिणी की अर्चना करने वाला कुलयोगी सृष्टि-स्थिति तथा लय करने की सामर्थ्य और ईशत्वशक्ति प्राप्त कर लेता है ।

रोगेभ्यः घोररूपेभ्यः पूजयित्वा विमुच्यते ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥45॥

दिगम्बरी शक्ति तारा की कुलाचार-विधि से अर्चना करने वाला साधक भयानक रागों से मुक्त हो जाता है, अपुत्र को पुत्र की प्राप्ति होती है तथा निर्धन धनवान् हो जाता है ।

तारिणीपूजने विधिः

आरभ्य शुक्लप्रतिपद्यावत्पञ्चदशी भवेत् ।
प्रत्यहं पूजयेद्यस्तु तिथिसङ्ख्यां दिगम्बरीम् ॥46॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत् तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ।

दिगम्बरी तारा की पूजा की विधि बताते हुए बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि 'जो साधक शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक 15 दिन भगवती तारिणी की अर्चना करता है, उसे निश्चितरूप से तारिणीमन्त्र सिद्ध हो जाता है ।

तारिणीसाधनाविधेर्गोपनीयता

वीरसाधनकर्माणि दुःखसाध्यानि केवलम् ॥47॥
सुखसंसाधनं ह्येतत् तवस्नेहात्प्रकाशितम् ।

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! तारिणी की वीरभाव की उपासना विघ्नों से पूर्ण अत्यन्त कष्टमयी है । लेकिन, तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण मैंने तुम्हें इस सरलतम उपासना-विधि का कथन किया है ।

गोपनीयं प्रयत्नेन पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ॥48॥
इत्येतत् कथितं तुभ्यं पूजाविधिमनुत्तमम् ।
साधनं सर्वथा चैनं गोपयेन्मातृजारवत् ॥49॥

इति महाचीनाचारसारतन्त्रे सर्वाचारसारोत्तमोत्तमे
महाचीनाचारक्रमे तृतीयः पटलः समाप्तः ।



हे वशिष्ठ ! यह कुलाचारी उपासना-पद्धति अत्यन्त गोपनीय है । तारणी की जिस पूजाविधि का उल्लेख मैंने तुम्हारे समक्ष किया है, वह सर्वोत्तम है । कुलाचारी कौल को चाहिये कि वह इस विधि का प्रकटन अपने पुत्रों के सामने भी न करे । दिगम्बरी तारा के पूजन में प्रयुक्त मद्यादि की चर्चा भी किसी के सामने नहीं करनी चाहिये, इसे मातृजार की भाँति सदा छिपाकर ही रखना चाहिये ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमहाचीनाचारक्रम की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का तृतीय पटल समाप्त ।



अथ चतुर्थः पटलः

वशिष्ठस्य कुलद्रव्यमद्यनिर्माणविधि-
जिज्ञासा

वशिष्ठ उवाच

कुलेशान ! प्रशस्तानां विहितानां च लक्षणम् ।
कुलद्रव्यस्य निर्माणं वद माहात्म्यमेव च ॥1॥
अविधानेन यत्पापं सविधानेन तत्फलम् ।
तत्सर्वं श्रोतुच्छिामि वद मे करुणानिधे ! ॥2॥

भगवान् बुद्ध की बातें सुनकर वशिष्ठ ने उनसे कहा—हे कुलशासक ! आपने बताया है कि कुलपूजा में विहित श्रेष्ठ साधनों में से एक महान् साधन कुलद्रव्य मद्य है । अब आप कुलद्रव्य के निर्माण की विधि और माहात्म्य का निरूपण कीजिये । अविधिपूर्वक कुलद्रव्य के निर्माण से जो कुफल और विधिवत् कुलद्रव्य के निर्माण से जो सुफल होता है, मैं वह भी जानना चाहता हूँ ।

कुलद्रव्यनिर्माणविधिकथनोपक्रमः

श्रीभगवानुवाच

मुने ! श्रृणु प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण त्रिदशैः समतां व्रजेत् ॥3॥

बुद्ध ने कहा—हे मुने ! तुमने अभी जो कुछ जानना चाहा है, उसे सुनने मात्र से व्यक्ति देवताओं के समान हो जाता है । उसके विषय में मैं सब कुछ बता रहा हूँ । तुम ध्यान से मेरी बातें सुनो ।

प्रथमं कुलपात्राधारनिरूपणम्

आधारेण विना पात्रं न हि तृप्यन्ति मातरः ।
तस्माद् विधिवदाधारं कल्पयेत्कुलनायकः ॥4॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! कुलद्रव्य के निर्माण के लिये सबसे पहले आधार (निर्माण-पात्र) की आवश्यकता होती है । बिना आधार के योगिनियाँ तृप्त नहीं होतीं । इसलिये कुलपूजक को चाहिये कि वह सबसे पहले विधिपूर्वक आधार की रचना करे ।

आधारं त्रिपदं प्राहुः षट्पदं वा चतुष्पदम् ।
अथवा वर्तुलाकारं कुर्यादतिमनोहरम् ॥5॥

कुलाचारज्ञ साधकों के अनुसार आधार त्रिपाद, चतुष्पाद, षट्पाद अथवा वर्तुलाकार और देखने में सुन्दर होने चाहिये ।

कुलपात्रनिरूपणम्

स्वर्णरौप्यशिलाकूर्मकपालालम्बुमृण्मयम् ।
पुण्यवृक्षसमुद्भूतं पात्रं कुर्याद्विचक्षणः ॥6॥
अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं छिन्नभिन्नं च वर्जयेत् ।

हे वशिष्ठ ! आसव के स्थापन के लिये पात्र का निर्माण स्वर्ण, रजत, प्रस्तर, कूर्मपीठ, कपाल, लौकी, मृत्तिका अथवा किसी पवित्र वृक्ष की लकड़ी से कराना चाहिये । यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि पात्र न तो बहुत छोटा हो और न बहुत बड़ा । पात्र टूटा-फूटा न हो, इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिये ।

कुलद्रव्यनिर्माणविधिः

अम्भसां द्वादशप्रस्थं द्विप्रस्थं पयसस्तथा ॥7॥
मुष्टिमात्रांकुरं देवि ! एकस्मिन् योजयेच्छुचिः ।

भगवान् शिव ने बुद्ध-वशिष्ठाख्यान को आगे बढ़ाते हुए कहा कि—हे पार्वति ! बुद्ध ने वशिष्ठ को बताया कि चीनाचार से तारा की अर्चना में प्रयुक्त होने वाले प्रथम द्रव्य 'मद्य' के निर्माण के लिये 12 भाग जल में 2 भाग दुग्ध मिलाकर उसमें मद्य निर्माण के लिये निर्धारित पदार्थ अंकुरित यवादि की मुट्ठीभर पिष्टी डाल तीनों को भलीभाँति मिलाना चाहिये ।

शीतादिरहिते स्थाने स्थापयेद् दिवसद्वयम् ॥8॥
ततो वह्नौ समारोप्य जम्बालसदृशं पचेत् ।
अवरोप्य पुनः शीतामवस्थमानयेद् बुधः ॥9॥

तदनन्तर इस घोल को दो दिन तक समशीतोष्ण स्थान में रखना चाहिये । तीसरे दिन इस घोल को अग्नि पर रख जम्बाल* के समान (कीचड़ की तरह गाढ़ा) पकाकर अग्नि से उतार उसे शीतल कर लेना चाहिये ।

पयः प्रस्थेन पिष्ट्वा तु हस्ताभ्यां मेलयेत्ततः ।
सम्यगर्धक्रमेणैव पयसालोड्य मेलयेत् ॥10॥

इस घोल के ठण्डा हो जाने पर इसमें पुनः 1 भाग दुग्ध डाल हाथों से अच्छी प्रकार

---

* निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽसी शादकर्दमौ । (अमरकोषे 1.10.9)

मिलाना चाहिये । फिर, इसमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर उसे उस दूध के साथ खूब घोटकर सामरस्य कर देना चाहिये ।

कुलाचारे पैष्टीपाने न दोषः

सैषा पैष्टीति विख्याता पूजिता देवतानरैः ।
गुरुं स्मरन् पिबन् मद्यं खादन् मांसं न दोषभाक् ॥11॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! इस विधि से निर्मित पेय को ही 'पैष्टी'* कहा जाता है । पिष्टी सुर-नर सबों में प्रिय और सम्मानित है । अपने गुरु का स्मरण करते हुए पिष्टी का पान और मांस का सेवन करने से कुल-साधक को कोई दोष नहीं लगता ।

सेवते चेत्सुखार्थाय मद्यादीन् स च नारकी ।
प्राशयेद् देवता प्रीत्यै स्वाभिमानविवर्जितः ॥12॥
श्वपचोऽपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते ।

हे मुने ! यदि कोई साधक मदिरादि का सेवन अपने आनन्द के लिये करता है, तो वह अवश्य नरक का भागी बनता है । इसलिये साधक को चाहिये कि वह अपने जात्यादि अभिमान का त्याग करके भगवती की प्रसन्नता के लिये ही सुरापान करे, न कि अपने सुख के लिये । इस प्रकार कुलाचार का ज्ञान रखने वाला चाण्डाल ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है ।

कुलाचाराऽनभिज्ञकौलानां निन्दा

यः कौलिकः कुलज्ञानं न पश्यति न विन्दति ॥13॥
धिक् तस्य जीवनं लोके धिक् तस्यापि च पौरुषम् ।

हे वशिष्ठ ! जिस कौल को कुलाचार की जानकारी नहीं है, और वह कुलज्ञानियों के आचरण को देखकर कुलज्ञान को जानना भी नहीं चाहता, और न ही उसे अपने जीवन में उतारना चाहता है, उसके जीवन और पौरुष को धिक्कार है ।

कुलचारज्ञानां प्रशंसा

ते विद्यापुण्यकर्माणस्ते शान्तास्तेऽपि योगिनः ॥14॥
येषां चित्ते भाग्यवशात् कुलज्ञानं प्रकाशते ।
ते वन्द्यास्ते महात्मानः सुकृतार्था नरोत्तमाः ॥15॥
येषामुत्पद्यते चित्ते कुलज्ञानं मयोदितम् ।

हे मुने ! वे ही धन्य हैं; वे ही पुण्यकर्मा हैं, वे ही शान्त हैं, वे ही तपस्वी और योगी

---

* सांख्यायनतन्त्र में पैष्टी के अलावा गौडी तथा माध्वी का भी उल्लेख है लेकिन, वहाँ इनकी निर्माण-विधि का उल्लेख नहीं है ।

हैं, वे ही वन्दनीय हैं, वे ही महात्मा हैं, वे ही कृतार्थ हैं और वे ही नरश्रेष्ठ हैं, सौभाग्य से जिनके हृदय में मेरे द्वारा कथित कुलज्ञान प्रकाशित हो जाता है।

स्मृत्युक्तपशुमार्गाणामुपदेशः भ्रमोत्पादनायैव

त्रासिता हि मया पूर्वं पशवः शास्त्रकोटिभिः ॥16॥
कुलधर्मं न जानन्ति ततो ज्ञानाभिमानिनः।
पशुशास्त्राणि सर्वाणि मयैव कथितानि वै ॥17॥
स्मृत्युक्तेन च मार्गेण मोहनाय दुरात्मनाम्।

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ! वास्तव में, मैंने ही कुलाचार से अनभिज्ञ और इसमें रुचि न रखने वाले शास्त्राभिमानी पशुमानवों को भ्रम में डालने के लिये पूर्वकाल में विधि-निषेधपरक स्मृति आदि सभी पशुशास्त्रों की रचना की थी।

महती पशुभावानां तेषां वाञ्छापि जायते ॥18॥
तेषां च सद्गतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि।

हे मुने! मेरे द्वारा प्रवर्तित स्मृतिमार्ग का अनुसरण करने वाले पशुभाव के दुरात्मा उपासक जितनी निष्ठा और दृढता से इन पशुशास्त्रों का अनुसरण करते हैं, उनमें उतनी ही पशुभावना और भोग-लालसा भी उत्पन्न होती जाती है। ऐसे लोगों की करोड़ों कल्पों तक सद्गति नहीं होती।

कुलाचारनिन्दकानां पामरत्वप्रतिपादनम्

बहुशः कौलिकं धर्मं श्रुत्वा ज्ञानविभेदकम् ॥19॥
निन्दन्ति पामराः सर्वे पारम्पर्यविमोहिताः।

कुलज्ञान से स्मृत्युक्त अनेक धर्मों का उच्छेद होता हुआ देखकर ही परम्परागत धर्मों के नीच अनुयायी कौलिकों के कुलधर्म की निन्दा करते हैं।

वशिष्ठेन पुनराशङ्कनम्

वशिष्ठ उवाच

मद्यपानेन मनुजः सिद्धिं सम्यग् लभेत् प्रभो! ॥20॥
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं यान्तु च पाशवाः।

भगवान् बुद्ध की बातें सुनकर वशिष्ठ ने उनसे कहा—हे प्रभो! यदि मद्यपान करने से मानव को सिद्धि-प्राप्ति होती है, तो मद्यपान करने वाले सभी पशुमानवों की मुक्ति तो निश्चित ही होगी? पर क्या ऐसा सम्भव है?

मांसभोजनमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत् ॥21॥
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्तु वै।

और, यदि मांसभोजन से व्यक्ति को सद्गति मिलती है, तो सभी मांसभोजी मुक्त हो जायेंगे क्या ?

स्त्रीसम्भोगेन लोकानां यदि मोक्षो भवेदिह ॥22॥
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवणात् ।

वशिष्ठ ने कहा—भगवन् ! यदि स्त्री के साथ सम्भोग करने से मुक्ति प्राप्त होती है, तो संसार के सभी प्राणी स्त्रियों से सम्भोग करते हैं, इस कारण उन्हें मुक्त हो जाना चाहिये न ?

बुद्धेन कुलधर्मनिरूपणम्

बुद्ध उवाच

अतः शृणुष्व त्वं पुत्र ! कुलधर्मं महानघम् ॥23॥
मोक्षं ददाति वै तारा एतद्धर्मप्रवर्तिनाम् ॥
वृथा पानं यत्क्रियते सुरापानं तदुच्यते ।24॥
स महापातकी चैव वेदादिषु निरूपितः ।

वशिष्ठ की बातें सुन बुद्ध ने कहा—हे पुत्र । सुनो ! कुलधर्म महान् है । इसका अनुसरण करने में कोई पाप नहीं । जहाँ तक सुरापान की बात है, बिना किसी महान् उद्देश्य से किया जाने वाला सुरापान महापाप है । लेकिन, कुलपूजा के अवसर पर किये जाने वाले सुरापान में कोई पाप नहीं ।

कुलधर्मविषये वशिष्ठस्य विशेषजिज्ञासा

वशिष्ठ उवाच

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि कुलधर्मं विशेषतः ॥25॥
एतस्य तु विशेषज्ञस्त्वदन्यो नास्ति कश्चन ।
तस्य धर्मस्य माहात्म्यं सर्वधर्मोत्तमस्य च ॥26॥
वद मे परमेशान ! यदि चाऽस्ति कृपा मयि ।

वशिष्ठ ने कहा—भगवन् ! मैं आपके ही श्रीमुख से कुलाचार सुनना चाहता हूँ । क्योंकि, मुझे पता है कि आपके समान कुलधर्म का ज्ञाता और कोई नहीं है । भगवन् ! यदि आपकी मुझ पर कृपा है, तो आप मेरे लिये इस सर्वोत्तम कुलधर्म के स्वरूप और माहात्म्य का निरूपण करें ।

बुद्धेन कुलधर्मप्रकथनोपक्रमः

श्रीभगवानुवाच

संशयस्ते मया सोऽयं कुलधर्मसमुद्भवः ॥27॥

कुलाचारक्रमेणैव न सिद्धिर्जायते क्वचित् ।
मुने ! शृणु प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण योगिनीनां प्रियो भवेत् ॥28॥

मुनि वशिष्ठ की बातें सुनकर भगवान् बुद्ध ने उनसे कहा—हे मुनिवर ! कुलधर्म के बारे में तुम्हारे मानस में जो यह संशय उत्पन्न हुआ है कि क्या कभी कहीं किसी को कुलाचारक्रम से सिद्धि मिल सकती है ? उसका मैं निराकरण करता हूँ । यदि कोई व्यक्ति कुलाचारविषयक मेरी बातें ध्यान से सुनकर हृदयंगम करेगा, वह योगिनियों का प्रियपात्र बन जायेगा ।

कुलधर्मस्य परमगोपनीयत्वकथनम्

शिवब्रह्मगुहादीनां न मया कथितं पुरा ।
कथयामि तव स्नेहात् शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥29॥

बुद्ध ने कहा—हे मुने ! तुम्हारे प्रति असीम प्रेम के कारण मैं तुम्हारे सामने जिन तथ्यों का उद्‌घाटन करने जा रहा हूँ, उनका प्रकटीकरण मैंने अब तक शिव, ब्रह्मा तथा स्कन्दादि के सामने भी नहीं किया है, तुम एकाग्र मन से सुनो ।

पारम्पर्यक्रियायाश्च अतिगुप्तं महाद्भुतम् ॥29॥
अकथ्यं परमेशान ! तथापि कथयामि ते ।

बुद्ध ने कहा—हे परमशास्ता वशिष्ठ ! परम्परागत साधना में विश्वास करने वाले साधकों के लिये कुलाचार साधना-पद्धति अत्यन्त गोपनीय और अकथ्य है । फिर भी, मैं तुम्हारे लिये इस आचार का कथन करता हूँ, ध्यान से सुनो !

कुलाचारस्य सर्वोत्तमत्वकथनम्

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवः परः ।
वैष्णवात्परमं शैवं शैवाद् दक्षिणमुत्तमम् ॥31॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात्सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं न हि ।
गुह्याद् गुह्यतरं देव ! सारात्सारं परात्परम् ॥32॥

हे वशिष्ठ ! समस्त वाङ्मय में वेद और वेदप्रतिपादित धर्म सर्वोत्तम हैं । लेकिन, वैदिक धर्म से भी महान् वैष्णव धर्म है । वैष्णवधर्म से श्रेष्ठ शैवधर्म और शैव से भी महान् दक्षिणाचार या समयाचार शाक्तधर्म है । इस दक्षिणाचार शाक्तधर्म से भी महान् वामाचार शाक्तधर्म है । इस वामाचार से महान् सिद्धाचार या सिद्धमत है । लेकिन, सिद्धाचार से भी महान् कौलधर्म है । कुलधर्म से बड़ा अन्य कोई धर्म नहीं है । यह गुह्य से भी गुह्य सार का भी सार और परात्पर है ।

मथित्वा ज्ञानमन्थेन वेदागममहार्णवम् ।
न कौलेन समो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥33॥

हे वशिष्ठ ! मैंने सम्यग्ज्ञानरूपी मन्थदण्ड से सागर की भाँति विस्तीर्ण वेदों तथा आगमादि समस्त ग्रन्थों का मन्थन कर यह सारतत्त्व प्राप्त किया है कि कुलाचार के समान अन्य कोई धर्म तीनों लोकों में भी नहीं है ।

एकतः सकला धर्मा यज्ञज्ञानतपादयः ।
एकतः कुतधर्मोऽयं सर्वयज्ञाधिकप्रियः ॥34॥

हे वशिष्ठ ! एक ओर यज्ञ, ज्ञान, तपादि विभिन्न क्रियाएँ और दूसरी तुला पर कुलाचारक्रम को रख तुलना की जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि कुलाचार समस्त यज्ञादिकों से अधिक प्रिय है ।

प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रं मुक्तबन्धनाः ।
तथैव समयाः सर्वे प्रविष्टाः कुलवर्त्मनि ॥35॥

जिस प्रकार कृत्रिम बन्धनों से मुक्त होने पर समस्त सरिताएँ सागर में ही मिलती हैं, उसी प्रकार कृत्रिम पारम्परिक विधि-निषेधों के बन्धनों से मुक्त होने पर सभी धर्म और उनकी क्रियाएँ कुलाचारक्रम में ही विश्रान्ति पाती हैं ।

यथा हस्तिपदे लीनं सर्वप्राणिपदं भवेत् ।
दर्शनानि च सर्वाणि कुलत्रयं तथा मुने ! ॥36॥

हे वशिष्ठ ! जिस प्रकार समस्त क्षुद्र प्राणियों के चरण-चिह्न हाथी के बृहदाकार चरण-चिह्न में समा जाते हैं, उसी प्रकार योगवेदान्तादि समस्त आस्तिक-नास्तिक दर्शन और दिव्याचार, वीराचार तथा पश्वाचार नामक तीनों आचार कुलाचार में समाहित हो जाते हैं ।

यथाऽमरतरङ्गिण्या न समाः सकलापगाः ।
तथैव समया सर्वे कुलधर्मेण केवलाः ॥37॥

हे मुने ! जिस प्रकार समस्त नदियाँ मिलकर भी एक देवनदी गंगा के बराबर नहीं हो सकतीं, उसी प्रकार समस्त सम्प्रदायाचार मिलकर भी एक कुलाचार के बराबर नहीं हो सकते ।

मेरुकार्यपयोमूर्ध्नि सूर्यो मुख्यतरो यथा ।
तथाऽस्य समयश्चास्य कुलस्य महदन्तरम् ॥38॥

हे मुने ! जिस प्रकार मेरुपर्वत के शीर्ष पर दमक रहे सभी ग्रह-नक्षत्रों में सूर्य ही मुख्यतर है, सूर्य और उनमें बुहुत अन्तर है, उसी प्रकार इस जगत् में जितने भी सम्प्रदाय और दर्शन हैं, उनमें कुलाचार ही प्रधान है । क्योंकि, कुलाचार और अन्य सामान्य आचारों में बहुत अन्तर है ।

अस्ति चेज्ज्ञानवान् कश्चिन्मत्समो भुवि मानवः ।
तथैव कुलधर्मेण समो नास्ति जगत्त्रये ॥39॥

भगवान् बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! यदि मेरे समान ज्ञानी इस धरती पर कोई अन्य मानव है, तब ही कुलाचार के समान कोई अन्य आचार भी हो सकता है । पर ऐसा है नहीं । मेरे समान कोई ज्ञानी और कुलाचार के समान कोई आचार इस संसार में है ही नहीं ।

जन्मभिर्बहुभिर्धन्यास्तपोभिर्मुनिसत्तम ! ।
मोक्षं लभन्तु ते सर्वे जीवन्मुक्तास्तु कौलिकाः ॥40॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! परम्परागत धर्मों का पालन करने वाले लोग कई जन्मों तक जप-तप करके भले ही मोक्ष प्राप्त कर लें, लेकिन, कुलाचार में रत कौल तो सदा जीवन्मुक्त ही है ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः ।
बहुना वा किमुक्तेन श्रृणुष्ववधानतः ॥41॥
न कौलेन समो धर्मः सत्यमेतद् वदामि ते ।

हे वशिष्ठ ! अधिक कहना व्यर्थ है । पर यह सत्य है, सत्य है, सत्य है और पुनः सत्य है, मैं सच कहता हूँ, ध्यान से सुनो ! कौल के समान अन्य कोई धर्म है ही नहीं ।

कौलस्य योगभोगत्वप्राप्तिः

योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्न तु योगवान् ॥42॥
योगभोगात्मकं कौलं तस्मात्सर्वाधिकं त्विदम् ।

इति महाचीनाचारसारतन्त्रे सर्वाचारसारोत्तमोत्तमे
महाचीनाचारक्रमे चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



बुद्ध ने कहा—वशिष्ठ ! यदि कोई योगी है, तो भोगी नहीं हो सकता और जो भोगी है, वह योगी हो ही नहीं सकता । लेकिन, कुलधर्म का पालन करने वाला साधक एक साथ ही योग और भोग दोनों ही प्राप्त कर सकता है ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमहाचीनाचारक्रम की रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री
हिन्दीविवृत्ति का चतुर्थ पटल समाप्त ।



अथ पञ्चमः पटलः

बुद्धेन कुलाचारस्य समयाष्टकप्रकथनम्

समयाष्टकं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
येन विज्ञानमात्रेण सिद्धो भवति साधकः ॥1॥
घातयेद् गोपयेत् तन्न निन्दयेन्न विलोकयेत् ।
पूजयेद् भावयेच्चैव वर्जयेच्च जुगुप्सयेत् ॥2॥

बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा कि वे कौलाचार साधना के उन आठ नियमों की जानकारी ध्यान से प्राप्त कर लें, जो साधक के लिये अनिवार्य हैं । 'पहला नियम-**घातयेत्**, दूसरा-**गोपयेत्**, तीसरा-**न निन्दयेत्**, चौथा-**न गोपयेत्**, पाँचवाँ-**पूजयेत्**, छठा-**भावयेत्**, सातवाँ-**वर्जयेत्** और आठवाँ-**जुप्सयेत्**, अर्थात् नष्ट करे, छिपाये, निन्दित न करे, छिपाकर न रखे, पूजा करे, भावना करे, रोके और घृणा करे ।

प्रथमः समयः कामादेर्घातनम्

कामं क्रोधं तु मात्सर्यं विकारं चिन्तनोद्भवम् ।
निद्रां लज्जां दौर्मनस्यं घातयेदष्टकं प्रिये ॥3॥

बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा—हे मुने ! मैंने समयाष्टकों में बारे में 'घातयेत्' शब्द से जिन वर्गाष्टकों की ओर संकेत किया है, वे काम, क्रोध, मात्सर्य, मानसिक विकार, निद्रा, लज्जा, भय तथा दौर्मनस्य है । तात्पर्य यह कि साधक को चाहिये कि वह परिगणित इन आठ अवगुणों को नष्ट करने का प्रयास निरन्तर करता रहे ।

द्वितीयः समयः मन्त्रादेः प्रगोपनम्

मन्त्रं मुद्राऽक्षसूत्रं च योगिनीवरसङ्गमम् ।
भैरवीगमनाचारमेतत्सर्वं प्रगोपयेत् ॥4॥

हे मुने ! मेरे द्वारा संकेतित समयाष्टक में 'गोपयेत्' पद का तात्पर्य मन्त्र, मुद्रा, अक्षमाला, सूत्र, योगिनियों के साथ मिलन, भैरवीसंगमन और कुलाचार से है । तात्पर्य यह है कि कुलसाधकों को चाहिये कि वह गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र, गुरूपदिष्ट मुद्राएँ, गुरुप्रदत्त सूत्रविशेष, योगियों के साथ मिलन, भैरवियों के साथ संगमन तथा कुलाचार के गुप्त रहस्यों को गोपनीय ही रखे, इनकी चर्चा न करे ।

तृतीयः समयः कुलादेरनिन्दनम्

कुलं गुरुं सुधां विद्यां साधिकानामादिकं तथा ।
शुभाशुभं च यत्कर्म निन्द्यं नैव कदाचन ॥5॥

मुनिवर ! कुलाचार में तीसरा नियम है—'न निन्दयेत्' इसका अर्थ यह है कि कुलसाधक को चाहिये कि वह कुल, कुलगुरु, सुधा अर्थात् कुलपूजन में प्रयुक्त होने वाला द्रव्य मदिरा, तारादि कुलदेवियों के मन्त्र, कुलपूजा में भाग लेने वाली साधिकाओं के नामादि तथा साधना में की जा रही कथित रूप से शुभ या अशुभ क्रियाओं की निन्दा न करे ।

चतुर्थः समयः कन्यायोन्यादेरनवलोकनम्

कन्यायोनिं पशुक्रीडां नग्नां स्त्रीं प्रकटस्तनीम् ।
द्यूतविग्रहपापार्थान् सर्वथा न विलोकयेत् ॥6॥

हे वशिष्ठ ! तारिणी की उपासना में चौथा नियम है—'न विलोकयेत्' अर्थात् न देखे । इसका भाव यह है कि तारासाधकों को चाहिये कि वे कन्या की योनि, पशुओं की कामक्रीड़ा, नग्नस्त्री, व्यक्तस्तनी कन्या, द्यूतक्रीडा, अन्यों के बीच हो रहे परस्पर कलह और दूसरों के द्वारा किये जा रहे गर्हित कार्यों का अवलोकन न करे ।

पञ्चमः समयः गुर्वादेः पूजनम्

गुरुं देवीं तथा साधून् शक्तिं चात्मानमव्ययम् ।
भक्तितः साधकान् सर्वान् पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥7॥

हे वशिष्ठ ! पाँचवाँ नियम यह है—'पूजयेत्' । इसका कथ्य यह है कि तारा-साधक को चाहिये कि वह गुरु, देवी, साधुओं, शक्ति, स्वयम्, अव्यक्त परमेश्वर तथा समस्त प्रकार के साधकों का विशेष सम्मान करे ।

षष्ठः समयः गुरुवाक्यादेर्भावनम्

गुरुवाक्योपदेशं च साधूक्तिमिष्टदेवताम् ।
स्वधर्मं च कुलाचारं सदात्मानं च भावयेत् ॥8॥

छठा नियम है—'भावयेत्' । इसका तात्पर्य है गुरु के कथनों, उनके द्वारा प्रदत्त उपदेशों, सन्तों और उनके वचनों, अपने इष्ट देवता, अपने धर्म, कुलाचार तथा परमात्मा का निरन्तर चिन्तन-भावन करता रहे ।

सप्तमः समयः अगम्यागमनादेर्वर्जनम्

अगम्यागमनं चैव धूर्तगोष्ठीं च वर्जयेत् ।
अनृतं पापगोष्ठीं च वर्जयेत्कुलनायकः ॥9॥

हे मुने ! सातवाँ नियम है—'वर्जयेत्' । इसका मन्तव्य है कि तारोपासकों को चाहिये कि वे देश-शास्त्रादि से अगम्य घोषित स्त्रियों से यौन-सम्बन्ध स्थापित न करें, धूर्तों के साथ सम्पर्क न रखें, झूठों और पापियों के साथ मिलना-जुलना न रखें ।

अष्टमः समयः विण्मूत्रादेर्जुगुप्सनम्

विण्मूत्रशोणितक्लेदहीनाङ्गीं पिबतीं सुराम् ।
कपालहरणं चैवाष्टावेव जुगुप्सयेत् ॥10॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! समयाष्टक का अन्तिम और आठवाँ नियम है—'जुगुप्सयेत्' अर्थात् घृणा करे । इसका तात्पर्य यह है कि कुलाचारी साधक को चाहिये कि वह विष्ठा, मूत्र, रक्त, क्लेद, अंगहीन नारी, मदिरा पी रही नारी और कपाल का आहरण कर रहे व्यक्ति से घृणा करे, इनसे दूर ही रहे ।

इत्येवं समयाचारं यः करोति हि साधकः ।
सम्प्राप्य देवीसम्भावं जीवन्मुक्तिं च गच्छति ॥11॥

बुद्ध ने कहा—हे वशिष्ठ ! उक्त बातें ही समयाचार के अन्तर्गत आती हैं । जो साधक इनका पालन करता है, वह देवीस्वरूप और जीवन्मुक्त हो जाता है ।

चीनाचारेण सर्वेच्छालाभः

श्रीशिव उवाच

एवं तारामतं प्रोक्तं सर्वसिद्धिरनुष्ठिता ।
अनेन चीनाचारेण साधकः स्वयमीरितः ॥12॥
अनेन चीनाचारेण तारामाराध्य साधकः ।
यद्वा न लभते वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये ॥13॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! सर्वसिद्धियों के अनुष्ठाता बुद्ध ने इस प्रकार वशिष्ठ के लिये तारामत का कथन किया । इस तारामत अर्थात् चीनाचार से प्रेरित साधक तारा की आराधना करते हुए केवल उस वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता, जो वस्तु तीनों लोकों में नहीं है, अर्थात् सब कुछ प्राप्त कर सकता है ।

मद्याद्यैः कथं सिद्धिरिति पार्वत्याः प्रश्नः

श्रीदेव्युवाच

देव ! देव ! महादेव ! जगत्प्रलयकारकः ।
कुलाचारेण मद्याद्यैः कथं सिद्धिर्भवेत्प्रभो ॥14॥

भगवान् श्रीशिव की बातें सुनकर देवी पार्वती ने उनसे कहा—हे देवों के देव महादेव ! हे प्रलयंकर शिव ! हे स्वामिन् ! कुलाचार में मद्यमत्स्यादि के सेवन से सिद्धि प्राप्त होने की जो बात कही गयी है, वह कैसे सम्भव है ?

यदेतन्मदिरापानं यत्परस्त्रीनिषेवणम् ।
अधर्मकारणं सर्वं छिन्धि नो संशयं विभो ! ॥15॥

हे शिव ! यह जो मदिरापान है, यह जो परदारा के साथ सम्भोग की बात है, पूर्णतया अनैतिक और पाप है न ? कृपया आप मेरे संशय को दूर कीजिये ।

शिवेन पार्वत्यै पुराकथाप्रकथनम्

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि ! कथयामि शृणुष्व मे ।
पुरा दारुमये रम्ये मुनयः साधनतत्पराः ॥16॥
मद्यपानं चिकीर्षन्ति परस्त्रीघर्षणं च वै ।
तान् दृष्ट्वा सूचिताधर्मान् ब्रह्मा मां पर्युपस्थितः ॥17॥

श्रीशिव ने कहा—हे महेश्वरि ! तुम्हारा प्रश्न उचित और स्वाभाविक है । एक बार ऐसा प्रश्न दारुवन में विचरण कर रहे ब्रह्मा के मन में भी तब उत्पन्न हुआ, जब उन्होंने वहाँ तपस्या कर रहे मुनियों को सुरापान और परस्त्रीगमन करते हुए देखा था । मुनियों द्वारा किये जा रहे इस कार्य को दुराचार मानकर ब्रह्मा ने मेरे पास आकर प्रश्न किया था—

ब्रह्मणः दारुवनस्थमुनीनां मुक्तिविषये प्रश्नः

ब्रह्मोवाच

देवदेव ! महादेव ! सृष्टिस्थितिलयात्मकः ।
एते दारुवने पापा मद्यपानरतास्तथा ॥18॥
परस्त्रियं घर्षयन्ति मद्यं खादन्ति नित्यशः ।
दिगम्बरा मुण्डिताश्च गतिरेषां कथं भवेत् ॥19॥

हे देवि ! दारुवन के मुनियों के उक्त आचरण से व्यथित ब्रह्मा मेरे पास आये और कहा—'हे देवदेव ! हे महादेव ! दारुवन में निवास कर रहे मुनि सुरापान और परस्त्रीगमन में निमग्न हैं । वे नग्न और मुण्डित रहते हैं । हे प्रभो ! मुनियों द्वारा अभिलषित सद्गति इन्हें कैसे मिलेगी ?'

ब्रह्मणे श्रीशिवेन चीनाचारप्रकथनम्

श्रीशिव उवाच

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा तमुवाच ह्यहं प्रिये ।
पितामह ! न जानासि चीनाचारक्रमं भवान् ॥20॥

श्री शिव ने कहा—हे प्रिये ! ब्रह्मा की उक्त बातें सुनकर मैंने उनसे कहा था कि—हे पितामह ! आप चीनाचार साधना के बारे में कुछ भी नहीं जानते इसलिये ऐसी बातें कह रहे हैं ।

श्रीशिवेन दारुवनस्थमुनीनां प्रशंसा

उग्रतारां महाविद्यामेते नित्यं जपन्ति हि ।
पूजयन्ति च तामेव चीनाचारपरायणाः ॥21॥
साधकाः सर्व एवैते महात्मानो महाशयाः ।
जीवन्मुक्तिगताः सर्वे देवीभक्तिपरायणाः ॥22॥

हे देवि ! मैंने ब्रह्मा को बताया कि दारुवन के वे मुनिगण चीनाचारक्रम से महाविद्या उग्रतारा देवी के मन्त्र का जप करते हुए उनकी अर्चना-आराधना कर रहे हैं । वे सभी महान् साधक हैं, महात्मा हैं और उनके उद्‌देश्य भी महान् हैं । भगवती उग्रतारा में अचल भक्तिभाव वाले ये सभी मुनि जीवन्मुक्तावस्था में स्थित हैं ।

परस्त्रीघर्षणाच्चैव मद्यपानाच्च नित्यशः ।
अश्वमेधादप्यधिकं लभन्ते फलमुत्तमम् ॥23॥

हे देवि ! मैंने ब्रह्मा को बताया कि प्रतिदिन परस्त्रीगमन और मद्यपान करके ये मुनिगण अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक उत्तम फल प्राप्त कर रहे हैं ।

श्रीशिवेन प्रजापतेर्भर्त्सनम्

एतांस्तु निन्दयेद्यस्तु महापातकवान् भवेत् ।
इतो दूरं प्रयाहि त्वं मा मां स्पृश पितामह ! ॥24॥

मैंने कहा था कि 'हे ब्रह्मन् ! इन मुनियों की निन्दा करने वाला पापों का भागी बनता है । कृपया ! आप मुझे छुएँ नहीं और तुरन्त यहाँ से दूर चल जाँय' ।

श्रीशिववचने ब्रह्मणः संशयः

परं विस्मयमापन्नः संशयाविष्टमानसः ।
किमिदं शम्भुना प्रोक्तं वेदविद्याविधानकृत् ॥25॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! मेरी बातें सुनकर ब्रह्मा अवसन्न रह गये और सोचने लगे थे कि 'वेदविद्या और वैदिक आचार के स्थापक भगवान् महेश्वर यह क्या कह रहे हैं'?

श्रीशिवेन पुनर्दारुवनमुनीनां प्रशंसनम्

इति सञ्चिन्तयन्मौनं प्राह पङ्कजसम्भवम् ।
उवाच साधकास्ते वै जीवन्मुक्ता महाशयाः ॥26॥

श्रीशिव की बातों से विमूढ पितामह चुपचाप ऐसा सोच ही रहे थे कि कृपालु शिव ने उनसे कहा—हे पद्मभव ! वे सब मुनि उच्च विचारों वाले, महान् साधक और जीवन्मुक्त हैं ।

परस्त्रियं घर्षयन्ति मद्यं खादन्ति नित्यशः ।
निर्वाणं ते च यास्यन्ति भगवत्याः प्रसादतः ॥27॥

चीनाचारं समाश्रित्य मुनयस्ते महाशयाः ।
तत्त्वज्ञानमयाः सर्वे विहरन्ति महीतले ॥28॥

हे देवि ! मैंने ब्रह्मा को बताया कि नित्य परस्त्रियों के साथ सम्भोग और मद्यपान करके भी वे महाशय मुनिगण चीनाचार के अनुसार भगवती तारा की उपासना करके उनकी कृपा से निर्वाण प्राप्त करेंगे । वे सभी मुनिगण जीवन्मुक्त होकर ही धरा पर विचरण कर रहे हैं ।

त्वं शीघ्रं गच्छ तत्रैव तान् प्रसादय पद्मज ! ।
तेषु रुष्टेषु भवतो ब्रह्मत्वमपयास्यति ॥29॥

हे देवि ! मैंने ब्रह्मा से कहा कि वे तुरत दारुवन में जायें और उन तपस्वी मुनियों को प्रसन्न करें, अन्यथा उनका ब्रह्मत्व नष्ट हो जायेगा ।

पार्वत्याः समर्थनम्

पार्वत्युवाच

महादेवेन यत्प्रोक्तं सत्यमेतन्न संशयः ।
आवयोः स न संस्पृश्येत् साधकान् यो विनिन्दति ॥30 ॥

भगवान् शिव की बातें सुनकर पार्वती ने कहा—महादेव ने (शिव ने) जो कुछ कहा और ब्रह्मा के साथ किया, वह उचित ही है । जो व्यक्ति साधकों की निन्दा करता है, वह हम दोनों का स्पर्श कैसे कर सकता है ?

श्रीशिव उवाच

ततो हि मां प्रणम्यासौ परमेष्ठी पितामहः ।
गत्वा दारुवनं सर्वान् प्रणनाम मुनीश्वरान् ॥31॥
तुष्टाव परया भक्त्या स्तोत्रैर्बहुविधैरपि ।
तेषां प्रसादमासाद्य कृतकृत्योऽभवद् विधिः ॥32॥

श्रीशिव ने पार्वती से कहा—'इसके बाद ब्रह्मा ने मुझे प्रणाम किया और वापस दारुवन में जाकर उन सभी मुनीश्वरों को नमन कर उन्हें अपनी नम्रता, भक्ति और विभिन्न स्तुतियों से सन्तुष्ट कर उनकी कृपा प्राप्त कर कृतकृत्य हो गये' ।

लब्धकुलज्ञानवशिष्ठेन किं कृतमिति श्रीपार्वत्याः जिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

महाचीनक्रमाचारं ततो बुद्धादवाप्य च ।
वशिष्ठः स किमकरोत् तन्मे ब्रूहि महेश्वर ! ॥33॥

श्रीशिव की बातें सुनकर भगवती पार्वती ने उनसे पूछा—हे महेश्वर ! आप मुझे यह बताइये कि बुद्धरूपधारी भगवान् विष्णु से महाचीनक्रमाचार का ज्ञान प्राप्त करने के बाद वशिष्ठ मुनि ने क्या किया ?

वशिष्ठस्याक्षमालया सह ताराराधनम्

श्रीशिव उवाच

महाचीनक्रमाचारं ततो देवादवाप्य सः ।
नीलाचलं समासाद्य कुलाचारपरायणः ॥34॥
ततोऽक्षमालां युवतीं चाण्डालीं रमयन्मुनिः ।
जपन् स साधयामास तारां मुक्तिप्रदायिकाम् ॥35॥
तारामाराधयामास कृतकृत्योऽभवत् तदा ।

पार्वती के प्रश्न पर श्रीशिव ने कहा—बुद्ध से चीनाचारक्रम की उपासना का ज्ञान प्राप्त करने के बाद वशिष्ठ अपने निवासस्थान नीलाचल लौट गये । नीलाचल पर चीनाचारक्रम से तारा की उपासना सम्पन्न करने के लिये उन्होंने अक्षमाला नामक चाण्डाल जाति की एक युवती का वरण किया और उसके साथ यथोक्त तारा-साधना करके कृतकृत्य हो गये ।

वशिष्ठाय तारिण्याः वरप्रदानम्

साक्षाद्भूता महादेवी तारा संसारतारिणी ॥36॥
तारोवाच वशिष्ठ त्वं वरान् वृणु यथेप्सितान् ।

हे देवि ! वशिष्ठ की साधना से प्रसन्न भगवती तारिणी उनके समक्ष प्रकट हुईं और उनसे इच्छानुसार वर माँगने को कहा ।

वशिष्ठ उवाच

तारादेवि ! जगन्मातर्ज्ञानविज्ञानदायिनि ! ॥37॥
वरमेकं वृणोमि त्वं प्रसन्ना यदि मे शिवे ।
महाचीनक्रमाचारैर्यस्त्वां सम्पूजयिष्यति ॥38॥
सर्वदा तस्य मातस्त्वं सुप्रसन्ना भविष्यसि ।

श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति ! भगवती तारा को सामने देखकर वशिष्ठ ने उन्हें प्रणाम किया और बोले—हे शिवानि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो एक वर दीजिये कि जो भी साधक चीनाचारक्रम से आपकी उपासना करेगा, उससे आप सर्वदा प्रसन्न रहेंगी ।

श्रीदेव्युवाच

चीनाचारेण यः कश्चित् तारां मां पूजयिष्यति ॥39॥
स मे पुत्रत्वमापन्नः सत्यं सत्यं न संशयः ।

मुनि वशिष्ठ द्वारा उक्त वर माँगने से प्रसन्न तारिणी ने उनसे कहा—हे वशिष्ठ ! जो भी साधक चीनाचारक्रम से मेरी पूजा करेगा, वह मेरे लिये पुत्र के समान होगा, इसमें सन्देह नहीं ।

इह भोगान् वरान् भुक्त्वा बृहस्पतिरिवापरः ॥40॥
अन्ते यास्यति मत्पार्श्वं यत्र मे गणनायकः ।

तारिणी ने कहा—चीनाचारक्रम से मेरी अर्चना करने वाला साधक इस संसार में जब तक जीवित रहेगा, श्रेष्ठ भोगों को भोगेगा और मृत्यु के पश्चात् मेरे गणनायक के साथ ही मेरे पास रहेगा ।

रूपयौवनसम्पन्नैर्दिव्यकन्यागणैः सह ॥41॥
विहरत्यप्यसौ धीरो यावच्चन्द्रार्कतारकाः ।
तत्रापि भविता वत्स योगसिद्धिरनुत्तमा ॥42॥
अणिमाद्याः सिद्धयस्त्वां सेविष्यन्ति निरन्तरम् ।

हे पार्वति ! भगवती तारा ने वशिष्ठ से कहा—हे मुनिवर ! चीनाचारक्रम से मेरी पूजा करने वाला साधक जब तब चन्द्र और सूर्य विद्यमान हैं, मेरे साथ निवास करता हुआ रूप और यौवन से सम्पन्न दिव्यांगनाओं के साथ विहार करता हुआ सर्वोत्तम योगसिद्धियों को भी प्राप्त करेगा । तारिणी ने और भी कहा—चीनाचारक्रम से मेरी अर्चना करने वाला साधक इस संसार में जब तक जीवित रहेगा, श्रेष्ठ भोगों को भोगेगा और मृत्यु के पश्चात् मेरे गणनायक के साथ मेरे पास ही निवास करेगा । चीनाचार के प्रति वशिष्ठ की निष्ठा देखकर भगवती तारा ने आगे कहा—हे वशिष्ठ ! तुमने साधकों के कल्याण के लिये वर माँगा है, अपने स्वार्थ के लिये नहीं । इससे प्रसन्न मैं तुम्हें यह वर देती हूँ कि अणिमादि समस्त सिद्धियाँ सर्वदा तुम्हारी सेवा करती रहें ।

इति लब्ध्वा वरं तस्या वशिष्ठोऽसौ महामुनिः ॥43॥
नक्षत्रलोकमासाद्य चाऽद्यापि द्योतते दिवि ।

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! भगवती तारा से उक्त वरों को प्राप्त करने वाले मुनि वशिष्ठ आज भी 'वशिष्ठतारक' के रूप में नक्षत्रलोक में चमक रहे हैं ।

एष ते कथितो देवि ! चीनाचारः सुदुर्लभः ॥44॥
समाचारात्साधकेन्द्रो भुक्तिं मुक्तिं लभेद् भुवि ।

हे देवि ! तुमने दुष्प्राप्य और गोपनीय चीनाचारक्रम के विषय में जो कुछ जानना चाहा था, मैंने तुम्हें बता दिया । इसके अनुसार भगवती तारिणी की उपासना करने वाला साधक इसी लोक में भुक्ति और मुक्ति दोनों एक साथ ही प्राप्त कर सकता है ।

चीनाचारगुप्तये शिवस्याऽनुरोधः

एतत्सर्वं प्रयत्नेन गोपितव्यं तथा प्रिये ॥45॥

यथाऽन्योऽन्येन लभते तथा कार्यं महेश्वरि ।।
स्वयोनिमिव देवेशि ! गोपयेत्पशुसन्निधौ ।।46।।

हे महादेवि ! मैंने जो कुछ तुम्हें बताया है, उसे गोपनीय ही बनाये रखना । लेकिन, ऐसा करना कि जिससे यह विद्या परम्परया एक से दूसरे को मिलती रहे, विलुप्त न हो जाय । तुम विशेषरूप से यह ध्यान रखना कि घृणा-लज्जादि पाशों में आबद्ध किसी पशुमानव के सामने कभी भी यह साधन-विधि प्रकट न हो ।

अधिकारिणे कुलाचारस्य कथनीयता

यो भक्तः साधको ज्ञानी तस्मै वक्तव्यमेव हि ।
देया विद्यार्थिने विद्या व्याधितेभ्यश्च औषधम् ।
देयं क्षुधार्थिने चाऽन्नं त्रयं स्वर्गस्य लक्षणम् ।।47।।

कुलाचारपरायण ज्ञानी के समक्ष कुलाचार के रहस्यों को प्रकट करने का अनुरोध करते हुए शंकर ने पार्वती से कहा—हे देवि ! जो साधक भगवती का अनन्य भक्त होने के साथ-साथ ज्ञानी भी हो, तथा तारणी की साधना के महत्त्व को समझता हो, उसे तो इस साधनाविधि की जानकारी देनी ही चाहिये । क्योंकि, कोई भी विद्या विद्याप्राप्ति की कामना रखने वाले व्यक्ति को देनी चाहिये । औषधियाँ उन्हें देनी चाहिये, जो रोगों से पीडित हों । इसी प्रकार जो भूखें हों, उन्हें अन्न देना चाहिये । ये तीन आचरण ही स्वर्गप्राप्ति के सोपान हैं ।

***विषं पीत्वा सुरां भुक्त्वा मांसं गत्वा रजस्वलाम् ।**
यो जपेच्चण्डिकां देवीं तस्य दुःखं पदे पदे ।।48।।

इति महाचीनाचारसारतन्त्रे सर्वाचारसारोत्तमोत्तमे
महाचीनाचारक्रमे पञ्चमः पटलः समाप्तः ।
।। महाचीनाचारक्रम समाप्तः ।।



विषरूपी सुरा का पान करके, मांसभक्षण करके और रजस्वला नारी के साथ रमण करके जो व्यक्ति भगवती चण्डिका के मन्त्र का जप करता है, उसे पग-पग पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है ।

श्रीशिवपार्वतीसंवादरूपमहाचीनाचारक्रम की रामचन्द्रपुरीकृत
मीराश्री हिन्दीविवृत्ति का पंचम पटल समाप्त ।

समाप्तमिदं तन्त्रम् ।



* अयं श्लोकः चीनाचारक्रमविरोधिनः प्रतिभाति, यतो नाऽत्राऽस्य सङ्गतिः ।

(6)

'मीराश्री'-हिन्दीविवृतियुतं

सर्वविजयितन्त्रम्

•

विवृतिकारः सम्पादकश्च

डॉ. रामचन्द्रपुरी

[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥4.7॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सर्वविजयितन्त्र* का सार

सर्वविजयितन्त्र के **प्रथम पटल** में भगवती पार्वती ने नाना रोगों से पीड़ित प्राणियों के हितार्थ भगवान् शिव से उन औषधियों और उनकी प्रयोग की विधियों के निरूपण का अनुरोध किया है, जिनके प्रयोग से भौतिकादि रोगों का नाश हो सके तथा शरीर को धर्मादि सभी कामनाओं की पूर्ति के लिये सक्षम बनाया जा सके। पार्वती के प्रश्न पर शंकर ने उन्हें बताया कि औषधियों का खनन तथा उत्पाटन आदि औषधियों से सम्बन्धित मन्त्रों के उच्चारण के साथ विशेष-विशेष तिथियों, नक्षत्रों, दिवसों और ॠतुओं में ही करना चाहिये। क्योंकि, तिथि-नक्षत्रादि कालविशेष में औषधियों के खननोत्पाटनादि से वे अधिक प्रभावी हो जाती हैं।

शिव ने पार्वती को बताया कि औषधियों की छाल और ज़ड़ शरद् और हेमन्त ॠतु में विशेष शक्तियुक्त हो जाते हैं, अत: इनका ग्रहण इन्हीं दोनों ॠतुओं में करना चाहिये। शिशिर ॠतु में औषधियों के फल तथा सारसहित मूल का, वसन्त में पुष्पों और पत्रों एवं ग्रीष्म ॠतु में फलों और बीजों का ग्रहण अच्छा माना जाता है। औषधियों का सर्वांग अर्थात् मूल, फल, फलों के बीज और बीजों के बीज सब कुछ प्रभावकारी होता है।

जल तथा स्थल में उत्पन्न होने वाले वृक्ष तथा लताएँ, गाँवों तथा जंगलों में उत्पन्न होने वाली झाड़ियाँ तथा लताएँ औषधि कही जाती हैं। औषधियों के जातिद्रव्य तथा गुणद्रव्य रोगों के विनाश के कारण होते हैं। औषधियों के फल, पुष्प तथा लताएँ ही अपने-अपने समय में बलवान् होती हैं। विशेष यह है कि रात्रि के समय ग्रहण की गयी जलोत्पन्न औषधियाँ तथा दिन में गृहीत स्थलोत्पन्न औषधियाँ अधिक बलवान् होती हैं।

द्वितीय पटल में रोगाक्रान्त होने की तिथि, नक्षत्र और वारों के आधार पर रोगी के रोगमुक्त होने और न होने अथवा उसकी मृत्यु होने की अवधि का निरूपण है। जैसे, कृत्तिका नक्षत्र में रोगाक्रान्त होने वाले व्यक्ति को नौ रात्रों तथा रोहिणी नक्षत्र में रोगाक्रान्त होने वाले रोगी को तीन रातों के बाद ही रोग से मुक्ति मिलती है। मृगशिरा का रोगी पाँच रातों, आर्द्रा का दो रात्रों, पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र का सात रातों, अश्लेषा नक्षत्र का नौ रातों, मघा का

---

* आदर्श प्रति में 'सर्वविजयितन्त्र' में 163 श्लोक संकलित हैं। इनके संग्रह का क्रम एवं विषयादि अव्यवस्थित हैं। हमनें शिवोक्त तन्त्रों की पटलात्मक और विषयानुक्रम शैली के अनुरूप इस तन्त्र को व्यवस्थित करने का प्रयास करके इसे विषयानुरूप पटलों में विभाजित किया है। इस कार्य में कमी हो सकती है, किन्तु हमारा विश्वास है कि इससे पाठकों को विषय को समझने में अधिक सहायता मिलेगी। —सम्पादक

रोगी मृत्यु के बाद ही रोगमुक्त होता है । पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में रोगाक्रान्त व्यक्ति दो मास में, उत्तराफाल्गुनी का पाँच मास के बाद, हस्त का सात मास के बाद, चित्रा का 15 रात्रों के बाद, स्वाती का दो महीने बाद, विशाखा का बीस दिनों बाद, अनुराधा का दस दिनों के बाद, पूर्वाषाढा का डेढ़ मास के बाद, ज्येष्ठा का आधे महीने बाद रोग से मुक्त होता है । मूल में रुग्ण हुआ व्यक्ति बचता ही नहीं ।

इसी प्रकार उत्तराषाढा में रोगी बना व्यक्ति उन्नीस दिनों बाद, श्रवणा का दो महीने बाद, धनिष्ठा का 15 दिनों बाद तथा वरुण नक्षत्र का दस दिनों के बाद, पूर्वभाद्रपदा का उन्नीस दिनों बाद, अहर्बुध्न्य नक्षत्र का डेढ़ मास बाद, रेवती का दस रातों के बाद, अश्विनी का 1 दिन तथा 1 रात के बाद ही रोग से मुक्त होता है । लेकिन, यदि रोग भरणी नक्षत्र में आरम्भ हो तो रोगी की आयु समाप्त समझनी चाहिये ।

इसी प्रकार यदि कोई रोगी उरग, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, मूला, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तराभाद्रपदा, भरणी, शनिवार, क्रूर एवं विरुद्धतारा, चतुर्थी, अष्टमी तथा भूतषष्ठी तिथियों में रोगाक्रान्त हुआ है, तो समझना चाहिये कि रोगी की मृत्यु पास आ गयी है ।

सोमवार की पंचमी को, गुरुवार की द्वितीया को तथा शुक्रवार की चतुर्थी को किसी पर रोग का आक्रमण हो, तो यह स्थिति रोगी की मृत्यु का संकेत करती है ।

यदि दिन के दोष के साथ तिथि भी दोषयुक्त हो, तो रोगी सात दिनों तक ही जीवित रह सकता है । तिथि के साथ नक्षत्र दोष होने पर रोगी 1 मास तक जीवित रहता है । लेकिन, यदि तिथि, वार और नक्षत्र तीनों ही दोषयुक्त हों, तो रोगी जीवित नहीं बचता ।

तृतीय पटल में कहा गया है कि वर्ष के बारह महीनों में वसन्तादि छह ऋतुओं में से प्रत्येक की अवधि दो-दो मास की होती है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात्रि में भी इन्हीं ऋतुओं की व्याप्ति होती है । जैसे, प्रत्येक दिन का पूर्वाह्न वसन्त, मध्याह्न ग्रीष्म, अपराह्न वर्षा तथा प्रदोष काल शिशिर ऋतु मानी जाती है । इसी प्रकार अर्धरात्रि का समय शरत्काल तथा शेष रात्रि में शिशिर ऋतु की व्याप्ति होती है । इस पटल में यह भी बताया गया है कि वशीकरणादि षट्कर्मों में से वसन्त काल में वशीकरण, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षाकाल में उच्चाटन, शरद् ऋतु में शान्तिकर्म, हेमन्त में पौष्टिक तथा शिशिर ऋतु में मारण प्रयोग करना चाहिये । शान्ति, पौष्टिक, वश्य तथा अभिचार कर्म का आरम्भ प्रात:काल दिन चढ़ जाने पर ही यथाक्रम में तर्जनी अँगुली से करना चाहिये ।

चतुर्थ पटल में विभिन्न प्रकार के ज्वरों से मुक्त होने के लिये विभिन्न औषधियों के प्रयोग किये जाने का विवरण है । इसमें बताया गया है कि भृंगराज की जड़ को तीन-तीन घण्टे बाद अदरक के साथ चबाकर-चबाकर खाते रहने से भयंकर ज्वर, सोंठ, गुडूची, धनिया, लालचन्दन तथा खस इन पाँच औषधियों को उबाल कर चतुर्थांश शेष रह जाने

पर पीने तथा प्रात:काल माँड के साथ उसकी आधी मात्रा में गोमूत्रकल्क मिलाकर पीने से अथवा देवरारु की छाल, धनिया, पान तथा दोनों प्रकार की बृहती का चूर्ण बनाकर पाचकचूर्ण की तरह रोगी को खिलाने से सन्निपात ज्वर का नाश होता है । अश्विनी नक्षत्र में हरशृंगारकी छाल को पीस गोली बनाकर उसे बकरी के रोएँ से बने धागे से रोगी के गले में बाँधने से सन्निपात ज्वर समाप्त हो जाता है ।

इसी प्रकार रविवार को स्वर्णादि सप्तधातुओं से निर्मित तन्तु में अपामार्ग की जटाओं को कटि में बाँधने से तिजारी, गुग्गुलु तथा उल्लू के पंख का धूप देने से चातुर्थिक ज्वर से रोगी मुक्त हो जाता है। जामुन के फल का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण तथा सर्प की एक केचुली के चूर्ण से धूपित करने से रात्रि ज्वर समाप्त हो जाता है ।

इस पटल में ज्वर समाप्त करने के लिये मन्त्रप्रयोग का भी निरूपण है । यहाँ बताया गया है कि—

'ओं नमो भगवते छिन्दि छिन्दि अमुकस्य ज्वरस्य
शिर: प्रज्वलितपरशुपाचने पुरुषाय फट्'

मन्त्र का उच्चारण करते हुए भूमि पर रेखाएँ खींचने से ज्वर का छेदन होता है ।

निर्गुण्डी की जड़ हाथ में बाँधने से प्रत्येक प्रकार का ज्वर तथा पलाश अथवा अपामार्ग की जड़ हाथ में बाँधने से भूतप्रेतादिकों से उत्पन्न ज्वर समाप्त हो जाते हैं । इसमें कहा गया है कि अदरक, वासक तथा मधु बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर खाने से जब-तब एक दिन के लिये आने वाला ऐकाहिक ज्वर समाप्त होता है ।

इस पटल में औषधि के निमन्त्रण के पश्चात् उसके ग्रहण की प्राचीन परिपाटी का भी उल्लेख है । जैसे, शनिवार को कलिहारी की झाड़ी के पास जाकर 'देवि ! कल प्रात: तुम्हे लेने आऊँगा' कह कर निमन्त्रित करके रविवार को प्रात:काल वहाँ से सूखी मिट्टी लाकर उससे रोगी को तिलक करने से भयंकर ऐकाहिक ज्वर भी दूर हो जता है । यहाँ कहा गया है कि सरस्वती नदी के किनारे जब कोई पुत्रहीन तपस्विनी का शरीरान्त हुआ हो, तो उसे तिलांजलि देने से भी ऐकाहिक ज्वर समाप्त हो जाता है । इस पटल में मन्त्र के साथ यन्त्र चिकित्सा का भी उल्लेख है, जैसे कहा गया है कि पीपल के पत्ते पर

'बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभ: ।
जातोऽसौ सुमहद्वीर्य: मुञ्चत्यैकाहिको ज्वर:'

मन्त्र लिखकर ज्वराक्रान्त व्यक्ति के दाहिने हाथ पर बाँधने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार पीपल के पत्ते पर 'समुद्रस्योत्तरे तीरे कुमुदो नाम वानर:' लिखकर घर के भीतर टाँग देने से इसे देखने वाले ऐकाहिक ज्वररोगी का ज्वर समाप्त हो जाता है ।

रविवार को अपामार्ग की जड़ उखाड़ कर उसे सप्तधातुओं से निर्मित सूत्र से रोगी के हाथ में बाँधने से प्रतिदिन चढ़ने वाला ज्वर समाप्त हो जाता है । सहदेवा अर्थात् कंकतिका

या बरियारीमिश्रित घृत कान में डालने से, अथवा बृहती अर्थात् भटकटैया की जड़ गले में बाँधने तथा बला की जड़ शिर पर बाँधने से विभिन्न प्रकार के ज्वर समाप्त हो जाते हैं।

पंचम पटल में विविधरोगनाशक प्रयोग बताये गये हैं। जैसे, आँवले के रस में शहद तथा अडूसे की क्षार मिलाकर पीने से बहुमूत्र, त्रिफला, पिप्पली, सोंठ और काली मिर्च का चूर्ण सम मात्रा में शहद के साथ चाटने से अथवा अडूसा की जड़ तथा पत्ते घी के साथ पकाकर पीने से स्वास-कास, पिप्पली, देवदारु की छाल तथा सोंठ के चूर्ण को गर्म जल के साथ पीने से उच्छ्वास रोग समाप्त हो जाता है।

तालमूली अर्थात् मुसली और शहद दोनों बराबर मात्रा में मिलाकर अथवा नारियल का जल पीने से रक्त अतिसार, सहदेवा अर्थात् बरियारी की जड़ के सात टुकड़े करके लाल धागे से कटि में बाँधने से सभी प्रकार के अतिसार रोग नष्ट हो जाते हैं। नागचम्पा की जड़ शहद के साथ तथा वासक की जड़ भोजन के साथ लेने से अथवा अशोक की जड़ को बकरी के दूध के साथ पीने से, या जीवन्ती की जड़ शहद के साथ खाने से अथवा गुरहुड़ जड़ शहद, घृत तथा पिप्पलीमूल दूध के साथ पीने से क्षयरोग समाप्त हो जाता है। दूब, अनारपुष्प, आमड़ा तथा हरीतकी का सम भाग में चूर्णकर इससे नसवार लेने से नाक से रक्तस्राव समाप्त हो जाता है। भांगरे की जड़ अदरक के साथ मुख में रखने से तथा बकुल की छाल चबाने से दन्तरोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार भटकटैया की जड़ तथा कुटकी की जड़ मुख में रखने से समस्त प्रकार के दन्तरोग नष्ट हो जाते हैं।

मूल नक्षत्र में ग्रहण की गयी चिरईगोडा और सहजन की जड़ चबाने से दाँत के रोग, शहद के साथ गुडूची का रस पीने से प्रमेह रोग, जीरा, अदरक, दही तथा माँड नमक के साथ पीने से मूत्रकच्छ्र रोग, काला तिल अथवा गुडूची की जड़ दूध में पीस कर माथे पर लेप करने से सिरपीडा, स्वर्णजूही की जड़ तथा पत्ते कांजी में घिस कर लगाने से दाद, विष्णुक्रान्ता की जड़ पीस कर लगाने से कुष्ठरोग, नीम की जड़ और आम के पत्तों को पीस गोली बना तेल में पकाकर खाने से, अथवा नीम की छाल तथा पत्तों तथा आँवले का चूर्ण घृत अथवा गर्म जल के साथ प्रतिदिन खाने से, या प्रातःकाल माँड के साथ उसकी आधी मात्रा में गोमूत्रकल्क मिलाकर पीने, या बाकुची के बीजों का चूर्ण मक्खन और शहद के साथ खाने से कुष्ठरोग नष्ट होता है।

इसी पटल में कहा गया है कि एरण्ड की जड़ तथा पत्ते तथा भृंगराज की जड़ तथा पत्ते सम भाग में कांजी में पीसकर लगाने से विचर्चिका, पिप्पली तथा हल्दी गोमूत्र के साथ मिलाकर गुदाद्वार पर रखने से अथवा गुडूची, नवनीत, शर्करा तथा पिप्पली मिलाकर पीने से अर्श तथा चित्रक एवं मूली दोनों को पीस कर गोली बनाकर पके केले में रखकर खाने से प्लीहा रोग समाप्त हो जाता है।

घृतकुमारी अथवा आँवला एवं नीम के पत्ते पीस कर दूध के साथ पीने से या आँवला और हरीतकी का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ खाने से निद्रा के समय का बिन्दुस्राव अर्थात्

स्वप्नदोष, या शुक्रवार को अश्विनी नक्षत्र में केतकी का पुष्प तथा अनार की छाल अथवा नीम और आक की जड़ पीस कर काली गाय का घी मिला गोली बनाकर प्रतिदिन खाने से बिन्दुस्राव रोग दूर होता है ।

अपामार्ग की जड़ को समुद्री नमक के साथ मिलाकर खाने से सामान्य अजीर्ण तथा उदरशूल, लाल कमल, अपामार्ग, सहजन तथा वचा का चूर्ण समान मात्रा में खाने से पुराना अजीर्ण या कूष्माण्ड, नाडिका एवं गोमूत्र से भावित क्षार तथा हल्दी जल में पीस पकाकर खाने से अजीर्ण रोग समाप्त हो जाता है । माहिषवल्ली तथा कूष्माण्ड का बीज पीस कर कुक्षि और पीठ पर लगाने अथवा सहजन के बीज, लाल कमल तथा नागेश्वर समान मात्रा में पीस कर आँख में आँजने या बृहती की जड़ पीस कर घी तथा शहद के साथ आँखों में आँजने से निद्रा खत्म हो जाती है ।

षष्ठ पटल में वशीकरण प्रयोगों की चर्चा है । यहाँ कहा गया है कि मन:शिला, पलाश, गोरोचना तथा केसर को मिलाकर उससे तिलक करने से सभी वश में हो जाते हैं। सहदेवा, भृंगराज, श्वेतदूर्वा, अपराजिता तथा वचा को एक साथ पीस कर तिलक लगाने से त्रिलोकी वश में हो जाता है । गोदन्ती, हरिताल तथा काकजंघा को पीसकर इनसे जिस किसी के माथे पर तिलक लगाया जाये, वह वश में हो जाता है । श्वेत अपराजिता की जड़ रोचना के साथ पीस कर तिलक लगाने वाला व्यक्ति जिसे भी वश करने की इच्छा से देखता है, वह वश में हो जाता है ।

नीम की लकड़ी तथा शहद की योनि पर धूप देने से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है और पति भी उससे पूर्ण वश में हो जाता है । रज:स्राव के दिनों में जो नारी खंजरीट पक्षी का मांस योनि पर लेप करती है, पुरुष उस नारी का दासवत् हो जाता है । भैस का घृत, कुष्ट अर्थात् कमल-विशेष कोठ तथा मुलहटी की पिष्टी का जननेन्द्रिय पर लेप करने से नारी सुन्दर हो जाती है तथा पति उसका सेवक-सा हो जाता है । समुद्री नमक, सौवीर, मछली का पित्त, शहद, घी तथा सिता की पिष्टी का जननेन्द्रिय पर लेप की हुई नारी के साथ मैथुन करने वाला व्यक्ति कभी भी किसी दूसरी नारी से सम्बन्ध नहीं बनाता ।

यहाँ स्त्रीवशीकरण के प्रयोग भी बताये गये हैं । जैसे, अश्वगन्धा, मंजिष्ठा, मालती के पुष्प, श्वेत सरसों तथा कपूर की पिष्ठी का जननेन्द्रिय पर लेप कर स्त्री के साथ रमण करने वाला व्यक्ति स्त्री का प्रिय होता है । किसी भी प्रकार के पाँच लाल पुष्पों को चावल के साथ पीस कर प्रियतमा तथा अपने जननांग में लेप करके संगमन करने वाला व्यक्ति रमणी के आनन्द को बढ़ाने वाला होता है । पुष्य नक्षत्र में काले धतूरे का पुष्प, भरणी में फल, विशाखा में शाखा, हस्त में पत्र तथा मूल नक्षत्र में मूल का ग्रहण कर कपूर, रोचना और कुंकुम बराबर मात्रा में पीसकर उस पिष्टी का तिलक लगाने से साक्षात् अरुन्धती जैसी नारी भी वश में हो जाती है ।

ऋतुकाल में यदि कोई पुरुष अपना शुक्र लेकर बाएँ हाथ से कामिनी के पैरों में लेप करता है, वह सदा उसके वश में बनी रहती है । नीलोत्पल और पूँगीफल अर्थात् सुपारी

सम मात्रा में अपराजिता के साथ खिलाने से पुरुष जिस नारी की कामना करता है, वह उसके वश में हो जाती है ।

स्त्री के ऋतुकाल के रजस् से भावित गोरोचना का तिलक लगाया हुआ व्यक्ति जिस भी नारी को देखता है, वह उसके वश में हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । समुद्री नमक तथा पारावत की विष्ठा शहद में पीस कर जननेन्द्रिय में लेप कर संगम करने से स्त्री वश में हो जाती है । इस लेप का तिलक पति-पत्नी में प्रेम बढ़ाता है तथा एक-दूसरे को वश में करने वाला है । कैथ का रस और कल्क, पिप्पली, गुरुचि तथा शहद समभाग में पीस कर जननांगों पर लेपन कर संगमन करने से पति-पत्नी में जो प्रेम बढ़ता है, वह प्राणान्त के पश्चात् भी कम नहीं होता ।

सप्तम पटल में नारियों से सम्बन्धित विभिन्न रोगों और समस्याओं की चर्चा की गयी है । जैसे, पुत्रप्राप्ति की इच्छा रखने वाली नारी को चाहिये कि वह ऋतुस्नान के पश्चात् बेर तथा जयन्ती की जड़ का घोल तथा अपामार्ग की कलियों को पीस कर दूध के साथ अथवा मातुलिंग के बीजों को पीस कर घी मिलाकर दूध के साथ पीये । ऋतुकाल में गोखरु की जड़ को पीसकर पीने तथा उस पिष्टी से भावित श्वेत अर्क की जड़ कमर में बाँधने से नारी अवश्य गर्भ धारण करती हैं । इस प्रयोग से उसे निश्चित ही पुत्र की प्राप्ति होती है । रज:स्राव-काल में पलाश के बीजों को शहद के साथ पीसकर पीने से लगातार स्रवित हो रहा पुष्पगर्भिणी का गर्भ स्थापित हो जाता है । कुम्हार के हाथ से लायी गई स्वच्छ मिट्टी को बकरी के दूध और शहद के साथ मिला कर पीने से गर्भस्राव तथा गर्भाशय की पीड़ा से मुक्ति मिलती है ।

श्रीपर्णी के क्वाथ और कल्क से सिद्ध तोले भर तिल के तेल का स्तनों पर लेप करने से चाहे कन्या हो या नष्टयौवना वृद्धा, उसके स्तनों का उभार बढ़ जाता है और उनमें कठोरता आ जाती है ।

काली गाय के दूध के साथ श्वेत आम्र के पुष्पों को पीस कर स्तनों पर लगाने से स्तन भारी हो जाते हैं । भूमि कुम्हड़े की जड़ और शालि नामक धान का चूर्ण दूध के साथ सात दिन पीने से स्त्रियों के स्तन में दुग्ध बढ़ा देता है । जिस किसी प्रकार से भी दात्यूह अर्थात् जलकौएँ का भक्षण स्त्रियों के समस्त प्रसूतिरोगों को समाप्त कर देता है । आम्र की मुठली के भीतर स्थित बीज और सुगन्धित जाति वाले केला के फल को दूध में मिलाकर पीने से योनि से होने वाला रक्तस्राव बन्द हो जाता है । भिगोये चावल के पानी में केले की जड़ पीस कर लेप करने से स्त्रियों का रक्तस्राव बन्द हो जाता है । यवक्षार, मुट्टी भर ज्योतिष्मती का फल तथा दूब काँजी में पीस कर सेवन करने से दुर्बल नारी गोलमटोल सम्पुष्ट बन जाती है ।

अष्टम पटल में पुरुषों के बल-वीर्य के वर्धन तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न रोगों से मुक्त होने के उपायों की चर्चा की गयीं है । इसमें बताया गया है कि विदारीकन्द के चूर्ण

को एक बार स्वरस से भावित करके उसमें शर्करा, शहद तथा घृत मिलाकर दूध के साथ पीने से व्यक्ति का अस्सी वर्षीय बुढ़ापा भी युवा की तरह दस युवतियों के साथ रमण करता है। श्वेतबला अर्थात् बरिआरा की जड़ को करवीर की जड़ के साथ श्वेत चामर से कटि में बाँधने से वीर्य का क्षरण नहीं होता। श्वेत अपराजिता के बीजों तथा सात पत्तों को भाँगरे के साथ पीसकर बनायी गयी गोली को माथे अथवा कन्धे या बाहु में धारण करने से यदि व्यक्ति सौ रमणियों के साथ भी रमण करे, तो भी उसके वीर्य का क्षरण नहीं होगा।

महासौगन्धिक अर्थात् दमनक नामक सुगन्धित क्षुप की जड़ महान् स्तम्भनकारी होती है। इसे कटि में धारण करने से वीर्य की रक्षा होती है। छत्राकार लोहित वर्ण के वंशमूल की जड़ का जननेन्द्रिय पर लेप कर स्त्रीप्रसंग से शक्ति का ह्रास नहीं होता। किसी भक्ष्य पक्षी के भीतर वनभंटा की जड़ रखकर उस पक्षी को भूनने के बाद उससे जड़ को बाहर निकालकर पहले उस पक्षी को फिर उस जड़ का भक्षण कर पृथुक अर्थात् चिउडा और इन्द्रासना (इन्द्रसुरस या इदरसन) नामक पाक विशेष का भी भक्षण करने से व्यक्ति सौ नारियों के साथ भी सम्बन्ध बनाये, तो भी उसके वीर्य का क्षरण नहीं होता।

स्वर्ण या रजत के पात्र में एक मोती धोकर उस जल का पान करने से स्त्री हो या पुरुष, उसका नपुंसकत्व-दोष समाप्त हो जाता है।

अतसी, उड़द, गेहूँ तथा पिप्पली को एक साथ पीस कर बनाये गये चूर्ण को घृत के साथ शरीर पर लगाने से व्यक्ति कामदेव की भाँति सुन्दर हो जाता है।

नवम पटल में अदृश्य होने तथा अन्य अवशिष्ट विविध प्रयोगों की चर्चा है। यहाँ कहा गया है कि दण्डकाक का रक्त, सियार, भालू तथा पेचक अर्थात् उल्लू का पित्त समान मात्रा में पीस कर गोली बनाकर छाया में सुखकर बनायी गयी गोली को घिसकर अंजन लगाने तथा स्तनों और पैरों में लेप करने से, जब तक यह लेप नेत्रों में लगा रहता है, तब तक व्यक्ति दूसरों के लिये अदृश्य बना रहता है। चिता की अग्नि में खंजरीट पक्षी की विष्ठा, घोड़े का फेन तथा शोभांजन से धूपित व्यक्ति देवताओं के लिये भी अदृश्य बन जाता है, मनुष्यों की तो बात ही क्या ? खुले बालों से कनक धतूरा, सप्तपर्णी तथा बलाहक की जड़ उखाड़ का मुख में रखने से भूमि के नीचे पातालपर्यन्त जहाँ भी खजाना गड़ा होगा व्यक्ति उसे देख सकता है।

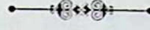
अन्य प्रयोगों के बारे में बताते हुए कहा गया है कि अदरक के पुष्प, लौकी तथा लोध्र को पीसकर बनाया गया लेप शरीर पर लगाने से देह की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। काला तिल, काला जीरा तथा श्वेत सरसों सम भाग में पीस कर मुख पर लगाने से मुख का फीकापन दूर हो जाता है। नमक, धातकी के बीज तथा बाकुची पीसकर दूध के साथ खिलाने से गाय बछड़े से स्नेह करने लगती है। सैन्धव लवण के साथ गाय के गर्म घी का दंश के स्थान पर लेपन करने से बिच्छू का विष दूर हो जाता है। स्नुही के दूध में शिरीष के बीजों को पीसकर घाव पर लेप करने से कुत्ते के काटने का विष निष्प्रभावी हो जाता है। अन्त में

कहा गया है कि श्वेत अपराजिता की जड़ एवं पत्तों के रस को नीम के रस तथा शहद के साथ पीने से डाकिनियों एवं ब्रह्मराक्षसों द्वारा उत्पन्न किये गये शारीरिक तथा मानसिक उत्पातों से रोगी को मुक्ति मिलती है ।

कृष्णचतुर्दशी को लांगलिका का मूल, सहा तथा महासहा तथा कुम्भी की जड़ कटि में बाँधने से उदर के कृमि आदि नष्ट हो जाते हैं । तिल, सरसों, हल्दी तथा मेथी सम मात्रा में पीसकर शरीर पर लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है तथा काकजंघा के साथ मिलाकर प्रतिदिन शरीर पर लेप करने से यह शरीर की जलन तथा त्वचा के रोग समाप्त करता है ।



सर्वविजयितन्त्रम्



अथ प्रथमः पटलः

औषधिजिज्ञासा

श्रीदेव्युवाच

देव ! भवत्प्रसादेन यथा कालस्य वञ्चनम् ।
यन्त्रस्य सारसम्मतमिदानीमौषधं वद ॥1॥
येन सिद्ध्यन्ति देहानि सर्वकामप्रदानि च ।
जरारोगहरं कल्पं तद् वद त्रिपुरान्तक ! ॥2॥

श्रीपर्वतात्मजायै नमः

पराशक्ति भगवती पार्वती ने जरामरणादि नाना रोगों से पीड़ित प्राणियों के हितार्थ परात्पर परमेश्वर शिव से कहा कि—हे स्वामिन् ! आपकी कृपा से कालवंचना की विधि तथा त्रिगुणितादि विभिन्न यन्त्रों की रचना तथा आवरणपूजादि की विधि का रहस्य मैंने जान लिया है । अब कृपा करके आप उन औषधियों और उनके प्रयोग की विधियों का वर्णन कीजिये, जिनसे जरा-मरण आदि भौतिक रोगों का नाश हो सकता है तथा शरीर को धर्म-अर्थादि सभी कामनाओं की पूर्ति के लिये सक्षम बनाया जा सकता है ।

सन्त्यौषधान्यनेकानि मनुष्याणां हिताय च ।
पूर्वं तु यत् त्वया प्रोक्तं प्रत्यक्षं कथयस्व मे ॥3॥

हे शिव ! आप पहले इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मनुष्यों के हित के लिये अनेक औषधियाँ विद्यमान् हैं । अब आप स्पष्ट रूप से उन औषधियों का निरूपण करें ।

औषधीनां ग्रहणे समयादिनियमः

श्रीईश्वर उवाच

तिथिनक्षत्रवारेण ऋतुभेदैः परिग्रहः ।
खननोत्पाटनं मन्त्रैः कारयेद्वै चिकित्सकः ॥4॥

श्रीशिव ने कहा—हे देवि ! औषधियों का ग्रहण विशेष-विशेष तिथियों, नक्षत्रों, दिवसों और ऋतुओं में ही करना चाहिये । चिकित्सक को चाहिये कि वह औषधियों का खनन तथा उत्पाटन उनसे सम्बन्धित मन्त्रों के प्रयोग के साथ ही कराये ।

औषधं कालयोगेन गृह्णाति परमं बलम् ।
शरद्धेमन्तयोर्देवि ! त्वचो मूलपरिग्रहः ॥5॥

हे देवि ! औषधियों के खननोत्पाटनादि में तिथि-नक्षत्रादि कालविशेष का योग होने से उनमें अधिक शक्ति का समावेश हो जाता है । औषधियों की छाल और जड़ शरद् और हेमन्त ऋतु में विशेष शक्तियुक्त हो जाते हैं, अतः इनका ग्रहण इन्हीं दोनों ऋतुओं में करना चाहिये ।

शिशिरे च फलं सम्यक् मूलं सारसमन्वितम् ।
वसन्ते पुष्पपत्रं च ग्रीष्मे च फलबीजके ॥6॥

शिशिर ऋतु में औषधियों के फल तथा सारसहित मूल का ग्रहण एवं वसन्त में पुष्पों और पत्रों एवं ग्रीष्म ऋतु में फलों और बीजों का ग्रहण अच्छा माना जाता है ।

स्वकाले बलवन्तोऽपि वर्षासु तरवः सदा ।
मूलं वृक्षे फलं बीजं स्वबीजं च ऋतौ तथा ॥7॥
बलवान् परितः सर्वा ओषध्यः परिकीर्तिताः ।

औषधियों का सर्वांग अर्थात् मूल, वृक्ष पर लगे फल, फलों के बीज और बीजों के बीज सब कुछ प्रभावकारी होते हैं । अर्थात् लतापादपादि का मूल से लेकर शीर्ष तक समस्त अंश उपयोगी होता है । सभी वृक्ष वर्षाकाल में विशेष शक्तिशाली हो जाते हैं ।

औषधिपरिभाषा

जलजाः स्थलजा वृक्षा लताश्चापि तथैव च ॥8॥
ग्राम्या वन्या गुल्मवल्ली ओषध्यः परिकीर्तिताः ।
जातिर्द्रव्यं गुणद्रव्यं व्याधिसंक्षयकारकम् ॥9॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे प्रथमः पटलः समाप्तः ।



जल तथा स्थल में उत्पन्न होने वाले वृक्ष तथा लताएँ, गाँवों तथा जंगलों में उत्पन्न होने वाली झाड़ियाँ तथा लताएँ औषधि कही जाती हैं । औषधियों के जातिद्रव्य तथा गुणद्रव्य रोगों के विनाश के कारण होते हैं ।

फलपुष्पलता एव स्वकाले बलिनस्तथा ।
निशायां जलजा वीर्याः स्थलजा बलिनो दिवा ॥10॥

औषधियों के फल, पुष्प तथा लताएँ ही अपने-अपने समय में बलवान् होती हैं । विशेष यह है कि रात्रि के समय ग्रहण की गयीं जलोत्पन्न औषधियाँ तथा दिन में गृहीत स्थलोत्पन्न औषधियाँ अधिक बलवान् होती हैं ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के प्रथम पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।

अथ द्वितीयः पटलः

व्याधेर्जन्मनक्षत्राद्यनुसारेण फलम्

पीडाव्याप्तिकालः

कृत्तिकायां कदाचिद्वै व्याधिरुत्पन्नको नरः
नवरात्रं भवेत्पीडा रोहिणीषु त्रिरात्रकम् ॥1॥

यदि किसी व्यक्ति को कृत्तिका नक्षत्र में रोग का आक्रमण होता है तो वह उस रोग से नौ रात्रों के पश्चात् ही मुक्त होता है । इसी प्रकार रोहिणी नक्षत्र में आरम्भ रोग से तीन रातों के बाद ही रोगी को मुक्ति मिलती है ।

मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽश्वभिः ।
पुनर्वसौ तु पुष्यायां सप्तरात्रं विधीयते ॥2॥

मृगशिरा में उत्पन्न रोग पाँच रातों तक, आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न रोग दो रात्रों तक और पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न रोग सात रातों तक रोगी को आक्रान्त रखते हैं ।

नवरात्रं तथाऽश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च ।
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु च पञ्चकम् ॥3॥

आश्लेषा नक्षत्र का रोग रोगी को नौ रातों के बाद तथा मघा में उत्पन्न रोग रोगी की मृत्यु के साथ ही समाप्त होता है । पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न रोग दो महीने के पश्चात् तथा उत्तराफाल्गुनी का रोग रोगी को पाँच मास के बाद ही मुक्त करता है ।

हस्ते च सप्तमे मोक्षः चित्रायामर्धमासकम् ।
मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे विंशतिर्दिनम् ॥4॥

हस्त नक्षत्र में जन्मे रोग से सातवें मास में तथा चित्रा के रोग से 15 रात्रियों के बाद तथा स्वाती के रोग से दो महीने बाद एवं विशाखा में उत्पन्न रोग से बीस दिनों बाद मुक्ति मिलती है ।

अनुराधा दशाहानि ज्येष्ठायामर्धमासकम् ।
मूले न जायते शेषं पूर्वाषाढा त्रिपक्षकम् ॥5॥

अनुराधा नक्षत्र में आरम्भ रोग से दस दिनों के बाद, ज्येष्ठा के रोग से आधे महीने बाद मुक्ति मिलती है । मूल नक्षत्र से आरम्भ रोग से रोगी बचता नहीं तथा पूर्वाषाढा के रोग से डेढ़ मास के बाद छुटकारा मिलता है ।

ऊनविंशत्युत्तराषाढा द्वौ मासौ श्रवणा तथा ।
धनिष्ठा चार्धमासः स्याद् वरुणेन दशाहकम् ॥6॥

हे भगवति ! उत्तराषाढा नक्षत्र में आरम्भ रोग से उन्नीस दिनों बाद, श्रवणा के रोग से दो महीने बाद, धनिष्ठा में उत्पन्न रोग से 15 दिनों बाद तथा वरुण नक्षत्र में उत्पन्न रोग से दस दिनों के पश्चात् ही रोगी मुक्त होता है ।

पूर्वभाद्रपदे देवि ! ऊनविंशतिवासरम् ।
त्रिपक्षं चाप्यहर्बुध्न्ये रेवत्यां दशरात्रकम् ॥7॥

हे देवि ! पूर्वभाद्रपदा में आरम्भ रोग उन्नीस दिनों बाद, अहर्बुध्न्य नक्षत्र का रोग डेढ़ मास बाद तथा रेवती का रोग दस रातों के बाद ही रोगी को छोड़ता है ।

अहोरात्रावश्विनी च भरण्यां च गतायुषम् ।
एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रे च यथोदितम् ॥8॥

अश्विनी में उत्पन्न रोग रोगी को मुक्त करने में 1 दिन तथा 1 रात लेता है । लेकिन, यदि रोग भरणी नक्षत्र में आरम्भ हो तो रोगी की आयु समाप्त समझनी चाहिये । हे देवि ! भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में उत्पन्न रोगों से रोगी के मुक्त होने अथवा उसकी मृत्यु होने के विषय में मेरे द्वारा वर्णित क्रम से ही रोगी की स्थिति का आकलन करना चाहिये ।

उरगशतभिषार्द्रास्वातिमूलात्रिपूर्वा ।
भरणी रविजवाराः क्रूरताराविरुद्धा ।
य भवति चतुर्थी चाष्टमी भूतषष्ठी
परिहर तिथिमेनां रोगिणां मृत्युकालः ॥9॥

उरग, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, मूला, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्ताराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा तथा उत्तराभाद्रपदा, भरणी, शनिवार, क्रूर एवं विरुद्धतारा, चतुर्थी, अष्टमी तथा भूतषष्ठी तिथियों में यदि कोई रोगाक्रान्त हो तो समझना चाहिये कि रोगी की मृत्यु का समय पास आ गया है ।

रोगिणो ध्रुवो मृत्युः

पञ्चमी चन्द्रवारे च द्वितीया च बृहस्पतौ ।
शुक्रे चैव चतुर्थी व रोगिणां मृत्युमादिशेत् ॥10॥

सोमवार की पंचमी को, गुरुवार की द्वितीया को तथा शुक्रवार की चतुर्थी को किसी पर रोग का आक्रमण हो तो यह स्थिति रोगी की मृत्यु का संकेत करती है ।

सप्ताहं वारदोषेण तिथिसंयुतं भवेत् ।
तिथिनक्षत्रयोर्मासं त्रिभिः कालो न जीवति ॥11॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे द्वितीयः पटलः समाप्तः ।



यदि दिन के दोष के साथ तिथि-दोष भी हो तो रोगी सात दिनों तक जीवित रह सकता है । तिथि के साथ नक्षत्र-दोष होने पर रोगी 1 मास तक जीवित रहता है । लेकिन, यदि तिथि, वार और नक्षत्र तीनों ही दोषयुक्त हों, तो रोगी जीवित नहीं बचता ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के द्वितीय पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथ तृतीयः पटलः

दिवारात्रौ षट् ऋतुभेदनिर्णयः

ऋतुसम्भेदभैषज्यं पूरयेत् कथितं तव ।
दिवारात्रौ तथा योज्यं वसन्तादि यथाक्रमम् ॥1॥

हे पार्वति ! वर्षभर के बारह महीनों में वसन्तादि छह ऋतुओं का स्वकाल दो-दो मास का होता है । इनका परिग्रहण किस प्रकार से करना चाहिये, इसका निरूपण मैंने तुम्हारे सामने कर दिया । अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात्रि में किस समय कौन सी ऋतु का अपना समय होता है । प्रत्येक दिन तथा प्रत्येक रात्रि में वसन्तादि छहों ऋतुओं का समावेश किस प्रकार से करना चाहिये । मैं इसका विवरण देता हूँ ।

वसन्तश्चैव पूर्वाह्णे ग्रीष्मो मध्याह्न उच्यते ।
वर्षा ज्ञेयाऽपराह्णे तु प्रदोषे शिशिरः स्मृतः ॥2॥

हे देवि ! प्रत्येक दिन का पूर्वाह्न वसन्त, मध्याह्न ग्रीष्म, अपराह्न वर्षा तथा प्रदोषकाल शिशिर ऋतु मानी जाती है ।

अर्धरात्रौ शरत्कालः शेषे च शिशिरः स्मृतः ।
दशदण्डे क्रमाद् देवि ! जनीयादृतुभेदतः ॥3॥

हे देवि । अर्धरात्रि का समय शरत्काल तथा शेष रात्रि में शिशिर ऋतु की व्याप्ति मानी जाती है । इन ऋतुओं का व्याप्तिकाल दस-दस दण्ड का होता है ।

षट्कर्मप्रयोगे ऋतुसमयनियमः

वशीकरणकर्माणि वसन्ते योजयेत्प्रिये ।
ग्रीष्मे विद्वेषणं कुर्यात्प्रावृड्युच्चाटनं* तथा ॥4 ॥

हे प्रिये ! वसन्त-काल में वशीकरण, ग्रीष्म में विद्वेषण तथा वर्षाकाल में उच्चाटन कर्म करना चाहिये ।

शरत्सु शान्तिकं चैव हेमन्ते पौष्टिकं भवेत् ।
शिशिरे मारणं कुर्यात् ऋतुकर्मविशारदः ॥5॥

शरद् ऋतु (तथा प्रत्येक दिन में व्याप्त विशिष्ट ऋतुकाल) में शान्तिकर्म, हेमन्त में पौष्टिक तथा शिशिर ऋतु में मारण प्रयोग करना चाहिये ।

---

* मूले 'ग्रीष्मे विद्वेषणं कुर्यात्प्रावृड् विद्वेषणं तथा' इत्यत्र रेखांकितः पाठः अनवधानजन्यः ।

ऋतवः कथितास्त्वेते सर्व एते क्रमेण तु ।
वश्यादिकर्मसिद्धिश्च प्रयत्नेनापि सर्वतः ॥6॥

हे प्रिये ! मैंने कालक्रम से उक्त छहों ऋतुओं का उल्लेख किया है । प्रत्येक दिन-रात्रि एवं मासद्वयव्यापी उक्त ऋतुओं में उल्लिखित प्रकार से प्रयत्नपूर्वक वश्यादि षट्कर्मों का सम्पादन करना चाहिये ।

शान्तिके पौष्टिके वश्ये त्वभिचारे च कर्मणि ।
तर्जन्या दिनमारूढं कुर्यात् यथाक्रमं सुधीः ॥7॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे तृतीयः पटलः समाप्तः ।



शान्ति, पौष्टिक, वश्य तथा अभिचार कर्म का आरम्भ प्रात:काल दिन चढ़ जाने पर ही यथाक्रम में तर्जनी अँगुली से करना चाहिये ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के तृतीय पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथ चतुर्थः पटलः

ज्वरनाशकप्रयोगाः

महाज्वरनाशकप्रयोगः

मूलकं केशराजस्य छित्त्वा तत्सप्तखण्डकम् ।
आर्द्रकैः सह भक्षेत महाज्वरविनाशनम् ॥1॥

केशराज अर्थात् भृंगराज की जड़ लाकर उसके सात खण्ड करने के अनन्तर प्रत्येक खण्ड को तीन-तीन घण्टे बाद अदरक के साथ चबा-चबाकर खाते रहने से भयंकर ज्वर का भी शमन हो जाता है ।

सन्निपातज्वरनाशकप्रयोगः

नागरं गुडूची चैव धन्याकं रक्तचन्दनम् ।
उशीरं चैव प्रत्येके क्वाथं पञ्चसमन्वितम् ॥2॥
चतुर्भागैकशेषान्ते सुव्यवस्थितशेषकम् ।
कल्पना वेदना तीव्रं ज्वरं नश्यति वार्तिकम् ॥3॥

नागर अर्थात् सोंठ, गुडूची, धनिया, लालचन्दन तथा खस इन पाँच औषधियों को स्वच्छ जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रह जाने पर उसे पीने से तीव्र वेदना वाला सन्निपात ज्वर समाप्त हो जाता है ।

सन्निपातज्वरनाशकप्रयोगः

प्रभातसमये देवि ! मण्डं गोमूत्रकल्कं वै ।
पिबेत्तदर्धभागेन सन्निपातज्वरापहम् ॥4॥

हे देवि ! प्रात:काल माँड के साथ उसकी आधी मात्रा में गोमूत्रकल्क मिलाकर पीने से सन्निपात ज्वर समाप्त हो जाता है ।

गुग्गुलूलूकपुच्छाम्यां धूपितो मानुषो भवेत् ।
चातुर्थकज्वरं हन्ति कृष्णवस्त्रावगुण्ठितम् ॥5॥

चातुर्थिक ज्वर से पीड़ित हो रहे व्यक्ति को गुग्गुलु तथा उल्लू के पंख का धूप देने से वह हर चौथे दिन आक्रान्त करने वाले चातुर्थिक ज्वर से मुक्त हो जाता है ।

रात्रिज्वरनाशकप्रयोगः

जम्बूफलं हरिद्रा च सर्पस्यैकं तु कञ्चुकम् ।
सर्वज्वराणां धूपोऽयं हन्ता रात्रिज्वरस्य च ॥6॥

जामुन के फल का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण । तथा सर्प की एक केचुली के चूर्ण से धूपित करने से रात्रि में आने वाला ज्वर समाप्त हो जाता है ।

ज्वरहरमन्त्रः

'ओं नमो भगवते छिन्दि छिन्दि अमुकस्य ज्वरस्य
शिरः प्रज्वलितपरशुपाचने पुरुषाय फट्' ॥7॥
अनेन भूमावङ्कच्छेदनं कुर्यात् । तदा महाज्वरविनाशनं भवति ।

'ओ नमो भगवते छिन्दि छिन्दि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः प्रज्वलितपरशुपाचने पुरुषाय फट्'—यह मन्त्र ज्वरहरण मन्त्र कहलाता है । इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भूमि पर रेखाएँ खींचनी चाहिये । इससे ज्वर का छेदन या उच्छेद होता है ।

भूतप्रेतादिसम्भवज्वरनाशकप्रयोगः

करे बद्धं तु निर्गुण्डी मूलं ज्वरहरं ततः ।
हस्ते बद्धं पलाशस्य अपामार्गस्य वा प्रिये ! ॥8॥
मूलं सर्वज्वरहरं भूतप्रेतादिसम्भवत् ।

निर्गुण्डी की जड़ हाथ में बाँधने से प्रत्येक प्रकार का ज्वर समाप्त होता है । पलाश अथवा अपामार्ग की जड़ हाथ में बाँधने से भूतप्रेतादिकों के प्रकोप से उत्पन्न हर प्रकार के ज्वर समाप्त हा जाते हैं ।

ऐकाहिकज्वरनाशकप्रयोगः

समभागं द्रवं चैव आर्द्रकं वासकं मधु ॥9॥
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति भक्षणाच्च दिनत्रयम् ।

अदरक, वासक तथा मधु बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर खाने से जब-तब एक दिन के लिये आने वाला ऐकाहिक ज्वर समाप्त होता है ।

रविवारे समुत्पाट्य अपामार्गस्य मूलकम् ॥10॥
सप्तसूत्रैः करे बद्ध्वा नित्यज्वरहरं तथा ।

रविवार के दिन अपामार्ग की जड़ उखाड़ उसे 7 धागों से बाँधकर नित्यज्वर रोगी के हाथ में बाँधने से प्रतिदिन होने वाला ज्वर समाप्त हो जाता है ।

अथ निमन्त्रयेद् देवि ! शुष्कलाङ्गलमृत्तिकाम् ॥11॥

तिलकं तत्प्रभातेन शय्यायां कारयेन्नरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं तीव्रं नाशयेद् रविवासरे ॥12॥

शनिवार को कलिहारी की झाड़ी के पास जाकर 'देवि ! कल प्रातः मैं तुम्हें लेने आऊँगा' कह कर निमन्त्रित करके रविवार को प्रातःकाल वहाँ से सूखी मिट्टी लाकर उससे रोगी को तिलक लगाने से भयंकर ऐकाहिक ज्वर भी दूर हो जाता है ।

सहदेवाघृतं कर्णे लाङ्गलीमूलकं गले ॥13॥
बृहतीमूलकं पापि मूलं वाट्यालकं तथा ।
बद्ध्वा शिरसि सूत्रेण नाना ज्वरविनाशनम् ॥14॥

सहदेवा अर्थात् कंकतिका या बरियारीमिश्रित घृत कान में डालने से अथवा बृहती अर्थात् भटकटैया की जड़ गले में बाँधने तथा वाट्यालक अर्थात् बला की जड़ शिर पर बाँधने से विभिन्न प्रकार के ज्वर समाप्त हो जाते हैं ।

ऐकाहिकज्वरनाशकप्रयोगः

यदा सरस्वती तीरे अपुत्रा तापसी मृता ।
तस्यै तिलोदकं दद्यात् मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः ॥15॥

सरस्वती नदी के किनारे जब कोई पुत्रहीन तपस्विनी का शरीरान्त हुआ हो, तो उसे तिलांजलि देने से भी ऐकाहिक ज्वर समाप्त हो जाता है ।

ज्वरचित्किसान्तर्गतमन्त्रप्रयोगः

बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभः ।
जातोऽसौ सुमहद्वीर्यो मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः ॥16॥
लिखेदश्वत्थपत्रेण बाहौ मन्त्रं प्रधारयेत् ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति पुरुषो दक्षिणे क्रमात् ॥17॥

पीपल के पत्ते पर—'बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभः । जातोऽसौ सुमहद्वीर्यः मुंचत्यैकाहिको ज्वरः' ॥—यह मन्त्र लिखकर इसे दाहिने हाथ में बाँधने से ऐकाहिक ज्वर समाप्त हो जाता है ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे कुमुदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखिते च गृहोदरे ।
लिखितं दृश्यते येन तस्य ज्वरं विनश्यति ॥18॥

पीपल के पत्ते पर 'समुद्रस्योत्तरे तीरे कुमुदो नाम वानरः' लिखकर घर के भीतर टाँग देना चाहिये । ऐकाहिक ज्वर का जो भी रोगी इस मन्त्र को वहाँ लिखा देखेगा, उसका ऐकाहिक ज्वर समाप्त हो जायेगा ।

शेफालिकात्वचं पूर्वमश्विन्या वटिकाकृतम् ।
अजालोमेन बध्नीयात्सन्निपातज्वरापहम् ॥19॥

अश्विनी नक्षत्र में शेफालिका अर्थात् हरशृंगार की छाल को पीस कर उस पिष्टी की गोली बनाकर उसे बकरी के रोएँ से बने धागे से रोगी के गले में बाँधने से सन्निपात ज्वर समाप्त हो जाता है ।

तृतीयकज्वरनाशकप्रयोगः

अपामार्गजटा कट्यां सप्तलोहिततन्तुभिः ।
बद्धा तूर्णं रवेर्वारि ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥20॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे चतुर्थः पटलः समाप्तः ।



अपामार्ग की जटा अर्थात् कटीले पुष्पों को स्वर्णादि सप्तलौह से निर्मित तन्तु में गूँथ कर रविवार को कमर में बाँधने से तृतीयक ज्वर समाप्त हो जाता है ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के चतुर्थ पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



पञ्चमः पटलः

अथ विविधरोगनाशकप्रयोगाः

बहुमूत्रनाशकप्रयोगः

धात्रीफलस्य स्वरसं मधुना च पिबेत्सदा ।
बहुमूत्रक्षयं देवि ! क्षारं च वासकस्य वा ॥1॥

हे देवि ! आँवले के फल के रस के साथ शहद तथा अडूसे की क्षार मिलाकर पीने से बहुमूत्र रोग समाप्त हो जाता है ।

कासनाशकप्रयोगः

त्रिफला त्रिकटुश्चैव समभागेन चूर्णितम् ।
मधुना सह पानं च दुष्टकासविनाशनम् ॥2॥

त्रिफला तथा त्रिकटु अर्थात् पिप्पली, सोंठ और काली मिर्च का चूर्ण सम मात्रा में मिलाकर शहद के साथ चाटने से भयंकर बिगड़ा हुआ कास रोग समाप्त हो जाता है ।

घृतेन पाचयेन्मूलं पत्रं च वासकस्य च ।
भक्षयेत् तद्दिनं यावत्कासश्वासक्षयो भवेत् ॥3॥

हे देवि ! वासक अर्थात् अडूसा की जड़ तथा पत्ते घी के साथ पकाकर तब तक सेवन करना चाहिये जब तक कि श्वास-कास समाप्त नहीं हो जाता ।

पिप्पलीं देवदारुं च शुण्ठीचूर्णसमन्वितम् ।
ऊर्ध्वं श्वासं सदा हन्ति पिबेदुष्णजलेन च ॥4॥

पिप्पली, देवदारु की छाल तथा सोंठ के चूर्ण को गर्म जल के साथ पीने से उच्छ्वास रोग समाप्त हो जाता है ।

अतिसारनाशकप्रयोगः

तालमूलीं च मधुना समभागेन यः पिबेत् ।
रक्तातिसारं क्षयं याति नारिकेलजलैस्तथा ॥5॥

तालमूली अर्थात् मुसली और शहद दोनों बराबर मात्रा में मिलाकर पीने से अथवा नारियल का जल पीने से रक्त अतिसार नष्ट हो जाता है ।

मूलानि सहदेवायाः कृत्वा च सप्तखण्डकम् ।
रक्तसूत्रैः कटिं बद्ध्वा सर्वातीसारनाशनम् ॥6॥

सहदेवा अर्थात् बरियारी की जड़ के सात टुकड़े करके लाल धागे से कटि में बाँधने से सभी प्रकार के अतिसार रोग नष्ट हो जाते हैं ।

यक्ष्मानाशकप्रयोगः

नागकेसरमूलं च मधुना सह सम्पिबेत् ।
वासकस्य च मूलं वै व्यञ्जनैः क्षयरोगहा ॥7॥

नागचम्पा की जड़ शहद के साथ तथा वासक की जड़ भोजन के साथ लेने से क्षयरोग नष्ट होता है ।

अशोकस्य च मूलानि अजाक्षीरेण भक्षयेत् ।
क्षयं रोगं क्षयं कुर्यात् मूलं जीवेश्वरी मधु ॥8॥

अशोक की जड़ों को बकरी के दूध के साथ पीने से क्षयरोग नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार जीवेश्वरी या जीवन्ती की जड़ शहद के साथ खाने से क्षयरोग नष्ट होता है ।

गवेधुकस्य मूलं च भक्षयेन्मधुना घृतैः ।
पिप्पलीमूलकं वापि दुग्धेन क्षयरोगहा ॥9॥

गवेधुक अर्थात् गुरहुड़ या गरहेडुआ की जड़, शहद, घृत तथा पिप्पलीमूल दूध के साथ पीने से क्षयरोग विनष्ट होता है ।

नासारोगनाशकप्रयोगः

दूर्वादाडिमपुष्पेण आम्रातकहरीतकी ।
सर्वं सम्पेत्रयेन्नस्ये नासारक्तस्त्रवापहा ॥10॥

दूब, अनारपुष्प, आमड़ा तथा हरीतकी सम भाग में चूर्णकर इससे नसवार लेने से नाक से रक्तस्राव समाप्त हो जाता है ।

दन्तरोगनाशकप्रयोगः

केशराजस्य मूलं च आर्द्रकैः सह धारयेत् ।
तदा न पतति दन्तो बकुलत्वचचर्वणात् ॥11॥

भांगरे की जड़ अदरक के साथ मुख में रखने से तथा बकुल की छाल चबाने से दन्तरोग नष्ट हो जाता है तथा दाँत गिरते नहीं ।

बृहतीमूलकं देवि ! नीलकण्ठस्य मूलकम् ।
दन्तानां नाशयेद्रोगान् निर्विषं च दृढो भवेत् ॥12॥

भण्टाकी अर्थात् भटकटैया या बड़ी कटेरी की जड़ तथा कुटकी या करु की जड़ मुख में रखने से समस्त प्रकार के दन्तरोग नष्ट हो जाते हैं ।

काकजङ्घाशिग्रुमूलं मूलेन विधृते किल ।
चर्वणाद् दन्तरोगानां विनाशं च भवेत्प्रिये ॥13॥

मूल नक्षत्र में ग्रहण की गयीं काकजंघा या चिरईगोडा की जड़ और शिग्रु अर्थात् सहजन की जड़ चबाने से दाँत के रोगों का विनाश होता है ।

प्रमेहनाशकप्रयोगः

पीतं सारं गुडूच्यास्तु मधुना मेहनाशनम् ।

शहद के साथ गुडूची का रस पीने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ।

मूत्रकृच्छ्रनाशकप्रयोगः

अजाजीं शृङ्गवेरं च दधि मण्डं च पाययेत् ॥14॥
लवणेन समायुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ।

अजाजी अर्थात् जीरा, अदरक, दही तथा मण्ड नमक के साथ सेवन करने से मूत्रकच्छ्र रोग समाप्त हो जाता है ।

शिरोरोगनाशकप्रयोगः

दुग्धैः कृष्णतिलं पिष्ट्वा लेपं दद्याच्छिरोपरि ॥15॥
शिरोव्यथा क्षयं याति गुडूचीमूलकेन वा ।

काला तिल अथवा गुडूची की जड़ दूध में पीस का माथे पर लेप करने से सिर की पीड़ा समाप्त हो जाती है ।

दद्रुरोगनाशकप्रयोगः

स्वर्णशेफालिकामूलं पत्रं पिष्ट्वा तु काञ्जिकैः ॥16॥
घर्षयित्वा च देहे च तल्लेपाद् दद्रुनाशनम् ।

स्वर्णजूही की जड़ तथा पत्ते काँजी में घिस कर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है ।

कुष्ठरोगनाशकप्रयोगः

श्वेतापराजितामूलं पिष्टाल्लेपाच्च कुष्ठहा ॥17॥
अथवा पारिभद्रस्य मूलमामैर्वटीकृतम् ।
तैलेन पाचितं कृत्वा भक्षणात्कुष्ठनाशनम् ॥18॥
घृतैरुष्णोदकैर्वाऽथ सर्वं कुष्ठविनाशनम् ।

अपराजिता अर्थात् विष्णुक्रान्ता की जड़ पीस कर कुष्ठ पर लगाने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है । इसके अतिरिक्त पारिजात अर्थात् नीम की जड़ और आम के पत्तों को पीस गोली बना तेल में पकाकर खाने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है ।

निम्बत्वचदलानां च चूर्णमामलकस्य च ॥19॥
प्रत्यहं भक्षयेद्यस्तु तस्य कुष्ठं विनश्यति ।

नीम की छाल तथा पत्तों तथा आँवले का चूर्ण घृत अथवा गर्म जल के साथ प्रतिदिन सेवन करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है ।

सोमराजस्य बीजानि नवनीतं च योजयेत् ॥20॥
मधुना खादितानि स्युस्तस्य कुष्ठनिवारणम् ।

सोमराज अर्थात् बाकुची के बीजों के चूर्ण में मक्खन और शहद के साथ खाने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है ।

विचर्चिकानाशकप्रयोगः

एरण्डंमूलकं पत्रं भृङ्गराजसमं तथा ॥21 ॥
अनयोः काञ्जिकैः पिष्ट्वा लेपो विचर्चिकापहा ।

एरण्ड की जड़ तथा पत्ते तथा भृंगराज की जड़ तथा पत्ते दोनों को सम भाग में काँजी में पीसकर लगाने से विचर्चिका रोग समाप्त हो जाता है ।

अर्शोरोगनाशकप्रयोगः

पिप्पलीं च हरिद्रां च गोमूत्रेण समन्विताम् ॥22॥
प्रक्षिपेच्च गुदाद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत् ।
अभया नवनीतं च शर्करापिप्पलीयुतम् ॥23॥
पानादर्शहरं स्याच्च नात्रकार्या विचारणा ।

पिप्पली तथा हल्दी गोमूत्र के साथ मिलाकर गुदाद्वार पर रखने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार गुडूची, नवनीत, शर्करा तथा पिप्पली मिलाकर पीने से अर्शोरोग नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।

प्लीहानाशकप्रयोगः

चित्रकं मूलकं पिष्ट्वा कृत्वा तु वटिका द्वयम् ॥24॥
कदलीपक्वमध्ये तु भक्षणात् प्लीहानाशनम् ।

चित्रक तथा मूली दोनों को पीस कर गोली बनाकर पके केले में रखकर खाने से प्लीहा रोग समाप्त हो जाता है ।

बिन्दुस्रावनाशकप्रयोगः

घृतकुमारिकां पिष्ट्वा क्षीरेण यः पिबेन्नरः ॥25॥
बिन्दुस्रावं क्षयं कुर्याद् धात्री च निम्बपत्रकम् ।

घृतकुमारी अथवा आँवला एवं नीम के पत्ते पीस कर दूध के साथ पीने से बिन्दुस्राव रोग दूर होता हैं ।

नैशबिन्दुस्रावनाशकप्रयोगः

धात्रीं हरीतकीं चैव पुराणगुडसंयुताम् ॥26॥
भक्षयेच्छयनैर्बिन्दुस्रावस्य च क्षयो भवेत् ।

आँवला और हरीतकी का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ खाने से निद्रा के समय का बिन्दुस्राव अर्थात् स्वप्नदोष नष्ट हो जाता है ।

केतकीपुष्पमादाय दाडिमीत्वचमूलकम् ॥27॥
कृष्णगोभवमाज्यं च भक्षयेद् भृगुवासरे ।
बिन्दुस्रावं क्षयं कुर्याद् निम्बमूलार्कमूलकम् ॥28॥
अश्विन्यां वटिकां कृत्वा भक्षणान्नात्र संशयः ।

शुक्रवार के दिन अश्विनी नक्षत्र में केतकी का पुष्प तथा अनार की छाल अथवा नीम और आँक की जड़ पीस कर काली गाय का घी मिलाकर गोली बनाकर प्रतिदिन खाने से बिन्दुस्राव रोग दूर होता है ।

अजीर्णनाशकप्रयोगः

अपामार्गस्य मूलं च समुद्रलवणान्वितम् ॥29॥
आस्वादितमजीर्णस्य शूलस्यापि विमर्दनम् ।

अपामार्ग की जड़ को समुद्री नमक के साथ मिलाकर खाने से अजीर्ण रोग तथा उदरशूल समाप्त हो जाता है ।

रक्तोत्पलमपामार्गं शोभाञ्जनं वचा यथा ॥30॥
लवणेन समं भक्षेद् दृढाजीर्णं च नश्यति ।
कूष्माण्डनाडिकाक्षारं सगोमूत्रस्य भावितम् ॥31॥
जलैः पिष्ट्वा हरिद्रां च सिद्धं चैवानेन हि ।

लाल कमल, अपामार्ग, सहजन तथा वचा का चूर्ण समान मात्रा में खाने से पुराना अजीर्ण रोग समाप्त हो जाता है । कूष्माण्ड, नाडिका एवं गोमूत्र से भावित क्षार तथा हल्दी जल में पीस पकाकर खाने से अजीर्ण रोग समाप्त हो जाता हैं ।

अतिनिद्रामोक्षोपायः

महिषशृङ्गकूष्माण्डं पिष्ट्वा तत्समभागकम् ।।32।।
लेपयेत्कुक्षिपृष्ठे च तस्य निद्राक्षयो भवेत् ।।

माहिषवल्ली तथा कूष्माण्ड का बीज पीस कर जिसकी कुक्षि और पीठ पर मल दिया जाये, उसकी निद्रा समाप्त हो जाती है ।

शोभांजनस्य बीजानि नीलोत्पलस्य पुष्पकम् ।।33।।
समं नागेश्वरं पिष्ट्वा निद्रा मुञ्चति चाञ्जनात् ।

सहजन के बीज, लाल कमल तथा नागेश्वर समान मात्रा में पीस कर आँख में आँजने से नींद उड़ जाती है ।

बृहतीमूलकं पिष्ट्वा मधु चाज्यसमन्वितम् ।।34।।
यस्य नेत्राञ्जनं दद्यात् निद्रा च नाशयेद् ध्रुवम् ।

बृहती की जड़ पीस कर घी तथा शहद के साथ मिलाकर आँखों में आँजने से निद्रा खत्म हो जाती है ।

निद्रालुप्तिप्रयोगः

श्मशानमुत्क्षिपेद् गेहे कृष्णगोमूत्रमृत्तिकाम् ।।35।।
एवं निद्रावतीं मायां संक्षेपात्कथयामि ते ।

हे पार्वति ! अब मैं तुम्हें निद्रावती के मायाजाल का संक्षेप में कथन करता हूँ । वह यह कि काली गाय के मूत्र में भावित श्मशान की मिट्टी जिसके घर में फेंक दी जाये, उसे निद्रारूपिणी माया अपने क्रोड में सुला देती है ।

नष्टधातुपुनर्भवोपायः

धातुर्नष्टं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणां योगचिकित्सकम् ।।36।।
यथा योज्यं च पुरुषे शृणु तामौषधिं प्रिये ।।।।

हे प्रिये ! क्षीण सप्तधातुओं के पुनः स्थापनार्थ स्त्री तथा पुरुषों के लिये जिन औषधियों का जिस प्रकार से प्रयोग किया जाना चाहिये, अब मैं इसका निरूपण करता हूँ ।

ज्योतिष्मती जवापुष्पं पिष्ट्वा दूर्वादलैः सह ।।37।।
काञ्जिकैर्भक्षयेद् वापि नष्टधातुः पुनर्भवेत् ।

ज्योतिष्मती तथा जवाकुसुम दूब के साथ पीस काँजी के साथ पीने से नष्ट हुई धातु पुनः उत्पन्न हो जाती है ।

स्वास्थ्यकरोपायः

मूलं दण्डोत्पलं वापि काञ्जिकैः सहितं पिबेत् ॥38॥
केशरकैर्निम्बं च पङ्कजं च निरामयम् ॥39॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे पञ्चमः पटलः समाप्तः ।



दण्डोत्पल की जड़ पीसकर काजी के साथ पीना अथवा केशर के साथ नीम तथा कमल पीस कर पीना भी स्वास्थ्य के लिये निरापद लाभप्रद होता हैं ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के पंचम पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथ षष्ठः पटलः

वशीकरणप्रयोगाः

जगद्वशीकरतिलकम्

मनःशिला पलाशं च सगोरोचनकुङ्कुमम् ।
एभिश्च तिलकं कुर्याज्जगद्वशं न संशयः ॥1॥

मनःशिला, पलाश, गोरोचना तथा केसर को मिलाकर उससे तिलक करने से सभी वश में हो जाता है ।

सहदेवा भृङ्गराजसितापराजिता वचा ।
तेनैव तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥2॥

सहदेवा, भृंगराज, श्वेतदूर्वा, अपराजिता तथा वचा को एक साथ पीस कर तिलक लगाने से त्रिलोकी वश में हो जाता है ।

गोदन्तं हरितालं च संयुक्तं काकजङ्घया ।
कृत्वा चूर्णं यः शिरसि दीयते तद्वशं नयेत् ॥3॥

गोदन्ती, हरिताल तथा काकजंघा को पीसकर इनसे जिस किसी के माथे पर तिलक लगाया जाये, वह वश में हो जाता है ।

श्वेतापराजितामूलं पिष्ट्वा रोचनया सह ॥4॥
यं प्रश्येत् तिलकैरेतैर्वशीकुर्यान्न संशयः ।

श्वेत अपराजिता की जड़ रोचना के साथ पीस कर तिलक लगाने वाला व्यक्ति जिसे भी वश करने की इच्छा से देखता है, वह वश में हो जाता है ।

राजवशीकरणम्

गोरोचना कुङ्कुमकपूरैः भूर्जे संलिप्य घृतमधुमध्ये यस्य
स्थापयेद्रक्तपुष्पेण भुजे तस्य राजा वश्यो भवति ॥5॥

गोरोचना कुंकुम तथा कपूर घृत और मधु के साथ बराबर मात्रा में पीसकर उस पिष्टी को भोजपत्र में रखकर लालपुष्प के साथ धारण करने से राजा वश में हो जाता है ।

पतिवशीकरणोपायः

निम्बकाष्ठेन मधुना धूपयित्वा भगं स्त्रियः ।
सुभगाऽसौ भवेन्नारी पतिर्दासो भविष्यति ॥6॥

नीम की लकड़ी तथा शहद की धूप योनि पर देने से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है और पति भी उससे पूर्ण वश में हो जाता है ।

खञ्जरीटस्य मांसं च ऋतुकाले दिनत्रयम् ।
स्वयोनिलेपनाद् देवि ! पुरुषो दासतामियात् ॥7॥

रजःस्राव के दिनों में जो नारी खंजरीट पक्षी का मांस योनि पर लेप करती है, पुरुष उस नारी का दासवत् हो जाता है ।

महिषं नवनीतं च कुष्ठं च मधुयष्टिका ।
भगलेपेन सौभाग्यं पतिर्दासो भविष्यति ॥8॥

भैस का घृत, कुष्ट अर्थात् कमल-विशेष कोठ तथा मुलहटी की पिष्टी का जननेन्द्रिय पर लेप करने से नारी सुन्दर हो जाती है तथा पति उसका सेवक-सा हो जाता है ।

सैधवं लवणं देवि ! सौवीरं मत्स्यपित्तकम् ।
मधुसर्पिःसितायुक्तं स्त्रीणां भगलेपनम् ॥9॥
यः पुमान् मैथुनं गच्छेन्नान्यां नारीं गमिष्यति ।

हे देवि ! समुद्री नमक, सौवीर, मछली का पित्त, शहद, घी तथा सिता की पिष्टी का जननेन्द्रिय पर लेप की हुई नारी के साथ मैथुन करने वाला व्यक्ति कभी भी किसी दूसरी नारी से सम्बन्ध नहीं बनाता ।

पत्नीवशीकरणोपायः

हयनाम्ना च मञ्जिष्ठा मालतीकुसुमानि च ॥10॥
श्वेतसर्षपकर्पूरलिप्तलिङ्गस्त्रियः प्रियः ।

अश्वगन्धा, मंजिष्ठा, मालती के पुष्प, श्वेत सरसों तथा कपूर की पिष्ठी जननेन्द्रिय पर लेप कर स्त्री के साथ रमण करने वाला व्यक्ति स्त्री का प्रिय होता है ।

पञ्चरक्तानि पुष्पाणि गृहीत्वा यानि कानि च ॥11॥
तण्डुलानि प्रियामङ्गे लेपयेत् त्वेकयोगतः ।
अनेन लिप्तलिङ्गस्तु कामिनीरसकृद् भवेत् ॥12॥

किसी भी प्रकार के पाँच लाल पुष्पों को चावल के साथ पीस कर प्रियतमा तथा अपने जननांग में लेप करके संगमन करने वाला व्यक्ति रमणी के आनन्द को बढ़ाने वाला होता है ।

पुष्ये पुष्पं समुद्धृत्य भरण्यां तु फलं तथा ।
शाखां चैव विशाखायां हस्ते पत्रं तथैव च ॥13॥
मूलं मूले समुद्धृत्य कृष्णोन्मत्तस्य तत्क्रमात् ।
पिष्ट्वा कर्पूरसंयुक्तं कुङ्कुमं रोचना समम् ॥14॥

तिलकेन वशं याति यदि साक्षादरुन्धती ।

पुष्य नक्षत्र में काले धतूरे का पुष्प, भरणी में फल, विशाखा में शाखा, हस्त में पत्र तथा मूल नक्षत्र में मूल का ग्रहण कर कपूर, रोचना और कुंकुम बराबर मात्रा में पीसकर उस पिष्टी का तिलक लगाने से साक्षात् अरुन्धती जैसी नारी भी वश में हो जाती है ।

स्त्रीवशीकरणप्रयोगाः

ब्रह्मयष्टि वचामुस्तं मधुना सह पेषयेत् ॥15॥
अङ्गलेपाच्च युवती नान्यं भर्तारमिच्छति ।

ब्रह्मदण्डी, वचा तथा मुस्ता शहद के साथ पीस कर जननांग में लेप करके स्त्री के साथ सम्बन्ध बनाने से वह कभी भी किसी अन्य पुरुष के पास जाने की अभिलाषा नहीं करती ।

ऋतुकाले महादेवि ! शृणुष्व पर्वतात्मजे ! ॥16॥
निजशुक्रं गृहीत्वा तु वामहस्तेन यः पुमान् ।
कामिन्याश्चरणं लिंपेत् तस्य स्त्रियः प्रियाः सदा ॥17॥

हे महादेवि ! हे पार्वति ! सुनो, ऋतुकाल में यदि कोई पुरुष अपना शुक्र लेकर बाएँ हाथ से कामिनी के पैरों में लेप करता है, वह सदा उसके वश में बनी रहती है ।

नीलोत्पलसमं पूगं प्रदद्याच्चापरान्वितम् ।
यस्या मनोभिलाषी सा वशं याति वराङ्गना ॥18॥

नीलोत्पल और पूगीफल अर्थात् सुपारी सम मात्रा में अपराजिता के साथ खिलाने से पुरुष जिस नारी की कामना करता है, वह उसके वश में हो जाती है ।

गोरोचना महादेवि ! ऋतुशोणितभाविता ।
तत्कृतं तिलकं यस्य स नरो यां निरीक्षते ॥19॥
तां च सर्वं वशं कुर्यान्नात्रकार्या विचारणा ।

हे महादेवि ! स्त्री के ऋतुकाल के रजस् से भावित गोरोचना का तिलक लगाया हुआ व्यक्ति जिस भी नारी को देखता है, वह उसके वश में हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।

सैन्धवं च महादेवि ! पारावतमलं मधु ॥20॥
एभिस्तु लिङ्गालेपैस्तु कामिनी वशकृद् भवेत् ।

हे महादेवि ! सैन्धव नमक पारावत (कबूतर) की बीट (मल) तथा शहद का लेप कर कामिनी के साथ संगम करने से वह वश में हो जाती है ।

दम्पत्योः प्रीतिजननप्रयोगः

दम्पत्योः प्रीतिजननं लिङ्गवराङ्गयोरपि ॥21॥
कुर्याद् वशीकृतं यस्य धूपैश्च तिलकं तथा ।

समुद्री नमक तथा पारावत की विष्ठा शहद में पीस कर स्त्री तथा पुरुष दोनों की जननेन्द्रिय में लेप कर संगम करने से स्त्री पुरुष के वश में हो जाती है । इस लेप का तिलक पतिपत्नी में प्रेम बढ़ाता है तथा एक दूसरे को वश में करने वाला है ।

कपित्थरसकल्काभ्यां पिप्पली मधुयष्टिका ॥22॥
मधुना च समं पिष्ट्वा लेपनाच्च वराङ्गने ! ।
दम्पतीप्रीतिमाप्नोति प्राणान्ते नापगच्छति ॥23॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे षष्ठः पटलः समाप्तः ।



हे वरानने ! कैथ का रस और कल्क, पिप्पली, गुरुचि तथा शहद समभाग में पीस कर जननांगों पर लेपन कर संगमन करने से पति-पत्नी में जो प्रेम बढ़ता है, वह प्राणान्त के पश्चात् भी कम नहीं होता ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के षष्ठ पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथ सप्तमः पटलः

नारीप्रकरणम्

सन्तत्युत्पत्त्युपायः

बदरीमूलकं घोलैर्जयन्तीमूलदुग्धकैः ।
मायूरकूलकलिकामृतुस्नानान्तरं पिबेत् ॥1॥
मातुलुङ्गस्य बीजानि क्षीरेण सह पेषयेत् ।
घृतेन सह संयोगात् पाययेत्पुत्रकाङ्क्षिणीम् ॥2॥

पुत्रप्राप्ति की इच्छा रखने वाली नारी को चाहिये कि वह ऋतुस्नान के पश्चात् बेर तथा जयन्ती की जड़ का घोल तथा अपामार्ग की कलियों को पीस कर दूध के साथ पीये तथा मातुलिंग के बीजों को पीसकर घी मिलाकर दूध के साथ पीये ।

मूलं गोक्षुरकं चैव चार्चित्वा पर्वतात्मजे ! ।
नारी पुष्पदिने पीत्वा गोक्षुरोलेपवासितम् ॥3॥
श्वेतार्कमूलं संगृह्य विधिना पूर्वसंस्थितम् ।
ऋतुकाले कटौ बद्ध्वा नारी गर्भधरा भवेत् ॥4॥
नारी पुत्रं च लभते ह्यवश्यं नात्र संशयः ।

हे पार्वति ! ऋतुकाल में गोखरु की जड़ को पीसकर पीने तथा उस पिष्टी से भावित श्वेत अर्क की जड़ कमर में बाँधने से नारी अवश्य गर्भ धारण करती है । इस प्रयोग से उसे निश्चित ही पुत्र की प्राप्ति होती है ।

पुष्पगर्भस्थापनोपायः

पलाशस्य च बीजानि क्षौद्रेण सह पेषयेत् ।
रजस्वलापि पीत्वा स्यात् पुष्पगर्भविवर्जिता ॥5॥

रजःस्राव-काल में पलाश के बीजों को शहद के साथ पीसकर पीने से लगातार स्रवित हो रहा पुष्पगर्भिणी का गर्भ स्थापित हो जाता है ।

चलितगर्भस्थापनम्

कुलालहस्तोदद्धतकर्दमस्य
छागीपयः क्षौद्रयुतस्य पानात् ॥
गर्भसृतिं शूलमथो निवार्य
करोति गर्भं प्रकृतं हठेन ॥6॥

कुम्हार के हाथ से लायी गयी स्वच्छ मिट्टी को बकरी के दूध और शहद के साथ मिला कर पीने से गर्भस्राव तथा गर्भाशय की पीड़ा से मुक्ति मिलती है ।

उरोजोत्थानोपायः

श्रीपर्णीक्वाथकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलतोलकेनैव स्तनस्योपरि दापयेत् ॥7॥
काठिन्यं वर्धतां याति पतितं चोत्थितं भवेत् ।
वृद्धा च कन्यका वापि तस्या जातौ पयोधरौ ॥8॥

श्रीपर्णी के क्वाथ और कल्क से सिद्ध तोले भर तिल के तेल का स्तनों पर लेप करने से चाहे कन्या हो या नष्टयौवना वृद्धा, उसके स्तनों का उभार बढ़ जाता है और उनमें कठोरता आ जाती है ।

श्वेताम्रसैवकुसुमं कृष्णधेनुपयोऽन्वितम् ।
पिष्ट्वा स्तनयुगे दद्याद् भवेत्पीनपयोधरा ॥9॥

हे देवि ! काली गाय के दूध के साथ श्वेत आम्र के पुष्पों को पीस कर स्तनों पर लगाने से स्तन भारी हो जाते हैं ।

स्तनदुग्धवर्धनोपायः

भूमिकूष्माण्डमूलं वै शालिचूर्णमथापि वा ।
सप्ताहं दुग्धपीतं स्यात् स्त्रीणां बहुपयो भवेत् ॥10॥

भूईकुम्हड़े की जड़ और शालि नामक धान का चूर्ण दूध के साथ सात दिन पीने से स्त्रियों के स्तन में दुग्ध बढ़ जाता है ।

प्रसूतिकारोगचिकित्सा

***दात्यूहभक्षणं स्त्रीणां प्रकारेण यथा तथा ।**
सूतिकाः सकलारोगाः शाम्यन्ति नात्रसंशयः ॥11॥

जिस किसी प्रकार से भी दात्यूह अर्थात् जलकौएँ का भक्षण स्त्रियों के समस्त प्रसूतिरोगों को समाप्त कर देता है ।

योनिरक्तस्रावनाशनोपायः

आम्रस्य बीजशस्यं च सुगन्धि कदलीफलम् ।
सदुग्धं तु पिबेत् वापि योनिरक्तस्रवापहा ॥12॥

आम की गुठली के भीतर स्थित बीज और सुगन्धित जाति वाले केला के फल को दूध में मिलाकर पीने से योनि से होने वाला रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

कदलीमूलकं चैव पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
स्त्रीणां चैव महादेवि रक्तस्त्रावं च धारयेत् ॥13॥

हे महादेवि ! भिंगोये चावल के पानी में केले की जड़ पीस कर लेप करने से स्त्रियों का रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

वनितापुष्टिकरप्रयोगः

सकाञ्जिकं यवक्षारं प्रस्थं ज्योतिष्मतीफलम् ।
दूर्वां पिष्ट्वा च सम्प्राश्य वनिता वर्तुला भवेत् ॥14॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे सप्तमः पटलः समाप्तः ।



यवक्षार, मुट्ठीभर ज्योतिष्मती का फल तथा दूब काँजी में पीस कर सेवन करने से दुर्बल नारी गोलमटोल सम्पुष्ट बन जाती है ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के सप्तम पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथाष्टमः पटलः

वीर्यकरणम्

चूर्णं विदार्याः सकृत् स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिभ्यां युक्तं लिप्त्वा पयं पिबेत् ॥1॥
शतमशीतिवर्षेण युवैव रमते जरा ।
सर्पिःक्षौद्रयुतं लिप्त्वा स गच्छेद् दशाङ्गना ॥2॥

विदारीकन्द के चूर्ण को एक बार स्वरस से भावित करके उसमें शर्करा, शहद तथा घृत मिलाकर दूध के साथ पीने से व्यक्ति का अस्सी वर्षीय बुढ़ापा भी युवा की तरह दस युवतियों के साथ रमण करता है ।

श्वेतवाट्यालमूलं च श्वेतचामरसंयुतम् ।
करवीरसमे कट्यां धारणात् बिन्दुरक्षणम् ॥3॥

श्वेतबला अर्थात् बरिआरा की जड़ को करवीर की जड़ के साथ श्वेत चामर से कटि में बाँधने से वीर्य का क्षरण नहीं होता ।

बीजं सप्तदलं चैव तथा श्वेतापराजिताम् ।
भृङ्गराजसमैः पिष्ट्वा वटिकां कारयेत् ततः ॥4॥
मस्तके यदि वा स्कन्धे धारयेत् बाहुमूलतः ।
तदा न पतति बिन्दुर्यदि योनिशतं व्रजेत् ॥5॥

श्वेत अपराजिता के बीजों तथा सात पत्तों को भांगरे के साथ पीसकर गोली बना लेनी चाहिये । इस गोली को माथे अथवा कन्धे या बाहु में धारण करने से यदि व्यक्ति सौ रमणियों के साथ भी रमण करे, तो भी उसके वीर्य का क्षरण नहीं होगा ।

महासौगन्धिकं मूलं महास्तम्भं कट्योः स्थितम् ।
पुत्रदण्डीसिफारम्भे धृत्वा शुक्रस्य स्तम्भनम् ॥6॥

महासौगन्धिक अर्थात् दमनक नामक सुगन्धित क्षुप की जड़ महान् स्तम्भनकारी होती है । इसे कटि में धारण करने से वीर्य का स्तम्भन होता है ।

छत्राकारं वंशमूलं लोहितं दृश्यते यदि ।
तन्मूलं लेपनाल्लिङ्गे बलहानिर्न जायते ॥7॥

यदि कहीं छत्राकार लोहित वर्ण का वंशमूल मिल जाय तो उसकी जड़ का जननेन्द्रिय पर लेप कर स्त्रीप्रसंग में शक्ति का ह्रास नहीं होता ।

शकुनस्यान्तरे क्षिप्त्वा हस्तिवार्ताकमूलकम् ।
दग्ध्वा तं संकुलं तत्तु मूलं कृत्वा पृथक् लता ॥8॥
शकुनं भक्षयेद्येन ख्यातं (खातं) मूलं ततः परम् ।
पृथुकेन्द्रासना चैव भक्षणीया ततः पुमान् ॥9॥
शतं गत्वा तु नारीणां न संक्षयति कुत्रचित् ।

किसी भक्ष्य पक्षी के भीतर वनभांटा की जड़ रखकर उस पक्षी को भूंनने के बाद उससे जड़ को बाहर निकालकर पहले उस पक्षी को फिर उस जड़ का भक्षण करे । तदनन्तर पृथुक अर्थात् चिउडा और इन्द्रासना (इन्द्रसुरस या इदरसन) नामक पाकविशेष का भी भक्षण करना चाहिये । इस प्रयोग से व्यक्ति सौ नारियों के साथ भी सम्बन्ध बनाये, तो भी उसके वीर्य का क्षरण नहीं होता ।

षण्ढत्वहरणप्रयोगः

हैमे तथा रौप्यमये च पात्रे
प्रक्षाल्य मुक्ताफलमेकमेव ।
पीत्वा पुमानथवा च नारी
षाण्डत्वदषं सहसा निहन्ति ॥10॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे अष्टमः पटलः समाप्तः ।



स्वर्ण या रजत के पात्र में एक मोती धोकर उस जल का पान करने से स्त्री हो या पुरुष, उसका नपुंसकत्व दोष समाप्त हो जाता है ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के अष्टम पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।



अथ नवमः पटलः

अवशिष्टविविधप्रयोगाः

अदृश्योपायः

कथयाम्यधुना भद्रे अदृश्यभावमौषधम् ॥1॥
दण्डकाकस्य रुधिरं पित्तं च जम्बुकस्य च ।
भल्लस्य पेचकस्यापि वामदक्षिणयोरपि ॥2॥
एषां पिष्ट्वा समं चैव वटिकां कारयेत् ततः ॥
छायायां कारयेच्छुष्कमञ्जनं तत्प्रदापयेत् ॥3॥
यावन्मात्रं हितं नेत्रेऽदृश्यो भवति सुन्दरि ।
पादयोः स्तनयोरेवं युक्तियोज्यं प्रयोजयेत् ॥4॥

हे सुन्दरि ! अब मैं तुम्हें अदृश्य होने की विधि बताता हूँ । दण्डकाक का रक्त तथा सियार, भालू तथा पेचक अर्थात् उल्लू का पित्त समान मात्रा में लेकर पीसे और गोली बनकर छाया में सुखा ले । उक्त गोली को घिसकर अंजन लगाने तथा स्तनों और पैरों में लेप करने से, जब तक यह लेप नेत्रों में लगा रहता है, तब तक व्यक्ति दूसरों के लिये अदृश्य बना रहता है ।

चिताग्निः खञ्जरीटस्य विष्ठा फेणं हयस्य च ।
शोभाञ्जनमयं नेत्रे नर एतस्य धूपितः ॥5॥
अदृश्यस्त्रिदशैः सर्वैः किं पुनर्मनुजैः प्रिये ।

चिता की अग्नि में खंजरीट पक्षी की विष्ठा, घोड़े का फेन तथा शोभांजन से धूपित व्यक्ति देवताओं के लिये भी अदृश्य बन जाता है, मनुष्यों की तो बात ही क्या ?

अदृश्यनिधिदर्शनोपायः

कनकधुस्तूरकं मूलं तथा सप्तदलस्य च ॥6॥
मुक्तकेशेन चोत्पाट्य मूलं चैव बलाहकम् ।
तावन्मुखेन सन्दृश्य सर्वं संदृश्यते नरैः ॥7॥
पातालतलपर्यन्तं यत्र यत्र स्थितो निधिः ।

खुले बालों से कनकधतूरा, सप्तपर्णी तथा बलाहक की जड़ उखाड़ कर मुख में रखने से भूमि के नीचे पातालपर्यन्त जहाँ भी खजाना गड़ा होगा, व्यक्ति उसे देख सकता है ।

सौन्दर्यवर्धकलेपः

अतसीमासगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पली ॥8॥
घृतेन लेपयेद् गात्रमिति सार्धं विचक्षणः ।
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो भवेन्नित्यं विलेपनात् ॥9॥

अतसी, उड़द, गेहूँ तथा पिप्पली को एक साथ पीस कर बनाये गये चूर्ण को घृत के साथ शरीर पर लगाने से व्यक्ति कामदेव की भाँति सुन्दर हो जाता है ।

दुर्गन्धहा लेपः

तिलं सर्षपसंयुक्तं हरिद्रां मेथिकां तथा ।
पिष्ट्वा तल्लेपयेद् गात्रं गात्रगन्धो विनश्यति ॥10॥
तापहरश्चानुदिनं त्वग्दोषं काकजङ्घया ।

तिल, सरसों, हल्दी तथा मेथी सम मात्रा में पीसकर शरीर पर लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है । काकजंघा के साथ मिलाकर प्रतिदिन शरीर पर लेप करने से यह लेप शरीर की जलन तथा त्वचा के रोग समाप्त करता है ।

आर्द्रकस्य च पुष्पाणि तुम्बीफलयुतानि च ॥11॥
सलोध्रानि च तल्लेपाद् देहदुर्गन्धमाहरेत् ।

अदरक के पुष्प, लौकी तथा लोध्र को पीसकर बनाया गया लेप शरीर पर लगाने से देह की दुर्गन्ध दूर हो जाती है ।

मुखवैवर्ण्यहान्युपायः

कृष्णतिलकृष्णजीरकैः सिद्धार्थकैः समभागेन ॥12॥
पिष्ट्वा लेपनात्सद्यो मुखवैवण्यनाशकृत् ॥

काला तिल, काला जीरा तथा श्वेत सरसों सम भाग में पीस कर मुख पर लगाने से मुख का फीकापन दूर हो जाता है ।

दुर्बलतानाशकप्रयोगः

धातकीं सोमराजिं च क्षीरेण सह पाययेत् ॥13॥
दुर्बलं च भवेत्स्थूलो नात्र कार्या विचारणा ।

धातकी अर्थात् धवा के बीज तथा सोमराजी अर्थात् बाकुची को दूध के साथ पीसकर लेप करने से दुर्बल व्यक्ति अथवा दुर्बल स्तन स्थूल हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

कृमिनाशकप्रयोगः

शूलोऽस्ति कण्ठबद्धं वै महिषाणां गवां तथा ॥14॥
कृमिजालं पातयति सकलं नात्र संशयः ।

विष्णुकान्ता मूलसिता कर्णे बद्धा तु धारयेत् ॥15॥
पट्टसूत्रे महादेवि ! कृमिकादीन् विनाशयेत् ।

गायों अथवा भैसों के शरीर में पीड़ा हो अथवा गलघोटू रोग हो, या पेट में कीड़े हों तो विष्णुकान्ता तथा मूलसितामूल को रेशमी धागे में बाँधकर कान में पहनाने से उदर के कृमि आदि नष्ट हो जाते हैं ।

कृष्णाचतुर्दशी कट्यां बद्धमूलं समाहितम् ॥16॥
हरेल्लाङ्गलिकामूलं सहे च मकरादिकम् ।

कृष्णचतुर्दशी को लांगलिका का मूल, सहा तथा महासहा तथा कुम्भी की जड़ कटि में बाँधने से उदर के कृमि आदि नष्ट हो जाते हैं ।

वत्सं प्रति गवि स्नेहोत्पादनप्रयोगः

या गौर्द्वेष्टि स्वकं वत्सं तस्यै देयं प्रयत्नतः ॥17॥
लवणेन समायुक्तं तस्या वत्सः प्रियो भवेत् ।

जो गाय अपने बछड़े को पास फटकने नहीं देती उसे नमक, धातकी के बीज तथा बाकुची पीसकर दूध के साथ खिलाने से वह बछड़े से स्नेह करने लगती है ।

वृश्चिकविषहरणप्रयोगः

उष्णगव्यघृतं चापि सैन्धवेन समन्वितम् ॥18॥
वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपोऽयं पर्वतात्मजे ! ।

हे पार्वति ! सैन्धव लवण के साथ गाय के गर्म घी का दंश के स्थान पर लेपन करने से बिच्छू का विष दूर हो जाता है ।

कुक्कुरविषनाशकप्रयोगः

शिरीषकस्य बींज वै स्नुही क्षीरेण पेषितम् ॥19॥
तल्लेपेन महादेवि ! न स्यात् कुक्कुरजं विषम् ।

शिरीष के बीजों को सेंहुंड के दुध में पीस कर कुत्ते के काटे घाव में लगाने से कुत्ते के विष के भय की सम्भावना नहीं रहती ।

डाकिन्यादिभयतो मुक्तिप्रयोगः

श्वेतापराजितामूलं पत्रं निम्बरसेन तु ॥20॥
तस्याः पानाद् डाकिनीनां तथैव ब्रह्मरक्षसाम् ।
मोक्षः स्यान्मधुसार्धेन कथितं ते समाहितम् ॥21॥

इति श्रीदेवीश्वरसंवादे सर्वविजयितन्त्रे नवमः पटलः समाप्तः ।



श्वेत अपराजिता की जड़ एवं पत्तों के रस को नीम के रस तथा शहद के साथ पीने से डाकिनियों एवं ब्रह्मराक्षसों द्वारा उत्पन्न किये गये शारीरिक तथा मानसिक उत्पातों से रोगी को मुक्ति मिलती है ।

श्रीदेवीश्वरसंवादरूप 'सर्वविजयितन्त्र' के नवम पटल की
डॉ० रामचन्द्रपुरीकृत मीराश्री हिन्दीविवृति समाप्त ।

समाप्तमिदं तन्त्रम् ।





वामसाधना पशु से पशुपति बनने का उद्यम है। यह चेतना के विकास की कहानी है। यह पाशबद्धता से पाशमुक्तता की ओर बढ़ने की यात्रा है। यह त्रैगुण्य से निस्त्रैगुण्य में विचरण करने की अदम्य आकांक्षा है। यह विधि-निषेध से परे जाने की ललक है। यह सब-कुछ स्वीकारते हुए भी सब-कुछ नकारने का साहस है। यह अणु में महत् और महत् में अणु को निहार लेने की अद्भुत दृष्टि है। वामसाधना एक प्रायोगिक उलटवासी है। यह समनी नहीं, उन्मनी साधना है। यह मन को बाँधने की नहीं, उन्मुक्त छोड़ देने की साधना है। वस्तुतः यह साधना किसी भी स्थापित बन्धन के स्वीकार की नहीं अपितु नकार की है; सहमति की नहीं विरोध की है; अनुरोध की नहीं विद्रोह की है।





डॉ. रामचन्द्र पुरी ने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से शाङ्करवेदान्ताचार्य तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एम.ए. एवं पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त हैं। वेदान्त तथा अन्य विषयों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में डॉ. पुरी को संस्कृत विश्वविद्यालय से तीन स्वर्णपदक प्राप्त हुए। डॉ. पुरी ने संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, आचार्य तथा एम.ए. की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा एम.ए. (हिन्दी) परीक्षा में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। डॉ. पुरी ने लगभग 35 वर्षों तक लाजपतराय पी.जी. कालेज, गाजियाबाद तथा बी.एस.एम.पी.जी. कालेज, रुड़की में अध्यापन किया और इसी दौरान आपको भारत सरकार की 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' की ओर से वर्ष 1987 में सूरीनाम के पारामारीबो स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र में अध्यापनार्थ भेजा गया। यहाँ आपने जून 1991 तक हिन्दी के साथ संस्कृत, भारतीय दर्शन, संस्कृति तथा प्राच्यविद्या आदि विषयों का अध्यापन किया।

डॉ. पुरी की 'शङ्कराचार्य : तान्त्रिक शाक्त-साधना एवं सिद्धान्त', 'श्रीतन्त्रदुर्गा-सप्तशती', 'कुण्डिलिनी महायोग', 'शङ्कराचार्य : तान्त्रिक साधना', प्रपञ्चसारतन्त्रम्, 'सांख्यायनतन्त्रम्' 'ललितात्रिशतीस्तोत्रम्' एवं 'षट्वामतन्त्राणि' नामक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। कुण्डिलिनी महायोग के प्रथम खण्ड में महान् योगी गुरुओं की अहैतुकी कृपा से उन्हें प्राप्त साधना-पथ की दिव्य यात्रा के कुछ अनतिगोप्य संस्मरणों तथा द्वितीय खण्ड में योगशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं अनुभूतिपरक विभिन्न विषयों का लेखा-जोखा है। डॉ. पुरी की अन्य कृति 'शङ्कराचार्य : तान्त्रिक साधना' में आचार्य शङ्कराचार्य द्वारा निरूपित तान्त्रिक साधनाओं का विवरण-विश्लेषण है।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली